ग्रन्थ-संख्या—११९

प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भण्डार
लीडर प्रेस
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
सं० २००३ वि०
मूल्य ५)

मुद्रक
महादेव एन० जोशी
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

वर्तमान उपन्यास की कथा का आरंभ उस समय से होता है जब द्वितीय महायुद्ध अपनी प्रारभिक अवस्था में था और उसकी छाया भारत में पूरी तरह से नहीं पड़ी थी। तब मध्यवर्गीय समाज के जीवन से रोमांस की रगीनी एकदम उठ नहीं गई थी। इसमें सदेह नहीं कि उस रगीनी को युद्धजनित प्रतिक्रिया की विभीषिका का अस्पष्ट आभास किंचित् म्लान करने लगा था, पर अभी उस म्लान छायाभास ने सघन रूप धारण नहीं किया था। एक ओर मध्यवर्गीय समाज अभी तक उसी युग की भावनाओं, सस्कारो और मान्यताओं से बंधा हुआ था जब प्रथम महायुद्ध-जनित प्रतिक्रियाओ की पूर्ण समाप्ति के बाद प्रतिदिन के जीवन को साधारण सुख-सुविधाओ में एक प्रकार की ऊपरी स्थिरता-सी मालूम होने लगी थी, और यद्यपि समाज के भीतर-ही-भीतर—स्वय उसके अज्ञात में—आग निरतर धधकती चली जा रही थी, तथापि उसकी ऊपरी सतह के जीवन में प्रकट रूप से एक प्रकार की 'शाति'-सी छाई हुई जान पड़ने लगी थी; दूसरी ओर वह द्वितीय महायुद्ध के विकरालतर दानव की सर्वग्रासी छाया को अपने निकट पहुँचता हुआ अनुभव कर रहा था। पर अभी तक उसके आंगन में धूप थी, यद्यपि वह देख रहा था कि आकाश के दूसरे छोर से बड़ी तेज़ी के साथ प्रलयकाल के तूफानी बादल गर्जन करते हुए उसके ऊपर वाले आकाश को भी पूर्णतया छाने के लिए दौड़े चले आ रहे हैं।

* * *

इसके बाद उपन्यास की कहानी जब द्वितीय स्थिति पर पहुँचती है तब एक ओर सन् बयालीस के अगस्त आदोलन का दमन-चक्रपूर्ण सघन वातावरण भारतीय आकाश को भाराक्रांत किये हुए था, और दूसरी ओर महायुद्ध की प्रतिक्रिया का परिपूर्ण प्रकोप पूरे प्रवेग से देश की जनता के ऊपर टूट पड़ा था। केवल पूंजीपति और जमींदार वर्ग को छोड़कर और सभी वर्ग इन दो

पाटों के बीच में बुरी तरह पिसने लगे थे। पिसने की इस क्रिया का सबसे कटु अनुभव हुआ मध्यवर्ग को। फलस्वरूप इस वर्ग के जीवन की पिछली सभी मान्यताओं का मूल आधार ही जैसे ढह गया। युगों से वह जीवन के प्रति जिस अलस-लालस-रसावेशमय दृष्टिकोण को अपनाये हुए था, जिस रूढिगत, जड़तापूर्ण 'शांतिवाद' को छाती से लगाये हुऐ था, वह युगांतकारी तूफानी हवा की एक प्रबल फुफकार से न जाने कहां छिन्न-भिन्न हो गया। सहसा उसने अपने को कठोरतम संघर्ष के बीच में, जीवन-संग्राम की दुर्धर्ष और विस्फोटक शक्तियों द्वारा प्रताड़ित अवस्था में, पाया। उसके भीतर प्रचंड प्रतिक्रिया आरंभ हुई। अपने कृत्रिम 'शांति'-पूर्ण पारिवारिक और सामाजिक जीवन की चहारदीवारी की माया तोड़कर वह बाहर के विपुल संघर्ष के बीच में आ कूदा—केवल विरोधी शक्तियों का सामना करने के उद्देश्य से ही नहीं, बल्कि अपनी प्रतिरोधी शक्तियों को आक्रामक रूप में परिणत करने के उद्देश्य से भी। संसार ने पहली बार जाना कि भारत की मध्यवर्गीय जनता के भीतर ऐसी दुर्दमनीय शक्ति इतने दिनों तक सुप्त अवस्था में निहित थी, जो सहसा अणु के विस्फोट की तरह चारों ओर प्रज्वलित हो उठी।

इस उच्च- तथा निम्न-मध्यवर्गीय क्रांति ने जो सबसे बड़ा चमत्कार दिखाया वह था नारी की मूल आत्मा की कायापलट। अगस्त आंदोलन, युद्ध-जनित प्रभाव, बंगाल का अकाल आदि कारणों से एक ऐसी रासायनिक प्रतिक्रिया मध्यवर्गीय भारतीय नारी की अंतरात्मा में हुई कि उसके भीतर युगों से दबी हुई प्रचंड प्रतिहिंसात्मिका शक्ति पूरे विस्फूर्जन के साथ जग उठी। वह माता, वधू, कन्या कुछ भी न रहकर सहसा रणचंडी भैरवी का खप्पर और त्रिशूल हाथ में लिये खड़ी हो गई। विश्व स्तब्ध विस्मय के साथ उसकी ओर ताकता रह गया, पारिवारिक और सामाजिक जीवन की स्नेह-शृंखला से छिन्न नवयुवकों को एक नयी रहस्यात्मक—प्रायः आध्यात्मिक—और रोमांचक प्रेरणा मिली, किसी भी शांतिवादी दार्शनिक में न तो इतना बल रह गया कि उस नवदुर्गा की प्रशंसा करे, न इतना साहस ही कि उसकी निन्दा करे।

* *

उपन्यास की तीसरी और अंतिम स्थिति तब आती है जब द्वितीय महायुद्ध तो समाप्त हो जाता है, किंतु समाप्ति के साथ ही अणु-बम के आविष्कार द्वारा तृतीय महायुद्ध के छायापात की सूचना भी दे जाता है। एक ओर पूर्व युगो के राजनीतिक चक्रो की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न मनोवैज्ञानिक कारणों से भारतीय तरुण वर्ग हिंसावाद की ओर पूरे वेग से खिंचता चला जाता है, दूसरी ओर उसी वर्ग मे से तीव्र अनुभूतिशील और चिंतनारत नवयुवकों के एक ऐसे दल के जन्म का आभास बीज रूप मे मिलने लगता है जो एकमात्र अहिंसा को ही विश्व-विनाशी अणु-बम के—तथा उसके आविष्कार से उत्पन्न होने वाले राजनीतिक अनाचारों के—प्रतिरोध के लिये चरम अस्त्र मानता है। तब इस बात के स्पष्ट लक्षण दिखाई देने लगते हैं कि इन दोनो दलों के परस्पर-विरोधी आदर्शों का संघर्ष भारत के भावी इतिहास का पथ निर्धारित करेगा।

* * *

उपन्यास की पृष्ठभूमि का स्पष्टीकरण करने का प्रयत्न मैं कर चुका हूँ, अब एक दूसरा प्रश्न स्वभावतः कुतूहली पाठक करना चाहेंगे। वह यह कि इस पृष्ठभूमि में मैंने किस तत्त्व या आदर्श को प्रस्फुटित करने का प्रयास किया है?

इस कल्पित प्रश्न के उत्तर मे मेरा यह निवेदन है कि मै किसी भी उपन्यास को सब से पहले एक कहानी मानता हूँ—उसे चाहे आप बड़ी कहानी कह लीजिये। जो कहानी मै कहना चाहता हूँ उसे यदि मैं अच्छे ढग से कह सकने मे समर्थ सिद्ध हो जाऊँ तो वहीं पर मेरा कर्तव्य पूरा हो जाता है और स्वभावतः मेरे प्रयास की सफलता भी निर्धारित हो जाती है। उपन्यास का सबसे पहला और सबसे बड़ा गुण या विशेषता यही है कि उसकी कहानी सुंदर ढग से, कलात्मक सौष्ठव के पूर्ण निर्वाह के साथ, कही गई हो। इसके बाद दूसरी विशेषता यह है कि जिन आधारों को लेकर वह कहानी गढ़ी गई हो वे जीवन की किन्हीं गहन समस्याओं से सम्बन्धित हों। इन दो के बाद और किसी भी तीसरी विशेषता का कोई महत्त्व मानने

को मैं तैयार नहीं हूँ। किस उपन्यास में कौन आदर्श प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया गया है, और वह आदर्श सामाजिक अथवा राजनीतिक क्षेत्रों की मांगों के अनुकूल पड़ता है या नहीं, इस तरह की विवेचनाओं का कोई विशेष मूल्य मैं किसी औपन्यासिक रचना के श्रेष्ठत्व की परख के संबंध में नहीं समझता।

मैं यह बात कोरे कागज़ पर लिखकर कह देना चाहता हूँ कि मैं जीवन का एक विनम्र दर्शक मात्र हूँ। जीवन में घटित होने वाली कुछ विशेष घटनाओं को लेकर, उन्हें कुछ विशेष पात्रों के जीवन-सूत्र में पिरोकर, अपनी योग्यतानुसार उनका यथार्थ चित्र अंकित करने का प्रयास भर मैं करता हूँ। बीच-बीच में उन घटनाओं के—अथवा उन घटनाओं से संबंधित पात्रों के चरित्र के—स्पष्टीकरण के उद्देश्य से कुछ ऐसी समस्याएं अपने आप मेरे उपन्यासों में आ जाती हैं जिन पर विभिन्न पात्रगण अपनी-अपनी रुचियों और जीवन संबंधी अनुभवों तथा परिस्थितियों के आधार पर विवेचनात्मक विवाद करने लग जाते हैं। इसमें मेरा कोई दोष नहीं है (दोष यदि है तो वह मेरे पात्रों का)। मैं अपने उन पात्रों के विचारों के लिये अपने को उत्तरदायी नहीं समझता, और यह समझना भारी भूल होगी कि मेरे उपन्यासों के नायक-नायिकाओं (अथवा किन्हीं अन्य पात्र-पात्रियों) के विचार आवश्यकत: मेरे अपने ही विचार हैं। यदि किसी दिन यह प्रमाणित हो जाय कि मेरे सभी प्रमुख कथा पात्रों के विचार मेरे ही अपने विचार हैं तो उस दिन मेरी कहानी कला की सब से बड़ी असफलता सिद्ध हो जायगी। यह दूसरी बात है कि कभी किसी पात्र की बात से मेरे विचार का मेल संयोगवश बैठ जाय। संयोग के लिये कोई क्या कर सकता है?

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, मेरे औपन्यासिक पात्रों के विवेचनात्मक विवादों की केवल इतनी ही उपयोगिता है कि वे कहानी के अधिक परिस्फुटन और स्पष्टीकरण में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। इससे अधिक उनका कोई और महत्त्व मैं नहीं समझता।

* * *

अपने वर्तमान उपन्यास की पृष्ठभूमि से पाठकों को परिचित कराते हुए मैं उसकी जिन तीन अवस्थाओं का उल्लेख पहले कर चुका हूँ, उपन्यास के नायक का जीवन उन तीनों परिस्थितियों से होकर गुजरता है। उन तीनों परिस्थितियों में, अपने संघर्षमय जीवन के बीच में, वह किन-किन और किस प्रकार के पात्रों तथा पात्रियों के संपर्क में आता है, जीवन के किन जटिल-जाल-संकुल पथों से होकर विचरण करता है, किन-किन घटना-चक्रों का सामना उसे करना पड़ता है और उनकी क्या-क्या और कैसी प्रतिक्रियाएं उसके भीतर होती हैं, इन्हीं सब बातों का चित्रण करने का प्रयत्न मैंने किया है। यदि विज्ञ गुणी जनों की दृष्टि से इस चित्रण में यथार्थता की कुछ भी झलक आ पाई हो, यदि उसमें सजीवता का किंचिन्मात्र भी आभास दे सकने में मैं समर्थ हुआ होऊँ तो अपने कर्तव्य को बहुत-कुछ पूरा और प्रयास को काफी सफल समझूँगा। और यदि इतनी भी सफलता मुझे न मिली हो, तो अपने दुर्भाग्य को चुपचाप कोसते रहने के सिवा मेरे लिये और कोई चारा नहीं रहेगा।

इसलिये यह प्रश्न मेरे लिये निरर्थक सिद्ध हो जाता है कि इस चित्रण द्वारा किस तत्त्व का प्रतिपादन या किस आदर्श का प्रतिष्ठापन हुआ है। मैं अंत में फिर एक बार यह निवेदन कर देना चाहता हूँ कि यह विषय मेरे क्षेत्र के अंतर्गत नहीं है। मैंने इसके लिए प्रकट रूप से न तो कोई प्रयास ही किया है, और न उसके लिये मैं अपने को बाध्य ही समझता हूँ। यदि परोक्ष रूप से—विविध पात्र-पात्रियों के जीवन-चक्र के चित्रण के फलस्वरूप—किसी विशेष तत्त्व या आदर्श की प्रतिष्ठापना की भूल मुझसे हो पड़ी हो, तो उसके लिये मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। वह भूल क्या है और कैसी है, इसका विवेचन भी सुधी पाठक ही कर सकते हैं।

प्रयाग, शुक्ला त्रयोदशी,
मार्गशीर्ष, २००३

इलाचन्द्र जोशी

गर्मियो के दिन थे। दिन भर कुम्भीपाक की गर्मी से सब को झुलसाने के बाद सूरज डूब चुका था। पर लू की लपटें अभी तक बडे करारे थपेडे मार रही थी। फिर भी उत्साही जनता प्रकृति के उस प्रकोप से तनिक भी विचलित नही हो रही थी। नीचे जमीन पर ही चटाइया और दरिया बिछा दी गई थी और कतार बाध कर बैठे हुए दर्शकगण अत्यन्त उत्सुक भाव से सामने मच पर बैठे हुए नेताओ की ओर टकटकी लगाये हुए थे। उनमें कुछ ऐसे मनचले भी थे जो केसरिया रग की साडियो से सुशोभित स्वयसेविकाओ की गति-विधि में विशेष दिलचस्पी ले रहे थे। स्वयसेविकाओ में से कुछ तो लोगो की कभी न बुझने वाली प्यास को शान्त करने के सच्चे इरादे से पानी पिलाने में व्यस्त थी, कुछ पखा बाट रही थी, कुछ महिलाओ के बैठने के प्रबन्ध में जुटी हुई थीं और कुछ अनिश्चित अवस्था में निश्चित स्थानो पर खडी थीं।

दर्शकों की पहली कतार में एक गोरे रग का, दुबला-पतला, नाटा-सा युवक (जो आकृति-प्रकृति और कद में एक कालेजी लडके से बडा नही दिखाई देता था, पर उम्र के हिसाब से था पूर्ण युवक ही) बडी देर से एक विशेष स्वयसेविका की गति-विधि पर गौर कर रहा था। उसके मुख पर केवल एक साधारण नवयुवकोचित कौतूहल और उत्सुकता का भाव नही था, बल्कि एक अत्यन्त सघन गम्भीरतापूर्ण मनोयोग का आभास उसकी भावमग्न आखों में झलक रहा था। जिस विशेष स्वयसेविका की ओर वह टकटकी लगाये हुए था वह एक लम्बे क़द की, उजले रग की, हँसमुख युवती थी। जितनी भी स्वयसेविकाए उस जलसे में थी, उन सबमें उस विशेष युवती का व्यक्तित्व निश्चय ही अधिक आकर्षक था। इस बात का सबसे बडा प्रमाण यह था कि दर्शको में से प्राय सभी मनचले युवको की दृष्टि अधिकतर उसी पर जाकर ठहरती थी। वह मञ्च के पास ही खडी थी और दो सफेदपोश युवको के साथ अत्यन्त प्रसन्न भाव से, बडी चञ्चलता के साथ, बातें कर रही थी, और बातें करती हुई बीच-बीच में क्षण भर के लिए सामने दर्शको की ओर भी अनिश्चित भाव से एक झलक देख लेती थी।

जिस दुवले-पतले और नाटे कद के युवक का जिक्र पहले किया जा चुका है उसकी आखे एक पल के लिए भी उस चचल युवती की ओर से हटती नही थी। उसके मुख पर कभी एक गाढी, अधेरी, रहस्यमयी छाया घिर आती थी, कभी एक अशान्त और अस्थिर भाव उसकी आखो में थिरकने लगता था और एक विचित्र प्रकार की भावोत्तेजना से उसका सारा मुख चमक उठता था। प्राय सभी दर्शक अपने अगल-वगल के साथियो से किसी न किसी विषय पर वात कर रहे थे, पर वह नाटा युवक एकदम मौन था। वह तत्काल के लिए सारी उपस्थित जन-मण्डली के प्रति एकदम उदासीन-सा जान पड़ता था और एकान्त मन से अपने लक्ष्य-विन्दु की ओर आखे गडाये हुए था। पर उस युवती ने अभी तक उसकी ओर एक वार झाका तक नही था और वह निश्चित और निर्द्वन्द्व भाव से पूर्वोक्त दो युवको के साथ हँस-हँसकर वातें करती जाती थी। इस वात से नाटे कदवाले गौरवर्ण युवक की अशान्ति और अधिक वढती जाती थी और वह अशान्ति धीरे-धीरे खीझ में परिणत होने जा रही थी।

इतने में तीन स्वयसेविकाएं पानी पिलाने के उद्देश्य से उस स्थान पर आई जहा वह नाटा युवक वैठा हुआ था। पर इस वात से भी उसका ध्यान भग नही हुआ और वह एकटक आखों से उसी हँसमुख, चञ्चल युवती को ओर देखता रहा। इतने में अचानक उसके कानो में भनक पडी—"महीपजी!" वह जैसे स्वप्न से जग उठा। जिधर से आवाज आई थी, उधर को मुह करके उसने देखा। स्वयसेविका के वेष में एक सुन्दरी लड़की, जिसकी अवस्था वीस-वाईस वर्ष के लगभग होगी, अत्यन्त स्निग्ध भाव से मुस्कराती हुई, विस्मय-जनित हर्ष की पुलक-भरी आखो से उसकी ओर देख रही थी। उसके हाथ मे पानी से भरा एक कुल्हड था। कुल्हड को युवक की ओर कुछ आगे वढ़ाते हुए उसने कहा—"पानी पीजिएगा? आप यहा कव आये?"

युवक के मुख पर इतनी देर से जो एक गाढी अधेरी छाया घनीभूत हो रही थी वह पल में न जाने कहा विलीन हो गई, और सहसा एक उज्ज्वल प्रकाश से उसका सारा मुख बिजली के जलते हुए बल्ब की तरह प्रदीप्त हो उठा। वह अत्यन्त स्पष्ट, सगीतमय और झकार-भरे स्वर में बोल उठा—"ओ प्रतिमा, तुम हो!"

प्रतिमा ने फिर प्रश्न किया—"आप कब आये?"

"आज ही।"

"ठहरे कहा है?"

"बस, सीधे स्टेशन से यही चला आ रहा हूँ। सामान जो कुछ था वह स्टेशन के 'क्लोक-रूम' में छोड आया हूँ।"

प्रतिमा के मुख पर कुछ खिन्नता-सी झलक आई। उसने कहा—"आपने ऐसा क्यो किया? हम लोगों के यहा आप क्यो नही चले आये?"

महीप ने पहले की ही तरह मधुर झकार भरे स्वर में उत्तर दिया—"बात यह है कि मै कल ही सुबह यहा से चला जाना चाहता हूँ। एक आवश्यक काम से मुझे कानपुर जाना है।"

"इतनी जल्दी आप चले जायगे! बिना हम लोगो से मिले ही! मा को अगर मालूम होगा कि आप आये थे और उनसे बिना मिले ही चले गये तो उन्हे बहुत दुख होगा।"

"उनसे कह देना कि फिर कभी आकर उनके दर्शन करूगा, इस बार क्षमा करे।"

"नहीं, ऐसा नही हो सकता! आप इतनी जल्दी किसी तरह भी नही जा सकते। मैं अभी दीदी से जाकर कहती हू।" यह कहकर प्रतिमा ने अपने हाथ का पानी का कुल्हड पास ही बैठे हुए एक सज्जन के हाथ में दे दिया, जो पानी माग रहे थे, और दौडकर उस स्वयसेविका के पास जा

पहुची जो मञ्च के पास खडी थी और जिसकी ओर महीप वडी देर से टकटकी लगाये था।

महीप ने देखा कि प्रतिमा के कुछ कहने पर उसी लम्बे कदवाली चंचल सुन्दरी ने उसकी ओर आखें की, और महीप को पहचानते ही एक विस्मयपूर्ण व्यग-भरी मुस्कान उसकी आखो मे, नाक के दो सिरो और ओठो पर, झलक उठी। वह उसी दम प्रतिमा के साथ तेज कदम रखती हुई महीप के पास चली आई। उसके आते ही महीप ने कुछ घवराहट के साथ हाथ जोड़े। उसके मुख पर एक सलज्ज भाव की हलकी-सी लालिमा छा गई थी।

चञ्चल युवती ने उसके अभिवादन के प्रत्युत्तर मे हाथ न जोड कर अपनी सहज अधिकारपूर्ण व्यगवाणी मे कहा—"आदाव अर्ज़ है! मैने सुना है कि जनाव आज ही तशरीफ लाये है और कल ही सुवह, हम लोगो से विना मिले ही, चले जाने का इरादा कर रहे है। क्या यह सच है?"

महीप का मुख सकोच और घवराहट से और अधिक लाल हो आया। उसने कहा—"जी हा, मै एक आवश्यक काम से कल ही कानपुर जाने का विचार कर रहा हूँ।"

"ऐसा हर्गिज नही हो सकता। जव आप आये है तव आपको दो-चार रोज ठहरना ही होगा। मै आज ही जलसा खतम होने पर आपको मा के पास लिवा ले चलूगी।" उसी अधिकारपूर्ण स्वर मे चञ्चल युवती ने कहा।

"मुझे इस वार के लिए क्षमा कर दो—कर दीजिये—नीलिमा जी! मैं फिर कभी आकर आप लोगो के दर्शन करूँगा।"

"ऊहूक! मै नही मान सकती। आज आपको हम लोगो के साथ चलना ही होगा। इस समय मै जाती हू, ठीक समय पर आपसे फिर मिलूगी।" कहकर नीलिमा चली गई। महीप कुछ देर तक उसी की ओर देखता रहा। नीलिमा फिर से उन्ही दो युवको के पास चली गई, जिनका साथ छोड़कर

वह आई थी। उन युवकों के प्रति एक अप्रिय ईर्ष्या का भाव महीप के हृदय में कई काटे एक साथ गडने की वेदना पैदा करने लगा।

प्रतिमा वहीं खडी थी। उसने कहा—"सुना महीप बाबू, दीदी ने क्या कहा ?" महीप ने अकचकाकर प्रतिमा की ओर देखा। प्रतिमा बोली—"आप उसकी बात किसी तरह टाल नहीं सकते—हम लोगों का कहना भले ही न मानें। उसके स्वभाव से आप भली-भाति परिचित है।" कहकर प्रतिमा एक भेद-भरे सकेत का भाव आखो में झलकाती हुई दुष्टतापूर्ण ढग से मुस्कराने लगी। महीप भी सलज्ज भाव से मन्द-मन्द मुस्कराने लगा। प्रतिमा के अस्पष्ट सकेत का एक विशेष अर्थ वह अपने मन में लगाने की चेष्टा कर रहा था, पर फिर भी उसकी सारी बात उसे अत्यन्त रहस्यपूर्ण लग रही थी।

आस-पास के दर्शक बडे ध्यान से एक बार प्रतिमा की ओर देखते थे, एक बार महीप की ओर। प्रतिमा ने कहा—"अच्छा, मैं जाती हूँ। पर आप दीदी की बात भूलिएगा नहीं।" यह कहकर वह वहा से दूसरी जगह चली गई, जहा कुछ स्वयसेविकाए दर्शको को पानी पिला रही थी।

प्रतिमा के चले जाने पर महीप की आखे फिर नीलिमा को खोजने लगीं। नीलिमा इस बीच कहीं दूसरी जगह चली गई थी। इधर-उधर देखने पर उसे दिखाई दिया कि वह मञ्च पर बैठे हुए किसी एक नेता महाशय को पानी पिला रही है। कुछ देर बाद जब वह वहा से नीचे उतरी तब फिर उन्ही दो युवको के पास चली गई जिनसे वह पहले बाते कर रही थी। महीप बहुत देर से यह सोच रहा था कि वे युवक कौन हो सकते है। उनमें से एक महाशय उसे परिचित से लगते थे। निश्चय ही उसने उन्हे पहले कही देखा था। पर उसे ठीक याद नही आ रहा था कि वे कौन हैं और इसके पहले उन्हे उसने कहा देखा है। वह महाशय आसामी रेशम का कुर्ता पहने थे और उसी रेशम का पाजामा भी। सम्भवत उनके सिर

की किश्तीनुमां टोपी भी उसी रेशम की थी। वह कद में न बहुत ठिगने, न बहुत लम्बे थे, शरीर से कुछ मोटे-से मालूम पडते थे। चेहरा उनका कुछ गोल दिखाई देता था। रग गेहुआ था। उनकी अवस्था तीस से कुछ ऊपर की मालूम होती थी। उनके मुख की अभिव्यक्ति महीप को कुछ आकर्षक नही मालूम हुई। पर चूंकि नीलिमा अधिकतर उन्हीं से बातें कर रही थी, इसलिए उनके सम्बन्ध में महीप की उत्सुकता भी काफी बढ रही थी। सहसा उसकी स्मृति जग उठी और तत्काल उन महाशय का चेहरा बदलकर उसकी आखो में एक छोटे आकार मे परिणत हो गया। उसे याद आया कि प्राय. चार साल पहले इसी शक्ल-सूरत का एक छात्र उनके युनिवर्सिटी यूनियन का सेक्रेटरी था। उसका नाम लक्ष्मीनारायण सिह था। वह एक बहुत बड़े जमीदार का लड़का था। तब क्या वह व्यक्ति वही लक्ष्मीनारायण है? आश्चर्य नही! पर नीलिमा से उसकी जान-पहचान कैसे हो गई! कौन कह सकता है, किसका सम्बन्ध कब, कैसे, किसके साथ, किस रूप में स्थापित हो जायगा!

नेताओ के भाषण शुरू हो गये थे। महीप बड़े ध्यान से नेताओं की बाते सुनना चाहता था। इधर कुछ समय से राष्ट्रीय समस्या के सम्बन्ध में उसके मन में जिस एकदम नई विचार-धारा का विकास हो रहा था उससे नेताओ के विचार किस हद तक मेल खाते हैं, और कहा विरोध खडा करते है, यह वह भली-भाति जानना चाहता था। पर न चाहने पर भी उसका मन और उसकी आखें बार-बार बरबस नीलिमा की ही ओर लगी हुई थी। नीलिमा कभी मञ्च के नेताओ की सेवा में व्यस्त रहती थी, कभी महिलाओ के प्रबन्ध की देख-रेख के लिए चली जाती थी, कभी किसी दूसरे आवश्यक काम के लिए। पर घूम-फिरकर वह उन्ही दो व्यक्तियो के पास आ पहुचती थी। दोनो मञ्च के पास ही किसी एक स्थान में, जो सफेदपोशों के लिए नियत था, बैठ गए थे। नीलिमा उस एक बार के सिवा फिर महीप

वह आई थी। उन युवकों के प्रति एक अप्रिय ईर्ष्या का भाव महीप के हृदय में कई कांटे एक साथ गड़ने की वेदना पैदा करने लगा।

प्रतिमा वहीं खड़ी थी। उसने कहा—"सुना महीप बाबू, दीदी ने क्या कहा?" महीप ने अकचकाकर प्रतिमा की ओर देखा। प्रतिमा बोली—"आप उसकी बात किसी तरह टाल नही सकते—हम लोगों का कहना भले ही न मानें! उसके स्वभाव से आप भली-भांति परिचित है!" कहकर प्रतिमा एक भेद-भरे संकेत का भाव आंखों में झलकाती हुई दुष्टतापूर्ण ढंग से मुस्कराने लगी। महीप भी सलज्ज भाव से मन्द-मन्द मुस्कराने लगा। प्रतिमा के अस्पष्ट संकेत का एक विशेष अर्थ वह अपने मन में लगाने की चेष्टा कर रहा था, पर फिर भी उसकी सारी बात उसे अत्यन्त रहस्यपूर्ण लग रही थी।

आस-पास के दर्शक बड़े ध्यान से एक बार प्रतिमा की ओर देखते थे, एक बार महीप की ओर। प्रतिमा ने कहा—"अच्छा, मै जाती हूँ। पर आप दीदी की बात भूलिएगा नहीं!" यह कहकर वह वहां से दूसरी जगह चली गई, जहां कुछ स्वयंसेविकाएं दर्शको को पानी पिला रही थीं।

प्रतिमा के चले जाने पर महीप की आंखे फिर नीलिमा को खोजने लगीं। नीलिमा इस बीच कहीं दूसरी जगह चली गई थी। इधर-उधर देखने पर उसे दिखाई दिया कि वह मञ्च पर बैठे हुए किसी एक नेता महाशय को पानी पिला रही है। कुछ देर बाद जब वह वहां से नीचे उतरी तब फिर उन्ही दो युवको के पास चली गई जिनसे वह पहले बातें कर रही थी। महीप बहुत देर से यह सोच रहा था कि वे युवक कौन हो सकते है। उनमें से एक महाशय उसे परिचित से लगते थे। निश्चय ही उसने उन्हे पहले कही देखा था। पर उसे ठीक याद नही आ रहा था कि वे कौन है और इसके पहले उन्हे उसने कहां देखा है। वह महाशय आसामी रेशम का कुर्ता पहने थे और उसी रेशम का पाजामा भी। सम्भवत उनके सिर

की किश्तीनुमां टोपी भी उसी रेशम की थी। वह क़द में न बहुत ठिगने, न बहुत लम्बे थे, शरीर से कुछ मोटे-से मालूम पडते थे। चेहरा उनका कुछ गोल दिखाई देता था। रग गेहुआ था। उनकी अवस्था तीस से कुछ ऊपर की मालूम होती थी। उनके मुख की अभिव्यक्ति महीप को कुछ आकर्षक नही मालूम हुई। पर चूकि नीलिमा अधिकतर उन्ही से बातें कर रही थी, इसलिए उनके सम्बन्ध मे महीप की उत्सुकता भी काफी बढ रही थी। सहसा उसकी स्मृति जग उठी और तत्काल उन महाशय का चेहरा बदलकर उसकी आंखों में एक छोटे आकार मे परिणत हो गया। उसे याद आया कि प्राय. चार साल पहले इसी शक्ल-सूरत का एक छात्र उनके युनिवर्सिटी यूनियन का सेक्रेटरी था। उसका नाम लक्ष्मीनारायण सिंह था। वह एक बहुत बड़े जमीदार का लड़का था। तब क्या वह व्यक्ति वही लक्ष्मीनारायण है? आश्चर्य नही! पर नीलिमा से उसकी जान-पहचान कैसे हो गई! कौन कह सकता है, किसका सम्बन्ध कब, कैसे, किसके साथ, किस रूप में स्थापित हो जायगा!

नेताओं के भाषण शुरू हो गये थे। महीप बड़े ध्यान से नेताओं की बातें सुनना चाहता था। इधर कुछ समय से राष्ट्रीय समस्या के सम्बन्ध में उसके मन में जिस एकदम नई विचार-धारा का विकास हो रहा था उससे नेताओ के विचार किस हद तक मेल खाते हैं, और कहा विरोध खड़ा करते है, यह वह भली-भांति जानना चाहता था। पर न चाहने पर भी उसका मन और उसकी आखें बार-बार बरबस नीलिमा की ही ओर लगी हुई थी। नीलिमा कभी मञ्च के नेताओ की सेवा में व्यस्त रहती थी, कभी महिलाओं के प्रबन्ध की देख-रेख के लिए चली जाती थी, कभी किसी दूसरे आवश्यक काम के लिए। पर घूम-फिरकर वह उन्ही दो व्यक्तियों के पास आ पहुचती थी। दोनो मञ्च के पास ही किसी एक स्थान में, जो सफेदपोशो के लिए नियत था, बैठ गए थे। नीलिमा उस एक बार के सिवा फिर महीप

की ओर झाकने भी नहीं आई। प्रतिमा अवश्य फिर एक बार आई थी—यह पूछने के लिए कि उसे पानी की आवश्यकता तो नही है।

दूसरा परिच्छेद

जलसा समाप्त होने से कुछ समय पहले ही महीप उठ कर पण्डाल से बाहर चला आया और एक एक्का तय करके सीधे स्टेशन को रवाना हुआ। अपने प्रति नीलिमा की इस हद तक की उदासीनता उसके लिए अप्रत्याशित थी। जब प्रतिमा उसे पकड लाई थी तब वह केवल शिष्टाचार-पालन के खयाल से एक बार उसके पास चली आई थी, उसके बाद उसे फिर उधर आने की फुर्सत ही नहीं मिली! फुर्सत मिलती कैसे—रेशमधारी सज्जन के साथ न मालूम कितनी आवश्यक बातें उसे करनी थीं! "अच्छा ही हुआ!" वह एक्के पर बैठा हुआ मन-ही-मन कहने लगा—"मेरे विचारों और आदर्शों में इधर जो नये परिवर्तन हुए है उनमें नीलिमा जैसी फैशनेबुल लडकियो के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। यही कारण है कि जब मै यहा आया था तब मेरे मन में नीलिमा की कोई कल्पना नहीं थी; नही तो क्या मै अपने सामान को स्टेशन पर छोड आता? मेरे मन में न इस शहर में ठहरने का कोई विचार था, न उन लोगों से मिलने का। इसलिए इस सम्बन्ध में अब किसी भी प्रकार की चिन्ता में पडना मूर्खता के सिवा और कुछ नही है।"

पर इस प्रकार के विचार से उसके मन को तनिक भी तुष्टि नही मिल रही थी, और अपने प्रति नीलिमा की उदासीनता की बात सोच-सोचकर वह एक तीखी और नुकीली बेचैनी का अनुभव कर रहा था। "अच्छा, इन बहनो को स्वयसेविका बनने का शौक कब से चर्राया?" उसने फिर सोचना आरम्भ किया—"इनमें राष्ट्रीयता की भावना कब से जागरित हुई? इसके पहले तो ये केवल ललित कलाओं में ही दिलचस्पी लिया करती थीं। रमा को चित्रकारी का शौक था, सुषमा को सगीत का, नीलिमा को नृत्य और अभिनय का और प्रतिमा को कविता और कहानिया लिखने का। और आज देखता हू कि नीलिमा और प्रतिमा

राष्ट्रीय लहर के साथ अपनी केसरिया साड़ियो को भी फहरा रही है! यह फैशन का तकाजा है, ज़माने की रफ्तार है, या आन्तरिक प्रेरणा है? पर उस रेशम-धारी सज्जन से उस आन्तरिक प्रेरणा का क्या सम्बन्ध?"

इसी तरह की बाते सोचता हुआ वह स्टेशन पहुंचा। एक्के-वाले को किराया देकर विदा करने के बाद वह सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए। जब उसने स्टेशन के लिए एक्का किया था तब वह बडी हड़बडी में था, पर अब जब वह स्टेशन पहुच गया तब अपनी उस हडबडी का कोई कारण ही उसकी समझ में नही आया। उसे ऐसा लग रहा था कि उसके आगे अनन्त अवकाश है, जीवन में कहीं किसी प्रकार की व्यस्तता नही है, और उसके पास कोई काम करने को नही है। पर उस अनन्त अवकाश की कल्पना उसे किसी प्रकार भी सुखद नही मालूम हो रही थी। ऐसा मालूम होता था जैसे उसकी विरामहीन कर्मचेष्टा के सकल्प में विघ्न डालने के लिए किसी अज्ञात चक्र ने आज एक भयकर षडयन्त्र रचा है। है। यदि ऐसा न होता तो उस जलसे मे उसकी भेट नीलिमा से क्यो होती, जहा उसके होने की किसी प्रकार की सम्भावना की कल्पना ही वह नही कर सकता था?

वह अनमने भाव से एक नम्बर के प्लेटफार्म मे गया और वहा निरुद्देश्य भाव से टहलने लगा। यात्रियो की एक बहुत बडी भीड प्लेटफार्म पर जमा थी। सम्भवत लोग किसी लम्बी सफरवाली गाडी के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। दो-एक चक्कर लगाने के बाद उसने चाय के स्टाल पर जाकर एक कप चाय खडे-खडे पी। चाय पी चुकने के बाद उसे इस बात की याद आई कि वह सुबह से भूखा है। अपनी अन्यमनस्कता में वह भूख के पीडन को भी भूला हुआ था। वह स्टाल के भीतर जाकर एक बेंच पर बैठ गया और दो केक और दो समोसे माग कर खाने लगा। खाते हुए उसने स्टालवाले से पूछा—"कानपुर के लिए गाडी किस समय मिलेगी?"

"साढे दस बजे।"

समय पूछने पर मालूम हुआ कि अभी केवल साढ़ नौ बजे है। तब तो आज

ही वह कानपुर को जा सकता है। पर उसके भय और आश्चर्य की सीमा न रही जब उसने जाना कि उसके कानपुर जाने का उत्साह पहले ही बहुत कुछ ठण्डा पड चुका है। जब वह खा चुका तब उसने एक कप चाय फिर मागी। चाय पीकर, बिल चुका कर वह बाहर निकल आया, और फिर से प्लेटफार्म पर टहलने लगा। रेलवे प्लेटफार्म पर टहलने की क्रिया उसे बराबर सुखद लगा करती थी। पर आज वही क्रिया, न जाने क्यो, उसे अत्यन्त कष्टकर मालूम हो रही थी। टहलते-टहलते वह ह्वीलर के बुकस्टाल पर पहुचा। वहा हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओ को उलटने लगा। एक पत्रिका में उसकी एक कविता छपी थी। अपनी लिखी कविता को फिर से एक बार पढकर उसे बहुत सन्तोष हुआ। वह कविताए लिखने का अभ्यासी था। उसकी कविताए अधिकाशत प्रेम-विषयक हुआ करती थीं, और कोमलता और मिठास के लिए प्रसिद्धि पाती चली जाती थीं। पर इधर कुछ समय से उसके विचारो में सभी दिशाओ में जो परिवर्तन हुआ था, उसने उसकी कविताओं की धारा को भी एक बदला हुआ रूप दे दिया था, और वह जीवन-सघर्ष की वास्तविकता और पेट की आग की समस्या से सम्बन्धित कविताए अत्यन्त तीव्र शैली और करारी भाषा में लिखने लगा था। वर्तमान कविता का शीर्षक था 'भूगर्भ की आग'। वह भी उसी तीखी शैली में लिखी गई थी। उसका एक-एक शब्द जलती भट्ठी के अगारे की तरह दहक रहा था। उसे मालूम था कि उसकी कविताए किसी जमाने में नीलिमा और उसकी बहनो को भी पसन्द आया करती थीं। पर अब ? कौन जाने !

पत्रिका को यथास्थान रख कर, बिना कुछ खरीदे, वह बुक-स्टाल को छोड कर आगे बढा। फाटक के पास आकर वह कुछ क्षण तक अन्यमनस्क भाव से खडा रहा, उसके बाद बाहर निकल गया। इन्टर क्लास वेटिंग रूम प्लेटफार्म के बाहर था। वहा जाकर पखे के नीचे एक खाली बेंच पर लेट गया। पखे से गर्म हवा आ रही थी, पर उस गर्मी से कोई बेचैनी उसे नही मालूम हुई। उसे बेचैनी कुछ दूसरे ही कारण से हो रही थी।

लेटे-लेटे वह उस दिन की बात सोचने लगा जब प्रायः पांच साल पहले उसका एक सहपाठी उसे नीलिमा के यहा ले गया था, और नीलिमा से, उसकी बहनो से और मा से भी उसका परिचय कराया था। नीलिमा ने उसका परिचय पाते ही उससे कहा था—"आपका साहित्यिक परिचय मेरे लिए नया नही है। आपकी कविताए मैने पढी है, और बराबर पढ़ा करती हूं।" उस एक बात ने महीप की आखो के आगे संसार का स्वरूप ही बदल दिया था। कोई सुन्दर लड़की उसकी कविता मे दिलचस्पी ले सकती है, इस बात की कल्पना उसके लिए एकदम अपूर्व थी। कवि होने का सच्चा गौरव क्या है, इस बात का परिचय पहले-पहल उसे उसी दिन मिला। उसने स्वय अपनी आखो मे अपने को ऊचा उठा हुआ पाया। पर आश्चर्य की बात यह थी कि जिस लडकी ने उसके कवित्व को महत्व दिया उसके प्रति उस समय वह विशेप रूप से आकर्षित नही हुआ। वह आकर्षित हुआ उसकी सबसे बडी बहन रमा के प्रति। रमा महीप से निश्चय ही दो-तीन साल बड़ी रही होगी। पर इस बात से उसके आकर्षण में कोई कमी उसे नही मालूम हुई। और सब बहनों के स्वभाव में उसे बचकानापन और जीवन की अनुभवहीनता का परिचय मिला, पर रमा के व्यक्तित्व में जिस स्निग्ध और सरस गाम्भीर्य का परिचय उसने पाया उसका एक निराला ही प्रभाव उसके मन पर पड़ा। उसे ऐसा लगा कि वह युवती जीवन के समस्त मागलिक तत्त्वो को अपने भीतर समेटे हुए है, और उसकी स्नेहछाया के नीचे वह एक शान्त और सुखद नीड का निर्माण करके सारा जीवन एक स्वप्न-पुलक की तरह बिता सकता है। रमा की दिलचस्पी चित्रकला मे थी, कविताओ से उसे कोई शौक नही था। उसने महीप की कोई कविता नहीं पढी थी। पर इस बात से महीप के लिए उसका आकर्षण घटने के बजाय और अधिक बढ गया।

तब से वह उस सुसस्कृत परिवार से हिल-मिल गया। उन चारो बहनो की मा—भुवनेश्वरी—विधवा थी। उनके कोई लड़का नहीं था। लड़कियो को उन्होने बेटों की तरह लाड-प्यार से पाला था। वह स्वय सुशिक्षिता थी, इसलिए लडकियो की शिक्षा-दीक्षा के सम्बन्ध में विशेप रूप से जागरूक और सचेष्ट

उस क्षोभ का फल यह हुआ कि वह सुषमा के विवाह में वह शरीक नहीं हुआ, और प्राय: दो वर्ष तक अज्ञातवास करता रहा। घर पर उसका अपना कहने को कोई नहीं था। उसके बचपन में ही उसके माता-पिता की मृत्यु हो चुकी थी। उसकी एक बहन थी, वह भी विवाह होने के डेढ़ वर्ष बाद क्षयरोग का शिकार बनकर चल बसी। अब केवल एक विधवा चचेरी बहन शेष रह गई थी, जो अपनी ससुराल में बड़ी गरीबी के बीच में किसी तरह अपने दिन काट रही थी। महीप की बिरादरी के एक सज्जन ने उसे युनिवर्सिटी में पढ़ने का खर्च देते रहने का वचन पूरी तरह से निभाया था। जब महीप ने प्रथम श्रेणी में एम० ए० पास किया तब उन्ही महाशय ने उसे आई० सी० एस० का इम्तहान देने की आर्थिक सुविधा देने का वचन दिया। महीप ने सोचा कि जब पी० सी० एस० पास लड़के की समाज में इतनी कदर है कि सुषमा के समान सुसंस्कृत लड़की केवल इसी एक कारण से उससे विवाह को राजी हो जाती है (महीप के मन में इस बात का पक्का विश्वास जम गया था कि उसके सिवा और किसी दूसरे कारण से सुषमा विजयमोहन पर नहीं रीझी है!) तब आई० सी० एस० पास कर लेने पर उसकी कदर समाज में निश्चय ही उससे भी कई गुना अधिक बढ़ जायगी। इसलिए वह आरम्भ में आई० सी० एस० की परीक्षा की तैयारी करने की बात पर राजी हो गया था। जो लोग उसकी योग्यता से परिचित थे उन्हे इस सम्बन्ध में ध्रुव विश्वास था कि वह आई० सी० एस० की प्रतिद्वन्द्विता में केवल उत्तीर्ण ही नहीं होगा, बल्कि उसमें वह एक विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेगा। पर कुछ ही महीनो बाद महीप के विचारों में एक आकस्मिक विस्फोट उत्पन्न हो गया। अचानक उसके भीतर एक ऐसी अनोखी प्रेरणा जागरित हुई जिससे वह स्वयं आश्चर्य में आ गया। उस दैवी प्रेरणा ने उसके मन में आई० सी० एस० की उपाधि के प्रति भयंकर विराग उत्पन्न कर दिया। उसे ऐसा लगा कि किसी भी भारतीय के लिए आई० सी० एस० अफसर बनने की अपेक्षा बड़ा पाप दूसरा कोई हो नहीं सकता। उसके मन में यह विश्वास जम गया कि उस पद पर प्रतिष्ठित होने पर न चाहने पर भी बरबस अपने ही भाइयों पर रोब गाठने की प्रवृत्ति से वह किसी प्रकार बच नहीं सकता। वह

भूखों मरेगा, जीवन भर आवारा फिरता रहेगा, यह सब उसे स्वीकार है, पर आई० सी० एस० अफसर बनना किसी हालत में भी नही। इसी बीच उसने देश की तत्कालीन परिस्थिति और सामाजिक समस्याओ पर गम्भीर रूप से विचार करना आरम्भ किया। उन पर विचार करते-करते उनकी गम्भीरता की तुलना में अपने विद्यार्थी-जीवन के दो असफल रोमास उसे अत्यन्त तुच्छ और हास्यास्पद लगे।

दो वर्ष के अज्ञातवास-काल में जीवन और जगत् के सम्बन्ध मे उसके विचारों में आमूल परिवर्तन होने का ही यह फल था कि वह जब इस बार इलाहाबाद आया तब खन्ना-परिवार से मिलने की कोई स्पष्ट कल्पना ही उसके सचेत मन मे नही जगी थी। पर जब टैगोर-टाउन के राष्ट्रीय जलसे में उसने नीलिमा को नये रग, नये ढग, नये रूप और नये वेष में निर्द्वन्द्व विचरते देखा तब उसके कवि-हृदय के भीतर दबी पडी रोमाटिक भावना फिर से पूरे वेग से उमड उठी। खन्ना-परिवार से घनिष्ठता रहने पर भी इतने दिनो तक वह नीलिमा के व्यक्तित्व के प्रति एकदम उदासीन रहा। पर आज उसे देखकर अचानक जैसे उसके अन्तर्वासी की आखे खुल गई। नीलिमा की चञ्चलता, उसकी व्यग-वाणी, उसका पहनावा, उसकी प्रत्येक चाल महीप को अद्भुत, अतीन्द्रिय और अपूर्व रूप से आकर्षक लग रहे थे। उसे देख-देखकर वह मन-ही-मन सोचने लगा था कि "यह बहन निश्चय ही चारो में अधिक आकर्षक है। पता नही, मैं इतने दिनों तक उसके प्रति इस कदर उदासीन क्यों रहा—जब कि वह आरम्भ से ही मेरी कविताओ में विशेष रूप से दिलचस्पी लेती रही है।"

जलसे में रेशमधारी सज्जन के साथ नीलिमा का घुल-घुलकर बातें करना महीप को कतई प्रियकर नही मालूम हुआ था, इसमें सन्देह नही। पर आज उसने अचानक अपने पार्थिव रूप की जिस अव्यक्त, अतीन्द्रिय छाया का प्रभाव महीप के मन मे डाल दिया था उसके महत्व को नष्ट करने में नीलिमा की कोई भी प्रत्यक्ष ज्यादती जैसे असमर्थ हो रही थी। दो वर्ष के अज्ञातवास की अवधि

में जो नये सकल्प उसने किये थे, जो नये आदर्श और नई धारणायें बनाई थी, वे सब जैसे आज नीलिमा के रूप की उस निराली झाकी के आश्चर्य-जनक प्रकाश में छाया-स्वप्नों की तरह विलीन होने की धमकी देने लगे थे। खन्ना-परिवार में दो बार उसे जो धोखे से भरे हुए, निराशामूलक और अपमानजनक अनुभव हो चुके थे उन्हें वह दु स्वप्नों की तरह भूल गया, और एक नया ही कल्पनालोक अनन्त विस्तार के साथ उसके आगे उद्‌घाटित हो गया।

इन्टर क्लास वेटिंग रूम के बेन्च पर लेटे-लेटे महीप इन्ही सब बातो पर बहुत देर तक चिन्ता करता रहा। इसके बाद किस समय उसकी आखें झपने लगीं और किस समय वह गहरी नींद मे मग्न होकर सो गया, इसकी कोई खबर उसे नहीं रही।

तीसरा परिच्छेद

जब महीप की आखें खुली तब उजाला हो गया था। सूर्य के निकलने की तैयारी थी। वह उठ खडा हुआ और अत्यन्त गम्भीर रूप से अपने मन में इस विषय पर तर्क-वितर्क करने लगा कि पहली गाडी से कानपुर को चल देना चाहिए। उसके कानों में प्रतिमा की यह बात बार-बार गूज रही थी—"आप दीदी की बात किसी तरह नही टाल सकते—हम लोगो का कहना भले ही न मानें। उसके स्वभाव से आप भली भाति परिचित है।" बहुत सोच-विचार के बाद अन्त मे उसने निश्चय किया कि वह अभी कानपुर न जाकर पहले खन्ना-परिवार से मिलेगा, उसके बाद देखा जायगा।

वेटिंग-रूम में ही नहा-धोकर, कपडे बदलकर, सज-सवरकर वह बाहर निकला। एक नम्बर के प्लेटफार्म पर जाकर उसने नाश्ता किया और चाय पी। उसके बाद एक तागा घटे के हिसाब से तय किया करके वह उस पर सवार होकर जार्ज-टाउन में 'खन्ना-निवास' की ओर चल पडा। बगले के पास पहुचकर, तागे को फाटक के बाहर ही छोडकर जब उसने भीतर प्रवेश किया तब वह इस बात

का इन्तजार करने लगा कि कोई नौकर दिखाई दे तो उसके द्वारा अपने आने की सूचना भीतर भेजे। दो वर्ष पहले वह अपने को उसी परिवार का एक प्राणी समझता था और सुबह, शाम, रात, आधीरात, किसी भी समय वहा पहुचता तो बिना किसी को खबर दिये बेखटके भीतर घुस जाया करता। उस घर में कभी किसी प्रकार की रोक-टोक उसके लिए नही थी। पर आज वह अपने को एक अजनबी मालूम कर रहा था और बिना पूर्व-सूचना के भीतर प्रवेश करने का साहस उसे किसी प्रकार भी नही होता था।

वह काफी देर तक बाहर खडा रहा, पर कोई नौकर नही दिखाई दिया। अन्त में श्रीमती खन्ना किसी काम से बाहर बरामदे में आई। उन्होने जब महीप को देखा, उनके मुख पर हार्दिक प्रसन्नता की झलक दिखाई दी। उन्होंने हर्ष-जनित विस्मय के साथ कहा—"अरे, महीप, तुम! बाहर खडे किस लिए हो? भीतर चले क्यो नही आते? कब आये?" यह कहकर वह उसके स्वागत के लिए आगे बढी।

महीप ने सलज्ज भाव से उनके निकट जाकर झुककर प्रणाम किया। उसके बाद बोला—"मै कल ही पहुचा हू, मा! आप लोग सब कुशल से तो है?"

"हा बेटा, सब कुशल ही है। इतने दिनो तक तुम कहा छिपे रहे? हम सब लोग यह सोच-सोचकर परेशान थे कि तुम कहा होगे और क्या करते होगे। कुछ दिनो के लिए तुम्हारे विलायत चले जाने की अफवाह भी सुनने मे आई थी और यह भी खबर थी कि तुम वही आई० सी० एस० का इम्तहान देने का इरादा करते हो। मुझे यह सुनकर सचमुच बडी प्रसन्नता हुई थी। सही बात क्या है, यह तुम्ही बता सकोगे। क्या सचमुच तुम आई० सी० एस० का इम्तहान देकर लौटे हो?"

महीप ने अत्यन्त संकोचपूर्वक धीमी आवाज में कहा—"नही मा, मै न विलायत गया था, न मै आई० सी० एस० मे 'एपियर' हुआ हू। बीच में एक बार

मैने यहीं से आई० सी० एस० का इम्तहान देने का विचार अवश्य किया था, पर बाद में मेरा वह विचार बदल गया।"

"क्यों ?"—खिन्न भाव से श्रीमती खन्ना ने प्रश्न किया—"पर पहले तुम भीतर तो चलो। यहा कब तक खडे रहोगे ?" यह कहकर वह स्वय भीतर की ओर चलने लगीं और महीप ने भी उनका अनुसरण किया। जब दोनो भीतर ड्राइग-रूम में पहुचे तो श्रीमती खन्ना ने एक नोकर को पुकारकर बुलाया और उससे कहा कि नीलिमा और प्रतिभा अभी सोकर उठी है या नही, जाकर देख आवे, और यदि उठ गई हो तो उन्हें यह सूचना दे कि महीप आया है।

जब दोनो बैठ गये तब श्रीमती खन्ना ने कहा—"आई० सी० एस० में 'एपियर' न होकर तुमने बहुत बडी गलती की। जीवन में इस तरह के सुयोग बार-बार नही आते। एक बार चूक जाने पर जीवन भर पछताना पडता है।"

"आप ठीक कहती है, मा, जीवन में ऐसे सुयोग बार-बार नहीं आते। पर यही सुयोग अक्सर दुर्योग भी सिद्ध होते है, और फिर जीवन भर इस बात के लिए पछताना पडता है कि उस दुर्योग को सुयोग समझकर क्यो हमने अपनाया। आई० सी० एस० अफसर बनना कुछ लोगों की समझ में बडे सौभाग्य की बात हो सकती है, पर मेरी समझ में उससे बढकर दुर्भाग्य किसी भारतीय के लिए कोई दूसरा हो नहीं सकता।"

"क्यों ?" मुख पर परम अविश्वास का भाव झलकाते हुए श्रीमती खन्ना ने प्रश्न किया।

"इसके बहुत-से कारण है।"

"किस बात के बहुत-से कारण है ?" नीलिमा ने ड्राइग-रूम में पाव रखते ही पूछा। उसने दरवाजे पर से महीप की अन्तिम बात सुन ली थी। वह अभी सोकर उठी ही थी। नौकर ने जब उसे बताया कि महीप बाबू आये है तब पलग पर से सीधे ड्राइग-रूम में प्राय दौडी चली आई थी। उसके सिर के घुघराले बाल और सोने के समय के झीने रेशमी कपडे अस्त-व्यस्त थे, उसकी

सुन्दर अलसाई हुई बडी-बडी भाव-व्यञ्जक आखों में एक स्निग्ध मादकता छाई हुई थी, रात में गाढी नींद का उपभोग करने के कारण उसके गोरे-उजले मुख पर एक ऐसी चिकनाई आ गई थी जो उस तरुणाई को एक मोहक मधुरिमा प्रदान कर रही थी। उसका वह अनुपम रूप महीप ने अपने जीवन में इसके पहले कभी नही देखा था। देख-देख कर उसके प्रति-रक्तकण मे एक विचित्र पुलक का पागलपन समा गया। कुछ क्षण के लिए वह खोई हुई-सी आखों से उसकी ओर देखता रह गया।

श्रीमती खन्ना ने नीलिमा को लक्ष्य करके कहा—"तुम विना हाथ-मुह धोये, विना कपडे वदले, विस्तर पर से सीधे यहा चली आई हो! वैड! वेरी वैड! यू ऑट टु वी एशेम्ड आफ योरसेल्फ, नीलिमा!"

नीलिमा वच्चो की तरह वनती हुई झूठमूठ की रोनी आवाज में वोली—"नही मा, मैंने सुना कि महीप वावू ने आज दो वर्ष वाद हम लोगो के घर पधारने की कृपा की है, इसलिए जैसी भूल आज उनसे हुई, उसी का 'इनफेक्शन' (छूत) हवा में उडकर मुझपर भी असर कर गया। मै भी हाथ-मुह धोना भूल गई!"

सारी वात उसने ऐसे वनावटी नकीले स्वर में और मुह वनाकर कही कि उसका वह अभिनय देखकर श्रीमती खन्ना का क्रोध हवा हो गया और भरपूर कोशिश करने पर भी उनकी हँसी रोके नही रुकी। "वड़ी शैतान लड़की है! इससे पार पाना असम्भव है।" कहकर वह महीप की ओर देखने लगी कि इस सम्बन्ध में उसकी राय क्या है। महीप के मुख पर भी एक सकोच-भरी मुसकान झलक रही थी। पता नही क्यो, नीलिमा को देखकर कल ही से वह एक निराले सकोच का अनुभव कर रहा था। इसके पहले दो वर्ष पूर्व—जव वह अपने को खन्ना-परिवार के एक सदस्य के जैसा समझता था तव—कभी नीलिमा के आगे उसने किसी प्रकार के सकोच का अनुभव नहीं किया। वह सव समय सहज स्वाभाविक मुक्तरूप से उससे वातें किया करता था। पर आज न मालूम उसे क्या हो गया था।

नीलिमा अपनी मा की कुर्सी के पीछे खडी थी। उसी बनावटी सानुनासिक स्वर में उसने महीप की ओर देखते हुए कहा—"कहिए महीप बाबू, आप भूगर्भ की किस अधेरी गुफा में आज तक छिपे रहे? सुनते है, आप वहा से प्रामेथ्यूज बनकर लौटे है।"

श्रीमती खन्ना को यह परिहास कुछ रहस्यात्मक लगा। उन्हें इस बात का पूरा विश्वास था कि इस परिहास के पीछे नीलिमा की कोई दुष्टता छिपी हुई है। उन्होने कृत्रिम क्रोध के साथ नीलिमा की ओर देखते हुए कहा—"तुम फिर अपनी दुष्टता से बाज नही आओगी? 'प्रामेथ्यूज' से महीप का क्या सम्बन्ध?"

"तुम्हें नहीं मालूम है, मा," अपने स्वर में पहले की अपेक्षा कुछ स्वाभाविकता लाते हुए नीलिमा ने कहा—"महीपजी भूगर्भ के दैत्यो से लडकर ऊपर पृथ्वी पर उसी प्रकार आग लाये है, जिस प्रकार प्रामेथ्यूज मानव-जाति के उपकार के लिए उसे स्वर्ग के देवताओ से लाया था। साथ ही महीप जी ईस्काइलस के बन्धन-ग्रस्त प्रामेथ्यूज की अवस्था को पार कर चुके है। इस समय वह शेली के 'प्रामेथ्यूज अनवाउड' के रूप में हम लोगों के सामने विराजमान है—मुक्त और बन्धनहीन।"

महीप विस्मय भरे सकोच के साथ नीलिमा की ओर देख रहा था। "निश्चय ही वह मेरी कविता पढ चुकी है," उसने मन-ही-मन कहा। उसकी रचनाओ के प्रति नीलिमा अभी तक उदासीन नही हुई है, यह जानकर भीतर-ही-भीतर वह विशेष रूप से प्रसन्न हो रहा था।

श्रीमती खन्ना ने नीलिमा को डाटते हुए कहा—"तुम बेसिर-पैर की क्या बाते कर रही हो, नीलिमा, मेरी कुछ समझ में नहीं आता। इतने दिनो के बाद महीप आया है, उससे कुशल-मगल पूछने के बजाय तुम लगी ईस्काइलस के 'बन्धनग्रस्त प्रामेथ्यूज' और शेली के 'प्रामेथ्यूज अनवाउड' का क़िस्सा सुनाने।"

"तुम्हें पता नही है, मा", पूर्णतया स्वाभाविक स्वर में, किन्तु व्यग की मुद्रा

के साथ, नीलिमा ने कहा—"हमारे महीप जी कितने बडे कवि है! इन्होने हाल में एक कविता लिखी है, जिसका शीर्षक है 'भूगर्भ की आग।' इस कविता ने इनकी आत्मा की अधेरी गुफा में बहुत दिनो से दबी पडी आग को हम लोगों के आगे प्रकट कर दिया है, इनके भीतर नेपोलियन की जो आत्मा इतने दिनो तक छिपी हुई थी वह उस कविता के द्वारा हम लोगो के आगे उभर आई है। इसके पहले इनकी कविताए पढकर हम लोग इन्हें क्या कहते थे, तुम्हें मालूम है मा?"

श्रीमती खन्ना ने स्नेह-भरी खीझ के स्वर में कहा—"मुझे तुम लोगो की कोई भी बात मालूम नही रहती।"

नीलिमा तनिक भी हतोत्साह न होकर बोली—"हम लोग इनकी छायावादी कविताए पढकर इन्हें कहा करते थे—'क्राइ-बेबी!'"

श्रीमती खन्ना हँसी रोकने की व्यर्थ चेष्टा करती हुई बोली—"दुत! शैतान कही की!" यह कहती हुई वह महीप की ओर देखने लगी। महीप का मुह लज्जा से कुछ-कुछ लाल हो आया था।

नीलिमा कहती चली गई—"इनकी कविता मे रहता था केवल बच्चो का-सा रोना, पर अब चूंकि ये अपनी कविताओं में आग उगलने लगे है, इसलिए अब से हम इन्हें कहेंगे 'मिस्टर प्रामेथ्यूज।' कहिए मिस्टर—"

इतने में बाहर बडे जोरो से किसी की कार का 'हार्न' बजा। सम्भवत. हार्न की आवाज से यह जानकर कि कौन आया है, नीलिमा तत्काल प्राय. दौड़ती हुई भीतर चली गई।

श्रीमती खन्ना महीप से बैठे रहने के लिए कहकर बाहर यह जानने के लिए गई कि कौन आया है। महीप भी किञ्चित् कुतूहल के साथ बाहर की ओर झांकने लगा। उसके आश्चर्य और क्षोभ का ठिकाना न रहा जब उसने देखा कि कलवाले वही रेशमधारी सज्जन मोटर से बाहर निकले। वह यह सोचकर तड़के ही चला आया था कि सुबह खन्ना-परिवार के व्यक्तियों से एकान्त में खुल-

कर बातें करने का मौक़ा मिलेगा। उसने यह नही सोचा था कि और भी कुछ व्यक्ति खन्ना-परिवार से एकान्त में बातें करने के लिए उत्सुक हो सकते है।

महीप का जी एकदम खट्टा हो गया। नीलिमा की व्यग और परिहास-भरी बातें सुनकर उसे थोडा-सा सकोच का अनुभव होने पर भी वह भीतर-ही-भीतर पुलक का अनुभव कर रहा था। आज उसने केवल नीलिमा के बाहरी व्यक्तित्व की विस्मयजनक नवीनता ही नहीं देखी थी, बल्कि उसके भीतरी व्यक्तित्व के प्रौढ विकास का अपूर्व परिचय पाया था। वह उस आश्चर्यमयी युवती की उपस्थिति में उसके साथ अपनी आत्मा की एक रहस्यपूर्ण निकटता का अनुभव करने लगा था। उसकी उस एकान्त पुलकानुभूति में विघ्न डालने के लिए वह 'कार' इतने सवेरे कहा से आ धमकी! उसकी आत्मा अपने अन्तरतम प्रदेश से उस रेशमधारी महाशय को रह-रहकर कोसने लगी। कल जब उसने प्रथम बार इन छैले-बाके बने हुए महाशय को देखा था तभी से, न जाने क्यों, उसका मन उनकी तरफ से बरबस सिकुड गया था। और आज उस सिकुडन ने ऐंठन का रूप धारण कर लिया था। उसे ऐसा लगा जैसे यह व्यक्ति उसका जन्म-जात शत्रु हो।

चौथा परिच्छेद

श्रीमती खन्ना जब नवागत महाशय के साथ भीतर चली आईं, तब महीप ने जा बूझकर शिष्टाचार की अवज्ञा की और वह खडा नही हुआ। श्रीमती खन्ना ने बडे आदर के साथ नये आये हुए सज्जन से एक सोफा पर बैठने के लिए कहा, और स्वय भी उन्ही की बगल में बैठ गई। आगन्तुक सज्जन बडे गौर से महीप की ओर देख रहे थे। महीप को ऐसा लगा जैसे वह बहुत ऊचे से—ताड के झाड से—देख रहे हो। उनके मुख की मुद्रा से स्वयसिद्ध बडप्पन की अनुभूति का भाव स्पष्ट झलकता था। उस भाव को देखकर महीप को मन-ही-मन क्रोध के साथ ही हँसी भी आ रही थी—घृणा और अवज्ञा की हँसी।

श्रीमती खन्ना ने अपने नवागत अतिथि को लक्ष्य करके कहा—"आपका परिचय शायद महीप से नहीं है ?"

"जी नहीं," कृत्रिम उपेक्षा का भाव जताते हुए, अत्यन्त गम्भीरता के साथ आगन्तुक सज्जन ने कहा।

"यह हिन्दी का एक नामी कवि है। एम० ए० तक की सब परीक्षाओं में यह बराबर प्रथम श्रेणी में आया है। पिछले साल यह आई० सी० एस० की परीक्षा मे 'एपियर' होने जा रहा था, पर किसी कारण से इसने अपना विचार बदल दिया।"

"मुझे आपका परिचय पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई," कहकर आगन्तुक सज्जन ने महीप की ओर हाथ जोड़े। इस बार उनके रूखे भाव में थोड़ी-सी सरसता का आभास महीप को मिला।

इसके बाद श्रीमती खन्ना ने आगन्तुक सज्जन का परिचय कराते हुए महीप की ओर देखकर कहा—"आप ठाकुर लक्ष्मीनारायणसिंह हैं। आप एक प्रसिद्ध ज़मींदार और इस शहर के विख्यात पबलिक-मैन है।"

इस बार महीप के मुख पर एक व्यग भरी मुसकान झलक उठी। उसने कहा—"मै आपसे बहुत पहले से परिचित हू, और मेरा ऐसा ख़याल था कि आप भी मुझे जानते होगे। पर चूकि मै कोई 'पबलिक-मैन' नही हू, इसलिए आपका मुझे भूल जाना स्वाभाविक है।"

ठाकुर साहब का माथा कुछ ठनका। उन्होने एक बार बड़े गौर से महीप की ओर देखा, और फिर बोले—"आपने शायद मुझे युनिवर्सिटी में देखा होगा!"

"जी हां, तब आप यूनियन के सेक्रेटरी थे, और मै किसी भी पद पर नही था, केवल एक साधारण छात्र था। इसलिए मुझे भूल जाना आपके लिए स्वाभाविक है, पर मै आपको नही भूल सकता।"

"मुझे याद आ गया," पहले की अपेक्षा कुछ स्निग्ध दृष्टि से महीप की ओर

देखते हुए ठाकुर साहब ने कहा—"आपने एक बार गाधी-जयन्ती के अवसर पर एक बडी ही सुन्दर कविता पढ़कर सुनाई थी। वह इतनी मार्मिक थी कि श्रोताओ पर उसका गहरा प्रभाव पडा था। क्यों, है न?"

"जी हा, मैंने गाधी जी पर एक कविता पढी थी।" अपनी प्रशसा सुनकर कुछ सकुचित भाव से महीप ने कहा।

"मुझे बडी प्रसन्नता होगी, यदि आप अपनी कोई नई रचना इस समय सुनावें।"

महीप ने न सुनाने के उद्देश्य से बहुत-से बहाने बनाये। पर ठाकुर साहब भी बार-बार अनुरोध करने से बाज न आये, और श्रीमती खन्ना ने भी बहुत जोर दिया। अन्त में हार मानकर उसे एक कविता सुनानी ही पडी। उसने अत्यन्त भाव-मग्नता के साथ एक पूर्णत नई रचना, जो अभी तक किसी पत्र में छपी नहीं थी सुनाई—गाकर नहीं, अभिनय के साथ। कविता का शीर्षक उसने बताया 'अनल और अनिल।' उसका भाव यह था कि युगों से सामूहिक मानव के अवचेतन मन में सृष्टि के विकास और ह्रास-चक्र के एक विचित्र क्रम के फलस्वरूप जो पापराशि धूमायित हो रही थी, जिन असख्य उन्मत्त पाशविक वासनाओं की विकृतिया किसी घृणित और घातक रोग की ग्रन्थियो की तरह भीतर-ही-भीतर पककर चुनचुना रही थी, कभी पूरे न होनेवाले अरमानों के जो धातु पिघलती हुई आग के रूप में एक दूसरे के साथ घुल-मिलकर दिन-पर-दिन, मास-पर-मास, वर्ष-प्रति-वर्ष, युग-प्रति-युग जिस कालानल का सञ्चय भीतर-ही-भीतर करते चले जा रहे थे, उन सबका सम्मिलित विस्फोट वर्तमान महायुद्ध के रूप में हुआ है। मानव के अवचेतन मन के भूगर्भ में युगो से प्रलय-आन्दोलन मचानेवाली वह आग आज पूरे प्रवेग से फूटकर सामूहिक सचेत मन की सतह के ऊपर उठ आई है, और बाहर के सघर्षमय जीवन की विषमता से विषैले युग की हवा का जोर पाकर बिना किसी रोक-टोक के चारो ओर खुल खेल रही है। अच्छा ही है, उसे खुल खेलने दो। जब तक वह भीतरी

विकृतियो और वाहरी विषमताओ के एक-एक परमाणु को सूखे तिनको की तरह भस्म नही कर डालती तव तक उसकी सर्वशोषी लपटें वुझने न पावें! उस महाविनाश का चक्र पूरा होन के वाद वह आग अपने-आप शान्त हो जायगी। तव जो तत्त्व सच्चे जीवन से सम्न्वित होगे उनकी ठीक परख हो सकेगी; क्योकि वे अजर, अमर तत्त्व उस युगव्यापी विध्वंस के वाद भी प्राण-शक्ति से स्पन्दित होते रहेंगे—पहले की अपेक्षा अधिक उन्नत और उदात्त रूप में।

महीप के कविता सुनाने का ढग वहुत ही सजीव और प्रभावोत्पादक था। उसके श्रोतागण उस कविता के भीतर छिपे हुए गहन भाव को किस हद तक समझ पाये थे, यह जानना कठिन था। पर इतना निश्चित था कि उन्होने अत्यन्त मनोयोगपूर्वक सुना था—यह उनके मुखो के भावो से स्पष्ट प्रकट होता था। श्रीमती खन्ना और ठाकुर साहव के अतिरिक्त एक और तीसरे व्यक्ति ने उस कविता का आधा से अधिक अश सुना था। प्रतिमा स्नानादि से निवृत्त होकर, कपडे वदलकर, सज-सवरकर वाहर चली आई थी और महीप को कविता सुनाते देखकर—चुपचाप उसके पीछे जाकर खडी हो गई थी। महीप उसे अभी तक नही देख पाया था। जव वह कविता सुना चुका, तव ठाकुर साहव ने प्रशसा के स्वर में कहा—"वाह! आपकी कविता सचमुच मन पर गहरा असर करनेवाली है।"

महीप ने सलज्ज मुसकान से शिष्टाचार के रूप में ठाकुर साहव को धन्य-वाद देते हुए हाथ जोडे। इतने में प्रतिमा महीप के सम्मुख खडी हो गई और वोली—"आप सचमुच वधाई के पात्र है, महीप वावू! जव ठाकुर साहव तक को आपकी कविता पसन्द आ गई, तव......"

श्रीमती खन्ना इस वात से भीतर-ही-भीतर वेतरह खीझ उठी, पर वाहर अपने क्रोध को वहुत हलके रूप में प्रकट करती हुई वोली—"ठाकुर साहव को पसन्द आने में आश्चर्य की वात क्या है?"

"आश्चर्य की वात इसलिए है कि ठाकुर साहव कविता को या तो वच्चो का

खेल समझने हैं या भाडो की महंती। अभी कुछ ही महीने पहले, जब आपके एक निकट सम्बन्धी का विवाह हुआ था, तब उस अवसर पर आपने अपने मित्रों के आगे अपना यह मत प्रकट किया था कि चूकि भांडो और कथकों की संख्या समाज में दिन-पर-दिन कम होती जा रही है, इसलिए उनके रीते स्थान को कवियों द्वारा भर लेने में बडी सुविधा है। आपने उस अवसर पर अपने यहा कवि-सम्मेलन कराकर अपने उस विश्वास को कार्यरूप में परिणत किया था। जिन कवियो का साहित्य-क्षेत्र में कोई स्थान नहीं है, जो अपने तुक्कडपन को एक अच्छा-खासा पेशा बनाकर आवारा कुत्तों की तरह दर-दर धन और यश की भीख मागते फिरते है, उन्हें अपने यहा बुलाकर, अच्छी तरह खिला-पिलाकर, ठाकुर साहब ने यह समझकर अच्छा सन्तोष प्राप्त किया था कि उन्होंने हिन्दी के साहित्यिको को अपने पैरों-तले लुटा दिया है। ऐसे जो हमारे ठाकुर साहब हैं वह जब आज हिन्दी के ही एक कवि की कविता के बारे में बडी गम्भीरता के साथ यह कहते हैं कि उनके हृदय पर उसका गहरा प्रभाव पडा, तब वह कवि निश्चय ही बधाई का पात्र हैं। इसलिए महीप बाबू, पुन नमस्कार।" यह कहकर वह अपनी मा की कुर्सी के पास खडी हो गई, और ठाकुर साहब की ओर एक बार व्यंग-भरी आखो की तिरछी दृष्टि से देखकर महीप की ओर मन्द-मन्द मुसकान के साथ देखने लगी।

ठाकुर साहब का मुख लज्जा से एकदम लाल हो आया था। उन्होने अत्यन्त गम्भीरता के साथ कहा—"आप यह सकेत करके कि मैं हिन्दी के कवियो को तुच्छ जीव समझता हू, मेरे साथ बडा अन्याय कर रही है, प्रतिमा देवी! मैंने अपने यहा जब कवि-सम्मेलन कराया था तब कवियो के प्रति अपना सम्मान प्रकट करने के उद्देश्य से ही ऐसा किया था। सिर्फ इतना ही नही, मैंने उन्हें आने-जाने का रेल-भाडा भी दिया था।"

प्रतिमा ने अपनी सान पर चढी जबान को और अधिक तीखा करके कहा—"हा, मुझे मालूम है। थर्ड क्लास का किराया आपने सबको दिया था! आप

बडे उदार हैं। पर कवियों के कूढ-मग्ज में आपकी इस उदारता का रहस्य अपना कुछ रग न जमा सका। उनमें कुछ कवि तो आपको 'लूटना' ही चाहते थे! वे इन्टर क्लास में बैठकर आये थे। आपने बहुत अच्छा किया जो उनकी हैसियत के मुताबिक किराया उन्हें दिया, क्योंकि हिन्दी के कवि की हैसियत ही क्या! वह क्या कोई आई० सी० एस० आफिसर है या लॉ मेम्बर? और तो और, वह बोर्ड आफ रेविन्यू का एक साधारण क्लार्क तक नहीं है, जो आपकी ज़मींदारी से सम्बन्धित सरकारी कागज़ों के विषय में कुछ जानकारी रखता हो। न वह किसी ऐसे व्यक्ति का प्राइवेट सेक्रेटरी ही है, जो थोड़ा-बहुत काम का आदमी सिद्ध हो सके। वह तो केवल एक कवि है—निरा कवि, (यह कहते हुए प्रतिमा ने एक विचित्र ढग से मुह बनाया) गुलाम देश की गुलाम भाषा मे लिखनेवाला एक अत्यन्त साधारण, तुच्छ जीव! इसलिए आपने यदि उसे अपने यहा बुलाकर थर्ड क्लास का किराया देकर विदा कर दिया तो यह आपकी बहुत बडी महत्ता है!" यह कहने के बाद प्रतिमा ने सामने की ओर देखा, नीलिमा खड़ी थी। उसे देखते ही प्रतिमा अपनी आवाज़ को कुछ अधिक ऊचा करके बोली—"सुना दीदी, तुमने ठाकुर साहब की महान् साहित्यिक उदारता का क़िस्सा? आपने अपनी इस्टेट में अपने किसी निकट सम्बन्धी के विवाह के शुभ अवसर पर हिन्दी के कवियो को बुलाया—उन्हें सम्मानित करने के उद्देश्य से। इस युग में भाडो और कथकों का अभाव ठाकुर साहब को बहुत खल रहा था, और वेश्याओं को भी आप इसलिए नही नचा सकते थे कि आप—मा के कथनानुसार—एक 'पब्लिक-मैन' है। इसलिए जो महान् सम्मान आप उन दो आदरणीय कोटि के पेशेवरों को दे सकते थे वही उनके एवज़ में आपने कवियों को दिया। उनसे तरह-तरह की कविताएं गवाईं, उनकी तरह-तरह की मुद्राए देखीं, और पान-सुपारी के साथ थर्ड क्लास का रेलभाड़ा देकर बड़े सम्मान के साथ विदा किया!"

ठाकुर साहब के चेहरे का रग एकदम उड़ गया था। प्रतिमा के मुह मे थोडी-बहुत खरी बातें सुनने के आदी वह अवश्य थे। पर वह खरापन इस हद तक हो

सकता है, यह उन्होंने कभी नहीं सोचा था। वह प्राय. हकलाते हुए अस्पष्ट शब्दों में बडबडाने लगे—"यह आप क्या—मैंने कब—कुछ समझ में नहीं आता, आप—आप—" इत्यादि-इत्यादि।

प्रतिमा उनकी वह दुर्दशा देखकर खिलखिलाकर हँस पडी। श्रीमती खन्ना ने उसकी 'बदनमीजी' के लिए उसे बुरी तरह फटकारना शुरू किया—इस बार उनकी फटकार ने वास्तव में बहुत ही तीव्र और भयानक रूप धारण कर लिया था। यहा तक नौबत आई कि उन्हें प्रतिमा का हाथ पकडकर उसे प्राय ढकेलते हुए भीतर ले जाने को वाध्य होना पडा।

पांचवां परिच्छेद

जव श्रीमती खन्ना प्रतिमा को लेकर भीतर चली गईं तब नीलिमा आगे आकर धीरे से उनके स्थान पर बैठ गई। महीप ने देखा कि इस समय उसके मुख पर एक स्निग्ध-गम्भीर छाया और स्वाभाविक मुद्रा वर्तमान है। कटीले व्यंग का जो भाव कुछ समय पूर्व उसके मुख पर महीप ने देखा था उसका कोई चिन्ह इस समय शेष नहीं था। इतने कम समय में इतना बडा भाव-परिवर्तन देखकर महीप को मन-ही-मन स्वीकार करना पडा कि अभिनय-कला में इस कदर निपुण दूसरी कोई लडकी उसने अपने जीवन में नही देखी। पर ठाकुर साहब के आगे उसका इस प्रकार स्निग्ध-गम्भीर रूप धारण कर लेने का अर्थ क्या हो सकता है? उसने अपने मन से प्रश्न किया। उत्तर मिला कि नीलिमा ठाकुर साहब को सम्मान और श्रद्धा की दृष्टि से देखती है, और उसे (महीप को) एक ओछी प्रकृति का तुच्छ जीव समझती है। यह सोचकर अपनी लम्बी आह को दबाने की भरपूर कोशिश करके वह चुप हो रहा।

नीलिमा ने बैठते ही अत्यन्त मधुर मुसकान के साथ, शान्त भाव से, ठाकुर साहब को लक्ष्य करके कहा—"महीपजी से तो आपका परिचय हो ही चुका होगा?"

ठाकुर साहब अपने मन के आक्रोश का भाव दबाने की व्यर्थ चेष्टा करते हुए बोले—"जी हा, खूब अच्छी तरह परिचय हो चुका है। उस परिचय के कारण ही साहस करके मैंने आपसे एक कविता सुनाने को कहा। उसका फल यह हुआ कि प्रतिमाजी मुझे खरी-खोटी सुना गईं। यदि कवियो से कविता सुनाने को कहना पाप है, तो मैं तो आज से बाज आया।"

महीप ने अपना मौन भग करते हुए कहा—"मुझे बहुत दु ख है, ठाकुर साहब, कि मेरे कारण आपको कष्ट उठाना पड़ा।"

ठाकुर साहब रूखी दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए चुप रहे। उन्होंने शिष्टाचार के रूप मे झूठे मुह भी यह नही कहा कि "नही, आपका इसमें कोई दोष नही है।" उनके मौन भाव से यह बात महीप के आगे स्पष्ट हो गई कि वह उसे वास्तव में दोषी समझते है, केवल समझते ही नही, अपने मन के उस भाव को स्पष्टतया जता भी देना चाहते है। उसके प्रति ठाकुर साहब का आक्रोश क्यो है, इस सम्बन्ध में तरह-तरह के कारण उसके मन में उठने लगे।

नीलिमा ने महीप से कहा—"कल रात आपने हम लोगो को बहुत परेशान किया।"

अकपट विस्मय के साथ महीप बोला—"मैंने कल रात आप लोगो को बहुत परेशान किया! यह तुम—आप क्या कह रही है, नीलिमाजी!"

"मैं ठीक ही कह रही हूं", उसी शात भाव से नीलिमा ने कहा—"मैं आपसे कह गई थी कि जलसा समाप्त होने पर आपको हम लोगों के साथ हमारे घर चलना होगा। पर जब मैंने ठीक समय पर आपकी खोज की तब कहीं आपका पता ही नहीं लगा। मै और प्रतिमा दोनो बहुत देर तक इधर-उधर आपको ढूढती रहीं, पर सब व्यर्थ सिद्ध हुआ। अन्त में निराश होकर हम लोग ठाकुर साहब की कार में घर चली आई। प्रतिमा को—और मुझे भी—आपके न मिलने से बहुत निराशा हुई।"

महीप अप्रत्याशित हर्ष से पुलकित और विस्मय से स्तब्ध होकर अपनी सजलता से चमकती हुई आखों से कुछ क्षण तक नीलिमा की ओर देखता रहा। उसके वाद अपने सगीत-मधुर कण्ठस्वर में बोला—"मैं इस बात के लिए बहुत ही दु खित हू, नीलिमाजी, कि मेरे कारण कल आपको परेशान होना पड़ा।"

ठाकुर साहब आश्चर्य से एक बार नीलिमा की ओर देखते थे, एक बार महीप की ओर। उनकी कुछ समझ ही में नही आता था कि मामला क्या है। एक तुच्छ कवि—साधारण-सा साहित्यिक—जो न धनी है, न मानी, सुसभ्य और सुसस्कृत खन्ना-परिवार से इस हद तक हेल-मेल बढाने और उनका प्रिय पात्र बनने में सफल कैसे हुआ, यह बात सभवत उनकी समझ में ठीक-ठीक नहीं आ रही थी। जो भी हो, इस बात से महीप के प्रति उनका आक्रोश घटने के बजाय अधिक भड़कने लगा था। पर बाहर से अत्यन्त शान्त भाव दिखाने की चेष्ट करते हुए वह मन मारकर एकदम मौन साधे बैठे रहे।

नीलिमा ने कहा—"आप किस-किस बात के लिए दु खित होइएगा, महीप जी! ठाकुर साहब को किसी ने खरी-खोटी सुनाई, उसके लिए आप दु खी हुए, मैं कल रात आपको खोजती फिरी, इस कारण आपको क्षोभ है। प्रतिमा को मा ने फटकार बताई, उसके लिए भी आप अवश्य ही दु खित हुए होंगे। स्वय मा की खीझ के लिए भी आप अपने को दोषी मानकर खिन्न हो उठे होंगे! आप धन्य है! असल बात यह है, आपका कवि-हृदय आवश्यकता से अधिक अनुभूतिशील है। यह आपकी सबसे बडी दुर्बलता है और यही आपका सबसे बडा बल भी है। तिस पर 'क्राइ-बेबी' तो आप रह ही चुके हैं!" यह कहते हुए एक निराली मोहमयी मुसकान से नीलिमा की आखें, वल्कि सारा मुख-मण्डल प्रभासित हो उठा।

नीलिमा की अन्तिम वाक्य की तीखी सुई के चुभने से महीप का हृदय तिलमिला उठा। इतनी देर तक जो सौम्य और शान्त रूप वह धारण किए हुए था उसमें थोडी-सी खरोंच लगी। उसने इसराज के बजते हुए तारों की गूज की तरह

अपनी झंकार भरी आवाज़ में कहा—"एक बात आप भूल रही हैं, नीलिमा जी ! 'क्राइ-बेबी' बड़ा शक्तिशाली प्राणी होता है। उसका रोने का अस्त्र अचूक होता है। अपने रोने के अटूट क्रम से वह अपने आस-पास के शान्ति-प्रेमी व्यक्तियों को इस कदर विवश कर देता है कि वे अपनी जान छुडाने के लिए उसकी इच्छा की पूर्ति करने को बाध्य होते हैं। पर मुझमें यह शक्ति कहां रही है। मेरे जीवन में मेरी एक भी इच्छा की पूर्ति कहां हुई है। इसलिए आपकी 'क्राइ-बेबी' वाली उपमा ठीक बैठती नहीं।"

ठाकुर साहब ने आन्तरिक उत्सुकता के साथ कहा—"इस 'क्राइ-बेबी' वाले किस्से में क्या रहस्य छिपा है, मैं अभी तक कुछ समझ न पाया। इसलिए, अगर गुस्ताखी माफ हो तो, मैं भी जानना चाहूंगा।"

नीलिमा ने आधी दृष्टि से उनकी ओर देखकर कुछ अवज्ञा के साथ कहा—"वह एक साहित्यिक रहस्य है, जिसे आप—जिसमें आपको कोई दिलचस्पी नहीं हो सकती।" स्पष्ट ही वह कहने जा रही थी "जिसे आप समझ नहीं सकते।" पर तत्काल कुछ सोचकर उसने अपने कहने का ढंग बदल दिया। महीप लाख चेष्टा करने पर भी ठाकुर साहब के प्रति नीलिमा के व्यवहार से कोई भी ऐसा इंगित नहीं पा रहा था जिससे वह एक निश्चित धारणा अपने मन में बना सके। उसके मन में यह दृढ विश्वास था कि जब नीलिमा ने मोटर के हार्न का शब्द सुना तब मोटर को बिना देखे ही उस हार्न के विशेष प्रकार के शब्द से वह समझ गई थी कि ठाकुर साहब की कार आ पहुंची है, और तत्काल दौडती हुई भीतर चली गई थी। इस बात का स्पष्ट अर्थ महीप को यह लगा कि ठाकुर साहब के आगे नीलिमा साधारण पहनावे में, अस्त-व्यस्त वेष में, प्रकट नहीं होना चाहती। जब वह भीतर जाकर, नहा-धोकर शृंगार-प्रसाधन कर चुकी, तब ड्राइंग-रूम में आई। और जब आई तब अपने मुख का भाव ऐसा शान्त, संयत और गम्भीर बनाकर लाई जो कुछ ही समय पहले उसका बनावटी बचकाना व्यवहार, और साथ ही व्यंगात्मक परिहास-पटुता देखने के बाद अत्यन्त आश्चर्य-

जनक लगता था। उस बात से महीप के मन में यह धारणा जम गई थी कि नीलिमा ठाकुर साहब के प्रति एक विशेष सम्मान का भाव रखती है। पर अब जब ड्राइंग-रूम में केवल तीन ही व्यक्ति रह गये थे तब वह महीप के साथ मीठे व्यंग की पटाखेदार फुलझड़िया छोड़ती हुई ठाकुर साहब के प्रति जो अवज्ञा जता रही थी वह महीप को कुछ कम विस्मयजनक नहीं मालूम हो रही थी। साथ ही इस बात में भी उसे कुछ-न-कुछ रहस्य छिपा मालूम होता था कि ठाकुर साहब के यहा कवियों का जो 'सत्कार' हुआ था उस किस्से को प्रतिमा ने नीलिमा के आगे ऊची आवाज में दुहराना आवश्यक समझा था। जो भी हो, वह ठाकुर साहब के प्रति नीलिमा की भाव-भंगिमा और नीलिमा के प्रति ठाकुर साहब की चेष्टाओं की ओर बड़े गौर से, सूक्ष्म दृष्टि से ध्यान दे रहा था।

नीलिमा पूर्ण दृष्टि से महीप की ओर देखती हुई, अपने सारे मुख पर अत्यन्त स्निग्ध और सरस मुसकान झलकाती हुई बोली—"अच्छा, 'क्राइ-बेबी' वाली बात को अब भूल जाइए, मिस्टर प्रामेथ्यूज! अब कृपा करके मेरी एक बात का उत्तर दीजिए। एक विषय पर आपकी राय जानना मेरे लिए बहुत जरूरी है। प्रतिमा ने अभी जो क़िस्सा ठाकुर साहब के कविता-प्रेम और कवि-भक्ति के सम्बन्ध में सुनाया, उसपर आपकी क्या राय है?"

ठाकुर साहब का चेहरा सहसा भयंकर रूप से तमतमा उठा। ऐसा मालूम होता था, जैसे उन्होंने नीलिमा के प्रश्न से अपने को अत्यन्त अपमानित समझा हो। उन्होंने प्राय तमककर कहा—"देखिए नीलिमा देवी, मैं एक बात अर्ज कर देना आवश्यक समझता हू—मैंने कभी यह नहीं कहा कि मैं कवियो का भक्त हू, इसलिए "

बीच में ही उनकी बात काटकर नीलिमा आवी, किन्तु तीखी दृष्टि से उनकी ओर देखकर बोली—"मैंने आपसे तो कोई प्रश्न किया नही, इसलिए आपका इस तरह बीच में बोल उठना कहा तक उचित है, यह बात मेरी समझ में नहीं आई।"

ठाकुर साहब इसके आगे कुछ न कह सके, सोफा की पीठ से अपनी पीठ सटाकर हताश भाव से चुप बैठ गए।

नीलिमा ने महीप से कहा—"हा, तो मिस्टर प्रामेथ्यूज़, आपने अपनी राय नहीं जताई।"

महीप ने अपने को बडी अप्रिय परिस्थिति में पाया। उसकी समझ मे नही आया कि नीलिमा ठाकुर साहब के सामने ही इस तरह का प्रश्न क्यो करना चाहती है। उसे ऐसा लगा जैसे वह जान-बूझकर या तो ठाकुर साहब को या स्वय उसे अप्रतिभ करना चाहती हो। पर क्यो ? नीलिमा ने यह रहस्य-जाल किसे, किस उद्देश्य से फासने के लिए फैलाया है ? तनिक भी असावधानी में वह खतरे मे पड सकता है, इस निश्चित कारण से उसने सरसरी दृष्टि मे एक बार नीलिमा की ओर देखा और एक बार ठाकुर साहब की ओर। नीलिमा की आखो में दुष्टता भरी उत्सुकता झलक रही थी, और ठाकुर साहब की आखो मे एक निपट हताश भाव। उसके अन्तर्मन के किसी अधेरे कोने से यह भावना सम्भवत अस्पष्ट रूप से ऊपर को झाक रही थी कि नीलिमा द्वारा फैलाये गए जाल में ठाकुर साहब का पाव किसी तरह फस जाय तो वह भी तमाशा देखे। पर चूकि स्वय उसके भी फसने का डर था, इसलिए वह अपने जान बहुत सभलकर बोला—"प्रतिमा की बात में यदि कुछ भी सचाई है तो ठाकुर साहब का व्यवहार निश्चय ही घोर लज्जास्पद रहा है। मै प्रतिमा की सचाई और ईमानदारी पर तनिक भी सन्देह नही करता। पर ऐसा भी हो सकता है कि ठाकुर साहब के यहा जो कवि-सम्मेलन हुआ उसके सम्बन्ध में किसी का गलत बयान उसने सुना हो। साथ ही यह बात भी है कि प्रतिमा को यदि पूरे और पक्के प्रमाण न मिल गए होते, तो वह ठाकुर साहब के आगे उस बात को कभी निश्चित तथ्य के रूप में न रखती। इसके अलावा अभी तक ठाकुर साहब ने प्रतिमा के किसी भी तथ्य का खण्डन नही किया है। इससे भी प्रतिमा की बात की सचाई प्रमाणित होती है। और यदि यह सच है, यदि वास्तव मे ठाकुर साहब का मनोभाव कवियो के प्रति वैसा ही है जैसा कि

प्रतिमा ने वर्णित किया है, और कवि-सम्मेलन के कवियों को उन्होंने भाडों और वेश्याओ की अपेक्षा.   "

"गलत बात है! एकदम गलत! मै कवियो को मूर्ख अवश्य समझता रहा हू, पर उन्हे भाड और वेश्या मैने कभी नहीं समझा!" मेज़ पर ज़ोर से हाथ पटकते हुए ठाकुर साहब ने कहा। उनका रुद्र रूप उस समय देखने ही योग्य था। खीझ के कारण वह अग्निशर्मा बने हुए थे। उनके मुख पर जो शिष्ट और सौजन्य-पूर्ण भाव महीप ने कल जलसे में, और आज भी आरम्भ में देखा था वह ऐसा धोखेबाज मुखडा सिद्ध होगा, यह बात उसकी कल्पना में नहीं आई थी। पर जो भी हो, उनकी खीझ की अभिव्यक्ति इस समय महीप को ऐसी हास्यास्पद लगी कि उसे वह एक अच्छा-खासा विनोद मालूम हुआ। उसका जो सहज आत्मविश्वास नीलिमा की उपस्थिति में डिग-सा रहा था वह लौट आया और उसके मुख पर पूर्ण प्रसन्नता की मुसकान छा गई। बडे प्रेम से ठाकुर साहब की ओर देखते हुए उसने कहा—"जब आप कवियो को मूर्ख समझते है तब तो मुझे घोर मूर्ख समझते होंगे, क्योंकि मै कवि न होते हुए भी कविता लिखता हू। और यह जानते हुए कि मै मूर्ख हू, आपने मेरी कविता की जो प्रशसा की उससे सचमुच आपकी उदारता का परिचय मिलता है। तब तो आपने निश्चय ही अपने यहा के कवि-सम्मेलन में कवियो का वैसा ही महान् स्वागत किया होगा जैसा कि प्रतिमा ने बताया है!"

नीलिमा बरबस खिलखिला उठी। इस बात से ठाकुर साहब ने अपने को द्विगुण अपमानित समझा, और उसकी प्रतिक्रिया ने एक हठ का रूप धारण कर लिया। उन्होंने पहले से भी ऊंची आवाज में कहा—"मै केवल कवियों को ही नहीं, हिन्दी के सभी साहित्यिको को मूर्ख समझता हू। आपके हिन्दी-साहित्य में रक्खा ही क्या है! अगरेज़ी में यूरोपीय साहित्य की चीज़ें पढ-पढ कर उनकी विकृत नकल अपनी भाषा में करने के सिवा आपके साहित्यिक कौन-सा मौलिक तत्त्व हिन्दी को दे रहे हैं? अगर नकल भी ठीक तरह से कर पाते तो भी एक बात थी।

पर एक तो उन लोगो को अगरेजी का ही ठीक ज्ञान नहीं होता, तिस पर उनकी समझ बहुत ही छिछली होती है, और तिस पर भी कलात्मक प्रतिभा का लेश भी उनमे नही रहता। ऐसी हालत में केवल वही व्यक्ति हिन्दी के साहित्य और साहित्यिको मे दिलचस्पी ले सकता है जो उन्ही की तरह मूर्ख हो और जिसमें किसी कलाकृति की विशेषताओ के परखने की बुद्धि न हो। लोग चिल्लाते है कि हिन्दी सम्पूर्ण राष्ट्र की भाषा नही हो पाती। हो कैसे! जिस भाषा का साहित्य एकदम चौपट हो, वह राष्ट्रभाषा हो ही कैसे सकती है! यह सब होते हुए भी हिन्दी के साहित्यिको के दिमाग सातवें आसमान पर चढे रहते है। प्रत्येक साहित्यिक अपने को शा और वेल्स से कुछ कम नही समझता! घोर अहम्मन्य मूर्खों के इस राज्य मे जो कोई भी समझदार भूल से पाव रख वैठता है उसकी दुर्दशा स्वाभाविक है......"

"जैसी कि इस समय आपकी हो रही है!" कहकर नीलिमा फिर एक बार खिलखिला उठी।

"तो क्या आप शा और वेल्स को सचमुच महान् कलाकार मानते है?" महीप ने कुछ गम्भीरता के साथ पूछा।

"इसमें भी कोई सन्देह है! हिन्दीवाले जीवन भर उनके पैरो के तलवों की धूल पोछते रहें तो भी उस धूल के बराबर महत्त्वपूर्ण साहित्य की सृष्टि नहीं कर सकते!"

महीप के मुख का भाव गम्भीर-से-गम्भीरतर हो आया। कुछ क्षण तक वह उदास दृष्टि से ठाकुर साहब की ओर देखता रहा; उसके बाद शान्त, किन्तु स्थिर स्वर में बोला—"देखिए ठाकुर साहब, हिन्दी के साहित्यिकों को आपने जो गधो से भी मूर्ख और जमीन पर रेंगनेवाले कीडो से भी अधिक तुच्छ समझा है, इसके लिए मै अकेले आपको दोषी नहीं ठहराता। हमारे देश का एक बहुत प्रभावशाली सम्प्रदाय—राजनीतिक सम्प्रदाय—राष्ट्रीय उन्नति ही जिसका एकमात्र ध्येय है, और जो सच्चे मन से, सच्ची लगन से, दलित भारत

को ससार के सर्वश्रेष्ठ राष्ट्रो के समकक्ष बनाने के उद्देश्य से प्राणों की बाजी लगाये हुए है—उसका भी मनोभाव हिन्दी के साहित्यिको के प्रति वैसा ही है जैसा कि आपका। किसी राष्ट्र के लिए इससे बडे दुर्भाग्य की बात क्या हो सकती है कि उसके नेता उसकी प्रधान भाषा के साहित्य को बच्चो का खेल और उसके साहित्यिको को निपट गवार समझें! हमारे नेतागण हिन्दी-साहित्य का एक अक्षर भी पढना अपनी गौरवहीनता समझते है। उनका ध्रुव विश्वास है कि गुलाम देश की इस गुलाम भाषा के साहित्य में गुलाम मनोवृत्ति—और अधिक से अधिक बन्दरो की-सी नकल उतारने की कला—के सिवा और हो ही क्या सकता है! इसलिए वे उसकी ओर कभी भूलकर भी नहीं झाकते, और यदि कभी किसी के सत्याग्रहपूर्ण अनुरोधवश झाक भी लेते है तो नाक-भौं सिकोडने लगते है। जिस विदेशी साहित्य के धनी-धोरियो की कृपा से आज हम लोग दास-मनोवृत्ति को अपनाने के लिए बाध्य हुए है उसका अक्षर-अक्षर चाटने के लिए हमारे देश-नायकगण उत्सुक रहते है और उसके निम्न-से-निम्नतर कोटि के लेखक के एक-एक वाक्य को ब्रह्मवाक्य से कुछ कम महत्त्वपूर्ण नही समझते। वे लोग अगरेजी का एक वाक्य शुद्ध बोलकर और आधा वाक्य शुद्ध लिखकर अपने को जितना गौरवान्वित समझते है, उससे कहीं अधिक गर्व का अनुभव तब करते है जब वे हिन्दी के किसी साधारण शब्द को अशुद्ध लिखते है—शुद्ध हिन्दी लिखना वे लज्जा की बात समझते है। शुद्ध क्या, अशुद्ध हिन्दो लिखना भी वे पाप मानते है। यही कारण है कि हिन्दी के श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ लेखक की किसी भी रचना को गधे की ची-पो से अधिक महत्त्व वे नही देते। उन्हें इस बात पर कतई विश्वास ही नहीं होता कि इस दलित देश की पीडित आत्मा की पुकार को उसके साहित्यिक किसी भी रूप में व्यक्त करने की योग्यता रख सकते है।"

इस बीच प्रतिमा भीतर से वापस आकर एक कोने मे चुपचाप खडी हो गई थी। उसके मुख का सहज प्रसन्न भाव ज्यो-का-त्यो बना हुआ था। वह बडे ध्यान से महीप की बात सुन रही थी।

ठाकुर साहब का रुद्र रूप कुछ ठण्डा पड गया था, पर प्रतिहिंसक भाव की छाया अभी तक उनके मुख पर से नही हटी थी। उन्होने अत्यन्त गम्भीर स्वर मे कहा—"जब आपके साहित्य मे कुछ दम ही नहीं है तब उसकी अवज्ञा करनेवाले नेताओ का क्या दोष! जो दर्द तीखा होता है उसकी कराह भी वैसी ही तीखी होगी, और ऐसा हो नहीं सकता कि वह किसी के कानो तक पहुंच ही न पावे। असल बात यह है कि दासवृत्ति ने आपके साहित्य-जगत् को बुरी तरह जकड रक्खा है। उस मनोवृत्ति से ऊपर उठकर, अपनी आवाज को बुलन्द करके, ससार को कोई नया कल्याणकारी सन्देश सुनाने में आपके साहित्यिकगण एकदम असमर्थ है। ऐसी हालत में अगर कोई आपके साहित्य के प्रति उदासीन रहे तो उसे दोष नहीं दिया जा सकता।" यह कहकर ठाकुर साहब ने एक बार तिरछी दृष्टि से प्रतिमा की ओर देखा, और उसके बाद क्षण भर के लिए नीलिमा की ओर देखकर फिर महीप की ओर मुखातिब हो गये।

'देखिए ठाकुर साहब!" महीप ने खीझकर कहा—"आप एक बात भूल रहे है। यह भोंपू का युग है, और जिस सम्प्रदाय या राष्ट्र का भोपू जितना बडा होगा, उसकी आवाज भी उतनी ही ऊची और दूर तक सुनाई देनेवाली होगी। यदि भोपू—लाउड-स्पीकर—बड़ा नही है तो पुकार चाहे कैसी ही मार्मिक क्यो न हो, उसे न तो कोई सुन पाता है, न सुनना चाहता है। बेचारी हिन्दी के साहित्यिको के पास कोई भोंपू ही नहीं है, इसलिए वे अपनी आवाज को दूसरे देशो के प्रागण तक पहुचाना तो दर-किनार, अपने ही देश के और अपने ही प्रात के निवासियो के कानो तक ठीक तरह से नही पहुचा पाते। इससे यदि कोई यह समझे कि दास-मनोवृत्ति से जकडे रहने के कारण वे साहित्य मे कोई महत्त्व की चीज नही दे पाते तो इससे भयकर भूल दूसरी कोई हो नहीं सकती। किसी ग़ुलाम देश के ग़ुलाम लेखक की दलित आत्मा के भीतर पीडन की जो प्रतिक्रिया होती है वह ऐसी गहन और मार्मिक होती है कि किसी स्वतन्त्र देश का स्वाधीन लेखक आसानी से उसकी कल्पना तक नहीं कर सकता। तुलसीदास इस ग़ुलाम देश के ही ग़ुलाम लेखक थे। देश की घनघोर दासता और रोग-

निर्वासित

शोक-दु:ख-दारिद्रय के बीच में उनका जन्म हुआ था। यही कारण था कि अपनी घनीभूत पीडा को उच्चतम कोटि के परम मागलिक साहित्य के रूप में जिस मार्मिक और व्यापक ढग से व्यक्त करने में वह समर्थ हुए थे, उसका जोड दूसरे किसी भी साहित्य में मिलना कठिन है। रूस जब जार-युग के अत्याचारों से पीडित होकर दासत्व की शृखला से भी अधिक क्रूर और कठोर बन्धनों से जकडा हुआ था तब घोर विपरीत परिस्थितियो में वहा के लेखको ने जिस महान् साहित्य का निर्माण किया, वह यूरोप के प्राय सभी युगो के साहित्य के इतिहास में अद्वितीय माना गया। प्राचीन ग्रीस के दास लेखकों ने जिस उन्नत और स्थायी साहित्य की सृष्टि की वह उसी देश के स्वतन्त्र लेखको के साहित्य से कई गुना अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इसीलिए मैं कह रहा था कि हमारी वर्तमान दासता हमारे साहित्य के महत्त्व में किसी रूप में भी बाधक सिद्ध नहीं हुई है, बल्कि मेरा यह ध्रुव विश्वास है कि बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के परिणत-काल में जिस साहित्य का सर्जन हिन्दी के लेखको ने किया है वह उसी काल में रचे गये सभी देशी और विदेशी साहित्यों की तुलना में उन्नीस नहीं, बल्कि इक्कीस ही सिद्ध होगा। इस समय यह बात हमारे ही निकट की जनता को जो घोर हास्यास्पद और एकदम असम्भव मालूम होती है, उसका कारण यही है जो मैं बता चुका हू—भोंपू का अभाव। हमारी दासता महान् साहित्य के सर्जन में बाधक न होकर उसके प्रचार में बाधक हुई है। हमारी दास-भावना का बुरा असर हमारे साहित्य के निर्माताओं पर उतना नहीं पडा है जितना उसके पारखियो पर। और सबसे बडी विडम्बना यह है कि हमारे राष्ट्र के उन्नायकों पर इस आत्म-लघुता की मनोवृत्ति ने सबसे अधिक रोब गालिब किया है। यदि यह बात न होती तो उन लोगों ने अपना साहित्य-सम्बन्धी सारा ज्ञान केवल विदेशी साहित्यिकों के द्वारा प्राप्त करने की शपथ न खा ली होती, पहले ही से इस विरोधी सस्कार को मन में न पाला होता कि हिन्दी वाले कोई भी महत्त्व की मौलिक चीज नही दे सकते। पर जमाना सदा ऐसा ही नहीं रहेगा। बदलती दुनिया एक दिन देखेगी कि स्वतत्र भारत के निवासी

अपन देश के पिछले युग के साहित्य की विशेषताओ के गवेषण में जुटे हैं, और ससार के आगे इस सत्य का उद्घाटन करने जा रहे हैं कि दलित भारत के गुलाम लेखको ने बीसवी शताब्दी के किसी काल में एक ऐसे साहित्य का निर्माण किया था जो मौलिकता, मार्मिकता और गहनता, सभी दृष्टियो से ससार में बेजोड था।"

महीप का मुख भाव के आवेश के कारण एक निराले प्रकाश से प्रदीप्त हो उठा था। उसके छोटे-से मुख और भाव-विभोर आखो से एक वीरजनोचित आत्म-विश्वास का भाव प्रस्फुटित हो रहा था। नीलिमा स्तब्ध भाव से उसकी ओर देख रही थी और प्रतिमा प्रशसा-भरी पुलकित आखो से। पर ठाकुर साहब के मुख पर पूर्ण अविश्वास की व्यग-भरी मुसकान झलक रही थी।

इतने में श्रीमती खन्ना भीतर से आई और उन्होंने कहा—"सब लोग बीच-वाली गोलमेज के आगे बैठ जाय। चाय आ रही है।"

छठा परिच्छेद

नीलिमा बोली—"उठिए महीप बाबू!" उसके बाद उसने एक बार तिरछी दृष्टि से ठाकुर साहब की ओर देखा। पर उनसे एक शब्द भी वह नही बोली। श्रीमती खन्ना के मुख की ओर देखने से यह बात महीप के आगे स्पष्ट हो गई कि ठाकुर साहब के प्रति नीलिमा का यह अवज्ञापूर्ण व्यवहार उन्हें कतई पसन्द नही आया। वह स्वय ठाकुर साहब के पास गईं, और स्नेह-सरस मुसकान झलकाती हुई बोली—"चलिए ठाकुर साहब, चाय आ रही है।"

ठाकुर साहब धीरे से उठे। महीप, नीलिमा और प्रतिमा ने उनके पहले ही मेज के इर्द-गिर्द की तीन सीटो पर अधिकार जमा लिया था। श्रीमती खन्ना ने ठाकुर साहब को अपनी पासवाली सीट पर बडे आदर के साथ बिठाया। जब ठाकुर साहब जमकर बैठ गये तब श्रीमती खन्ना को लक्ष्य करके न जाने क्या सोचकर बोले—"कल रात जब मुझे किसी कारण से नीद नहीं आई तब मै

एक कविता-पुस्तक खोलकर कीट्स की कविता पढने लगा। कविता का शीर्षक था—'ला वेल दाम सा मेर्सी।' पढते-पढते मैं भाव में ऐसा मग्न हो गया कि मुझे अनुभव होने लगा जैसे कीट्स मैं ही हू और उस कविता-द्वारा स्वयं अपने मन के भावो को व्यक्त कर रहा हू।" यह कहते हुए उन्होने एक बार नीलिमा की ओर देखा। उसके बाद फिर श्रीमती खन्ना की ओर मुह करके बोले—"उस कविता को पढकर मैंने मन-ही-मन कहा—'इसे कहते हैं कविता! यह है एक वास्तविक प्रतिभाशाली कवि की रचना!' मैं सोचने लगा कि क्या हिन्दी के कवि कभी इस महान् कवि के रचना-सौन्दर्य को, उसकी सुकुमार कला की विशेषता को, समझने योग्य हो सकेंगे?" यह कहकर उन्होने ललकार भरी दृष्टि से एक बार महीप की ओर देखा।

महीप उनके इगित से तिलमिला उठा था। वह सोचने लगा कि उन्होने खास तौर से 'ला वेल दाम सा मेर्सी' का उल्लेख क्यो किया? और किसकी याद से उन्हें रात में नींद नही आई? 'मुझे ऐसा लगा कि कीट्स मैं ही हू और उस कविता-द्वारा स्वय अपने मन के भावो को व्यक्त कर रहा हू।' उनके मन के वे भाव किस 'दयाहीना मोहिनी नारी' के सम्बन्ध में व्यक्त हो रहे थे? क्या वह नीलिमा थी? निश्चित रूप से वही रही होगी, तभी तो 'ला वल दाम सा मेर्सी' का उल्लेख करते हुए उन्होने अर्थ-भरी दृष्टि से नीलिमा की ओर देखा था। ठीक है। यही वात है। पर नीलिमा का अपना भाव इस सम्बन्ध में क्या है? वह जो कुछ समय से ठाकुर साहव के प्रति अवज्ञा का भाव प्रदर्शित कर रही है, और उनके प्रत्येक उत्साह को रूखे व्यग से एकदम ठण्डा करने पर तुली हुई है, इसका क्या अर्थ है? इसके भीतर भी क्या कोई रहस्य छिपा है? "अचानक वह मेरे प्रति इस कदर कृपाशील क्यो हो उठी है?" उसने मन-ही-मन कहा—"उसके मन में निश्चय ही कोई-न-कोई वात ऐसी है जिसका आभास वह किसी को नही देना चाहती। विना उस मूल वात को मालूम किये मैं न पीछे हटना चाहूगा, न आगे वढना।"

श्रीमती खन्ना ने ठाकुर साहब की बात का समर्थन करते हुए कहा—"सचमुच अगरेज़ी के कवियो की तुलना में हिन्दी के कवि बहुत ही पिछड़े हुए है।"

श्रीमती खन्ना ने अगरेजी की कुछ छिट-फुट कविताए अवश्य पढी थीं, पर अंगरेज़ी काव्य-साहित्य का नियमित अध्ययन कभी नही किया था, और न कभी हिन्दी के किसी कवि की रचना को ही उन्होने साहित्यिक दृष्टि से पढा था। पर चूकि वह किसी विशेष कारण से प्रत्येक विषय में ठाकुर साहब का पक्ष लेने के लिए उत्सुक रहती थी, इसलिए उन्होने साहित्य-विषयक वाद-विवाद मे भी उनका साथ देना आवश्यक समझा।

महीप ने तनिक आक्रोश भरे स्वर में कहा—"यदि भारतीय विद्यालयो में अगरेज़ी साहित्य का अध्ययन करने की विवशता न होती तो हम लोगो को इस तथ्य पर विश्वास कर लेने में कठिनाई न होती कि कीट्स, ब्राउनिंग, टेनिसन आदि कितने ही अगरेज कवि ऐसे है जिनकी गणना वास्तविक श्रेष्ठ कवियो में नही की जा सकती। ग्रेट ब्रिटेन को छोडकर यूरोप के अन्य किसी भी देश का कोई भी साहित्यालोचक इन कवियो को उल्लेख योग्य नही समझता। मै आपको विश्वास दिलाता हूं ठाकुर साहब, (आप मेरी बात को दम्भ न समझे) कि वर्तमान हिन्दी-साहित्य में ऐसे कवि है जिनकी प्रतिभा कीट्स से कई गुना अधिक तीव्र, अधिक गहरी और अधिक ऊची है। इन कवियों का दुर्भाग्य केवल इतना ही है कि जिस देश मे वे उत्पन्न हुए है वह स्वतन्त्र नही है और उसका आधिपत्य दूसरे देशो पर नही है, जहा वह हिन्दी को राजकीय भाषा बनाकर वहा के विश्वविद्यालयो के छात्रो को ठीक उसी प्रकार हिन्दी-कविता का अध्ययन करने के लिए विवश कर सकते जिस प्रकार इस समय भारतीय विश्वविद्यालयो के छात्र अगरेज़ी कविता का अध्ययन करने के लिए विवश है। यदि कभी ऐसा समय देखने को मिलेगा, जब नवीन भारत स्वतन्त्र होकर संसार के विभिन्न भागो मे अपने उपनिवेश स्थापित करने में उसी प्रकार समर्थ होगा जिस प्रकार प्राचीन भारत ने

सिंहल, श्याम, कम्बोज, मलय, सुमात्रा, जावा, वोर्निओ, वाली आदि स्थानो में साम्राज्य का विस्तार किया था और अपनी ही सस्कृति के रग में उन्हे रग दिया था, तव निश्चय ही हमारे उन नये उपनिवेशो में हमारे कवि ससार के सर्वश्रेष्ठ कलाकारो के रूप में पूजे जायगे। इस समय तो हमारे राजनीतिज्ञ उन्हे गर्दभ समझते हैं और स्वय हिन्दी के साहित्यालोचकगण उन्हें या तो घोर मूर्ख वताते हैं या नक्काल। एक तो उनकी रचनाओ का आदर नही होता, दूसरे अपनी आर्थिक दुरवस्था के कारण वे दर-दर आवारा कुत्तो की तरह दुरदुराये जाते है, या अधिक से अधिक भाडो और वेश्याओ की तरह या श्राद्धभोजी ब्राह्मणो की तरह कभी-कभी कवि-सम्मेलनो के अवसरो पर राजा-रईसो के यहा निमन्त्रण पा जाते हैं। पर यह निश्चित हैं कि इस तरह की स्थिति सदा नही रहेगी और वर्तमान हिन्दी जगत् का उपेक्षित और परिहास-पीडित कलाकार निकट भविष्य में निश्चय ही विजयी होगा। प्रतिदिन जो निरादर, व्यग, उपहास और अपमान की वौछारें उस पर की जा रही है, उसका वदला तिल-तिल, रत्ती-रत्ती करके अवश्य ही चुकेगा।"

महीप की आखें एक भूतलोक की-सी उन्मादना से जैसे जल रही थी। उसका वह असाधारण प्रतिभामय ज्वलन्त रूप न नीलिमा ने उसके पहले कभी देखा था, न प्रतिमा ने। नीलिमा को ऐसा लगा कि आज सुवह आरम्भ में महीप की कविताओ के सम्वन्ध में जो सरस किन्तु चुभता हुआ व्यग उसने किया था जैसे उसी का उत्तर देने के लिए महीप ने वह आवेशमय भाषण दिया हो। आरम्भ में उसका जितना ही सकोचशील रूप नीलिमा ने देखा था, जैसे उसी की अतिरिक्त क्षतिपूर्ति का विस्फोट उस भाषण के रूप में हुआ। आज पहली वार महीप का एक विलकुल ही नया रूप उसके सामने आया। आज तक वह महीप को केवल एक रोमान्टिक और समझदार वयस्क शिशु के रूप में देखती आई थी। उस शिशु के प्रति उसके मन में ममता का भाव अवश्य वर्तमान था, पर वह ममता वहुत ही स्पष्ट और सीधी-सी थी। उसके साथ न किसी प्रकार के आदर का भाव जुडा हुआ था, न उसके पीछे किसी रहस्यमय अव्यक्त

भाव की छाया ही छिपी हुई थी। पर आज अकस्मात् उस 'शिशु' का जो वीरोचित रूप उसने देखा, उसने जैसे नीलिमा के इतने दिनो के पुराने सस्कारो को ढा दिया, और उनके स्थान पर एक नया ही सस्कार अपनी नीव जमा बैठा, जिसके ऊपर खडी होनेवाली इमारत की कोई निश्चित रूप-रेखा अभी उसके आगे स्पष्ट नही थी। जो भी हो, आज पहली बार उसने उस 'रोमान्टिक' शिशु को आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखा। महीप ने अपनी बाईं आख के कोने से (नीलिमा उसकी बाईं ओर बैठी हुई थी) उसके मुख का वह सम्भ्रम भाव देख लिया था, जिससे वह मन-ही-मन परम पुलकित हो रहा था—यद्यपि बाहर उसने अपने मन के उस भाव को भरसक प्रकट नही होने दिया। प्रतिमा परिपूर्ण प्रशसा की पुलक-भरी दृष्टि से उसकी ओर देख रही थी। ठाकुर साहब के चेहरे से खीझ और व्यग का मिश्रित भाव व्यक्त हो रहा था। ठाकुर साहब के साथ सम-अनुभूति के कारण श्रीमती खन्ना की आखों से भी प्राय. वही भाव परिस्फुट हो रहा था।

नौकर आकर चाय और नाश्ते का सरअजाम मेज पर रख गया। श्रीमती खन्ना सबके आगे भोज्य पदार्थों से पूर्ण प्लेटो को रखती चली गईं और नीलिमा कपो में चाय ढालने लगी।

सातवां परिच्छेद

महीप के भाषण के बाद कुछ क्षणो के लिए कमरे मे एक प्रकार का मौन-भाव-सा छा गया था। सबसे पहले प्रतिमा ने उसे भंग किया। महीप के लम्बे व्याख्यान के सिलसिले में वह बोली—"अभी कुछ ही दिन पहले मैंने एक पुस्तक देखी थी, जिसमें अगरेजी भाषा के एक विश्वविख्यात जीवित कवि की एक कविता छपी थी। केवल पाच-सात पृष्ठ की उस पुस्तिका का मूल्य बाईस रुपया रक्खा गया था। यहा के कलाप्रेमी रईसजादो ने उसे खरीदकर अपने को कृतकृत्य समझा—विशेष रूप से इसलिए कि उस कविता के साथ कवि के हस्ताक्षर भी छपे थे। वह कविता मैंने पढी। उसमें ऊनड-

खाबड छन्द में जान-बूझकर (शायद कला मे नवीनता लाने की दृष्टि से !) तोडी-मरोडी गई भाषा में, वर्तमान महायुद्ध से सम्बन्धित कुछ असम्बद्ध प्रलापपूर्ण बाते कही गई थी, और वह असम्बद्ध शैली भी सम्भवत जान-बूझकर, एक नये और मौलिक टेकनीक का ढ.ग रचने के लिए, अपनाई गई थी। ऐसी पोली, गुरुत्वहीन, निस्तत्त्व और निस्सार कविता बहुत कम पढने को मिलती है। पर हमारे कुछ उत्साही साहित्यालोचको ने उसकी महिमा के नारे बडे ज़ोरा से लगाने शुरू कर दिये। इसके विपरीत हिन्दी के एक ऐसे कवि की रचनाआ को मूर्खतापूर्ण और असम्बद्ध प्रलाप सिद्ध किया जाने लगा जिसकी प्रतिमा उस विलायती कवि से किसी अश मे भी घटकर मै नही मानती। यदि इस समय प्रकृति की लीला के किसी दूसरे नियम से भारत पर ब्रिटेन का आधिपत्य न होकर ब्रिटेन पर भारत का आधिपत्य होता तो सम्भावना इस बात की अधिक थी कि वह विलायती कवि स्वय अपने देशवासिया द्वारा मूर्ख और पागल सिद्ध किया जाता, और हिन्दी का जो कवि आज यहा दुरदुराया जा रहा है वह वहा बहुत बडी प्रतिष्ठा पाता।"

अचानक ठाकुर साहब बडे ज़ोर से अट्टहास कर उठे, जिससे सारी उपस्थित मडली का अच्छा विनोद हुआ, क्योंकि ठाकुर साहब का वह अट्टहासात्मक रूप बडा कौतुकप्रद मालूम होता था। उस समय उनके चेहरे का भाव सर्कस के 'जोकर' की तरह लग रहा था।

चाय का प्याला हाथ से ऊपर उठाते हुए, ठाकुर साहब ने प्रतिमा की ओर देखकर व्यगपूर्वक कहा—"मै वर्तमान हिन्दी-साहित्य की भावी विजय के उपलक्ष्य तें यह प्याला पीता हू।"

प्रतिमा मद-मधुर-मुसकान के साथ ठाकुर साहब की नकल उतारती हुई बोली—"और मै ठाकुर साहब के मत-परिवर्तन के उपलक्ष्य में पीती हू।"

श्रीमती स्वप्ना ने अपनी आखो और भौंहो में आक्रोश का भाव जताते

हुए डांट के स्वर मे कहा—"प्रतिमा ! तुम अपनी दुष्टता से बाज नही आओगी ?"

प्रतिमा ने प्राय. कुडबुडाकर अपने मुख के परिहासात्मक भाव को दवाने की चेष्टा की।

इतने में नीलिमा अपना प्याला ऊपर उठाती हुई बोल उठी—"और मै ठाकुर साहब पर महीपजी की प्रत्यक्ष विजय की खुशी मे पीती हू !"

ठाकुर साहब का चेहरा एकदम मुरझाकर रह गया। उन्हे ऐसा लगा जैसे किसी ने उनके मुह पर जूता मार दिया हो। अत्यन्त म्लान भाव से उन्होंने नीलिमा को लक्ष्य करके कहा—"मुझ पर महीपकुमारजी की विजय की बात बीच ही में कहा से उठ खडी हुई, मै कुछ समझा नही ! जीत और हार का तो कोई प्रश्न ही नही था !"

"था क्यों नही ! पर आप चूकि जान कर भी उसके सम्बन्ध में अनजान "

"नीलिमा !" श्रीमती खन्ना ने प्राय गरजकर कहा—"ठाकुर साहब से इस तरह बातें करते हुए तुम्हे क्या लज्जा नही मालूम होती ! आज तुम दोनों बहनों को हो क्या गया है ! बड़े अफ़सोस की बात है !"

उनका धिक्कार ऐसा वास्तविक था कि कुछ समय के लिए सब लोग सन्न रहे गये और सिर झुकाकर चुपचाप चाय पीने लगे।

चाय पी चुकने के बाद महीप ने चलने का विचार किया और श्रीमती खन्ना से शिष्टाचार के तौर पर आज्ञा मागी। श्रीमती खन्ना के गम्भीर मुख पर आन्तरिक प्रसन्नता का भाव झलक उठा। उन्होंने कहा—"जा रहे हो ? अच्छी बात है ! बड़ी खुशी हुई—तुमसे मिलकर।"

महीप को यह समझने म देर न लगी कि अन्तिम वाक्य का उत्तरार्द्ध श्रीमती खन्ना ने बाद में सोचने के बाद जोडा है। उसकी समझ में यह बात ठीक तरह से नही आ पा रही थी कि उसके चले जाने का प्रस्ताव

सुनकर भुवनेश्वरीजी इतनी प्रसन्न क्यो हो उठी—हालाकि उसके मन के एक छिपे हुए कोने में उनकी उस प्रसन्नता का कारण स्पष्ट परिस्फुट हो रहा था। कारण कुछ भी हो, उस वात से उसका मन अचानक बहुत ही खिन्न हो उठा। आरम्भ में भुवनेश्वरीजी जिस स्नेह-भाव से उससे मिली थी वह ठाकुर साहव के आने के कुछ ही समय बाद आक्रोश के रूप में वदल गया था, इस वात पर उसने गौर किया था। उस आक्रोश का कारण उसे स्पष्ट ही यह दिखाई दिया था कि पहले प्रतिमा ने और बाद में नीलिमा ने ठाकुर साहव को बुरी तरह वनाना शुरू किया था, जिसके लिए निश्चय ही श्रीमती खन्ना ने मन-ही-मन उसे (महीप को) दोषी ठहराया होगा। क्योकि यदि वह न होता तो कविता की चर्चा न चली होती और स्वभावत कवि-सम्मेलन में कवियो के मान-अपमान का प्रश्न न उठा होता। महीप जान गया था कि किसी कारण से ठाकुर साहव के प्रति श्रीमती खन्ना के मन में वहुत अधिक पक्षपात का भाव वर्तमान है। उस पक्षपात के असख्य कारण हो सकते थे, पर महीप के मन म रह-रहकर केवल एक विशेष कारण सामने आ रहा था, जो उसे किसी तरह भी प्रियकर नही मालूम हो रहा था। और अन्त में नीलिमा ने जो रहस्यमय वाक्य कहा था—"मैं ठाकुर साहव पर महीपजी की प्रत्यक्ष विजय की खुशी में पीती हूँ", वह महीप को सवसे अधिक भवर में डाल रहा था। उसी वात पर श्रीमती खन्ना ने नीलिमा को करारी डाट वताई थी, और वह सचमुच बहुत ही असन्तुष्ट हो उठी थी। इन सब वातों का भेद महीप की समझ में कुछ भी नही आ रहा था, केवल कुछ अस्पष्ट सन्देह उसके मन में उठ रहे थे। पर जो कुछ भी हो, श्रीमती खन्ना ने उसके चले जाने की वात पर जो इस तरह अकपट प्रसन्नता का भाव प्रकट किया वह रह-रहकर महीप के मन को पीडा पहुचाने लगा।

वह जब खिन्न भाव से चलने लगा तब अचानक ठाकुर साहव ने उसे टोकते हुए कहा—"मिस्टर वर्मा, जरा ठहरिए! मैं भी चल रहा हू।" यह कह कर वह उठ खडे हुए।

श्रीमती खन्ना भी खडी हो गई और दु खित होकर ठाकुर साहब से बोली —"आप अभी से कहा जा रहे है! महीप को जाने दीजिए। वह बहुत दिनो के बाद आया है, इसलिए लोगो से मिलने-जुलने की हडबड़ी में है, पर आपको क्या जल्दी पडी है। बैठिए।"

"जी नही, इस समय मुझे आज्ञा दीजिए। मुझे भी एक आवश्यक काम से जाना है।" यह कहकर ठाकुर साहब ने श्रीमती खन्ना की ओर हाथ जोडे, और उसके बाद एक बार नीलिमा की ओर और फिर प्रतिमा की ओर देखा।

"तो फिर कब आइएगा?"

"सम्भव हुआ तो आज शाम को ही आऊगा। पर शाम को आप लोग टैगोर टाउन में हूगी। तो फिर वही मिलूगा। अच्छा, नमस्कार।" यह कहकर ठाकुर साहब ने फिर एक बार श्रीमती खन्ना की ओर हाथ जोडे।

महीप दरवाज़े पर ठाकुर साहब का इन्तजार कर रहा था। ज्योही ठाकुर साहब ने उसके पास पहुंचकर कहा—"चलिए मिस्टर वर्मा!" त्योही नीलिमा कुर्सी पर से उठ कर प्राय दौडी हुई वहा चली आई। और महीप की ओर देख कर बोली—"आपने आज अपनी जो नयी कविता सुनाई है उसकी एक नकल मुझे चाहिए। आप कब तक दे सकेंगे?"

महीप क्षण भर के लिए कुछ अनमन-सा हो गया। उसके बाद म्लान भाव से बोला—"कह नही सकता, अवकाश मिला तो...."

"नही, नही, अवकाश की बात नही है, आपको अवश्य ही मुझे उसकी नकल देनी होगी—और जल्दी ही। मुझे उसकी विशेष आवश्यकता है!"

"अच्छी बात है, देखूगा।" यह कहकर बिना हाथ जोडे महीप बरामदे से नीचे उतरा। ठाकुर साहब भी उसके साथ हो लिये। 'कार' के पास पहुचकर बोले—"चलिए, आपको आपके मकान पर उतार दू।"

महीप ने रूखे भाव से कहा—"आप व्यर्थ का कष्ट क्यो करने जा रहे है! आप चलिए, मै कोई एक्का या तांगा कर लूगा।"

न होगी। पर मेरा परिचय खन्ना-परिवार से हो जाने के वाद धीरे-धीर उनके होश ठिकाने पर आने लगे। उन्हे मालूम हो गया कि नीलिमा को समझने में उन्होने वडी भारी भूल की है और वह धीरे-धीरे उससे अलग हो गये। उनकी यह गलती थी कि उन्होने नीलिमा के सम्वन्ध में जल्दी ही कोई राय कायम कर ली, और उसकी ऊपरी वातो से यह समझ लिया कि वह उन्हे चाहती है। असल मे नीलिमा के भेद-भरे स्वभाव के कारण वहुत से लोग भ्रम मे आ जाते है। जिन साहव का जिक्र मैंने अभी आपसे किया है उनसे भी पहले एक और साहव थे, जो समझते थे कि नीलिमा उन पर रीझी हुई है। मैंने सुना है कि वह भी उससे विवाह करने के फेर में थे। पर ऐन मौके पर नीलिमा ने उन्हे भी धता वता दिया।"

महीप ने मन-ही-मन कहा—"यह वात है!" वह अपने-आपको इस वात के लिए कोसने लगा कि वह नीलिमा के सम्वन्ध में कुछ दूसरी ही धारणा वनाये हुए था। ठाकुर साहव ने जो कुछ कहा था उसमें उसे वहुत-कुछ सचाई मालूम हुई। वरवस निकलती हुई लम्वी सास को दवाने की व्यर्थ चेष्टा करते हुए उसने कहा—"मुझे यह जानकर वडा हर्ष हुआ कि नीलिमा से आपका विवाह होने जा रहा है। कोई तिथि निश्चित हो चुकी है क्या ?"

"अभी कोई तिथि निश्चित नही हुई है। पर शीघ्र ही हो जायगी, ऐसी आशा है।"

"वडी प्रसन्नता की वात है।" इसके अतिरिक्त और कोई दूसरी वात महीप के मुह से निकल ही नहीं सकी, हालाकि उसके भीतर कहने-सुनने की वहुत-सी वातें भरी पडी थीं।

कुछ समय वाद 'कार' एक वगले के पास पहुची, जिसका फाटक लाल फूलों से रजित एक धनुषाकार वेल से सुशोभित था।

ठाकुर साहव ने कहा—"यही इस गरीव का वगला है। चलिए, आप

कम-से-कम आज के लिए मेरा अतिथि बनना स्वीकार करें।" महीप को एक बार इच्छा हुई कि मोटर से उतर पड़े और स्टेशन की ओर लौट चले; पर दूसरे ही क्षण न जाने क्या सोचकर उसने अपना विचार बदल दिया और बिना कुछ बोले अपनी सीट पर स्थिर अवस्था में बैठा रहा।

बंगले के भीतर प्रवेश करके ठाकुर साहब ने 'कार' को बरामदे के लगे खड़ा कर दिया। बरामदा चारों तरफ टाट के बड़े-बड़े पर्दों से ढका था। स्पष्ट ही गरम हवा से बचने के लिए यह प्रबन्ध किया गया था। एक वर्दी पहने हुए नौकर ने आकर 'कार' का दरवाजा खोल दिया। पहले महीप उतरा, उसके बाद ठाकुर साहब उतरे।

सीढ़ी पर पाँव रखते हुए ठाकुर साहब ने कहा—"चले आइए।"

नवां परिच्छेद

महीप उनके पीछे-पीछे चलने लगा। टाट का पर्दा हटाकर ठाकुर साहब ने भीतर प्रवेश किया। महीप ने उनका अनुसरण करते हुए ज्योंही भीतर पाँव रक्खा, त्योंही अपने को एक असाधारण और आश्चर्यजनक नारी-रूप के आमने-सामने पाकर वह ठिठककर खड़ा रह गया। वह नाना प्रकार के भ्रांतिपूर्ण विचारों में मग्न होकर, एकदम अनमने भाव से, मशीन-परिचालित पुतले की तरह, भीतर चला आया था, और उस विस्मयकर सजीव दृश्य के लिए कतई तैयार नहीं था। लड़की की अवस्था २० और २२ के बीच की जान पड़ती थी। उसके मुख पर किसी अज्ञात विषाद की एक क्षीण म्लान छाया भासित हो रही थी। पर आश्चर्य की बात यह थी कि उस म्लान छाया से उसके मुख का सौन्दर्य नष्ट होने के बजाय अधिक परिस्फुट हो रहा था।

ठाकुर साहब ने उसका परिचय देते हुए महीप से कहा—"यह मेरी बहन रूपा है।"

महीप ने कुछ न कहकर चुपचाप रूपा की ओर हाथ जोड़ दिये। रूपा ने भी मन्द-म्लान मुसकान से हाथ जोड़कर उसके अभिवादन का उत्तर दिया। पर ज्योंही ठाकुर साहब ने महीप का नाम लेकर उसका परिचय रूपा को दिया, त्योंही रूपा की म्लान मुसकान अस्वाभाविक विस्मय और साथ ही पुलकमय हर्ष में बदल गई। वह इस तरह महीप की ओर देखने लगी जैसे अत्यन्त अप्रत्याशित रूप से बहुत दिनों से आकांक्षित स्वप्न मूर्तिमान अवस्था में उसके सामने आ खड़ा हुआ हो। महीप के नाम और काम से परिचित होने पर रूपा ने दुबारा उसकी ओर हाथ जोड़े।

खस की टट्टी के दरवाजे के भीतर एक काफी बड़े प्रायान्धकार कमरे में तीनों ने प्रवेश किया। ठाकुर साहब पंखे के नीचे हरे रंग के रेशमी 'कुशनों' से युक्त एक आरामकुर्सी पर बैठ गये। उसके बाद उन्होंने महीप से भी पास ही किसी एक कुर्सी पर बैठने के लिए कहा। महीप जब बैठ गया तब ठाकुर साहब ने उससे पूछा—"आपके लिए कुछ लस्सी-वस्सी, शरबत-वरबत मंगाऊं ?"

"नेकी और बूझ-बूझ !" कहकर महीप ने एक झलक रूपा की ओर देखा। रूपा सामने एक कुर्सी के सहारे खड़ी थी।

ठाकुर साहब ने ज्योंही बिजली की घण्टी दबा कर एक आदमी को बुलाना चाहा, त्योंही रूपा क्षीण किन्तु अत्यन्त स्पष्ट, सुपरिस्फुट और मधुर स्वर में बोल उठी—"मैं जाकर ले आती हूँ।" और वह एक बार महीप की ओर रहस्यमयी दृष्टि से देखकर तेज पग रखती हुई भीतर चली गई।

महीप सामने बरामदे की ओर एक बड़ी खिड़की पर स्थापित 'एक्वेरियम' की ओर देखने लगा, जिसमें लाल रंग की छोटी-छोटी सुन्दर मछलियां तैर रही थीं। शीशे के उस 'एक्वेरियम' को एक ऐसा कृत्रिम प्राकृतिक रूप देने का प्रयास किया गया था जिससे मालूम होता था जैसे अफ्रीका के किसी घने जंगल के बीच में कोई तालाब हो।

ठाकुर साहब ने पास ही एक छोटे-से पेग-टेबिल से सिगरेट का एक टिन उठाकर महीप की ओर बढाते हुए कहा—"आप क्या साम्राज्यवादी है?"

इस अप्रत्याशित प्रश्न से महीप की अन्यमनस्कता भग हो गई। उसने आश्चर्य से पूछा—"यह प्रश्न आपके मन मे कैसे उठा?"

ठाकुर साहब बोले—"यो ही पूछ डाला। श्रीमती खन्ना के यहा आपने कहा था कि यदि दूसरे देशो में स्वतन्त्र भारत के उपनिवेश स्थापित हुए होते तो उन उपनिवेशो के लोग हिन्दी के कवियो की रचनाओ का वडा सम्मान करते। आपके शब्द ठीक यही नही थे, पर आपका आशय, जहा तक मै समझ पाया, यही था। इसका अर्थ मैने यही लगाया कि आप चाहते है कि जब भारत स्वतन्त्र हो जाय तब उसका भी ध्येय यूरोप के साम्राज्यवादी राष्ट्रो की तरह बन जाय। मै आपसे पूछना चाहता हूँ कि क्या मेरी यह धारणा—आपके सम्बन्ध मे—ठीक है?" यह कहकर एक विशेष अर्थ भरी दृष्टि से ठाकुर साहब महीप की ओर देखने लगे।

महीप उत्तर देने के पहले यह जानना चाहता था कि ठाकुर साहब क्यो यह प्रश्न कर रहे है। उसे किसी अज्ञात कारण से ऐसा लग रहा था कि उस प्रश्न के पीछे ठाकुर साहब के मन में निश्चय ही कोई गुप्त उद्देश्य छिपा हुआ है। पर उस 'गुप्त उद्देश्य' का कोई भी आभास क्षीणतम रूप से भी उसे नही मिला। उसने जान-बूझकर भ्रम पैदा करने वाला उत्तर देने का विचार कर लिया।

उसने कहा—"अगर मै कहूँ कि मै भारतीय साम्राज्यवाद के पक्ष में हूँ तो आप क्या उत्तर देगे, जरा मै जानना चाहता हूँ।"

उसका उत्तर देने का ढग कुछ रूढ था, यह बात स्वय उसे भी खटकी। वह अनुभव करने लगा कि उस रूढता के लिए उस समय कोई अवसर नही था और वह किसी अज्ञात कारण से उसके भीतर से बाहर फूट पड़ी थी।

ठाकुर साहब अत्यन्त दृढ तथापि शान्त भाव से बोले—"तो मैं उत्तर दूगा कि नीलिमा के विचारों से आपके विचारों में मूलगत अन्तर है।"

महीप जैसे सकपका गया। इस प्रकार की बात के बीच में नीलिमा आ कूदेगी, यह उसने नहीं सोचा था। वह समझ गया कि ठाकुर साहब के मन की गाठ अभी तक उसके आगे ठीक तरह से खुल नही पाई है। ठाकुर साहब का मनोभाव और अधिक स्पष्ट रूप से जानने का कौतूहल वह दमन नहीं कर पाता था। इसलिए अपने मन की असल बात छिपाता हुआ वह बोला—'नीलिमा के विचार इस सम्बन्ध मे क्या हैं, मुझे नही मालूम। पर मै जानना जरूर चाहूँगा।"

"नीलिमा का कहना है कि भारत स्वतन्त्र होने पर अगर यह बात भूल जाय कि किसी जमाने में वह भी गुलाम रहा है और गुलामी से उत्पन्न होने वाली असह्य अपमानना ए उसने सही है, और यह भूलने के बाद स्वय दूसरे दुर्बल राष्ट्रों को अपना आर्थिक या राजनीतिक दास बनाने की योजना में जुट जाय, तो इससे बढ कर ट्रेजेडी युद्ध के बाद विश्व के नये निर्माण के आदर्श के लिए दूसरी न होगी।"

महीप कुछ क्षण तक बडे ध्यान से, स्थिर दृष्टि मे, ठाकुर साहब की ओर देखता रह गया। सम्भवत वह ठाकुर साहब के मुख के भाव से यह जानने का प्रबल प्रयास करता रहा कि जो बात उन्होने नीलिमा की तरफ से कही है वह वास्तव मे नीलिमा ने कही है या स्वय उन्होने किसी विशेष उद्देश्य से अपने मन से गढ कर कही है? बात चाहे किसी की भी क्यो न हो, महीप को यह बहुत चुभती हुई जान पडी। वह सोचने लगा कि यदि सचमुच नीलिमा ने कभी इस तरह का विचार प्रकट किया हो तो उसे यह स्वीकार करना पडेगा कि इतने वर्षो से उससे परिचित होने पर भी वह वास्तव में अभी तक उसके भीतरी जीवन के विकास के सम्बन्ध मे कुछ भी नही जान पाया है। आज सुबह से ही नीलिमा की प्रत्येक बात और प्रत्येक व्यवहार उसे रहस्य से भरा मालूम हो रहा था और अन्त तक उसे यह मालूम न होने पाया कि वास्तव में उसके सम्बन्ध में वह क्या धारणा बनाए हुए है, और साहित्य और जीवन के विषय में उसके निश्चित विचार क्या

हैं। उसकी 'भूगर्भ की आग' शीर्षक कविता को लेकर उसने अपनी मा के आगे जो बातें कही थीं उनमें व्यग या परिहास किस हद तक था और वास्तविकता कहा तक थी, यह वह कुछ भी नही जान पाया था। साथ ही, रह-रहकर एक और बात सुबह से अब तक उसके मन मे चक्कर काट रही थी। ठाकुर साहब के प्रति उसका व्यवहार आरम्भ ही से महीप को भदभरा मालूम हो रहा था। सुबह जब वह बिस्तर पर से उठकर सीधे उसके पास आई थी तब उसे लेकर अपनी मा से तरह-तरह के व्यग और विनोद की बाते करने लगी थी, और अविरत रूप से, बिना किसी रुकावट के बोलती चली जाती थी। पर ज्योंही उसने बाहर ठाकुर साहब की 'कार' का 'हार्न' बजते सुना, त्योंही वह भीतर की ओर बेतहाशा भाग कर चली गई था। क्या इसका अर्थ यह नही लगाया जा सकता कि ठाकुर साहब के प्रति उसके मन मे एक विशेष प्रकार के सम्मान और सयम का भाव वर्तमान है और उसे (महीप को) वह केवल एक सेक्रेटरी समझती है? पर बाद मे किसी भी बात पर उसने ठाकुर साहब का पक्ष नही लिया, बल्कि समय-समय पर उनके प्रति व्यग की ही बौछारे की—भले ही वे व्यग कुछ सयत रूप से किये गये हो। इन सब उल्टी-सीधी बातो से वह नीलिमा के चरित्र के सम्बन्ध मे किसी प्रकार की भी निश्चित धारणा बनाने मे अपने को नितान्त असमर्थ मालूम कर रहा था। ठाकुर साहब ने जब स्वतन्त्र भारत की भावी नीति के सम्बन्ध मे नीलिमा के विचार का उल्लेख किया था तब जो बाते इतनी देर तक उसे अज्ञात रूप से प्रतिपल बेचैन कर रही थी वे पूरे वेग से उमड उठी।

पर ठाकुर साहब निश्चय ही नीलिमा को घनिष्ठतम रूप से जानते होंगे—उसने सोचा—नही तो गहनतम राजनीतिक विषयो पर इस प्रकार स्पष्ट रूप से अपने विचार वह उनके आगे सम्भवत प्रकट न करती। जिस युवती का स्वभाव नीलिमा की तरह विनोदप्रिय हो वह केवल उसी व्यक्ति के आगे अपने गहनतम विचारो को प्रकट कर सकती है जिसके साथ उसकी भीतरी प्रकृति का सम्बन्ध किसी-न-किसी हद तक स्थापित हो चुका हो।

"मुझे यह जान कर बडी प्रसन्नता हुई कि राजनीति के विषय पर नीलिमा के अपने कुछ निश्चित विश्वास है और उनसे आप परिचित हैं", महीप ने कहा।

ठाकुर साहब ने मुख पर बडी सादगी का भाव झलकाने की चेष्टा करते हुए कहा—"हा, नीलिमा की कोई बात मुझसे छिपी नहीं है।"

ठाकुर साहब का यह कथन महीप को और भी अधिक रहस्यमय लगा। पर इस विषय को आगे बढाना उसने पसन्द नहीं किया, और वह चुप रहा। एक नई सिगरेट उठाकर, जलाकर चुपचाप पीने लगा।

कुछ देर बाद रूपा भीतर से लौट आई और उसके पीछे एक नौकर एक 'ट्रे' में दो गिलास लस्सी लिये आ पहुँचा। महीप सिगरेट को 'ऐश-ट्रे' के ऊपर रखकर ठाकुर साहब की अनुमति से लस्सी उठाकर धीरे-धीरे पीने लगा। वह घूट-घूट करके लस्सी पीता जाता था और बीच-बीच में एक झलक रूपा की ओर भी देख लेता था। प्रत्येक बार रूपा के मुख की एक नई रेखा की ओर उसका ध्यान जाता था और प्रत्येक नई रेखा में उसके व्यक्तित्व की एक नई विशेषता व्यक्त होती हुई जान पडती थी। प्रथम दृष्टि में उसके मन पर यह प्रभाव पडा था कि रूपा एक सीधी-सादी और भोली-भाली लड़की है, और उसके मुख पर मुसकान के बावजूद जो एक म्लान छाया सब समय छाई हुई-सी जान पडती है, वह केवल उसके शरीर की क्षीणता या अस्वस्थता के कारण है। पर ज्यो-ज्यो वह उसके मुख की रेखाओ पर ध्यान देता गया, त्यों-त्यों उसकी धारणा बदलती चली गई। आरम्भ में रूपा की आखो में महीप ने जो एक निपट भोलेपन का आभास देखा था वह दूसरे ही क्षण में उसे भ्रामक मालूम हुआ—जब उसने देखा कि प्रत्येक बार पलक मारने के साथ ही रूपा की आखो का भाव भी जैसे एक नया रूप सामने लाता है और एक नयी विचित्रता को प्रकट करने लगता है। कभी उसकी आखो से एक तीव्र प्रकाश झलक उठता था, कभी उसकी असाधारण

बुद्धिमत्ता और मननशीलता का परिचय मिलता था। दूसरे ही क्षण वह तीव्रता एक म्लान, मौन और करुण छाया मे बदल जाती थी, जिससे उसकी प्रकृति की निपट सरलता क परिचय मिलता था, और तीसरे क्षण उसकी आखे जैसे किसी एक उत्कट प्रतिहिंसात्मक भावना से दहक उठती थी और ज्वलन्त अगार-कण बरसाने लगती थीं। पर पलक मारते ही तत्काल फिर उसी भोलेपन और म्लान मुसकान की अर्द्धस्फुट झलक उसके सारे मुख पर विकसित हो उठती थी—जैसे वही स्थायी भाव हो। पर महीप सोचने लगा कि 'अन्तरा' के रूप में जो सञ्चारी भाव बीच-बीच में बिजली की तरह उस स्थायी भाव की ज़मीन के ऊपर चमक उठते हैं वे कैसे विचित्र हैं और क़िस क़दर भ्रान्ति उत्पन्न करने वाले हैं!

वे लोग अभी लस्सी पी ही रहे थे कि एक लडकी, जिसकी आयु सोलह वर्ष के लगभग होगी, भीतर से आई और आते ही बोली—"भैया, खाना तैयार है।"

ठाकुर साहब ने पूछा—"तुम लोगो ने खा लिया होगा?"

"नही भैया, अभी नही खाया।"

"अच्छी बात है, तब सब साथ ही खायगे। चलिए साहब, खाना खा लिया जाय।" यह कहकर ठाकुर साहब उठ खडे हुए। महीप भी "चलिए," कहता हुआ अनमने भाव से उठ खडा हुआ। ठाकुर साहब उसे भीतर एक विशेष कमरे में ले गए, जहा एक बडी-सी गोल मेज के चारो ओर ऊँची कुर्सिया लगी हुई थीं। मेज़ के ऊपर एक सफेद, चिट्टा दस्तरखान बिछा था, जो शायद धुलने के बाद आज ही पहली बार बिछाया गया था।

"आइए, तशरीफ रखिए", कहकर ठाकुर साहब ने एक विशेष कुर्सी पर बैठने के लिए महीप को बुलाया। महीप के बैठने पर वे स्वयं भी उसी की बगल मे बैठ गये। रूपा चुपके-से उन लोगो के पीछे-पीछे चली आई थी। वह धीरे से महीप के सामने वाली कुर्सी के पास पहुँच गई।

ठाकुर साहब ने महीप से पूछा—"गोश्त से तो आपको कोई परहेज न होगा?"

"परहेज तो नही है, पर साधारणत मैं खाता नहीं हूँ।"

"ओह, तब तो आपके लिए 'विजिटेरियन' खाना मँगाना होगा। रूपा, जाओ, भीतर खबर दे दो।"

रूपा उठकर चली गई। ठाकुर साहब ने कहा—"बडी सख्त गरमी है।"

यह बात महीप की समझ में कुछ न आई कि ठाकुर साहब को अचानक गरमी की याद कैसे आ गई। जिस भीतरी कमरे में वे लोग बैठे थे, वहा गरम हवा के प्रवेश करने का रास्ता कही से भी नहीं था और बाहर के कमरो के चारो ओर खस की टट्टिया लगी थी, जिन पर सब समय छिडकाव होता रहता था। उनमे काफी ठण्डी हवा आ रही थी। बाहर की गरमी की कोई कल्पना उस कमरे मे बैठकर नहीं हो सकती थी। पर वह इस बात पर गौर कर रहा था कि कुछ समय से ठाकुर साहब अनमने-से होते चले जा रहे है। उस अन्यमनस्कता की हालत मे महीप से किसी गम्भीर विषय पर बातें करने की प्रवृत्ति उनमें नही रह गई थी, इसीलिए उन्होने गरमी की चर्चा चलाई।

महीप ने उदासीनता के साथ कहा—"जी हा।" और वह ठाकुर साहब के चिन्तित मुख की बदलती हुई रेखाओ का अध्ययन करने लगा। दिन के समय में भी उस कमरे में काफी अधेरा छाया था—गरमी के कारण जान-बूझकर वहा अधेरा कर दिया गया था। जो क्षीण प्रकाश वर्तमान था उसमें किसी के मुख की रेखाओ का अध्ययन नही हो सकता था। पर महीप उस असम्भव चेष्टा में रत था। अचानक उस सुनसान, प्रायान्धकार कमरे में ठाकुर साहब के साथ अकेले बैठे हुए उसका जी बिना किसी प्रकट कारण के घबरा उठा। एक अत्यन्त अस्पष्ट, अस्फुट अन्यसस्कार उसके मन को अज्ञात ही रूप से जैसे यह चेतावनी देने लगा—"तुम्हारा युग-युगान्तर का बैरी तुम्हारी बगल में बैठा है, और वह किसी भी समय तुमसे भयकर रूप से बदला लेने की घात में है। कब,

किस समय, किस रूप में वह तुम्हारा अनिष्ट कर डाले इसका ठिकाना नही!" वह अपने अनजान मे ठाकुर साहब की तरफ से कुछ हटकर बैठ गया, हालाकि ऐसा करने पर उसे मन-ही-मन अपने मन की मूर्खता पर हँसी आई।

कुछ देर बाद रूपा भीतर चली आई। उसके पीछे वह छोटी लडकी भी चली आई जिसे ठाकुर साहब ने हेमा कहा था। और हेमा के पीछे एक महिला को आते हुए महीप ने देखा। तीनो मेज से लगी हुई तीन कुर्सियो पर बैठ गई। नई आई हुई महिला लम्बे कद की और दुबली-पतली थी। उनके मुख का रग इस प्रकार सफेद था कि मालूम होता था जैसे उन्होने उस प्रायान्धकार कमरे मे उजाला कर दिया हो। पर उस सफेदी के ऊपर रक्त का एक कण भी कहीं झलकता हुआ नजर नही आता था। उनके गाल बेहद पिचके हुए थे, और गालो के दोनो ओर की हड्डिया उभरी हुई थी। हड्डियो के ढाचे के भीतर से दो चमकती हुई आखे किसी जमाने में अवश्य बहुत सुन्दर रही होगी, पर इस समय उनसे भय मालूम हो रहा था। ऐसा जान पडता था जैसे उन नवागत महिला के मुख का सारा रक्त शिकञ्जे ने कसकर निचोड लिया गया हो। पर उनकी सज-धज और बनाव-शृगार मे कोई कमी नही थी। उनकी अवस्था प्रथम दृष्टि से ३०—३५ के करीब मालूम होती थी, पर कुछ देर तक गौर से देखने के बाद ऐसा विश्वास होने लगता था कि २५ वर्ष से अधिक उन्हे नही हुए होगे। महीप के लिए यह अनुमान लगाना बहुत कठिन था कि वह महिला ठाकुर साहब की कौन हो सकती है।

दो नौकर दोनो हाथो मे थालिया लेकर आये। उनके पीछे एक नौकर एक और थाली लेकर आया, जिसमे महीप के लिए निरामिष भोजन परोसा हुआ था। महीप को इस बात पर आश्चर्य हुआ कि ठाकुर साहब के यहा के फर्निचर, कमरे की सजावट आदि बहुत-सी बातो में विलायती ठाठ रहते हुए भी खाना थालियों और कटोरो मे परोसा गया—प्लेटो में नही।

ठाकुर साहब कुछ देर तक अन्यमनस्क रहे, और अनमने भाव से ही

ठाकुर साहब ने महीप से पूछा—"गोश्त से तो आपको कोई परहेज न होगा?"

"परहेज तो नही है, पर साधारणत मै खाता नहीं हूँ।"

"ओह, तब तो आपके लिए 'विजिटेरियन' खाना मँगाना होगा। रूपा, जाओ, भीतर खबर दे दो।"

रूपा उठकर चली गई। ठाकुर साहब ने कहा—"बडी सख्त गरमी है!"

यह बात महीप की समझ में कुछ न आई कि ठाकुर साहब को अचानक गरमी की याद कैसे आ गई। जिस भीतरी कमरे में वे लोग बैठे थे, वहा गरम हवा के प्रवेश करने का रास्ता कही से भी नही था और बाहर के कमरो के चारो ओर खस की टट्टिया लगी थी, जिन पर सब समय छिडकाव होता रहता था। उनमे काफी ठण्डी हवा आ रही थी। बाहर की गरमी की कोई कल्पना उस कमरे मे बैठकर नही हो सकती थी। पर वह इस बात पर गौर कर रहा था कि कुछ समय से ठाकुर साहब अनमने-से होते चले जा रहे है। उस अन्यमनस्कता की हालत मे महीप ने किसी गम्भीर विषय पर बातें करने की प्रवृत्ति उनमें नही रह गई थी, इसीलिए उन्होने गरमी की चर्चा चलाई।

महीप ने उदासीनता के साथ कहा—"जी हा।" और वह ठाकुर साहब के चिन्तित मुख की बदलती हुई रेखाओ का अध्ययन करने लगा। दिन के समय में भी उस कमरे में काफी अंधेरा छाया था—गरमी के कारण जान-बूझकर वहा अंधेरा कर दिया गया था। जो क्षीण प्रकाश वर्तमान था उसमें किसी के मुख की रेखाओ का अध्ययन नही हो सकता था। पर महीप उस असम्भव चेष्टा में रत था। अचानक उस सुनसान, प्रायान्धकार कमरे में ठाकुर साहब के साथ अकेले बैठे हुए उसका जी बिना किसी प्रकट कारण के घबरा उठा। एक अत्यन्त अस्पष्ट, अस्फुट अन्धसंस्कार उसके मन को अज्ञात ही रूप से जैसे यह चेतावनी देने लगा—"तुम्हारा युग-युगान्तर का वैरी तुम्हारी बगल में बैठा है, और वह किसी भी समय तुमसे भयकर रूप से बदला लेने की घात में है। कब,

किस समय, किस रूप में वह तुम्हारा अनिष्ट कर डाले इसका ठिकाना नही!" वह अपने अनजान में ठाकुर साहब की तरफ से कुछ हटकर बैठ गया, हालांकि ऐसा करने पर उसे मन-ही-मन अपने मन की मूर्खता पर हँसी आई।

कुछ देर बाद रूपा भीतर चली आई। उसके पीछे वह छोटी लडकी भी चली आई जिसे ठाकुर साहब ने हेमा कहा था। और हेमा के पीछे एक महिला को आते हुए महीप ने देखा। तीनो मेज से लगी हुई तीन कुर्सियो पर बैठ गई। नई आई हुई महिला लम्बे कद की और दुबली-पतली थी। उनके मुख का रग इस प्रकार सफेद था कि मालूम होता था जैसे उन्होंने उस प्रायान्धकार कमरे मे उजाला कर दिया हो। पर उस सफेदी के ऊपर रक्त का एक कण भी कहीं झलकता हुआ नजर नही आता था। उनके गाल बेहद पिचके हुए थे, और गालों के दोनो ओर की हड्डिया उभरी हुई थी। हड्डियो के ढाचे के भीतर से दो चमकती हुई आखे किसी जमाने मे अवश्य बहुत सुन्दर रही होगी, पर इस समय उनमे भय मालूम हो रहा था। ऐसा जान पडता था जैसे उन नवागत महिला के मुख का सारा रक्त निचोड़ने मे कसकर निचोड़ लिया गया हो। पर उनकी सज-धज और बनाव-शृगार मे कोई कमी नही थी। उनकी अवस्था प्रथम दृष्टि में ३०–३५ के करीब मालूम होती थी, पर कुछ देर तक गौर से देखने के बाद ऐसा विश्वास होने लगता था कि २५ वर्ष से अधिक उन्हे नहीं हुए होंगे। महीप के लिए यह अनुमान लगाना बहुत कठिन था कि वह महिला ठाकुर साहब की कौन हो सकती है।

दो नौकर दोनो हाथो मे थालिया लेकर आये। उनके पीछे एक नौकर एक और थाली लेकर आया, जिसमे महीप के लिए निरामिष भोजन परोसा हुआ था। महीप को इस बात पर आश्चर्य हुआ कि ठाकुर साहब के यहा के फर्निचर, कमरे की सजावट आदि बहुत-सी बातो मे विलायती ठाठ रहते हुए भी खाना थालियो और कटोरो मे परोसा गया—प्लेटो मे नही।

ठाकुर साहब कुछ देर तक अन्यमनस्क रहे, और अनमने भाव से ही

ठाकुर साहब ने महीप से पूछा—"गोश्त से तो आपको कोई परहेज न होगा?"

"परहेज तो नही है, पर साधारणतः मैं खाता नहीं हूँ।"

"ओह, तब तो आपके लिए 'विजिटेरियन' खाना मँगाना होगा। रूपा, जाओ, भीतर खबर दे दो।"

रूपा उठकर चली गई। ठाकुर साहब ने कहा—"बडी सख्त गरमी है।"

यह बात महीप की समझ में कुछ न आई कि ठाकुर साहब को अचानक गरमी की याद कैसे आ गई। जिस भीतरी कमरे में वे लोग बैठे थे, वहा गरम हवा के प्रवेश करने का रास्ता कहीं से भी नही था और बाहर के कमरो के चारों ओर खस की टट्टिया लगी थी, जिन पर सब समय छिड़काव होता रहता था। उनसे काफी ठण्डी हवा आ रही थी। बाहर की गरमी की कोई कल्पना उस कमरे में बैठकर नहीं हो सकती थी। पर वह इस बात पर गौर कर रहा था कि कुछ समय से ठाकुर साहब अनमने-से होते चले जा रहे हैं। उस अन्यमनस्कता की हालत में महीप से किसी गम्भीर विषय पर बातें करने की प्रवृत्ति उनमें नहीं रह गई थी, इसीलिए उन्होंने गरमी की चर्चा चलाई।

महीप ने उदासीनता के साथ कहा—"जी हां।" और वह ठाकुर साहब के चिन्तित मुख की बदलती हुई रेखाओं का अध्ययन करने लगा। दिन के समय मे भी उस कमरे में काफी अंधेरा छाया था—गरमी के कारण जान-बूझकर वहा अंधेरा कर दिया गया था। जो क्षीण प्रकाश वर्तमान था उसमें किसी के मुख की रेखाओं का अध्ययन नहीं हो सकता था। पर महीप उस असम्भव चेष्टा में रत था। अचानक उस सुनसान, प्रायान्धकार कमरे में ठाकुर साहब के साथ अकेले बैठे हुए उसका जी बिना किसी प्रकट कारण के घबरा उठा। एक अत्यन्त अस्पष्ट, अस्फुट अन्धसंस्कार उसके मन को अज्ञात ही रूप से जैसे यह चेतावनी देने लगा—"तुम्हारा युग-युगान्तर का वैरी तुम्हारी बगल में बैठा है, और वह किसी भी समय तुमसे भयंकर रूप से बदला लेने की घात में है। कब,

किस समय, किस रूप में वह तुम्हारा अनिष्ट कर डाले इसका ठिकाना नहीं!" वह अपने अनजान में ठाकुर साहब की तरफ से कुछ हटकर बैठ गया, हालांकि ऐसा करने पर उसे मन-ही-मन अपने मन की मूर्खता पर हँसी आई।

कुछ देर बाद रूपा भीतर चली आई। उसके पीछे वह छोटी लड़की भी चली आई जिसे ठाकुर साहब ने हेमा कहा था। और हेमा के पीछे एक महिला को आते हुए महीप ने देखा। तीनो मेज़ से लगी हुई तीन कुर्सियो पर बैठ गई। नई आई हुई महिला लम्बे कद की और दुबली-पतली थी। उनके मुख का रंग इस प्रकार सफेद था कि मालूम होता था जैसे उन्होने उस प्रायान्धकार कमरे में उजाला कर दिया हो। पर उस सफेदी के ऊपर रक्त का एक कण भी नहीं झलकता हुआ नज़र नही आता था। उनके गाल बेहद पिचके हुए थे, और गालों के दोनो ओर की हड्डिया उभरी हुई थी। हड्डियो के ढाचे के भीतर से दो चमकती हुई आखे किसी ज़माने मे अवश्य बहुत सुन्दर रही होगी, पर इस समय उनसे भय मालूम हो रहा था। ऐसा जान पड़ता था जैसे उन नवागत महिला के मुख का सारा सत्त्व शिकन्जे से कसकर निचोड़ लिया गया हो। पर उनकी सज-धज और बनाव-शृंगार मे कोई कमी नहीं थी। उनकी अवस्था प्रथम दृष्टि में ३०–२५ के करीब मालूम होती थी, पर कुछ देर तक गौर से देखने के बाद ऐसा विश्वास होने लगता था कि २५ वर्ष से अधिक उन्हें नहीं हुए होंगे। महीप के लिए यह अनुमान लगाना बहुत कठिन था कि वह महिला ठाकुर साहब की कौन हो सकती है।

दो नौकर दोनो हाथो में थालिया लेकर आये। उनके पीछे एक नौकर एक और थाली लेकर आया, जिसमे महीप के लिए निरामिष भोजन परोसा हुआ था। महीप को इस बात पर आश्चर्य हुआ कि ठाकुर साहब के यहा के फर्निचर, कमरे की सजावट आदि बहुत-सी बातो में विलायती ठाठ रहते हुए भी खाना थालियो और कटोरो में परोसा गया—प्लेटो मे नही।

ठाकुर साहब कुछ देर तक अन्यमनस्क रहे, और अनमने भाव से ही

'मार्मिकता' और 'भीतरी दृष्टि के तीखेपन' की बात सुनी तब वह चौकन्ना हुआ। बडे गौर से शारदा देवी की ओर देखते हुए उसने पूछा—"मेरे सम्बन्ध में क्या धारणा आपके मन में जमी हुई थी, क्या मै जान सकता हू?"

"मेरा ऐसा खयाल था कि आप उम्र में काफी सयाने होंगे, पर आप तो बहुत छोटे मालूम होते है।" यह कहते हुए शारदा देवी के मुख पर एक स्निग्ध विनोद-भरी मुसकान झलक उठी। "माफ कीजिएगा, आप तो अभी बच्चे ही मालूम होते है," उन्होने फिर कहा।

महीप अपने मुख के बचकाने भाव से परिचित था, और वह भाव उसे अपने जीवन की प्रगति में एक बहुत बडी रुकावट मालूम होता था, इसलिए वह कुछ सकुचित हो उठा। ठाकुर साहब—"यह बालक छोटा मत जानो, छलिया देश दुनी को।" यह कहकर एक बार फिर विचित्र ढग से अट्टहास कर उठे।

शारदा देवी ने इस बार ठाकुर साहब की ओर देखा तक नही। सहज स्निग्ध भाव से महीप की ओर देखती हुई बोली—"कुछ भी हो, आपसे मिलकर आज मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई।"

दसवां परिच्छेद

रूपा कभी एक करुण मुसकान से ठाकुर साहब की ओर देखती थी, कभी कौतूहल से शारदा देवी की ओर, और कभी स्निग्ध भाव से महीप की ओर। पर बीच-बीच में वह एक चकित हरिणी की-सी अत्यन्त उत्सुक दृष्टि से दरवाजे की ओर देखती जाती थी। वह भोजन कर रही थी, पर जैसे उसका चित्त न उपस्थित समाज की बातो में कोई खास दिलचस्पी ले रहा था, न भोजन के प्रति ही कोई विशेष अनुराग उसके मुख के भाव से प्रकट होता था। किसी कारण से वह भीतर ही भीतर अत्यन्त अशान्त मालूम होती थी, और जब कोई नौकर कोई चीज लेकर आता था तब उसके कान खडे हो जाते थे और वह अत्यन्त उत्सुकता से उसकी ओर देखने लगती थी।

जव व लोग खाना प्रायः खा चुके थे, तव एक नौकर हड़वड़ाता हुआ-सा भीतर आया और आते ही एक झलक रूपा की ओर देखकर ठाकुर साहव से वोला—"धीराजसिंह आये हैं।"

पल भर के लिए ठाकुर साहव का चेहरा स्याह हो गया और उसी क्षण उन्होंने एक विचित्र दृष्टि से रूपा की ओर देखा। रूपा के मुख पर भय, भ्रान्ति और साथ ही एक अभूतपूर्व प्रसन्नता व्यक्त हो उठी थी। पर ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह के चेहरे से एक निराली वेचैनी प्रकट हो रही थी। उन्होंने जैसे बडे कष्ट से उस वेचैनी के भाव को झाडने का प्रयत्न किया और अपनी आवाज में स्वाभाविकता लाने की पूरी चेष्टा करते हुए वोले—"उन्हे यहीं वुला लाओ।"

महीप कुछ समझ ही नही पा रहा था कि ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह अचानक इस कदर गम्भीर क्यो हो उठे। निश्चय ही धीराजसिंह नामधारी नवागत व्यक्ति से उस अनोखी गम्भीरता का सम्वन्ध था, इतना वह समझ गया। पर इस कदर वेचैनी और घवराहट किसी व्यक्ति के आने की सूचना पाकर ठाकुर साहव के समान 'धीर' पुरुष को हो, यह उसे वड़े कौतूहल की वात लगी। साथ ही वह रूपा की वेचैनी का भी अनुभव कर रहा था।

इतने में एक सूटधारी, अत्यन्त रूपवान् युवक ने मुख पर अत्यन्त स्निग्ध और सरस मुसकान झलकाते हुए भीतर प्रवेश किया और प्रवेश करते ही उपस्थित मडली की ओर उसने हाथ जोड़े।

ठाकुर साहव ने अत्यन्त गम्भीर-भाव से किन्तु कोमल स्वर मे धीरे से कहा—"आओ, वैठो। किस गाड़ी से आये?"

नवागत व्यक्ति ने कहा—"मै तो तडके ही लखनऊ वाली गाडी से आ गया था। कुवर रणवीरसिंह भी मेरे साथ थे। वह जवरदस्ती मुझे अपने वंगले में लिवा ले गए।"

नये आये हुए व्यक्ति के मुख के भाव से और वोलने के ढंग से मालूम होता

के साथ भीतर की ओर देखने लगीं। हेमा भी कुतूहली दृष्टि से उसी ओर देखने लगी। महीप को सारा चक्र एक अनोखे रहस्य से पूर्ण मालूम हो रहा था। वह अज्ञात रहस्य उसे ठाकुर साहव के वगले के वातावरण में ऐसे सघन और साथ ही तीव्र रूप में छाया हुआ जान पडा कि उसे लगता था जैसे वह रहस्यमयता धीरे-धीरे अपने अदृश्य पजे से उसके हृदय को भी अज्ञात रूप से जकडने जा रही है—हालाकि प्रत्यक्ष रूप से वह जानता था कि उस बगले के भीतर के किसी भी रहस्य से उसका कोई भी सम्बन्ध नही हो सकता। रह-रह कर शारदा देवीकी तरह ही वह भी एक निराली बेचैनी का अनुभव करने लगा—हालाकि शारदा देवी की वेचैनी और उसकी वेचैनी में ज़मीन-आसमान का अन्तर था। शारदा देवी का ठाकुर साहव को 'तुम' कहकर सम्वोधित करना भी उसे कुछ कम रहस्यमय नहीं मालूम हुआ था। एक वेतनभोगी शिक्षयित्री उस व्यक्ति से इस क़दर घनिष्ठता से वातें करे जिसने उसे नियुक्त किया हो, यह वास्तव में कोई सहज-सावारण-सी वात नही थी।

कुछ ही देर वाद ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिह अत्यन्त गम्भीर मुख-मुद्रा वनाये हुए और तेज़ क़दम रखते हुए ड्राइग-रूम में वापस चले आये। उनके पीछे-पीछे रूपा भी चली आई। उसके मुख पर अत्यन्त म्लान और करुण छाया सघन रूप में घिर आई थी, और वह प्राय रोनी-सी सूरत वनाये हुए थी। रूपा के पीछे धीराज भी धीर पग रखता हुआ चला आ रहा था। उसके मुख के भाव से जान पडता था जैसे वह किसी कारण से अत्यन्त असन्तोष और आक्रोशपूर्ण भावना को निपट विवशता के कारण अपने भीतर-ही-भीतर घोल रहा है। कुछ ही समय पहले जिस मुक्त, प्रसन्न और पुलकित भाव का आभास महीप ने उसके मुख पर झलकता हुआ देखा था, उसका लेश भी इस समय उसके चेहरे पर शेष नहीं था। महीप की भ्राति अधिकाधिक वढती चली जा रही थी।

जव ठाकुर साहव, रूपा और धीराज तीनो अलग-अलग कुर्सियों पर वैठ गये तव कुछ समय तक के लिए सारे कमरे में प्राय दम घोंटने वाला सन्नाटा छाया

रहा। एक अज्ञात और अवर्णनीय विरसता की अनुभूति से सारा वातावरण भयकर रूप से भाराक्रान्त हो उठा। महीप चौकन्ना होकर बैठा हुआ था।

पहले-पहल ठाकुर साहब ने इस विरस मौन को भग करते हुए महीप को लक्ष्य करके कहा—"आप क्या दिन में आराम करने के आदी नही है? अगर आप आराम करना चाहें तो एक ठण्डे कमरे में इसका प्रबन्ध किया जा सकता है।" और कोई समय होता तो महीप इस बात को ठाकुर साहब की शिष्टता और सम्भवतः सदाशयता भी समझता, और शिष्टता के साथ ही उनकी बात को टाल जाता। पर इस समय उसकी अन्तरेन्द्रिय इस कदर सचेत और चौकन्नी हो उठी थी कि असलियत को समझने में उसे देर न लगी। वह समझ गया कि ठाकुर साहब किसी विशेष कारण से इस समय उस मण्डली से उसे टरकाना चाहते है। वह तत्काल बोल उठा—"यदि आप ऐसा प्रबन्ध कर दें तो बड़ी कृपा हो। मै सचमुच सुस्ती-सी मालूम कर रहा हू और कुछ समय के लिये लेट जाना चाहता हूं।" और उसने झूठ बात नही कही थी। रात मे वेटिंग-रूम में उसे नींद नही आई थी और आज के दिन का सारा 'एडवेंचर' उसके तन को और मन को आराम पहुंचाने वाला किसी भी हालत में नहीं था।

ठाकुर साहब ने तत्काल मगरू को पुकारा और उसके आने पर उसे एक विशेष कमरे में महीप के लेटने का प्रबन्ध करने के लिए कह दिया। महीप उसके साथ गया। कमरा वास्तव में ठण्डा था और खस की टट्टी और नीले पर्दों के कारण वहा रात का-सा अंधेरा छाया हुआ था। बिजली के प्रकाश में महीप एक पलग पर लेट गया। मंगरू बत्ती बुझा कर चला गया।

ग्यारहवां परिच्छेद

ठाकुर साहब जब महीप को अपनी 'कार' में बिठा कर चले गये तब श्रीमती सम्रा ने अपनी लड़कियो को बुरी तरह डाटना शुरू कर दिया। वह खीज-भरे स्वर में कहने लगी—"तुम दोनों दिन-पर-दिन इस क़दर बेहया होती चली जा

रही हो, इस बात का पता मुझे नहीं था। तुम लोगों की ऊल-जलूल बातों से ठाकुर साहब जिस तरह अपमानित होकर गये है उससे मुझे बहुत भय है कि अब वह फिर कभी हमारे यहा आना पसन्द नही करेंगे, और ."

प्रतिमा बीच ही में बोल उठी—"पर तुम ठाकुर साहब के लिए इस कदर चिन्तित क्यो हो, मा ? यदि वह न आना चाहे तो हम लोगो के लिए इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है ?"

"चुप करो ! दुष्ट लडकी कही की !" तमक कर श्रीमती खन्ना ने कहा—"तुम अपने बेहयापन से बाज नही आओगी ! तुम्हारी ही वजह से तो यह सब काण्ड हुआ। बडी आई हिन्दी के कवियो की तरफ से लेक्चर बघारने वाली ! तुम्हें क्या पडी थी कवि-सम्मेलन की चर्चा छेडने की ? उस अपने ही जैसे आवारा लडके—महीप—की तरफदारी कर के तुम दोनो बहनों ने बेचारे ठाकुर साहब को लज्जित और अपमानित करके आखिर क्या पाया ? कितनी कोशिशो के बाद मैं उन्हें इस बात के लिए राजी कर पाई थी कि वह अपने को हमारे परिवार का ही एक आदमी समझें। यह देखकर मुझे प्रसन्नता होने लगी थी कि नीलिमा और वह दोनो एक दूसर से हिलने लगे है। पर आज तुमने सब चौपट कर दिया ! सारा बना-बनाया . अब वह यहा कभी आना पसन्द नहीं करेंगे, देख लेना !"

प्रतिमा अभी तक अपनी मा के क्रोध को परिहास के रूप में ले रही थी, पर जब श्रीमती खन्ना अचानक खुल पडीं और अपने मन की जिस बात को वह इतने दिनो तक लडकियो के आगे छिपाने की चेष्टा करती आई थीं वह क्रोध के उबाल के साथ बरबस उनके मुह से स्पष्ट इगित के रूप में बाहर निकल पडी, तब प्रतिमा के मुख पर से परिहास की छाया सहसा विलीन हो गई और उसका गोरा मुख आग की तरह लाल हो आया। नीलिमा स्तब्ध भाव से खडी थी और भ्रान्ति के साथ एक बार अपनी मा की ओर देखती थी, एक बार प्रतिमा की ओर।

प्रतिमा ने कटु व्यग के साथ कहा—"तुम चिन्ता न करो, मा! तुम्हारे ठाकुर साहब ऐसे बेशर्म है कि अपमानित होने के कारण वह हमारे यहा फिर

आन के लिए और अधिक उत्सुक हो उठेंगे। पर मैं यह जानना चाहती हूं कि उनके लिए तुम क्यों इस कदर परेशान हो ? और दीदी का उनसे हिलना देख कर तुम्हें प्रसन्नता क्यों होने लगी थी, इस बात को भी तुम्हे मेरे और दीदी के आगे स्पष्ट रूप से खोल देना चाहिए।" यह कहकर उसने एक बार इंगित से नीलिमा की ओर देखा। पर नीलिमा एक शब्द भी न बोली।

प्रतिमा की बात के ढंग से श्रीमती खन्ना फिर एक बार झुझला उठी। बोली—"जा! जा! बडी आई जज बनके! तुम क्या मेरा इजहार लेना चाहती हो ? तुम्हारे समान दुष्ट और मूर्ख लडकी को क्यों मैं कोई बात बताऊ! किसी शुभ कार्य में विघ्न डालने के सिवा तुम्हारा और भी कोई काम कभी रहा है ? मैंने कभी नही सोचा था कि मेरी कोख से ऐसी नालायक लड़की जन्म लेगी। मैंने अपनी तरफ से कभी कोई बात उठा नही रक्खी कि मेरी लड़किया अच्छी-से-अच्छी शिक्षा पावें, शिष्ट और सभ्य समाज के बीच मे रहकर सौजन्यपूर्ण व्यवहार सीखें, भले घरो में व्याही जाकर सुख से अपने दिन बितावें और मुझे भी शान्ति से रहने दें। मै अब समझ रही हूं कि मैंने बडी भारी गलती की जो तुम लोगो को पढाया लिखाया। । मुझे क्या पता था कि मेरी लडकिया इस कदर मनचली निकलेंगी, और मेरी किसी भी बात का कोई मूल्य न समझ कर हर बात में मुझसे जवाब तलब करने लगेंगी। तुम्हारे पिता जी तुम लोगो से मुक्त होकर चल बसे, पर मैं अभी तक दिन-रात तुम लोगो की अपमानजनक बातें सुनने के लिए जीती हूं।"

उनकी दोनो आखों के कोने आसुओ के छोटे कणो मे चमक उठे। किस बात से क्या बात आ पडी। नीलिमा घबरा उठी और अपनी मा के लिए उसके हृदय में दया और स्नेह की भावनाए पूरे वेग से उमड उठीं। उसने आगे बढ कर मा का हाथ धीरे मे पकड लिया और अत्यन्त स्निग्ध स्वर में कहा—"मा, तुम ऐसा क्यो कहती हो! कौन तुमसे अपमानजनक बातें कहता है ? प्रतिमा जरूर कुछ धृष्ट स्वभाव की है, पर वह भी कभी तुम्हें अपमानित करना नहीं चाहेगी।

उसकी लडकपन की बातों को तुम क्यों इस तरह महत्त्व देती हो ? उसे बकने दिया करो और उसकी बातों पर हँस दिया करो।"

नीलिमा की बात से श्रीमती खन्ना का जी कुछ शान्त हुआ। उन्होंने स्नेह से गद्गद होकर कहा—"तुम्ही बताओ बेटी, मैंने क्या कोई अनुचित बात कही थी ? ठाकुर साहब अगर अपने को अपमानित समझकर हम लोगों के यहा आना छोड दें तो तुम्हें क्या अच्छा लगेगा ? ठाकुर साहब जैसे सज्जन और शान्त स्वभाव आदमी को बेशर्म बताती है ! और स्वय कैसी बेहया है, इस पर विचार नहीं करती। तुम देख लेना नीलिमा, अगर इस लडकी ने एक दिन हमारे कुल की नाक न कटाई तो ! तुम्हीं बताओ, ठाकुर साहब में क्या दोष है ? वह एक बडे घराने के जमींदार है, कई लाख रुपये की उनकी आय है, सभ्य समाज में उनकी प्रतिष्ठा है, सरकारी हलको में उनका जितना सम्मान है, काग्रेसियों के बीच में भी उनकी वैसी ही इज्जत है। स्वभाव के बड ही सज्जन है। देखने-सुनने में "

प्रतिमा के मुख पर एक व्यग-पूर्ण तीखी मुसकान झलकते देख कर श्रीमती खन्ना का उत्साह कुछ ठण्डा पडने लगा। फिर भी उन्होंने साहस करके नीलिमा से कहा—"तुम्ही बताओ नीलिमा, अगर कोई मा ऐसे व्यक्ति को अपना जमाई बनाने की इच्छा करे तो वह कौन बडा अपराध करती है ?"

प्रतिमा रह न सकी और खिलखिलाकर हँसती हुई ताली पीटने लगी। उसके बाद बोली—"अब तुमने ढग की बात कही है मा ! मै तुम्हारे मुह से यही बात स्वीकार कराना चाहती थी। अब बताओ दीदी, इस विषय में तुम्हारी क्या राय है ? तुम्हें भी निश्चय ही ऐसा सर्वगुण-सम्पन्न वर पसन्द होगा !"

मा के स्पष्ट इगित से नीलिमा पहले ही सकुचाकर सिमट-सी गई थी। और कोई समय होता तो वह निश्चय ही स्पष्ट शब्दों में मा के आगे इस सम्बन्ध में अपना निश्चित मत प्रकट कर देती, पर इस समय मा का जो दयनीय रूप उसके सामने आया, उसे देखते हुए उसे उनकी बहुत दिनो से पोसी हुई आशा को निराशा में परिणत करने का साहस नहीं होता था। पर मुहफट प्रतिमा की बातों

के ढग से वह मन-ही-मन वहुत खीझ उठी थी। उसने झिडककर कहा—"तुम अपनी ऊल-जलूल वातों से वाज नहीं आओगी? सचमुच दिन-पर-दिन तुम्हारी निर्लज्जता और ढिठाई वढती चली जा रही है, मा का कहना ठीक ही है। चलो मा, भीतर चलें। इसकी वातो के फेर में तुम न पडो।" यह कहकर वह मा का हाथ पकड़ कर उन्हे प्राय: वरवस भीतर ले गई।

प्रतिमा कुछ देर तक स्तब्ध खडी रही। उसे पूरी आशा थी कि नीलिमा स्पष्ट और जोरदार शब्दो में मा की मनोवृत्ति का विरो रेगी। ठाकुर साहव को 'जमाई' वनाने का जो इगित उसकी मा ने किया था वह नीलिमा को कभी पसन्द नही आ सकता, ऐसा उसका विश्वास था। पर जव उसने देखा कि मा की एक भी वात का विरोध नीलिमा ने नही किया, वल्कि एक प्रकार से उन्ही का पक्ष लेकर वह उनके साथ भीतर चली गई, तव वह नीलिमा के मनोभाव को ठीक से कुछ समझ न पाई। तरह-तरह के अनुमान उसके मन में दौड़ने लगे। पर कोई भी निश्चित धारणा उसके मन में जम न पाई। क्या किसी भी हालत में नीलिमा ठाकुर साहव से विवाह के लिए राजी हो सकती है? असम्भव है! पर कुछ ही क्षण वाद उसके विचारो का क्रम पलट गया और वह सोचने लगी—"मैंने यह कैसे सोच लिया कि ठाकुर साहव के साथ विवाह के लिए दीदी कभी राजी नही हो सकती? इस सम्बन्ध में मैने दीदी से न कभी कोई वात ही की है, न मै यह दावा कर सकती हूं कि मै उसके मन की सव वातें जानती हूं। दूसरे के मन का सच्चा हाल कोई नही जान सकता—चाहे वह व्यक्ति अपनी सगी दीदी ही क्यो न हो। इसलिए—पर यदि सचमुच दीदी ठाकुर साहव से विवाह के लिए राजी हो जाय—चाहे अपने मन से चाहे मा के दवाव से—तो क्या होगा! इतने वड़े अनर्थ का क्या उपचार हो सकेगा? मै अपने जीते-जी कैसे इसे सहन कर सकूगी!" सोचते-सोचते प्रतिमा का माथा चकराने लगा। कुछ देर तक वह यथास्थित खडी रही, उसके वाद अन्यमनस्क भाव से धीरे पगों से भीतर चली गई।

बारहवां परिच्छेद

नीलिमा की मानसिक स्थिति उस दिन पहली बार यथार्थ रूप में डावाडोल हुई थी। इसके पहले जीवन और जगत् के सम्बन्ध में उसके मन में समय-समय पर चाहे कैसे ही विचार तरगित क्यो न हुए हो, पर कभी किसी भी गम्भीर विचार का कोई स्थायी प्रभाव उसके मन पर अधिक समय स्थिर नहीं रह पाया। सामान्य सामाजिक सघर्ष-विघर्ष से जो-जो भाव-चित्र उसके मन पर उदित होते रहते थे वे सिनेमा के चल-चित्रों की तरह अत्यन्त द्रुतगति से विलीन हो जाते थे। उन मिटे हुए चित्रों के स्थान पर नये चित्र प्रकट होते थे, और फिर वे भी बिना कोई स्थायी प्रभाव उसके सचेत मन पर छोड़े मिट जाते थे। स्वय अपने भावी जीवन के सम्बन्ध में उसने कभी लगातार एक घण्टे तक गम्भीर रूप से चिन्तन नहीं किया। इस सम्बन्ध में भी अनेक अस्पष्ट छायाचित्र उसके ऊपरी मन के पट पर अकित होकर अस्पष्ट ही रूप से तिरोहित भी हो जाते थे। उनमें से किसी भी चित्र पर मनोयोगपूर्वक विचार करने का न उसमें धैर्य ही था, न इच्छा। इसमे सन्देह नहीं कि गम्भीर साहित्यिक विषयों को समझने और उन पर गम्भीर ही रूप से विचार करने की योग्यता उसमें थी, पर साहित्य-जगत् से वास्तविक जगत् का कोई विशेष सम्बन्ध स्वीकार करने के लिए उसका मन जैसे तैयार नहीं था।

किन्तु उस दिन उसे ऐसा लगा जैसे पहली बार उसे जीवन की वास्तविकता का अनुभव हुआ। इतने दिनो तक ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिह के साथ उसका मिलना-जुलना रहा, पर कभी उसने इस 'मिलने-जुलने' को गम्भीर रूप में ग्रहण नही किया, और न कभी यह सोचा कि इस 'मिलने-जुलने' पर उसकी मा बडी लम्बी-चौडी आशाए बाध सकती है। इसमें सन्देह नहीं कि ठाकुर साहब का सग उसे कभी अप्रिय नहीं रहा। किसी भी पुरुष पर निर्दोष चुटकिया कसने और अकपट व्यगो की बौछार से उसे बनाने में उसके भीतर की चपल बालिका को सुख मिलता था, और सम्भवत ठाकुर साहब का साहचर्य उसे

इसी कारण प्रिय था—विशेष कर जब उसे मालूम था कि ठाकुर साहब उसे 'आदर' की दृष्टि से देखते हैं। अपने प्रति विशेष आदर का भाव प्रदर्शित करनेवाले पुरुष को बनाने में ऐसी 'चपल बालिकाओं' को विशेष सुख मिलता है। इसके अतिरिक्त सम्भवतः और कोई भावना ठाकुर साहब के सम्बन्ध में उसके मन में काम नहीं कर रही थी।

पर उसे पता नहीं था कि उसके भीतर की 'चपल बालिका' के साथ-ही-साथ उसके अज्ञात में प्रौढा नारी धीरे-धीरे घर करती चली जा रही है। आज प्रथम बार अप्रत्याशित रूप से और अचिन्तित कारणों से उस प्रौढा नारी ने उसके सचेत मन को प्रबल धक्का दिया और जीवन और जगत् के सम्बन्ध में एक नये ही दृष्टिकोण को उसके सामने रखकर उसे विस्मित और भ्रान्त कर दिया।

इतने वर्षों से महीप से उसका परिचय रहा, पर कभी उसने उसके सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की गम्भीर-भावना को अपने मन में स्थान नहीं दिया। महीप का शिशु-रूप ही बराबर उसके सामने आया। महीप की प्रत्यक्ष आकृति और बाह्य प्रकृति को देखते हुए एक वयस्क शिशु के सिवा किसी दूसरे रूप में वह उसे देख ही नहीं पाती थी। इतना वह अवश्य जान गई थी कि वह शिशु समझदार है, और इसीलिए वह उसे और अधिक चाहने लगी थी। पर उसका यह 'चाहना' उस चाहने से अधिक महत्त्व नहीं रखता था जो एक वयस्क बालिका का एक सजीव गुड्डे के प्रति हो सकता है। महीप की कविताओं के बावजूद नीलिमा के मन में यह विश्वास कभी जम न पाया कि वह अपनी शिशुता को पार कर चुका है। प्रेम की तीव्र अन्तर्वेदना से पूर्ण जो कविताएं महीप ने समय-समय पर लिखी थीं उनमें नीलिमा बराबर रस लिया करती थी और अत्यन्त तन्मयता के साथ उन्हें पढ़ा करती थी—एक बार नहीं, अनेक बार। अक्सर रात में सोने के पहले पलंग पर लेटे-लेटे टेबिल-लैंप जलाकर वह महीप की प्रेम-सम्बन्धी कविताओं को मननपूर्वक पढ़ती

हुई उनकी रसमयता से भीतर-ही-भीतर पुलकित होती रहती थी। एक अलौकिक छायास्वप्नमय मायाजगत् सुनहले बादलों से रञ्जित सन्ध्या की इन्द्र-जाली मोहिनी की तरह उसकी मानसिक आखों के आगे भासमान हो उठता था, जिससे कवि की मायापुरी के द्वार एक-एक करके उसके आगे उद्घाटित हो जाते थे। वह (कवि) उस समय के लिए किसी स्वर्गीय लोक के देवदूत की तरह उसके मन के एक अज्ञात कोने मे मृदु-मन्द मुसकान से मुस्कराता रहता था। पर कविता-पाठ बन्द करने पर जब वास्तविक जगत् की अनुभूति उसके सचेत मन पर आकर टकराने लगती तब जो कवि मायालोक के दिव्य दूत की तरह उसके अर्द्धचेतन मन को घेरे हुए था उसका वास्तविक रूप—गुड्डे की-सी आकृति—नीलिमा के सचेत मन पर प्रस्फुटित होते ही वह मन-ही-मन अपनी हँसी को रोक नहीं पाती थी, और काव्यलोक की विकल पुलकानुभूति के स्थान पर उसके हृदय में हास्य की फुरेरियां उठने लगती थी। उस शिशु-रूप कवि के भीतर प्रेम की अन्तर्ज्वाला वास्तव में दहका करती है, इस बात पर उसे कतई विश्वास नहीं होना चाहता था। फिर भी यह स्वीकार किये बिना वह न रहती कि वह शिशु-कवि आश्चर्यजनक रूप से समझदार है, और उस सजीव, बुद्धिमान् गुड्डे को खेलाने की आकाक्षा उसके मन में प्रबल हो उठती।

यह सब होते हुए भी उसकी निजी 'रोमाटिक' कल्पनाओ के बीच में उस गुड्डे के लिए उसके मन में कभी कोई स्थान नहीं रहा। इस रूप में वह उसके सम्बन्ध में सोच ही नही सकती थी। पर उस दिन जब महीप ने हिन्दी-साहित्य और हिन्दी के कवियो की तरफ से अत्यन्त मार्मिक शब्दो में, तीव्र रूप से प्रज्वलित वाणी में वकालत की थी, तब उस समय उसके मुख पर घनीभूत होनेवाली गहन-गम्भीर छाया, उसकी आखो में बिजली की तरह प्रदीप्त होनेवाली रहस्यमयी माया का आभास देखकर, नीलिमा की मानसिक आखो के आगे महीप के अन्तर का इतने दिनों से प्रच्छन्न रूप अपने काले आवरण को चीर कर अकस्मात् व्यक्त हो उठा। उसके गुड्डे का-सा प्रकट रूप न जाने कहा तिरोहित हो गया और उसके स्थान पर अदम्य कर्मचेष्टा

और प्रचण्ड विद्रोह के असीम साहसिक पौरुष से युक्त पूर्ण युवा का सनातन रूप न जाने किस अज्ञात रहस्यमय जादू की माया से नीलिमा के आगे परिस्फुट हो उठा। और उस तत्कालीन सम्मोहन की-सी अवस्था में उसने यह अनुभव किया कि महीप के उस नवोदित रूप को केन्द्रबिन्दु बनाकर बहुत-सी ऐसी नयी और तीव्र वेदनामयी भावनाएं चारों ओर से उसके मन को छाने लगी थी जिनकी कल्पना तक उस क्षण के पहले वह कभी कर नही सकती थी। इतने दिनों तक वे न जाने अन्तर्मन के किन अन्धछिन्द्रो में दबी पडी थी। महीप की कविताओ के एकान्त पाठ में वह कभी-कभी उसके जिस दिव्य दूत के रूप का परिचय पा जाती थी वह आज वास्तविक जगत् में भी उसके आगे केवल प्रत्यक्ष ही नहीं हुआ, बल्कि झलझलाते हुए सोने का जो तेज और तीखा भाला वह अपने हाथ मे लिये हुए था उसकी नोक से उसने जैसे उसके अन्तर्मय प्रदेश को स्पर्श भी कर दिया—नीलिमा को ऐसा लगा। आज तक वह अपने को, महीप को, समस्त ससार को केवल एक खेलवाड के रूप में देखती आई थी, पर आज उस प्रज्वल सोने के भाले ने अपने तीखे स्पर्श से उसे यह बता दिया कि न वह खेलवाड है और न महीप—दोनो जीवन की ज्वलन्त अनुभूतियों से फडकते हुए अनन्त चेतनाशील प्राणी हैं, और समस्त संसार प्राण-प्रेरित वेदनाओं के स्पन्दन से प्रतिपल फडक रहा है। वह यह अनुभव करने लगी कि जीवन में उसका अपना कर्तव्य-पथ अत्यन्त विस्तीर्ण, अत्यन्त गम्भीर और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, और जिस कवि को वह आज तक केवल एक मनोरञ्जक शिशु के रूप मे देखती आई थी वह क्या उसके उस महान् कर्त्तव्य-पथ का साथी—बल्कि निर्देशक—नही हो सकता?

वह 'महान् कर्त्तव्य' वास्तव मे क्या है, इसकी कोई स्पष्ट झांकी उसके मन में नही उठी थी, और कोई व्यक्ति किस रूप में उसका निर्देशक बन सकता है, यह भी वह नही जानती थी; पर जो अस्पष्ट प्रेरणा उसके भीतर जगी थी, उसकी अनुभूति ऐसी मार्मिक थी कि उसकी उपेक्षा करना उसके लिए असम्भव था।

महीप के चले जाने के बाद उसी अनुभूति से उसका समस्त प्राण आच्छन्न हो रहा था। उस अनुभूति को गहरा धक्का तब पहुचा जब प्रतिमा और उसकी मा के वाद-विवाद के फल-स्वरूप वास्तविक जीवन के एक दूसरे ही तथ्य का उद्घाटन उसके आगे हुआ। उसे यह सोचकर अपनी इस नादानी पर आश्चर्य और खेद हुआ कि इतने दिनों तक वह अपनी मा के मन की बात से परिचित न हो सकी, जब कि प्रतिमा पहले ही वास्तविकता को ताड गई थी। कभी एक क्षण के लिए भी उसके मन में यह सम्भावना उदित नही हुई कि ठाकुर साहब से उसका वैवाहिक सम्बन्ध जोडने के इरादे से उसकी मा उन्हें अपने परिवार के घनिष्ठ सम्पर्क में लाने की चेष्टा करती रही हैं। आज प्रथम बार जब उसके आगे मा के वास्तविक मनोभाव का रहस्य अप्रत्याशित रूप से खुला तब वह स्तब्ध रह गई। उसकी स्तब्धता यह जानकर और अधिक बढ गई कि उसकी मा का केवल यह विचार ही नहीं है, बल्कि वह उस पर बहुत बडी आशा बाधे बैठी है—इस हद तक कि उसमें तनिक भी विघ्न खडा होने पर उन्हे मार्मिक आघात पहुचने की सम्भावना है। उस दिन प्रतिमा के साथ इस सम्बन्ध में झगडते हुए मा का जो दयनीय रूप उसने देखा उससे उसके भीतर आतंक की एक लहर हहर उठी। सबसे अधिक आशकाजनक बात उसे यह लगी कि मा के उस रूप को देखते हुए उसके मन में इतने दिनों से पुसी हुई आशा का तार तत्काल पूर्ण रूप से तोडने का साहस उसे नहीं हुआ। वह जानती थी कि यदि इस सम्बन्ध में वह मा की इच्छा का विरोध करेगी तो उन्हें जो धक्का लगेगा उससे वह आसानी से उबर नही सकेंगी।

साथ ही एक बात और थी। नीलिमा के मन के एक कोने में सासारिक स्वार्थ का एक सस्कार उसकी समस्त भावुकता और आदर्शवाद के बावजूद वर्तमान था। इसलिए महीप के सम्बन्ध में उसके हृदय में भावों का तूफान उठने पर भी वह पार्थिव वास्तविकता का सस्कार पहाडी नदी के बीच की चट्टान की तरह अडिग अवस्था में पडा था। ठाकुर साहब के विरुद्ध उसके ज्ञात मन में जो विरोधी भावना उठ खडी हुई थी वह उसके आगे स्पष्ट

रूप धारण किए हुए थी। पर उस स्पष्ट भावना के नीचे जो अस्पष्ट भावना उसे बेचैन कर रही थी, उसे वह अपने अनजान में प्रबल चेष्टा से भुलाना चाहती थी। जो प्रवृत्ति खुले तौर से उसकी मां को परिचालित कर रही थी वही चोरी-छिपे उसके मन के नीचे के दो-एक छिद्रो से झांकने का प्रयत्न कर रही थी। यह भी एक बहुत बडा कारण था कि चाहने पर भी मा की प्रवृत्ति के विरुद्ध निश्चित विद्रोह की भावना उसके भीतर नही उठ पाती थी। उन छिद्रो को वह ज्यों-ज्यो अपने आदर्शवादी विचारो की मिट्टी से दबाने की चेष्टा करती थी, त्यो-त्यो वे अधिक परिस्फुट हो उठते थे और उनका आकार जैसे और अधिक बड़ा होता जाता था।

भावुकता का प्रथम आवेग बहुत कुछ शान्त होने के बाद नीलिमा ने अपने अनजान मे ही जब अपने मन का विश्लेषण करना शुरू किया तब वह बहुत घबरा उठी। ठाकुर साहब की आर्थिक सम्पन्नता का आकर्षण कितना बडा है, यह कठोर वास्तविकता स्पष्ट से स्पष्टतर रूप मे उसके सामने आती जा रही थी। उसकी मा ने उसके भावी हित के सम्बन्ध में कितने बडे कारण से प्रेरित होकर यह सब चक्र रचा था, इस पर वह जितना ही सोचती जाती थी उतनी ही अधिक प्रभावित होती थी। साथ ही यह भी वह धीरे-धीरे समझने लगी थी कि अपने अनजान में वह पहले से ही वास्तविकता के इस पहलू को अपनाये बैठी थी, नही तो ठाकुर साहब से इस कदर हिलगने का और दूसरा कारण क्या हो सकता है? पर वास्तविकता को क्या हर हालत में ज्यो का त्यो स्वीकार कर ही लेना होगा? क्या मनुष्य का यह कर्तव्य नही है कि वह आदर्श के लिए यथार्थ से जीवन भर लडता रहे और सहस्रो विपरीत परिस्थितियो के बावजूद अपने भीतर के विद्रोह की आग को बराबर सुलगाये रहे?

उसे मंहीप की याद आई, जिसने अपने आदर्श की प्रगति के लिए आई० सी० एस० की परीक्षा को ठुकरा दिया था। नीलिमा को पूरा विश्वास था कि

महीप यदि आई० सी० एस० की परीक्षा देता तो बहुत ही अच्छी सफलता प्राप्त करता। इस सम्बन्ध में सोचते हुए एक ओर जहा वह महीप की सिद्धान्त-वादिता की बडी प्रशसा मन-ही-मन कर रही थी, वही, उसके मन में उसी स्थान के पास ही, एक झाडी में छिपी हुई प्रवृत्ति महीप की 'मूर्खता' के लिए कभी उसका उपहास कर रही थी, कभी उसे कोस रही थी।

उसकी चिन्ताओं का दवाव इस कदर बढ़ता चला जाता था कि सहसा झाडी के भीतर छिपी हुई उसकी वही व्यगात्मक प्रवृत्ति उस दवाव के कारण समस्त आवरणों को भेदकर स्पष्ट रूप में बाहर को फूट निकली। वह सोचने लगी कि क्यों महीप ने आई० सी० एस० की परीक्षा देने का विचार त्याग दिया? यदि वह आई० सी० एस० हो जाने के बाद किसी अच्छे सरकारी नौकरी पर नियुक्त हो जाता तो समाज में भी वह प्रतिष्ठा पाता और व्यक्तिगत रूप से आर्थिक स्वतन्त्रता भी उसे प्राप्त हो जाती। नीलिमा जानती थी कि इस समय महीप की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय है और वह आर्थिक दृष्टि से जीवन में वरावर दूसरों पर ही निर्भर करता रहा है। इस समय वह अपने व्यय का प्रबन्ध ठीक किस जरिये से कर रहा है, इस बात का कोई पता नीलिमा को नहीं था, पर इतना अनुमान वह निश्चित रूप से लगा सकती थी कि वह अव भी इस सम्वन्ध में दूसरों की ही कृपा का मुहताज होगा। इस प्रकार पग-पग पर परमुखापेक्षिता के कारण अवमानना सहना महीप को स्वीकार है, किन्तु आई० सी० एस० होना मजूर नही। यह कैसा विचित्र सिद्धान्त है! सोचते-सोचते नीलिमा खीझ उठी और उस शिशु-भावापन्न अव्यावहारिक और अव्यवस्थित-बुद्धि कवि की मूर्खता के लिए उसे मन-ही-मन कोसने लगी।

तेरहवां परिच्छेद

एक दिन तडके एक स्वप्न देखने के वाद जव अचानक महीप की आखें खुली तव पलग पर लेटे-लेटे उसे इस वात पर आश्चर्य होने लगा कि इतने दिनों के वाद भी अभी तक वह ठाकुर साहव के ही यहा पड़ा हुआ है। उसे

एक सप्ताह से अधिक हो चुका था। वह सोचने लगा—"इस शहर में मेरा क्या काम है जो मैं अभी तक यहां डटा हुआ हूं और यहां से हटने का कोई इरादा अभी तक नहीं कर पाया हूं? कानपुर में जिस आवश्यक काम से जाने का विचार करके मैं आया था उसे मैं इतनी आसानी से भूल कैसे गया? आश्चर्य है! अफसोस है!"

सबसे अधिक आश्चर्य उसे इस बात पर हो रहा था कि उसे जमने के लिए स्थान मिला भी तो ठाकुर साहब के यहां! ठाकुर साहब से उसका क्या सम्बन्ध है और कब की मैत्री है? प्रतिमा ने उनका जो परिचय उसे दिया था उसके बावजूद वह बिना तनिक भी ग्लानि या सकोच के, परम आराम से उनके यहां अड्डा जमाये बैठा है और बिना किसी तकल्लुफ के उनका अन्न नष्ट कर रहा है। अच्छा ही है!" वह मन-ही-मन अपने प्रति व्यंग के रूप में कहने लगा—"परान्न दुर्लभ लोके। जिस व्यक्ति ने पहले-पहल इस सत्य को लिखित रूप में स्वीकार किया होगा वह वास्तव में जीवन में मेरी ही तरह कड़वे अनुभवों के कारण व्यंग और कटूक्ति-प्रेमी हो उठा होगा। पर मुझे अभी जीवन में कौन से कड़वे अनुभव हुए हैं? अभी तो मैं जीवन के आगन में अच्छी तरह प्रवेश भी नहीं कर पाया हूं। न मैं भूतकाल में किसी का ऋणी रहा हूं, न भविष्य में किसी के लिए उत्तरदायी हूं। इसलिए यदि वर्तमान में निर्द्वन्द्व जीवन बिताने का विचार मेरे आदर्शों की आंखें बचाकर धीरे-धीरे मेरे भीतर घर करता चला जा रहा है, तो इसमें बुराई ही क्या है! क्या कोई क्षीण से क्षीण आशा भी ऐसी है जिसे आधार बनाकर मैं उन आदर्शों का अनुगमन करूं? सब बेकार है! इसलिए ठाकुर साहब के यहां निर्लज्ज भाव से मैं अभी कुछ दिन और डटा रहूंगा—तब तक जब तक ठाकुर साहब स्पष्ट शब्दों मे मुझसे कह नहीं देते कि 'मेरे यहां तुम्हारे लिए अब कोई स्थान नहीं है, तुम चले जाओ!' पर ठाकुर साहब सम्भवत. ऐसा कहेंगे नहीं, क्योंकि . .हा. हा हा!" वह कारण सोचकर मन-ही-मन अट्टहास कर उठा। ठाकुर साहब की कूटबुद्धि के सम्बन्ध मे वह जितना

"नमस्कार!"—महीप ने भी प्रत्युत्तर में हाथ जोड़ते हुए कहा—"कहिए, आपने कैसे पधारने की कृपा की?"

"यों ही! अकेले बैठे-बैठे जी नहीं लग रहा था। बहुत दिनों से आपसे एकान्त में मिलकर बातें करने की इच्छा थी, पर कभी सुयोग प्राप्त न हो सका। मैं बहुत दिनों से आपकी कविताओं में दिलचस्पी लेता आया हूँ ।"

महीप साल भर के अनुभव से जान गया था कि उसकी कविता के प्रेमियों की संख्या कुछ कम नहीं है—विशेषकर उसकी उन कविताओं ने पाठकों पर अच्छा प्रभाव डाला था जो उसने अपने प्रारम्भिक रचना-काल में प्रेम के सम्बन्ध में लिखी थीं। इसलिए एक नये कविता-प्रेमी का परिचय पाकर उसे इतनी प्रसन्नता नहीं हुई जितनी कि साधारण अवस्था में होनी चाहिए थी। पर धीराज के सम्बन्ध में उसकी दिलचस्पी का एक दूसरा कारण था, इसलिए मन-ही-मन उसने उसका स्वागत किया। इसके अलावा अपनी तत्कालीन शून्य मानसिकता से वह स्वयं भी उकता गया था।

"आपने बड़ी कृपा की। आइए, भीतर चलकर बैठें। बाहर अभी तक लू चल रही है।"

भीतर जाकर जब दोनों बैठ गये तब महीप ने पूछा—"आप क्या इस समय तक अकेले बैठे थे? और सब लोग कहाँ गये?"

"सभी सिनेमा देखने गये हैं।"

"आपको शायद सिनेमा से विशेष प्रेम नहीं है?"

"जिस व्यक्ति के वास्तविक जीवन में फिल्मी दुनिया से भी अधिक तहलका मचा हुआ हो, अधिक रोमांटिक, रहस्यमय और अशान्तिपूर्ण चक्रों की उलझनों में जो व्यक्ति उलझा हुआ हो वह स्वभावतः फिल्म-जगत् में विशेष दिलचस्पी नहीं ले सकता।"

महीप ने इस बात पर गौर किया कि धीराज के मुख की अभिव्यक्ति में

उसने पहले दिन जो एक मन्द-मधुर संकोचशीलता का आभास देखा था, जो सरल-तरल भाव झलकता हुआ पाया था, उसका लेश भी इस समय वर्तमान नहीं था। उसकी आखें चमक रही थी और उसके मुख पर एक उत्तेजनापूर्ण आवेगमय भाव की प्रतिच्छाया व्यक्त हो रही थी। वह स्पष्ट ही हृदय खोलकर बाते करने की मानसिक स्थिति मे था। उसके मन की बातें जानने का कौतूहल होने पर भी महीप अपनी ओर से उसे उसकाना नही चाहता था। वह केवल जिज्ञासु भाव से उसकी ओर देखता रहा।

धीराज क्षण भर चुप रहने के बाद बोला—"आपकी कविताओ ने मुझे जीवन के घोर अन्धकारमय क्षणों में प्रकाश दिखाकर जो प्रेरणा दी है उसका वर्णन मै नही कर सकता। जब-जब निराशा और निश्चलता ने चारो ओर से मेरे पथ में अभेद्य अवरोध खड़ा किया है तब-तब आपकी कविताओ ने मुझे आशा और गति प्रदान की है। मुझे बराबर ऐसा अनुभव हुआ है जैसे आपने मेरे जीवन की परिस्थितियों से, मेरी जटिल मानसिक गति-विधि से परिचित होकर उन्हीं को सुलझाने के उद्देश्य से कविताए लिखी हो। आपकी इन पंक्तियों से मुझे जीवन में कितना बल मिला है, मै कह नही सकता—

तोड़ दो सीमित जगत् की वज्र-कारा!
किसी जड़-अवरोध से क्या कभी दुर्जय प्रेम हारा?
मृत्यु देगी अमरता की स्निग्ध, शीतल, शान्त छाया,
स्फुरित होगी दिव्य स्पन्दन से करुण यह प्रेम-काया;
पुलक-सागर में रहेगा तडित्-नौका का सहारा।

पर इधर कुछ समय से मेरे मन का यह हाल हो गया है कि न किसी की कविता से मुझे कोई प्रेरणा मिलती है न अपने भीतर से कोई तिनका सहारे के लिए मिलता है। रह-रहकर एक प्रचण्ड सत्य मेरे आगे स्पष्ट-से-स्पष्टतर होता चला जा रहा है। मेरे मन में यह ध्रुव विश्वास जम गया है कि प्रेम—वह पागल प्रेम जिसका विष-रस हृदय के अणु-परमाणु में व्याप्त हो जाता

है—निश्चित रूप से मृत्यु में परिणत होता है। उसके लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं है। प्रेम की अमरता का गुण-गान आपने भी दूसरे कवियों की तरह किया है। पर वह 'अमरता' मृत्यु के राजमार्ग को अपनाये हुए है। मै मानता हूँ कि सच्चा प्रेम जीवन के किसी भी अवरोध से हार मानने वाला नही है, पर उन अवरोधो को तोडता है वह किस लिए? निश्चय ही मृत्यु के अगम अन्धकार में प्रवेश करके उसमें अपने को विलीन करने के लिए! इसलिए उन कवियों की अनुभूति झूठी और ढोंग-भरी सिद्ध होती है जिनका कहना है कि प्रेम अमृत-लोक के द्वार उद्घाटित कर देता है और मृत्यु का पर्दा हटाकर दिव्यलोक के अनिर्वचनीय सौंदर्य की झाकी मन की आखों के आगे झलका देता है। मेरा अपना अनुभव बिलकुल इसके विपरीत है.."

महीप स्तब्ध दृष्टि से उसकी ओर देख रहा था। पाच दिन के भीतर धीराज का जो थोडा-बहुत ऊपरी परिचय उसने पाया था उससे वह केवल इतनी ही कल्पना कर सकता था कि एक हलके ढग की मीठी किन्तु गुप्त भावुकता से पूर्ण सकोची नवयुवक से उसका परिचय हुआ है। वह 'सकोची' नवयुवक इस हद तक निस्सकोच हो सकता है कि प्रेम के संबन्ध में अपने अनुभवों को बेधडक व्यक्त कर सकता है, और वे अनुभव इस कदर गहन और तीव्र हो सकते है, इस बात की कल्पना महीप नहीं कर पाया था।

धीराज जब क्षण भर के लिए रुका तब महीप इस ख्याल से कि उसका एकदम चुप बैठे रहना अशोभन है, बोला—"आपका अनुभव मेरे लिए बिलकुल नया होने पर भी मै उसके महत्त्व का अनुभव करता हूं। मै विश्वास कर सकता हूँ कि आपका अनुभव प्रेम-सम्बन्धी सत्य का एक जबर्दस्त पहलू हो सकता है।"

"हो सकता है नही, बल्कि है!" दुगनी तीव्रता से धीराज ने कहा—"वह प्रेम-सम्बन्धी सत्य का एक पहलू नहीं, बल्कि एकमात्र पहलू है। जब तक आप और आपके सहजातीय दूसरे कवि इस एकमात्र सत्य से परिचित नही हो

जाते तब तक आप लोगो की रचनाएं भावुक पाठकों के मन में धोखे का जाल फैलाकर वैसा ही घोर अनर्थ करती रहेंगी जिसे मैं भुगत रहा हूँ। भुगत चुका हूँ नही—भुगत रहा हूँ, इस बात की ओर मैं विशेष रूप से आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ। इधर पाच दिनों के भीतर मेरे इस जीवन-शोषी अनुभव ने विकटतम रूप धारण कर लिया है। मेरे हृदय की प्रेमानुभूति इससे अधिक तीव्रता को इसके पहले कभी नही पहुँची थी, और साथ ही आतंक और विषाद की भावनाओं ने भी इसके पहले इस हद तक मेरी आत्मा को नही घर दबाया था। इस समय मुझे ऐसा लगता है कि मेरे भीतर और बाहर सर्वत्र मृत्यु की कही अन्त न होने वाली छाया फैली हुई है। प्रेम की अनुभूति मेरे भीतर जितनी ही अधिक प्रबल होती जाती है, विषाद और मृत्यु की छाया भी उसी हद तक घनी और अँधेरी होती जाती है। यह सब जानते हुए भी मेरे लिए उस प्रेम से उबरने का कोई रास्ता नहीं रह गया है। मैं गले तक डूब चुका हूँ। मैं जानता हूँ कि इस प्रेम की चरम परिणति होते ही मृत्यु की वह गाढी काली छाया मुझे निगल डालेगी, पर इस जानने से कोई लाभ अब मैं उठा नही सकता। मैं जान-बूझकर मृत्यु को बुला रहा हूँ। इस पर आप कह सकते है कि प्रेम के लिए मृत्यु को वरण करना प्रशसनीय है और उसके लिए मरने में भी सुख है। पर मेरा अपना अनुभव कहता है कि वह न प्रशसनीय है, न सुखकर। मृत्यु—निर्वाण, अस्तित्व का अन्त—कैसे सुखकर हो सकती है? मृत्यु को सुख की निद्रा माननेवाले कवियों के लिए दूर से उसकी कल्पना अवश्य अच्छी है, पर जिस व्यक्ति ने उस अनन्त शून्य के कराल रूप की झाकी एक बार जीवित लोक से ही देख ली है वह जानता है कि निर्जीवन की वह स्थिति कैसी भयानक है। इसलिए आप लोगों से—कवियो से—मेरी यह प्रार्थना है कि जीवन के मोल पर प्रेम को अपनाने का उपदेश देकर कविता-प्रेमी भोले नवयुवक पाठको को जीवन के आरम्भ में ही मृत्यु के अन्यलोक की ओर आकर्षित न करें।"

धीराज की वाग्धारा जब रुक गई तब महीप कुछ समय तक मग्न बैठा रहा। उसके बाद एक लम्बी सास लेकर बोला—"मैं आपकी बातो से बहुत अधिक

प्रभावित हुआ हूँ। आपकी तीव्र अनुभूतिशीलता हृदय के बहुत गहरे स्थान पर असर करनेवाली है। साथ ही एक विशेष तथ्य की ओर मेरा ध्यान आपने आकर्षित कर दिया है। मुझे विश्वास है कि उस तथ्य की वास्तविकता का बहुत-कुछ आभास आपकी एक बात से मुझे मिल चुका है। फिर भी मैं अभी इस सम्बन्ध में सदिग्ध हूँ। मैं जानता हूँ कि आपके व्यक्तिगत जीवन के किसी विषय को लेकर कोई प्रश्न करने का अधिकार मुझे नहीं है। पर चूंकि आपने हृदय खोलकर अपने अन्तर्मन के विचारों को मेरे आगे प्रकट करने की कृपा की है, इसलिए एक बात आपसे पूछने की धृष्टता किये बिना रह नहीं पाता। आपने अभी कहा कि 'इधर पाच दिनों के भीतर मेरे इस जीवन-शोषी अनुभव ने विकटतम रूप धारण कर लिया है।' यह निश्चित है कि इस शहर में इस बार आपको आये ठीक पाच ही दिन हुए है, और पाचों दिन आप इसी बँगले में रहे है। ऐसी हालत में मेरा यह अनुमान करना क्या अनुचित होगा कि इसी बँगले के भीतर कोई ऐसी विशेष घटना घटी है जिससे आपके अनुभव ने आपके ही शब्दों में विकटतम रूप धारण कर लिया है? क्षमा कीजिएगा, मैं अपने अधिकार की सीमा को लाघ रहा हूँ, जैसा कि पहले कह चुका हूँ, पर—"

"आप अधिकार की सीमा को अवश्य लाघ रहे हैं", कुछ रूखे स्वर में धीराज ने कहा—"पर आज मैं अपने हृदय का बोझ किसी के आगे हलका करने के लिए बहुत व्याकुल हूँ। इसीलिए मैंने आज गहरी मात्रा में भाग छानी है, और इसीलिए मैं आपको अकेला पाकर आपके पास आया हूँ। मैं स्वय आज उस तथ्य को आपके आगे प्रकट करने के लिए उत्सुक हूँ जिससे मेरे जीवन की अत्यन्त गोपनीय पीडा सम्बन्धित है। साथ ही जिन व्यक्तियों से उस पीडा का सम्बन्ध है—"

महीप ने अकस्मात्, तनिक अशिष्ट रूप से, अपना अधैर्य प्रकट करते हुए कहा—" 'जिन व्यक्तियों से'! मैं तो समझता था कि कोई एक ही व्यक्ति ऐसा हो सकता है!"

"आपका अनुमान स्वाभाविक है, और बहुत कुछ ठीक भी है। पर एक व्यक्ति अपने साथ कुछ और व्यक्तियो को भी तो घसीट सकता है!"

"तब क्या—क्या—क्षमा कीजिएगा—क्या मै जान सकता हूँ कि वह एक व्यक्ति कौन है? क्योंकि इतना तो स्पष्ट ही है कि जो कोई भी हो, वह इसी बँगले का निवासी है।"

"स्पष्ट ही वह रूपा है, जैसा कि आप भी जानते है।"

इस बात से यद्यपि महीप के सन्देह की ही पुष्टि हुई थी, तथापि उसे आश्चर्य हुआ—जैसे उसके आगे एक बिलकुल नया रहस्य उद्घाटित हुआ हो।

चौदहवां परिच्छेद

धीराज ने प्रस्ताव किया कि बाहर हवाखोरी के लिए निकला जाय। महीप के पास न कोई काम करने को था, न कोई कार्यक्रम, इसलिए उसने बिना किसी आपत्ति के धीराज का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। दोनो बाहर निकल पड़े। चौराहे पर आकर एक तांगा किया। धीराज ने तांगेवाले से सिविल लाइन्स की ओर चलने के लिए कहा।

तागे का घोड़ा काफ़ी स्वस्थ दिखाई देता था और किराये के अधिकाश तांगो और एक्को के निर्जीव घोड़ों की तरह उसकी चाल मे विवशता का लेश भी नही पाया जाता था। वह निश्चित और द्रुत पगों से दौडा चला जा रहा था और ऐसा जान पडता था जैसे दौडने मे उसे सहज सुख प्राप्त हो रहा है। उस नये टायरोवाले तांगे के चलने से जो एक सनसनाहट की आवाज़ आ रही थी वह घोडे की निरन्तर गतिशील टापो की आवाज़ से मिलकर जैसे आसन्न रात्रि के निविड वायु-मण्डल मे एक अव्यक्त वेदना के दलित हाहाकार की उच्छ्वसित श्वासें फूक रही थी। बहुत दिनो की पुञ्जीभूत, रुद्ध भावनाओ से आच्छन्न महीप का अर्द्धचेतन मन अपने ही अन्तर्मन-द्वारा अज्ञात में रची गई रहस्यमयता में डूबने से बचने की प्रबल चेष्टा

प्रभावित हुआ हूँ। आपकी तीव्र अनुभूतिशीलता हृदय के बहुत गहरे स्थान पर असर करनेवाली है। साथ ही एक विशेष तथ्य की ओर मेरा ध्यान आपने आकर्षित कर दिया है। मुझे विश्वास है कि उस तथ्य की वास्तविकता का बहुत-कुछ आभास आपकी एक बात से मुझे मिल चुका है। फिर भी मैं अभी इस सम्बन्ध में सदिग्ध हूँ। मै जानता हूँ कि आपके व्यक्तिगत जीवन के किसी विषय को लेकर कोई प्रश्न करने का अधिकार मुझे नही है। पर चूंकि आपने हृदय खोलकर अपने अन्तर्मन के विचारों को मेरे आगे प्रकट करने की कृपा की है, इसलिए एक बात आपसे पूछने की धृष्टता किये विना रह नहीं पाता। आपने अभी कहा कि 'इधर पाच दिनों के भीतर मेरे इस जीवन-शोषी अनुभव ने विकटतम रूप धारण कर लिया है।' यह निश्चित है कि इस शहर में इस वार आपको आये ठीक पाच ही दिन हुए है, और पाचों दिन आप इसी बँगले में रहे हैं। ऐसी हालत में मेरा यह अनुमान करना क्या अनुचित होगा कि इसी बँगले के भीतर कोई ऐसी विशेष घटना घटी है जिससे आपके अनुभव ने आपके ही शब्दों में विकटतम रूप धारण कर लिया है? क्षमा कीजिएगा, मै अपने अधिकार की सीमा को लाघ रहा हूँ, जैसा कि पहले कह चुका हूँ, पर—"

"आप अधिकार की सीमा को अवश्य लाघ रहे है", कुछ रूखे स्वर में धीराज ने कहा—"पर आज मै अपने हृदय का बोझ किसी के आगे हलका करने के लिए बहुत व्याकुल हूँ। इसीलिए मैंने आज गहरी मात्रा में भाग छानी है, और इसीलिए मै आपको अकेला पाकर आपके पास आया हूँ। मै स्वय आज उस तथ्य को आपके आगे प्रकट करने के लिए उत्सुक हूँ जिससे मेरे जीवन की अत्यन्त गोपनीय पीडा सम्वन्वित है। साथ ही जिन व्यक्तियों से उस पीडा का सम्वन्ध है—"

महीप ने अकस्मात्, तनिक अशिष्ट रूप से, अपना अधैर्य प्रकट करते हुए कहा—"'जिन व्यक्तियो से'! मै तो समझता था कि कोई एक ही व्यक्ति ऐसा हो सकता है!"

करता हुआ बहुत छटपटा रहा था, पर जिस प्रकार लगातार कई दिनों के रात्रि-जागरण से थका हुआ व्यक्ति न चाहने पर भी बार-बार ऊँघने और झूमने लगता है, उसी प्रकार महीप भी उस मोहाच्छन्न मनोभावना में बरबस डूबने के लिए उन्मुख-सा हुआ चला जाता था।

धीराज चुप बैठा हुआ था। पर उसकी चुप्पी महीप के मनोवातावरण की रहस्योन्मुखता को और अधिक सघन और गहन बना रही थी। वास्तव में धीराज ने अपनी तीव्र अनुभूति की मार्मिकता से महीप के भीतर बहुत दिनो से दबे पड़े हुए एक ऐसे प्रश्न को उभाड़ दिया था जिसकी विकरालता यद्यपि अभी तक छाया-रूप में ही उसके सामने खडी हो रही थी, तथापि वह वास्तविक जगत् के प्रचण्ड सत्य के रूप में परिणत होने की धमकी दे रही थी। इधर कुछ समय से स्वय उसके आगे प्रेम की रहस्यात्मक अनुभूति का एक दूसरा ही रूप धीरे-धीरे—कुछ-कुछ ज्ञात में और कुछ-कुछ अज्ञात में—प्रकट होता चला जा रहा था। अपने जादू-भरे पुलक स्पन्दन से प्राणो में एक निराली उल्लसित वेदना का सञ्चार करनेवाले जिस प्रेम का वर्णन उसने अपनी प्रारम्भिक कविताओ में किया था उसे वह स्वय भूल-सा गया था और उसकी अनुभूति की स्मृति उसके अन्तर्मन में किसी पूर्व-जन्म की अनुभूति की तरह अत्यन्त अस्पष्ट, छायात्मक रूप से कभी-कभी केवल कुछ क्षणो के लिए उभरकर तत्काल ही अतल में विलीन भी हो जाती थी। अब उसके आगे प्रेम अन्तर्मन के छायालोक की—काव्य-जगत् की—चीज उतना नही रह गया था जितना वास्तविक जगत् की—सघर्ष-विघर्षमय प्रत्यक्ष सामाजिक ससार की। उस प्रत्यक्ष और प्रकट अनुभूति के अन्तराल में अज्ञात मनोलोक से उभरने वाली भावनाओ का कितना हाथ था, यह बात बिलकुल दूसरी है।

पर यह सब होते हुए भी प्रेम के सम्बन्ध में उस मार्मिक कटुता का लेश भी कभी उसके भीतर नही जगने पाया था जिसे धीराज ने आज

की निस्तव्ध सन्ध्या में तेजाव की तरह उसके मन के छाया-जगत् में छिडक दिया था। इसमे सन्देह नही कि उस तेजाव का एक-ही-आध छीटा उसके वास्तविक मन पर पडा और शेष छीटे उसके भीतर के छाया-लोक के न जाने किस चेतना-रहित स्थान में पड़कर विलीन भी हो गये। पर उस एक ही आध छीटे ने ऐसी तीव्र जलन उसके भीतर पैदा कर दी थी कि इधर कुछ दिनो से पत्थर की-सी जो जड़ता उसके भीतर छाई हुई थी उसमे जैसे अचानक पूरे प्रवेग से एक विचित्र अग्निमय चेतना का सञ्चार हो उठा। साथ ही छायालोक की वायु मे फैली हुई उस तेजाव की गैस ने जो एक तीव्र गन्ध फैला दी थी वह नव-जाग्रत चेतना का गला घोटने पर तुली हुई थी।

जव तागा काफ़ी आगे निकल गया, तव महीप ने दोनो के अशोभन मौन को भग करने के इरादे से पूछा—"किस तरफ चलने का विचार कर रहे है ?"

धीराज जैसे चौंक पड़ा। वह स्पष्ट ही किसी आत्मगत भावना में मग्न था। उसने कहा—"जिस तरफ़ आप कहे। मेरा कोई विशेष लक्ष्य नही है।"

"मेरा भी नही है।"

"तव सिविल लाइन्स के उस पार चले चले। वहा किसी पार्क के एकान्त स्थान में वैठकर गप-शप करे। इस समय केवल यही एक मात्र उद्देश्य मेरे सामने है।"

महीप ने इस पर अपनी कोई आपत्ति प्रकट नही की।

इसके वाद फिर काफी देर तक दोनो चुप वैठे रहे। जव एक प्रवान चौराहे से तागा सिविल लाइन्स की ओर मुडा, महीप का मौन भाव भग हुआ। उसने अचानक प्रश्न किया—"क्या मै यह जान सकता हूँ कि रूपा से आपका परिचय पहले-पहल कव और कहां हुआ था ?"

धीराज जरा सभल कर वैठ गया और उसने तागे का डण्डा अच्छी तरह पकड़ लिया। उसके वाद वह वोला—"उससे पहले-पहल वहराइच मे मेरी

भेंट हुई थी। तब उसके पिता जी जीवित थे। मेरी ननसाल बहराइच में है। मैं छोटे मामा की लडकी के विवाह में गया हुआ था। रूपा के पिता ठाकुर अवधविहारीसिंह भी रूपा के साथ उसी विवाह में सम्मिलित होने के लिए गोंडा से आये हुए थे। यह तीन वर्ष पहले की बात है। ठाकुर अवध-विहारी सिंह तभी से मुझसे स्नेह करने लगे थे और अपने लडके की तरह मुझे मानने लगे थे। उनके आग्रह करने पर मैं उसी वर्ष दशहरे की छुट्टियो में गोंडा गया था। धीरे-धीरे उनके परिवार से मेरा हेल-मेल हो गया और मैं अक्सर गोंडा आने-जाने लगा। वही ठाकुर लक्ष्मीनारायणसिंह से मेरा पहला परिचय हुआ।"

महीप कुछ क्षण तक फिर चुप रहा। उसके बाद उसने पूछा—"ठाकुर लक्ष्मीनारायणसिंह क्या रूपा के कोई सम्बन्धी लगते है ?"

"सम्भवत दूर का कोई रिश्ता है। जहा तक मुझे मालूम है, रूपा की मा ठाकुर लक्ष्मीनारायणसिंह की मौसी की ननद लगती थी।"

"लगती थी यानी ?"

"यानी अब जीवित नही है, बहुत पहले उनकी मृत्यु हो चुकी थी—जब रूपा सम्भवत दो वर्ष की बच्ची थी।"

"और रूपा के पिता भी—"

"जी हा। आज प्राय साल-भर हुआ। एक दिन अकस्मात् हार्ट फेल हो जाने से उनकी मृत्यु हो गई।"

"और उसके भाई-बहनो का क्या हाल है ?"

"उसकी बहन तो कोई कभी रही नही। एक भाई अवश्य था, पर उसकी कथा बडी ही करुण—बल्कि भयानक है। उसका नाम योगेन्द्रसिंह था। वह बहुत ही गम्भीर स्वभाव का, एकान्त-प्रिय लडका था। मैंने कभी उसे हँसते न देखा। युनिवर्सिटी में अपने सहपाठी छात्रो से भी उसका

अधिक हेल-मेल नहीं था, और मेरा ऐसा अनुमान है कि उसने जीवन में कभी किसी के आगे अपने मन की एक भी गाठ न खोली होगी। गाठ खोलना तो दर-किनार, वह रसक कभी सकेत से भी अपने मन की कोई भी बात किसी के आगे प्रकट नही करता था—न अपने पिता के आगे न बहन के आगे, न अपने किसी मित्र या परिचित छात्र के आगे। दो-तीन बार वह न जाने अपने मन की किस गुप्त आकाक्षा की पूर्ति के उद्देश्य से घर से भगा था। ठाकुर अवधविहारीसिंह को उसका पता लगाकर फिर से घर वापस ले आने में बहुत परेशान होना पडा था। मेरे प्रति भी उसका मनोभाव बहुत ही रूखा रहता था। मै अभी तक निश्चित रूप से यह जान नही पाया कि रूपा के साथ मेरा हेल-मेल उसको पसन्द था या नही। ठाकुर अवधविहारीसिंह की मृत्यु के कुछ समय पहले उसके रहस्यात्मक स्वभाव ने और अधिक गहन रूप धारण कर लिया था। बिना पिता से परामर्श किये ही वह 'किंग्स कमीशन' में भरती हो गया, और बरमा की लडाई मे युद्ध-क्षेत्र में लडता हुआ मारा गया। इस आघात को ठाकुर अवधविहारीसिंह सहन न कर सके और कुछ ही समय बाद उनकी मृत्यु हो गई। मरने के पहले ठाकुर लक्ष्मीनारायणसिंह से उनकी क्या बातें हुईं, मुझे इसका तनिक भी आभास नही है। पर चूकि रूपा अपने पिता की मृत्यु के बाद बिना किसी आपत्ति के ठाकुर साहब के साथ चली आई, इससे मै यह अनुमान लगाता हूँ कि उसने ऐसा करके अपने स्वर्गीय पिता की आज्ञा का ही पालन किया था........"

अन्तिम बात कहते हुए धीराज ने एक लम्बी सास ली।

"ठाकुर अवधविहारीसिंह की मृत्यु के बाद भी आपको रूपा से बातें करने का अवसर अवश्य ही मिला होगा? उसने इस विषय मे आपको कुछ नही बताया?"

महीप के इस प्रकार के प्रश्न से धीराज के मुख पर मर्मघाती वेदना का

जो दिल दहलानेवाला आभास झलक उठा उसे महीप उस प्रायान्धकार में या तो देख न पाया या उसका ध्यान उस ओर नही गया । धीराज ने अन्तर से बरबस निकली हुई आह को दबाने की व्यर्थ चेष्टा की । उसके बाद बोला—"ठाकुर अवधविहारीसिंह की मृत्यु के बाद रूपा से कुछ क्षण के लिए, स्वतन्त्रता से बातें करने का अवसर एक दिन भी मुझे नही मिला । वह सब समय ठाकुर लक्ष्मीनारायणसिंह की कडी निगरानी में रहती है, और अपने अत्यन्त सकोचशील स्वभाव के कारण किस भी विषय मे किसी भी बात पर अपने किसी अधिकार को, अपनी किसी स्वतन्त्र इच्छा को, कायम रखने का साहस उसमें नहीं है। पहले से ही उसका स्वभाव इस कदर सकोचशील और आत्म-निर्व्रापणशील रहा हो, ऐसा नही । अपने पिता की वह बहुत दुलारी और मुह-लगी लडकी थी, और यद्यपि वह बहुत ढीठ नही थी, फिर भी सकोच के भार से बहुत दबी भी नही थी। पर भाई की मृत्यु ने उसकी आत्मा को आधा से अधिक दबोच डाला और उसके बाद ही पिता की मृत्यु हो जाने से उसका मूल व्यक्तित्व ही जैसे पूर्ण रूप से दब गया । जिस रूपा को मैंने जीवन के एक अपूर्व ज्योतिर्मय क्षण में आनन्द की दिव्य विभा के रूप में पाया था उस पर एक गाढ़े काले बादल की कालिमा पुत गई ।"

महीप इसके बाद काफी देर तक विचारमग्न अवस्था में चुप बैठा रहा। रूपा का जो स्वरूप उसके आगे व्यक्त हुआ था, जो शान्त, सकरुण और सकोच-ग्रस्त छवि उसकी आखो के सामने आई थी, उसका मिलान वह मन-ही-मन उस चित्र से करने लगा जो धीराज से उसे प्राप्त हुआ था। सोचते-सोचते न जाने कितने विचित्र रूप और कितने निराले भाव उसके भीतर धूप-छाह का खेल खेलने लगे । कभी रूप ही भाव में परिणत हो जाते और कभी भाव रूप में बदल जाते। धीराज भी महीप के मौन भाव का अनुगमन करते हुए अपनी निजी चिन्ताओ में डूबा रहा ।

पन्द्रहवां परिच्छेद

तागा सिविल लाइन्स से होता हुआ जाने लगा। बिजली के जगमगाते हुए प्रकाश में सिविल लाइन्स की चहल-पहल से महीप के मन की मोह-मग्न अवस्था दूर हुई और वह सजग और सचेत होकर बैठ गया। उसने घीराज की ओर देखा। उस भौतिक प्रकाश में अचानक उसने घीराज के मुख पर एक ऐसा भ्रान्ति उत्पन्न करनेवाला भाव झलकता हुआ पाया जो अत्यन्त मार्मिक रूप से करुण था और साथ ही हृदय में एक अज्ञात, भौतिक—पार-लौकिक—आतक की भावना को उभाडने वाला था। अन्तरात्मा के निष्ठुर पीडन की ऐसी ज्वलन्त अभिव्यक्ति महीप ने इसके पहले कभी किसी व्यक्ति के मुख पर झलकती हुई नही देखी थी। उसे ऐसा लगा कि घीराज के भीतरी व्यक्तित्व का एक नया ही रूप उसकी आंखो के आगे भासमान हो उठा है।

सिविल लाइन्स को पार करके जब तागा एक अपेक्षाकृत निर्जन स्थान में पहुंचा, घीराज ने तागेवाले से रुक जाने के लिए कहा। उसने महीप के आगे यह प्रस्ताव रक्खा कि कुछ समय के लिए एक बेंच पर बैठकर तागे की सवारी की थकान मिटाई जाय। महीप तत्काल राजी होकर उतर पडा। घीराज ने उतरकर तागेवाले से कह दिया कि वह कही पास ही तागा खड़ा करके उन लोगो का इन्तजार करता रहे।

दोनों सडक के किनारे एक बेच पर बैठ गये। जगह बहुत साफ, सुन्दर और एकान्त थी। न अगल-बगल पैदल चलनेवालो की भीड थी और न सवारियों का ही आना-जाना अधिक था। केवल बीच-बीच में इक्की-दुक्की मोटर सामने से होकर चुपचाप निकल जाती थी। सामने एक विस्तृत अहाते के बीच में एक गिर्जे की कलात्मक इमारत जन्मान्तर की यात्रा के मील के पत्थर की तरह स्तब्ध भाव से खड़ी थी।

कुछ समय तक दोनो, शायद किसी अज्ञात सम-अनुभूति से प्रेरित होकर,

गिर्जे की ओर मौन भाव से देखते रहे । दोनो निश्चय ही या तो ज्ञात रूप से कुछ सोच रहे थे या अज्ञात रूप से कुछ अनुभव कर रहे थे । पर गिर्जे के तत्कालीन आकर्षण के लिए दोनो की अनुभूति में कुछ ऊपरी ममता भले ही वर्तमान हो, दोनो के भीतरी दृष्टिकोणो में बहुत अन्तर था । धीराज की किसी रहस्यमय भय और भ्रान्ति से चमकती हुई आखें बताती थी कि वह किसी दूसरी ही दुनिया में पहुँचा है, ऐसी दुनिया में जहा जाने के पहले उसने सोचा था कि वह परिचितो के बीच में जा रहा है—अपरिचितो की दुनिया से तग आकर, किन्तु उस नई दुनिया में पहुँचने पर उसे लग रहा है कि वह और भी अधिक भयकर रूप से अपरिचित जीवो से भरी पड़ी है । क्या उस भयकरतर ससार से लौट चलना अब सम्भव है ? नही ! अब इस बात की सम्भावना नही है । उस भयकरतर लोक से आगे भयकरतम लोक में जाने के सिवा पीछे को लौटने का कोई रास्ता शेष नही रह गया है ।

किन्तु महीप की आखो के स्थिर और शान्त (यद्यपि गहन और गम्भीर) भाव से यह अनुमान लगाया जा सकता था कि उसकी भावमग्नता ने उसे किसी पारलौकिक जगत् में नही पहुँचाया है, बल्कि कठोर वास्तविकता से पूर्ण इसी जगत् की किन्ही यथार्थवादी समस्याओ ने उसे उलझा रक्खा है ।

अकस्मात् एक वृहत् दानवाकार फौजी मोटर गुर्राती हुई सामने से होकर चली गई । उसने दोनो का मौनभाव भग कर दिया । महीप आसन बदलकर बैठ गया और धीराज ने भी अनजान में वैसा ही किया ।

महीप ने पहले उस स्तब्ध मौन को भग किया । उसने कहा—"आप ने तागे पर रूपा का जो क़िस्सा सुनाया वह सचमुच बहुत ही भयानक है । पर एक बात पूछने की ढिठाई मैं आपसे करना चाहता हूँ । आशा करता हूँ, आप उस सीधे-से प्रश्न का उत्तर सीधे ही रूप में देंगे ......"

धीराज अपनी वेदना-विकल, उद्भ्रान्त आंखो से महीप की ओर परम कौतूहल से घूरने लगा। महीप ने कहा—"आपने बताया है कि रूपा के पिता के मरने के बाद उससे एक क्षण के लिए भी स्वतन्त्रता से बातें करने का अवसर आपको नही मिला है। स्वतन्त्रता से बातें करने का असवर भले ही आपको न मिला हो, पर बातें करने का अवसर तो आपको मिला ही होगा। क्या आपने किसी आभास से यह मालूम किया है कि इस समय आपके प्रति उसके मन का भाव क्या है या कैसा है ?"

धीराज की दोनों आखो के नीचे की पीडा-जनित झुर्रिया महीप के इस प्रश्न से और अधिक स्पष्ट रूप से उभर आईं और आखो के भीतर निदारुण विषाद की काली छाया गाढ-से-गाढतर हो आई। उसने अत्यन्त क्षीण और साथ ही किसी मर्मशोषी पीडा से आक्रान्त स्वर मे कहा—"दूसरो के मन के भाव का आभास जान लेने का दावा करने का साहस कम-से-कम मुझे तो नही होता। जब तक मौखिक शब्दो-द्वारा किसी बात का प्रस्फुटन स्पष्टतया न हो तब तक केवलमात्र इगित और भावाभास से किसी के मन की यथार्थ बात को जान लेने की कल्पना करना अपने मन की भ्रान्ति को बढ़ावा देना है।"

"भ्रान्ति ही सही, पर इस सम्बन्ध में कोई-न-कोई धारणा तो आपके मन में अवश्य ही जमी होगी। मैं यही जानना चाहता हूँ कि वह धारणा क्या है।"

"मेरा अनुमान है कि वह अब भी मुझसे विरक्त नही है। पर चूंकि वह जान गई है कि ठाकुर लक्ष्मीनारायणसिंह नही चाहते कि वह मुझे चाहे, इसलिए उसने उनकी इच्छा की बलि होकर मेरे प्रति उदासीनता का-सा भाव जताने का ढंग ग्रहण कर लिया है। पर जैसा कि मैं कह चुका हूँ, मैं यह कोरे अनुमान से कह रहा हूँ, और वास्तव में उसके मन का भाव आजकल क्या है, यह जानना मेरे लिए प्राय. असम्भव हो गया है।"

गिर्जे की ओर मौन भाव से देखते रहे। दोनो निश्चय ही या तो ज्ञात रूप से कुछ सोच रहे थे या अज्ञात रूप से कुछ अनुभव कर रहे थे। पर गिर्जे के तत्कालीन आकर्षण के लिए दोनों की अनुभूति में कुछ ऊपरी ममता भले ही वर्तमान हो, दोनो के भीतरी दृष्टिकोणो में बहुत अन्तर था। धीराज की किसी रहस्यमय भय और भ्रान्ति से चमकती हुई आखें बताती थी कि वह किसी दूसरी ही दुनिया में पहुँचा है, ऐसी दुनिया में जहा जाने के पहले उसने सोचा था कि वह परिचितो के बीच में जा रहा है—अपरिचितो की दुनिया से तग आकर, किन्तु उस नई दुनिया में पहुँचने पर उसे लग रहा है कि वह और भी अधिक भयकर रूप से अपरिचित जीवो से भरी पडी है। क्या उस भयकरतर ससार से लौट चलना अब सम्भव है? नही! अब इस बात की सम्भावना नही है। उस भयकरतर लोक से आगे भयकरतम लोक में जाने के सिवा पीछे को लौटने का कोई रास्ता शेष नही रह गया है।

किन्तु महीप की आखो के स्थिर और शान्त (यद्यपि गहन और गम्भीर) भाव से यह अनुमान लगाया जा सकता था कि उसकी भावमग्नता ने उसे किसी पारलौकिक जगत् में नही पहुँचाया है, बल्कि कठोर वास्तविकता से पूर्ण इसी जगत् की किन्हीं यथार्थवादी समस्याओ ने उसे उलझा रक्खा है।

अकस्मात् एक वृहत् दानवाकार फौजी मोटर गुर्राती हुई सामने से होकर चली गई। उसने दोनो का मौनभाव भग कर दिया। महीप आसन बदलकर बैठ गया और धीराज ने भी अनजान में वैसा ही किया।

महीप ने पहले उस स्तब्ध मौन को भग किया। उसने कहा—"आप ने तागे पर रूपा का जो किस्सा सुनाया वह सचमुच बहुत ही भयानक है। पर एक बात पूछने की ढिठाई मैं आपसे करना चाहता हूँ। आशा करता हूँ, आप उस सीधे-से प्रश्न का उत्तर सीधे ही रूप में देंगे ......"

बापको न मिला हो। तब बताइए कि आपकी समझ में वह क्या हो सकता है ?"

इस बार धीराज के मुख पर से वास्तव में संकोच का पर्दा जैसे बहुत कुछ हट गया। वह स्थिर भाव से महीप की ओर देखता हुआ बोला—"मेरा तो यही अनुमान है कि ठाकुर लक्ष्मीनारायणसिंह स्वय रूपा को चाहते है। यह सन्देह मेरे मन मे बहुत पहले से था, पर इधर कुछ समय से यह सन्देह निश्चित विश्वास में परिणत होने लगा है। मेरे मन में यहा तक धारणा जमने लगी है कि ठाकुर साहब रूपा को केवल चाहते ही नही है, बल्कि उनका वह चाहना उनके मन के किसी गहरे स्थान में मेरी ही तरह इतने वर्षों से किसी भीषण विस्फोट के उपकरणो को बराबर जुटाता चला आ रहा है। उनके और मेरे स्वभाव की बहुत-सी प्रधान बातो में मूलगत अन्तर होते हुए भी यह एक आश्चर्यजनक समता मैंने पाई है, जो मेरे मन मे कभी-कभी आतक उत्पन्न कर देती है।"

"आतक क्यो ?" सरल भाव जताते हुए महीप ने पूछा।

"मैं स्वय नही जाता, पर मुझे लगता है, जैसे ठाकुर लक्ष्मीनारायण-सिंह के मन की इस प्रवृत्ति के शीशे मे मैं स्वय अपने मन के किसी उत्कट की परछाई देख रहा हूँ।" और महीप ने देखा जैसे सचमुच धीराज के मुख पर किसी अज्ञात पाप की 'उत्कट परछाई' झलक उठी हो।

कुछ क्षण तक सन्नाटा छाया रहा। गिर्जे की घडी मे साढे का सूचक —सम्भवतः साढे नौ का। कुछ सोचने के बाद महीप बोला—"... और जानना चाहता हूँ। मेरा विश्वास है कि आपने उस भेद को ... प्रयास अवश्य किया होगा। आपने अभी कहा था कि रूपा ...सिंह की 'इच्छा की बलि' होकर आपके प्रति उदासी-... ग्रहण कर लिया है। क्या कभी आपने इस विषय पर भी

महीप ने देखा कि ठाकुर साहब के यहा जिस दुर्भेद्य रहस्य के वातावरण ने अपने चारो ओर बहुत से पर्दों का जाल तान रक्खा था उसमें से केवल एक पर्दा एक कोने से हटा है। केवल उस एकमात्र पर्दे के कुछ हटने से ही उसे ऐसा लगा जैसे कुछ दिनो के दम घोटनेवाले वातावरण की बद्धता में बहुत-सी बन्द खिडकियो में से एक का दरवाजा कुछ खुला है, जिससे किसी हद तक सास ली जा सकती है, और दूसरी खिडकियो को खोलने में सुविधा प्राप्त हो सकती है।

दुर्निवार कौतूहल से प्रेरित होकर उसने कहा—"क्या आप बता सकते है कि ठाकुर लक्ष्मीनारायणसिंह क्यो नही चाहते कि रूपा आपको चाहे ?"

एक खिसियाई हुई-सी मुसकान (जो ठीक मुसकान थी, या खीझ अथवा क्रोध की अभिव्यक्ति थी—महीप ठीक कुछ समझ न पाया) धीराज की आखो के नीचे खेल गई। उसने कहा—"इसका क्या कारण हो सकता है, इसे ठाकुर साहब ही जान सकते हैं। पर इस सम्बन्ध में स्वभावत तरह-तरह की कल्पनाएँ की जा सकती है।"

महीप ने देखा, यद्यपि धीराज अपने मन की बहुत-सी गाठे उसके आगे खोलने के लिए प्रारम्भ से ही विशेष उत्सुक रहा है, तथापि अभी तक वह अन्तर की बहुत-सी बाधाओ को पार नही कर पा रहा है। उसने स्वय उन बाधाओ को भरसक तोड़ने का प्रयास करने का निश्चय करते हुए कहा—"देखिए ठाकुर धीराजसिंह, आपने जब अपने व्यक्तिगत जीवन की कुछ गुप्ततम बातें मेरे आगे प्रकाशित करने की कृपा की है तब दूसरी बातो के सम्बन्ध में इस तरह का अर्थहीन सकोच न आपको सुहाता है, न यह उचित ही है। आप यदि मेरे प्रश्नो का स्पष्ट उत्तर दें तो बहुत सम्भव है, इससे आपके मन को भी शान्ति पहुँचे और यह भी सम्भव है कि मैं भी अपनी समझ के अनुसार आपको इस विषय में कुछ सलाह दे सकू। यह तो हो ही नहीं सकता कि इस सम्बन्ध में ठाकुर साहब के मनोभाव के किसी सगत कारण का आभास

उस पर नही पड़ने पाता, उसके स्वभाव में दृढता का आ जाना स्वाभाविक है। दूसरो की मनोभावनाओ का कोई मूल्य उसके लिए नही होता, और अपने किसी भी साधारण-से-साधारण स्वार्थ की पूर्ति के लिए दूसरो की इच्छाओ को बेझिझक कुचल डालने मे वह कोई बात उठा नही रखता। यही उसके स्वभाव की दृढता है। ऐसा जालिम व्यक्ति स्वभावत. दूसरो पर बहुत प्रभाव डालता है और दूसरो को—विशेषकर दुर्बल इच्छाशक्तिवाले व्यक्तियो को—अपना आनुगत्य स्वीकार करने के लिए बाध्य करता है। रूपा ने ठाकुर साहब का जो आनुगत्य स्वीकार किया है उसके मूल में यही कारण मुझे लगता है। पर इस प्रकार के दृढ स्वभाव वाले जालिम से यदि आप यह आशा करें कि वह जीवन में किसी अन्याय या अत्याचार का विरोध करेगा तो आप भूल करेंगे। इसका कारण यह है कि अन्याय और अत्याचार की कोई अनुभूति ही उसके मन मे नही जग पाती। मानव-जीवन की यह कितनी बडी 'ट्रेजेडी' है कि जिस सुकुमार-स्वभाव व्यक्ति के मन के 'शीशे पर अन्याय और अत्याचार का प्रतिबिंब स्पष्ट झलक उठता है उसकी उदारता-जनित दुर्बलता उसे उसका विरोध करने की शक्ति नही दे पाती, और जो व्यक्ति विरोध करने की शक्ति रखता है उसके कुन्द हृदय पर अन्याय की छाप नही पडने पाती, और वह केवल अपने व्यक्तिगत स्वार्थ में पडनेवाली बाधा को ही एकमात्र अन्याय मानता है।"

सोलहवां परिच्छेद

तांगे पर वापस जाते हुए महीप ने कहा—"आपकी बातें सुनकर मेरे मन मे एक दूसरी ही सम्भावना की कल्पना जगती है।"

तनिक घबराई हुई आवाज मे धीराज ने पूछा—"वह क्या ?"

"मुझे ऐसा लगता है कि ठाकुर साहब की तीव्र इच्छा-शक्ति का आकर्षण रूपा के लिए ऐसा प्रबल सिद्ध हुआ है कि उसका प्रतिरोध करना उसके लिए

सोचा है कि वह कौन-सा कारण है, कौन-सी मनोवृत्ति है, जिसने रूपा को ठाकुर साहब की 'इच्छा की वलि' होने के लिए प्रेरित किया ?"

"इस बात का कोई प्रत्यक्ष कारण खोज निकालना बहुत कठिन है। कोई गहरा मनोवैज्ञानक कारण इसके पीछे हो सकता है। मैंने इस विषय पर खूब सोचा है, और तरह-तरह के अनुमान और सन्देह इस बात को लेकर मेरे मन में उत्पन्न हुए हैं। पर एक कारण मुझे विशेष रूप से जँचा है। ठाकुर लक्ष्मीनारायणसिंह के स्वभाव में मैंने एक ऐसी दृढता पाई है जो दूसरो की इच्छा-शक्ति को कुचल कर उसके स्थान पर अपनी इच्छा का आरोपण करने की क्षमता रखती है। मै उनके स्वभाव की अच्छाइयो और बुराइयों का विश्लेषण नही कर रहा हूँ—मै केवल एक मनोवैज्ञानिक तथ्य को आपके सामने प्रकट कर रहा हूँ। किसी दुष्टतम व्यक्ति में भी स्वभाव की दृढता और इच्छा-शक्ति की प्रवलता हो सकती है—विशेष कर जालिमो में यह वात पाई जाती है। जो व्यक्ति पग-पग पर दूसरो की भावनाओ का खयाल रखता है वह उदार, दयालु और सहानुभूतिशील हो सकता है, पर अक्सर यह देखा गया है कि ऐसे व्यक्ति के स्वभाव में दृढता नही रहती। दूसरो की दुर्वलताओ के प्रति उदार मनोभाव रखने से स्वय उसके स्वभाव में दुर्वलता आ जाती है और जीवन में कभी किसी अन्याय का विरोध करने और अत्याचार का दमन करने की शक्ति उसमें नही रह जाती। वह किसी के अन्याय और अत्याचार को देखकर भी नहीं देखना चाहता, क्योंकि वह मानव-चरित्र की दुर्वलताओ के प्रति उदार होने के कारण अन्यायी और अत्याचारी के मन को दुखाना नही चाहता। दूसरो की साधारण भावनाओ का खयाल रखनेवाले व्यक्ति के सम्वन्ध में मैंने यह वात कही है, और जो व्यक्ति दूसरो की केवल साधारण भावनाओ का ही नही, वल्कि मन के नीचे छिपी हुई अत्यन्त सुकुमार भावनाओ का भी खयाल रखता है, वह तो और भी अधिक दुर्वल-स्वभाव वन जाता है। पर जिस व्यक्ति का हृदय इतना अधिक कुन्द होता है कि दूसरो की भावनाओ का कोई प्रतिविंव ही

पूछिए तो अब भी मेरे मन के एक कोने से यह विश्वास नही हट पाया है, हालाकि आपने जो बात मुझे सुझाई है वह मुझे जँच गई है ।"

महीप कुछ दूसरे ही सोच में पडा हुआ था । रूपा की चर्चा के सिल-सिले में एक बात रह-रहकर, बराबर दबाने पर भी, उसके मन में उभर उठती-थी, जो बार-बार उसके मन को खरोचकर खीझ उत्पन्न कर रही थी । ठाकुर साहब ने उसके कान में जो यह बात भरी थी कि नीलिमा से उनके विवाह की बात प्राय. पक्की हो चुकी है वह आज उसके मन मे बरबस उथल उठती थी ।

उसने कहा—"तर्क के लिए मान लिया जाय कि रूपा मन-ही-मन आप को ही चाहती है, ठाकुर साहब को नही, और केवल भय या सकोचवश ठाकुर साहब की अधीनता स्वीकार किये हुए है । पर इतना तो आप भी मानते है कि रूपा ठाकुर साहब को चाहती हो या न चाहती हो, ठाकुर साहब रूपा को अवश्य चाहते है । अब प्रश्न यह है कि यदि ठाकुर साहब रूपा को चाहते है, और उस पर इतनी कड़ी निगरानी रखते है कि आपके साथ उसे चन्द मिनटो की बातचीत तक के लिए अवसर नही देना चाहते, तो इन सब बातो से उनका अन्तिम उद्देश्य क्या सिद्ध होता है ? क्या इससे यह सिद्ध नही होता होता कि वह रूपा से विवाह करने की इच्छा रखते है ? और यदि वह सचमुच रूपा से विवाह करना चाहेंगे तो उन्हे इसके लिए रोक कौन सकता है ? क्या आप यह समझते है कि रूपा इस सम्बन्ध में प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी भी रूप से अपनी आपत्ति जतावेगी ?"

धीराज ने इस बार अपनी आह को दबाने की चेष्टा नही की । कुछ रुककर उसने उत्तर दिया—"नही, मैं नही समझता कि वह किसी भी रूप में अपनी आपत्ति जतावेगी । आपसे बातें होने के पहले इस सम्बन्ध म मेरे मन में भ्रान्ति हो सकती थी, पर अब नही ।"

इसके बाद कुछ समय तक सन्नाटा छाया रहा । तांगा प्रधान सड़क

सम्भव नही रहा है, और कोई दूसरा चारा न देखकर उसने अपनी क्षीण इच्छा-शक्ति को उस प्रचड प्रवेगशील इच्छा-शक्ति के आगे अर्पित कर दिया है—किसी भय से नही, बल्कि स्वाभाविक नियम से।"

"अर्थात् आपके मत से रूपा ने स्वेच्छा से ठाकुर लक्ष्मीनारायणसिंह का आनुगत्य स्वीकार किया है ?"

"अर्थात् आपके ही शब्दो मे रूपा ने जो अपने को ठाकुर साहब की इच्छा की बलि बना दिया है उसमें उसे सुख प्राप्त हुआ है, अपनी चरम विवशता की अवस्था को उसने अपना परम सौभाग्य समझ लिया है।"

"आप क्या सचमुच ऐसा समझते है ?" यह प्रश्न करते हुए धीराज की आवाज जैसे काप रही थी।

महीप ने उत्तर दिया—"मै पहले ही कह चुका हूँ कि मैने आपके ही मुह से जो बाते सुनी है उन्ही के आधार पर इस परिणाम पर पहुँचा हूँ।"

"पर—पर—आपका अनुमान ठीक ही जान पडता है। मुझे भी आपकी यह बात जँचने लगी है।" यह कहते हुए धीराज ने एक लम्बी आह को दबाने की व्यर्थ चेष्टा की।

कुछ क्षण तक चुप रहने के बाद धीराज फिर बोल उठा—"आश्चर्य है कि जिस वास्तविकता को आप केवल आध घण्टे की बातचीत से भाप गये उसे मै तीन वर्षो के प्रत्यक्ष अनुभव से भी नही ताड पाया! रूपा के समान गुमसुम स्वभाव की लडकी के मन के भीतर की बाते सहज में मालूम नही की जा सकतीं, और मेरे जैसा आत्मलीन मनुष्य निरपेक्ष दृष्टि से किसी भी विषय पर विचार करने में असमर्थ है, फिर जो बात स्वय अपने से सम्बन्धित हो उसके विषय में कहना ही क्या है! पता नही, यह धारणा आज तक मेरे मन में कैसे जमी रही कि रूपा भीतर-ही-भीतर बराबर मुझे ही चाहती रही है और ठाकुर साहब के यहा आने के बाद केवल अपनी विवशता से ठाकुर साहब के भय से और सकोच से मुझसे कतराती रही है। और, सच

पूछिए तो अब भी मेरे मन के एक कोने से यह विश्वास नही हट पाया है, हालाकि आपने जो वात मुझे सुझाई है वह मुझे जँच गई है।"

महीप कुछ दूसरे ही सोच में पडा हुआ था। रूपा की चर्चा के सिलसिले में एक वात रह-रहकर, वरावर दवाने पर भी, उसके मन मे उभर उठती थी, जो वार-वार उसके मन को खरोचकर खीझ उत्पन्न कर रही थी। ठाकुर साहव ने उसके कान मे जो यह वात भरी थी कि नीलिमा से उनके विवाह की वात प्राय. पक्की हो चुकी है वह आज उसके मन मे वरवस उथल उठती थी।

उसने कहा—"तर्क के लिए मान लिया जाय कि रूपा मन-ही-मन आप को ही चाहती है, ठाकुर साहव को नही, और केवल भय या सकोचवश ठाकुर साहव की अधीनता स्वीकार किये हुए है। पर इतना तो आप भी मानते है कि रूपा ठाकुर साहव को चाहती हो या न चाहती हो, ठाकुर साहव रूपा को अवश्य चाहते है। अव प्रश्न यह है कि यदि ठाकुर साहव रूपा को चाहते है, और उस पर इतनी कड़ी निगरानी रखते है कि आपके साथ उसे चन्द मिनटो की वातचीत तक के लिए अवसर नही देना चाहते, तो इन सव वातो से उनका अन्तिम उद्देश्य क्या सिद्ध होता है? क्या इससे यह सिद्ध नही होता होता कि वह रूपा से विवाह करने की इच्छा रखते है? और यदि वह सचमुच रूपा से विवाह करना चाहेगे तो उन्हें इसके लिए रोक कौन सकता है? क्या आप यह समझते है कि रूपा इस सम्वन्ध मे प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी भी रूप से अपनी आपत्ति जतावेगी?"

धीराज ने इस वार अपनी आह को दवाने की चेष्टा नही की। कुछ रुककर उसने उत्तर दिया—"नही, मैं नही समझता कि वह किसी भी रूप मे अपनी आपत्ति जतावेगी। आपसे वाते होने के पहले इस सम्वन्ध म मेरे मन में भ्रान्ति हो सकती थी, पर अव नही।"

इसके वाद कुछ समय तक सन्नाटा छाया रहा। तागा प्रधान सड़क

से मुडकर एक अपेक्षाकृत निर्जन सडक से होकर जा रहा था। घोडे की टापो की नियमित गति और तेज़ रफ्तार से जो निरन्तर एक ही प्रकार की हाहाकार भरी आवाज़ उस एकान्त और अन्धकारप्राय सडक पर हो रही थी वह उन दोनो की अन्तर्भावनाओ मे एक विचित्र दोलन उत्पन्न कर रही थी।

अचानक महीप ने उस मोहक भ्रान्ति उत्पन्न करने वाले सन्नाटे को भेदते हुए कहा—"आपने जब अपने एकान्त जीवन की इतनी बातें मुझे बताई है, तब आप इस बात के अधिकारी है कि ठाकुर साहब से सम्बन्धित एक और रहस्य का हाल मुझ से जान लें। वह रहस्य ही है, क्योंकि उसमें कितनी सचाई है और कितनी नहीं, यह मै नहीं जानता। पर पहले मै आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ। आप क्या खन्ना-परिवार की लडकियों से परिचित है? नीलिमा खन्ना, प्रतिमा खन्ना, सु—"

"जी हा, मै उन्हे जानता हूँ। ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिह के ही यहा उनसे मेरा परिचय हुआ है।"

"ओह! तब ठीक है।" यह कहकर महीप क्षण भर के लिए रुक गया। ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिह के यहा खन्ना बहनें निश्चय ही आती-जाती होंगी। महीप जानता था कि इस समाचार में न कोई नयापन है और न आश्चर्य की कोई बात। फिर भी क्षण-भर के लिए उसे जैसे एक धक्का-सा लगा। पर तुरन्त ही वह सँभल गया और बोला—

'मुझे यह बताया गया है कि नीलिमा खन्ना से ठाकुर साहब के विवाह की बात तय हो चुकी है। इसलिए रूपा के साथ—"

'किसने आपको बताया?" चौंककर धीराज ने पूछा।

"स्वय ठाकुर साहब ने मुझसे कहा है।"

"झूठ! झूठ! रूपा के रहते कभी ऐसा हो नहीं सकता!'— एक

विचित्र अस्वाभाविक आवेश के साथ धीराज बोल उठा। पर तुरन्त ही जैसे कुछ सोचकर उसने कहा—"और यदि यह बात वास्तव मे सच निकली, तो रूपा के साथ इससे बडा अन्याय दूसरा हो नही सकता, क्योकि अब यह बात जलते हुए अगारो के-से अक्षरो मे मेरे आगे स्पष्ट हो उठी है कि रूपा निश्चय ही स्वेच्छा से ठाकुर साहब की इच्छा की बलि हुई है और निश्चय ही इस दृढ विश्वास के बल पर वह अभी तक टिकी हुई है कि ठाकुर साहब से उसका विवाह होगा। आपकी बातो से मेरे भीतर की जो बन्द आखे खुली है वे उस दहकते हुए सत्य को अब प्रत्यक्ष देखने लगी है, जिसके ताप का अनुभव मै अपने अज्ञात मे इतने दिनो तक करता आ रहा था, पर जिसे देख नहीं पा रहा था।"

महीप स्वय इन सब बातो के रहस्य-जाल मे उलझ गया था, इसलिए वह चुप रहा। तरह-तरह की भ्रामक कल्पनाए उसके भीतर 'मिकी माउस' के-से खेल खेल रही थीं।

सत्रहवां परिच्छेद

जब तांगे ने ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिह के बंगले के फाटक के भीतर प्रवेश किया, दोनो ने देखा कि बाहर चबूतरे पर एक अच्छा-खासा जमघट लगा हुआ है। जब तागा कुछ और निकट पहुँचा, किसी का अत्यन्त परिचित कण्ठस्वर महीप के कानो में गया, जिसने बरबस उसके सिर से लेकर पाव तक पुलक की एक तीव्र तडित्-तरंग प्रवाहित कर दी, साथ ही वह अकारण ही अपने को होलदिल-सा मालूम करने लगा।

तागे से उतरने पर धीराज ने बहुत फुर्ती से जेब मे बटुआ निकाल कर तागे वाले को माग के अनुसार भाडा चुका दिया, उसके बाद दोनो चबूतरे की ओर बढ़े। रोशनी काफी तेज थी। महीप ने देखा कि श्रीमती खन्ना, नीलिमा और प्रतिमा तीनो आई हुई है। महीप के हृदय को जैसे कोई रबर की गेंद की तरह

दढे जोरों से, अत्यन्त निर्ममता के साथ, नीचे पटक कर ऊपर उछालता जा रहा हो।

ज्योंही उसने चबूतरे पर पाव रक्खा, त्योंही प्रतिमा मुख पर अकृत्रिम प्रसन्नता का भाव झलकाती हुई तनिक व्यगपूर्ण स्वर मे बोल उठी—"आइए, आइए, महीप जी, नमस्कार!"

उत्तर में महीप ने किंचित् सकोच की मृदु मन्द मुसकान के साथ उसकी ओर हाथ जोडे और क्षीण स्वर में कहा—"नमस्कार!"

उसने कनखियों से नीलिमा की ओर देखा। उसके मुख पर असाधारण गम्भीरता की छाप पडी हुई थी। नीलिमा उससे एक शब्द भी नहीं बोली, पर वह अपनी गम्भीर दृष्टि से बडे गौर से महीप की ओर देख रही थी। श्रीमती खन्ना के मुख पर तनिक आक्रोश का-सा भाव व्यक्त हो रहा था, जिसका कोई भी कारण महीप की कल्पना में नहीं आ पाता था। कुल मिला कर महीप के मन पर जो प्रभाव पडा उससे उसकी हौलदिली घटने के बजाय बढ़ने लगी थी। वह एक बार चुपचाप लौट चलने की सोच रहा था, पर शारदा देवी उसके त्राण का कारण बनीं! उन्होंने अपने बगल की एक कुर्सी आगे बढाते हुए बहुत ही स्निग्ध स्वर में कहा—"आइए, बैठिए, आप खडे क्यों है?"

अनिश्चित पगों से महीप आगे बढा और शारदा देवी की बगल में आखिर बैठ ही गया।

प्रतिमा ने कहा—"उस दिन के बाद फिर आपके तो दर्शन ही दुर्लभ हो गये! ठाकुर साहब के बँगले का जादू सचमुच बडा करामाती जान पडता है, जिसने इतने दिनो तक आप जैसे 'परदेशी पछी' को बाँध रखने में सफलता पाई है।"

महीप ने देखा कि एक दुष्टतापूर्ण मुसकान प्रतिमा की आखो के कोनो में और ओठो के चारों ओर आख-मिचौनी खेल रही है। प्राय तीन वर्ष पूर्व उसने

'परदेशी पछी' शीर्षक एक कविता लिखी थी। स्पष्ट ही उसी को प्रतिमा ने अपने व्यग का अस्त्र बनाया था। पर यह होने पर भी महीप को लगा, जैसे प्रतिमा का तीखा व्यग भी एक स्निग्ध, सजल और सुमगल भाव के रहस्यमय रस में डुबोया गया है।

उसने अपने मुख पर सहज भाव झलकाने की चेष्टा करते हुए उत्तर दिया—"मैं आपके यहा आना चाहता था, पर—मैं—मेरी तबीअत इस बीच अच्छी न रही।" कहते हुए उसने न चाहते हुए भी एक बार नीलिमा की ओर आधी नज़र से देखा।

नीलिमा अत्यन्त गम्भीर किन्तु परीक्षण की दृष्टि से उसकी ओर देख रही थी। पर महीप से वह अभी तक एक शब्द भी नहीं बोली थी। नीलिमा की बगल में ही रूपा बैठी हुई थी—भीता हरिणी की तरह त्रस्त और सकुचित। बीच-बीच में नीलिमा बहुत ही धीमे स्वर में रूपा से बातें करती जाती थी। धीराज अलग—प्राय एक कोने में—बैठा हुआ अत्यन्त उदास दृष्टि से उन दोनो की ओर देख रहा था। दोनो की बातें न धीराज को सुनाई देती थीं, न महीप को। पर वे दोनो उन दोनो के हाव-भाव, मुद्रा और चेष्टाओ पर एकटक आखो से और एकान्त मन से गौर कर रहे थे, जैसे उन दोनो के जीवन और मरण की समस्या उन्हीं मुद्राओ और चेष्टाओ पर निर्भर करती हो।

एक बार रूपा की दृष्टि का अनुसरण करते हुए नीलिमा की दृष्टि भी धीराज की ओर चली गई। एक झलक धीराज को देखते ही क्षण भर के लिए नीलिमा की आखे ठहर गईं। धीराज के म्लान और उदास मुख पर न जाने कौन-सी भयावह और रहस्यात्मक छाया उसने देखी, जिससे वह सहम-सी गई।

ठाकुर साहब पास ही श्रीमती खन्ना की बगल में बैठे हुए थे। श्रीमती खन्ना से बातें करते हुए वह भी नीलिमा और रूपा की ओर तिरछी नजर से देख रहे थे, और बीच-बीच में एक-आध बार महीप, धीराज और प्रतिमा, इन तीनो व्यक्तियो को भी अपनी कृपा-दृष्टि से कृतार्थ कर रहे थे।

शारदा देवी महीप से बातें कर रही थीं और महीप कुछ अनमने भाव से उनकी बातो का उत्तर दे रहा था। सहसा शारदा देवी ने उपस्थित मण्डली को सम्बोधित करते हुए कहा—"मैं प्रस्ताव करती हूँ कि महीप जी हम लोगों को अपनी कोई नई रचना सुनाने की कृपा करें।"

प्रतिमा, जो पास ही बैठी हुई थी, सहसा बोल उठी—"मै इस प्रस्ताव का विरोध करती हूँ।"

महीप ने देखा, प्रतिमा के मुख पर परिहास का कोई चिन्ह वर्तमान नहीं था। श्रीमती खन्ना, नीलिमा और ठाकुर साहब को छोड कर शेष सब व्यक्तियों को प्रतिमा के इस विरोध पर आश्चर्य हुआ। ठाकुर साहब को आश्चर्य तो नही हुआ, पर इस बात से एक हलकी-सी खरोंच उनके भीतर के किसी एक स्थान में लगी—कहा पर और क्यों लगी थी, यह वह स्वय नहीं जान पाये थे। उनका स्वभाव इस तरह का नहीं था कि किसी हलकी-सी खरोच को भी चुपचाप सहन कर लेते। इसके अतिरिक्त वह बहुत देर से प्राय मौन बैठे थे और उस मौन की प्रतिक्रिया-स्वरूप जो बेचैनी उनके भीतर हो रही थी उसे वह बाहर निकालना चाहते थे। उन्होंने कहा—"हम सब लोग यह जानना चाहेंगे कि आप शारदा देवी के प्रस्ताव का विरोध क्यों करती हैं।"

प्रतिमा ने कहा—"किसी घोर असाहित्यिक मण्डली के बीच कोई प्रतिष्ठा योग्य साहित्यिक अपनी कोई रचना सुना कर निरादर और अवज्ञा का भागी बने, यह मै नहीं चाहती।"

इस पर शारदा देवी बोल उठीं—"तो क्या आप हम सब लोगो को मूर्ख समझती हे?"

"मै मूर्ख तो नहीं कहूँगी", प्रतिमा ने कहा—"पर इतना मैं निश्चित रूप से कह सकती हूँ कि इस मण्डली में कुछ व्यक्ति ऐसे हे जो घोर अरसिक हैं और महीप जी की गम्भीर कविता के ऊपरी स्तर का भी भाव समझने की योग्यता नहीं रखते। ऐसी हालत में मुझे यह अत्यन्त अनुचित जँचता है कि वह अपनी

कविता पढ़ें और अरसिकों के उपहास के पात्र बनें। यह केवल एक कवि का अपमान नहीं, बल्कि समस्त हिन्दी-संसार के प्रतिष्ठित साहित्यकों के अपमान का प्रतीक होगा।"

शारदा देवी तमककर उठ खड़ी हुई और बोली—"साहित्यिकों का अपमान तो बाद में होता, पर हम लोग पहले ही अपमानित हो चुके हैं। कम-से-कम मैं तो अपने को बहुत अपमानित समझती हूँ, इसलिए मैं अब इस मण्डली में नहीं बैठ सकती।" यह कहकर वह जाने लगीं।

एक साधारण-सी बात से इस कदर बात बढ़ जायगी, इसकी कल्पना न ठाकुर साहब ने की थी, न किसी दूसरे व्यक्ति ने। सब लोग स्तब्ध बैठे हुए थे। श्रीमती खन्ना गुस्से से भरी हुई मन-ही-मन जल-भुन रही थीं, पर आज उन्होंने निश्चय कर लिया था कि प्रतिमा चाहे किसी हद तक भी बौखलावे, वह एक शब्द भी नहीं बोलेंगी। पिछली बार के अनुभव से उन्होंने यह शिक्षा पाई थी कि इन सब विषयों में प्रतिमा की किसी बात का विरोध करना उसे अधिक भड़काना है।

शारदा देवी को जाते देख कर प्रतिमा भी तत्काल उठ खड़ी हुई और उन्हें सम्बोधित करके बोली—"आप इस मण्डली को छोड़ कर उठें, इससे बेहतर यह है कि मैं स्वयं उठकर चली जाती हूँ। आप बैठी रहें।" अब वह सचमुच चबूतरे की सीढ़ियों से नीचे उतरने लगी।

श्रीमती खन्ना अपनी प्रतिज्ञा को अधिक न निभा सकीं। चिल्ला कर भय-मिश्रित डांट के स्वर में बोलीं—"प्रतिमा!" और आवाज लगाते ही उठकर प्रतिमा की ओर आगे बढ़ीं।

ठाकुर साहब भी स्थिति की गम्भीरता को देखकर उठ खड़े हुए और प्रतिमा के पास जाकर हाथ जोड़ते हुए बोले—"प्रतिमा जी, मैं आपके पावों पड़कर प्रार्थना करता हूँ कि आप उठकर न जावें। हम लोगों से जो अपराध हुआ हो उसे क्षमा कर दें। भविष्य में कभी इस तरह की कोई भूल नहीं होने दूंगा।"

वह स्वय नहीं जानते थे कि किस तरह की 'भूल' की बात वह कह रहे हैं। पर आज उन्होंने जो अपना रूप बदल था उसका एक रहस्यमय कारण था, नहीं तो इस तरह से गिडगिडाना उनके स्वभाव के अनुरूप नहीं था। उनके गिडगिडाने से प्रतिमा कुछ द्विविधा में पड गई और श्रीमती खन्ना उसकी द्विविधा से लाभ उठाकर उसका हाथ पकडकर प्राय खीचती हुई उसे फिर ऊपर ले गई।

अठारहवां परिच्छेद

प्रतिमा ने जो दृश्य खडा किया था, उसके बाद 'पार्टी' अच्छी तरह जम न पाई। अतिथियों ने किसी तरह 'डिनर' समाप्त किया और अधिकाशतः लोगो ने अपने अगल-बगल के व्यक्तियो के साथ एक प्रकार से काना-फूसी करके शेष समय बिताया—जैसे सभी अपने किसी अपराध के कारण खिसियाये हुए हों।

डिनर समाप्त होने पर जब सब लोग उठ खडे हुए और चबूतरे से नीचे उतरकर अपने-अपने घरो को जाने की तैयारी करने लगे तो महीप ने देखा, नीलिमा उसके पीछे-पीछे चली आ रही है। रास्ता छोडने के इरादे से वह एक ओर खडा हो गया।

"गुड-नाइट, मिस्टर प्रामेथ्यूज!"—सहज व्यग भरी मुसकान से नीलिमा ने कहा। महीप को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। नीलिमा इतनी देर तक उससे एक शब्द भी नहीं बोली थी और असाधारण रूप से गम्भीर रुख धारण किए हुए थी। महीप जानता था कि वह इतनी देर तक जान-बूझकर उसकी उपेक्षा करती रही है। अब जब अकस्मात् उसने अपनी चिर-परिचित मुसकान से, मर्म को गुदगुदाने वाले तीखे झकार भरे स्वर में कहा—"मिस्टर प्रामेथ्यूज!" तो महीप की आखों के आगे से पल में जैसे युगो का काला पर्दा हट गया। पर वह बोला कुछ नही, केवल प्रश्न-भरी दृष्टि मे नीलिमा की ओर देखता रहा। बिजली के प्रकाश मे महीप ने देखा, नीलिमा ने फिर एक बार रहस्यपूर्ण मुसकान-भरी दृष्टि की मोहिनी उस पर

डाली। उसके बाद वह संकेत के स्वर में धीरे से बोली—"यहां खड़े क्यों हैं ? चलिए, आगे बढ़िए।" और यह कहकर वह स्वयं धीमी चाल से आगे बढ़ निकली। महीप उस संकेत का कोई अर्थ न समझ पाया; केवल मन्त्र-मुग्ध-सा उसके पीछे हो लिया।

कुछ ही दूर आगे बढ़ कर कदम्ब के एक पेड़ के नीचे नीलिमा खड़ी हो गई। उस स्थान तक चबूतरे पर जलनेवाले बिजली के बड़े बल्ब का प्रकाश पहुंचता नहीं था। केवल ग्रीष्मकालीन शुक्ला नवमी का धूसर चन्द्रमा अपना मटमैला प्रकाश पेड़ की टहनियों के बीच से फैला रहा था। और सब लोग इधर-उधर बिखर गये थे। श्रीमती खन्ना और प्रतिमा दोनों ठाकुर साहब के साथ बंगले के उस पार के दालान की ओर चली गई थीं।

महीप घबराया हुआ-सा नीलिमा के पास पहुंचा। नीलिमा ने कुछ दबी हुई आवाज में कहा—"महीप जी, आप क्या सचमुच हम लोगों से नाराज हो गये ?"

महीप ने गला कुछ साफ करके कहा—"आप लोगों से नाराज़ होने का कोई कारण मेरे पास नहीं है।"

"तब फिर क्यों उस दिन के बाद हमारे यहां नहीं आये ? मैंने आपसे आपकी कविता की नकल मांगी थी वह भी आपने नहीं दी !"

महीप को ऐसा लगा कि नीलिमा की आवाज़ किसी अस्पष्ट अपरिस्फुट पीड़ा से कांप रही है। व्यंग और विद्रूप का लेश भी उस समय उसके स्वर में वर्तमान नहीं था। महीप के लिए सिर से लेकर पांव तक एक विचित्र पुलकोन्माद बिजली की तरह लहरा उठा। पर वह इस बात का कोई कारण न बता सका कि वह उस दिन के बाद फिर क्यों एक दिन भी खन्ना-परिवार से मिलने नहीं गया और ठाकुर साहब के यहां पड़ा रहा। इसका कारण वह स्वयं नहीं जानता था। वह उत्तर में झूठ-मूठ की कोई बात कहना चाहता था, पर कविता के क्षेत्र के अलावा और किसी भी क्षेत्र में कोई कल्पित बात गढ़ने की कला में वह निपुण नहीं था।

क्षण भर के लिए वह चुप रहा। उसके बाद सहसा बोल उठा—"मैं स्वय नहीं जानता कि मैं तब से फिर क्यो आपके यहा नहीं आया। मुझे एक जरूरी काम से कानपुर जाना था, वहा भी मैं न जा सका, और पता नही क्यो, बिना किसी उद्देश्य के ठाकुर साहब के यहा निठल्लों की तरह पडा हूँ। सम्भव है, कुछ सोचने पर मैं अपने न आने का कारण बता सकू, पर इस समय इस प्रश्न का कोई उत्तर मेरे पास नहीं है, नीलिमा जी, आप विश्वास मानिए।"

कुछ क्षण तक फिर सन्नाटा छाया रहा, जो महीप को अनन्त काल की असीम मौन जिज्ञासा की तरह लगा। सम्भवत स्वय नीलिमा भी उसके विचित्र उत्तर से भ्रान्त हो रही थी। पर तत्काल ही वह सभल गई। एक बार सरसरी दृष्टि से चारों ओर देखती हुई बोली—"खैर, मैं इसी समय आपसे उत्तर चाहती भी नहीं। आप सोच लीजिएगा तब बताइएगा। इस समय मैं आपसे यह पूछना चाहती हूँ कि क्या आप मगलवार की सध्या को ७ बजे के समय मेरे यहा आ सकेंगे? जल्दी उत्तर दीजिए, मुझे जाना है। मा इन्तजार कर रही होगी।"

महीप की विभ्रान्ति बेतरह बढ गई थी। पर उसे कोई-न-कोई उत्तर जल्दी ही देना था। एक बार उसके मन में इच्छा हुई कि स्पष्ट शब्दो में अस्वीकार कर दे। पर दूसरे ही क्षण उसके मुह से निकला—"अच्छी बात है, आऊगा।"

"तब भूलिएगा नहीं। आज सनीचर है। इसके बाद इतवार, फिर सोमवार और तब मगलवार। उस रोज ८ तारीख है। शाम को ७ बजे! अच्छा, इस समय जाती हूँ।' यह कहकर वह तेजी से चली गई।

महीप कुछ देर तक भ्रान्त भाव से उसी कदम्ब के पेड के नीचे खडा रहा। सारा रहस्य उसकी समझ में तनिक भी नहीं आया। वह मन-ही-मन गुत्थी को सुलझाने का असम्भव प्रयास करता रहा। पर ज्यो-ज्यो सोचता था त्यो-त्यो गुत्थी सुलझने के बजाय और अधिक उलझती चली जाती थी।

प्राय पन्द्रह मिनट तक वह वही खडा रहा। उसके बाद अनिश्चित पगो

से बंगले की ओर बढ़ा। जिस समय वह बगले के पास पहुँचा उसी समय खन्ना-परिवार की 'कार' भोपू बजाती हुई फाटक से बाहर निकल गई। महीप अपने कमरे के बाहर दालान मे बिछी हुई खाट पर बिना कपडे उतारे ही चुपचाप लेट गया। लेटे-लेटे वह ऊपर चन्द्रमा की ओर देखता हुआ सोचने लगा, नीलिमा ने क्यो बुलाया है? मगलवार ८ ता० को ७ बजे शाम! विशेष दिन, विशेष समय बुलाने में क्या रहस्य हो सकता है? सोचते-सोचते एक विचित्र कारण उसके मस्तिष्क में घुसकर काटे की तरह गड गया। असख्य कारणो की सम्भावनाओं के रहते वह विशेष कारण ही क्यो उसके मस्तिष्क मे कुलबुलाने लगा, इस बात की छान-बीन करने की न तो उस समय उसमे प्रवृत्ति ही थी, न सामर्थ्य। धीरे-धीरे उसके मन मे यह सन्देह ध्रुव विश्वास का रूप धारण करने लगा कि मगलवार, ८ ता० को ७ बजे सध्या के समय ठाकुर साहब से नीलिमा की सगाई का शुभ मुहूर्त स्थिर किया गया है, इसीलिए नीलिमा ने उसे ठीक उसी समय के लिए बुलाया है, ताकि यदि उसके—महीप के—मन में इस विषय मे (नीलिमा और ठाकुर साहब के विवाह की बातचीत पक्की होने के सम्बन्ध मे) कोई सन्देह शेष रह गया हो, तो वह दूर हो जाय।

"पर मेरा सन्देह दूर करने की चिन्ता नीलिमा को क्यों पडी है?" वह मन-ही-मन कहने लगा—"इसमे उसका क्या स्वार्थ हो सकता है कि मैं इस सगाई की बात से परिचित हो जाऊ? हा, समझा! वह निश्चय ही किसी कारण से मुझसे चिढी हुई है। ठाकुर साहब रोज उसके पास जाते है, सम्भवत उन्होने कोई बात मेरे खिलाफ़ उसके कानो में भर दी है। शायद वह मेरे मन की जलन से भी परिचित हो गई है। इसलिए जान-बूझकर ऐसे अवसर पर मुझे बुलाकर मुझे और अधिक जलाना चाहती है—ताकि ठाकुर साहब और वह दोनो मिलकर नीलिमा के प्रति मेरे हास्यास्पद मनोभाव की खिल्ली उडावें! ठीक! बिलकुल यही बात है...."

क्षण भर के लिए वह चुप रहा। उसके बाद सहसा बोल उठा—"मैं स्वय नहीं जानता कि मैं तब से फिर क्यों आपके यहा नहीं आया। मुझे एक जरूरी काम से कानपुर जाना था, वहा भी मैं न जा सका, और पता नही क्यो, बिना किसी उद्देश्य के ठाकुर साहब के यहा निठल्लों की तरह पड़ा हूँ। सम्भव है, कुछ सोचने पर मैं अपने न आने का कारण बता सकू, पर इस समय इस प्रश्न का कोई उत्तर मेरे पास नहीं है, नीलिमा जी, आप विश्वास मानिए।"

कुछ क्षण तक फिर सन्नाटा छाया रहा, जो महीप को अनन्त काल की असीम मौन जिज्ञासा की तरह लगा। सम्भवत स्वय नीलिमा भी उसके विचित्र उत्तर से भ्रान्त हो रही थी। पर तत्काल ही वह सभल गई। एक बार सरसरी दृष्टि से चारों ओर देखती हुई बोली—"खैर, मैं इसी समय आपसे उत्तर चाहती भी नहीं। आप सोच लीजिएगा तब बताइएगा। इस समय मैं आपसे यह पूछना चाहती हूँ कि क्या आप मगलवार की सध्या को ७ बजे के समय मेरे यहा आ सकेंगे? जल्दी उत्तर दीजिए, मुझे जाना है। मा इन्तजार कर रही होगी।"

महीप की विभ्रान्ति बेतरह बढ गई थी। पर उसे कोई-न-कोई उत्तर जल्दी ही देना था। एक बार उसके मन में इच्छा हुई कि स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार कर दे। पर दूसरे ही क्षण उसके मुह से निकला—"अच्छी बात है, आऊगा।"

"तब भूलिएगा नहीं। आज सनीचर है। इसके बाद इतवार, फिर सोमवार और तब मगलवार। उस रोज ८ तारीख है। शाम को ७ बजे! अच्छा, इस समय जाती हूँ।' यह कहकर वह तेजी से चली गई।

महीप कुछ देर तक भ्रान्त भाव से उसी कदम्ब के पेड़ के नीचे खडा रहा। सारा रहस्य उसकी समझ में तनिक भी नहीं आया। वह मन-ही-मन गुत्थी को सुलझाने का असम्भव प्रयास करता रहा। पर ज्यों-ज्यों सोचता था त्यों-त्यों गुत्थी सुलझने के बजाय और अधिक उलझती चली जाती थी।

प्राय पन्द्रह मिनट तक वह वहीं खडा रहा। उसके बाद अनिश्चित पगों

रही। किसी पुरुष के साथ रात के समय एकान्त मे बातें करके कोई ऐसा गुप्त 'एप्वाएंटमेंट' करने का साहस उसने इसके पहले कभी नहीं किया जो उसकी मा से या प्रतिमा से छिपा हो। ८ तारीख़ की सध्या को खन्ना-परिवार की महिलाओ को एक घनिष्ठ आत्मीय व्यक्ति के यहा विवाह-पार्टी मे सम्मिलित होना था। यह बात पहले से ही नीलिमा को मालूम थी। यह सब जानकर ही उसने महीप से उस दिन मिलने की बात तय की थी।

८ तारीख़ को सुबह से ही उसने तबीअत खराब होने का बहाना बनाना आरम्भ कर दिया। जब प्रतिमा और उसकी मा जाने की तैयारी करने लगीं तो उसने 'एस्पिरीन' की एक टिकिया मगाकर खाई और माथे पर अमृताजन मलना शुरू कर दिया। जब श्रीमती खन्ना ने पूछा कि वह तैयार क्यो नहीं हो रही है तो वह अमृताजन को और अधिक जोर से मस्तक पर मलती हुई बोली—"देखती नही हो मा, मै सिर-दर्द के इलाज में लगी हूँ। माथा भिन्ना रहा है। मै आज किसी हालत में भी विवाह-पार्टी में शरीक नहीं हो सकूँगी। तुम लोग जाओ, मै दो-एक घण्टे के लिए लेटकर आराम करना चाहती हूँ।"

श्रीमती खन्ना चिन्तित हो उठी। उन्हे मालूम था कि नीलिमा कभी किसी भी पार्टी में शरीक होने से चूकनेवाली नही है। इसलिए उसका जी खराब होने के सम्बन्ध में सन्देह का लेश भी उनके मन में नहीं उठा। उन्होंने कहा—"जब तुम्हारी तबीअत अच्छी नही है, तब हम लोगों का जाना भी कैसे हो सकता है? तुम्हे इस हालत में छोडा कैसे जा सकता है! डा० श्यामलाल को बुलाऊ?" डा० श्यामलाल खन्ना-परिवार के परचे हुए डाक्टर थे।

"नही, मा, नहीं," खीझकर नीलिमा ने कहा—"तुम्हारे आगे तो जी खराब होने की चर्चा करना भी एक पाप है। कह दिया कि खाली सिर दर्द है, और कोई शिकायत नही है। बात-बात में डाक्टर को बुलाने की तुम्हारी बीमारी कब छूटेगी? मै दो-एक घटा आराम कर लूगी, तो निश्चय ही मेरी

दिन भी धीराज के साथ गप-शप में विता डाली। रात बडी मुश्किल से कटी, पर वह भी किसी तरह बीत गई। सोमवार को एक-एक घटा बिताना उसके लिए दूभर हो गया, पर वह लम्बा दिन भी अन्त में किसी तरह कट ही गया और उससे भी लम्बी मालूम होने वाली रात भी आखिर कट ही गई। मगलवार का एक-एक क्षण उसे एक-एक घटे के बराबर लगने लगा। शाम को ६ बजे तक उसकी बेचैनी दूसरी तरह की थी, पर छ बजे के बाद उस बेचैनी ने एक दूसरा ही रूप धारण कर लिया। अब केवल नीलिमा के यहा जाने या न जाने की समस्या ही उसके सामने नही थी, बल्कि सब प्रत्यक्ष कारणों के अतीत एक वर्णनातीत घबराहट के भाव ने उसके केवल मन और शरीर को ही नही छा लिया, बल्कि उसकी सम्पूर्ण आत्मा को किसी भूतात्मा की तरह धर दबाया। किसी आसन्न सकट के आतक से जिस प्रकार कोई जन्तु एकदम लक्कड बन जाता है, वही अनुभूति बडी तेजी से महीप को भी जकडने लगी थी। जब साढे छ का घटा बजा तो जैसे कोई एक अज्ञात, अलौकिक शक्ति महीप के भीतर सहसा जागरित हो उठी। उसने भय और भ्रान्ति की समस्त भावनाओं को एक प्रबल झटके से फटकारा और वह किसी भी सकटपूर्ण स्थिति का सामना करने के लिए पूर्णत तैयार हो गया।

उसने देख लिया था कि ठाकुर साहब पहले ही अपनी मोटर में बाहर निकल गये थे। फुर्ती से नहा-धोकर, कपडे बदलकर वह निकल पडा। फाटक के बाहर ही एक तागा खाली मिल गया। उस पर सवार होकर वह अपने वचन को पूरा करने के उद्देश्य से चल पडा।

उन्नीसवां परिच्छेद

नीलिमा ने बडे दुस्साहस का काम किया था। वह स्वय इस बात को महसूस कर रही थी। उसका स्वभाव सकोच की जडता से कभी ग्रस्त नही रहा, इसमें सन्देह नहीं, पर ऐसी दुस्साहसिकता भी इसके पहले कभी उसमें नहीं

रही। किसी पुरुष के साथ रात के समय एकान्त में बातें करके कोई ऐसा गुप्त 'एप्वाइंटमेंट' करने का साहस उसने इसके पहले कभी नहीं किया जो उसकी मां से या प्रतिमा से छिपा हो। ८ तारीख की संध्या को खन्ना-परिवार की महिलाओं को एक घनिष्ठ आत्मीय व्यक्ति के यहां विवाह-पार्टी में सम्मिलित होना था। यह बात पहले से ही नीलिमा को मालूम थी। यह सब जानकर ही उसने महीप से उस दिन मिलने की बात तय की थी।

८ तारीख़ को सुबह से ही उसने तबीअत खराब होने का बहाना बनाना आरम्भ कर दिया। जब प्रतिमा और उसकी मां जाने की तैयारी करने लगीं तो उसने 'एस्पिरीन' की एक टिकिया मंगाकर खाई और माथे पर अमृतांजन मलना शुरू कर दिया। जब श्रीमती खन्ना ने पूछा कि वह तैयार क्यों नहीं हो रही है तो वह अमृतांजन को और अधिक जोर से मस्तक पर मलती हुई बोली—"देखती नहीं हो मां, मैं सिर-दर्द के इलाज में लगी हूं। माथा भिन्ना रहा है। मैं आज किसी हालत में भी विवाह-पार्टी में शरीक नहीं हो सकूंगी। तुम लोग जाओ, मैं दो-एक घण्टे के लिए लेटकर आराम करना चाहती हूं।"

श्रीमती खन्ना चिन्तित हो उठीं। उन्हें मालूम था कि नीलिमा कभी किसी भी पार्टी में शरीक होने से चूकनेवाली नहीं है। इसलिए उसका जी खराब होने के सम्बन्ध में सन्देह का लेश भी उनके मन में नहीं उठा। उन्होंने कहा—"जब तुम्हारी तबीअत अच्छी नहीं है, तब हम लोगों का जाना भी कैसे हो सकता है? तुम्हें इस हालत में छोड़ा कैसे जा सकता है! डा० श्यामलाल को बुलाऊं?" डा० श्यामलाल खन्ना-परिवार के परचे हुए डाक्टर थे।

"नहीं, मां, नहीं," खीझकर नीलिमा ने कहा—"तुम्हारे आगे तो जी खराब होने की चर्चा करना भी एक पाप है। कह दिया कि खाली सिर दर्द है, और कोई शिकायत नहीं है। बात-बात में डाक्टर को बुलाने की तुम्हारी बीमारी कब छूटेगी? मैं दो-एक घंटा आराम कर लूंगी, तो निश्चय ही मेरी

दिन भी धीराज के साथ गप-शप में बिता डाली। रात बडी मुश्किल से काटी, पर वह भी किसी तरह बीत गई। सोमवार को एक-एक घटा बिताना उसके लिए दूभर हो गया, पर वह लम्बा दिन भी अन्त में किसी तरह कट ही गया और उससे भी लम्बी मालूम होने वाली रात भी आखिर कट ही गई। मगलवार का एक-एक क्षण उसे एक-एक घटे के बराबर लगने लगा। शाम को ६ बजे तक उसकी बेचैनी दूसरी तरह की थी, पर छ बजे के बाद उस बेचैनी ने एक दूसरा ही रूप धारण कर लिया। अब केवल नीलिमा के यहा जाने या न जाने की समस्या ही उसके सामने नहीं थी, बल्कि सब प्रत्यक्ष कारणों के अतीत एक वर्णनातीत घबराहट के भाव ने उसके केवल मन और शरीर को ही नही छा लिया, बल्कि उसकी सम्पूर्ण आत्मा को किसी भूतात्मा की तरह घर दबाया। किसी आसन्न सकट के आतक से जिस प्रकार कोई जन्तु एकदम लक्कड बन जाता है, वही अनुभूति बडी तेजी से महीप को भी जकडने लगी थी। जब साढे छ का घटा बजा तो जैसे कोई एक अज्ञात, अलौकिक शक्ति महीप के भीतर सहसा जागरित हो उठी। उसने भय और भ्रान्ति की समस्त भावनाओ को एक प्रबल झटके से फटकारा और वह किसी भी सकटपूर्ण स्थिति का सामना करने के लिए पूर्णत तैयार हो गया।

उसने देख लिया था कि ठाकुर साहब पहले ही अपनी मोटर में बाहर निकल गये थे। फुर्ती से नहा-धोकर, कपडे बदलकर वह निकल पडा। फाटक के बाहर ही एक तागा खाली मिल गया। उस पर सवार होकर वह अपने वचन को पूरा करने के उद्देश्य से चल पडा।

छत्तीसवां परिच्छेद

नीलिमा ने बडे दुस्साहस का काम किया था। वह स्वय इस बात को महसूस कर रही थी। उसका स्वभाव सकोच की जडता से कभी ग्रस्त नही रहा, इसमें सन्देह नहीं, पर ऐसी दुस्साहसिकता भी इसके पहले कभी उसमें नहीं

रही। किसी पुरुष के साथ रात के समय एकान्त मे बातें करके कोई ऐसा गुप्त 'एप्वाएंटमेंट' करने का साहस उसने इसके पहले कभी नही किया जो उसकी मा से या प्रतिमा से छिपा हो। ८ तारीख की सध्या को खन्ना-परिवार की महिलाओ को एक घनिष्ठ आत्मीय व्यक्ति के यहा विवाह-पार्टी में सम्मिलित होना था। यह बात पहले से ही नीलिमा को मालूम थी। यह सब जानकर ही उसने महीप से उस दिन मिलने की बात तय की थी।

८ तारीख़ को सुबह से ही उसने तबीअत खराब होने का बहाना बनाना आरम्भ कर दिया। जब प्रतिमा और उसकी मा जाने की तैयारी करने लगीं तो उसने 'एस्पिरीन' की एक टिकिया मगाकर खाई और माथे पर अमृताजन मलना शुरू कर दिया। जब श्रीमती खन्ना ने पूछा कि वह तैयार क्यो नहीं हो रही है तो वह अमृताजन को और अधिक जोर से मस्तक पर मलती हुई बोली—"देखती नही हो मा, मै सिर-दर्द के इलाज में लगी हूँ। माथा भिन्ना रहा है। मै आज किसी हालत मे भी विवाह-पार्टी में शरीक नही हो सकूगी। तुम लोग जाओ, मै दो-एक घण्टे के लिए लेटकर आराम करना चाहती हूँ।"

श्रीमती खन्ना चिन्तित हो उठी। उन्हे मालूम था कि नीलिमा कभी किसी भी पार्टी में शरीक होने से चूकनेवाली नही है। इसलिए उसका जी खराब होने के सम्बन्ध में सन्देह का लेश भी उनके मन में नही उठा। उन्होने कहा —"जब तुम्हारी तबीअत अच्छी नहीं है, तब हम लोगो का जाना भी कैसे हो सकता है? तुम्हे इस हालत में छोड़ा कैसे जा सकता है! डा० श्यामलाल को बुलाऊ?" डा० श्यामलाल खन्ना-परिवार के परचे हुए डाक्टर थे।

"नहीं, मा, नहीं," खीझकर नीलिमा ने कहा—"तुम्हारे आगे तो जी खराब होने की चर्चा करना भी एक पाप है। कह दिया कि खाली सिर दर्द है, और कोई शिकायत नही है। बात-बात मे डाक्टर को बुलाने की तुम्हारी बीमारी कब छूटेगी? मै दो-एक घटा आराम कर लूगी, तो निश्चय ही मेरी

दिन भी धीराज के साथ गप-शप में बिता डाली। रात बडी मुश्किल से कटी, पर वह भी किसी तरह बीत गई। सोमवार को एक-एक घटा बिताना उसके लिए दूभर हो गया, पर वह लम्बा दिन भी अन्त में किसी तरह कट ही गया और उससे भी लम्बी मालूम होने वाली रात भी आखिर कट ही गई। मगलवार का एक-एक क्षण उसे एक-एक घटे के बराबर लगने लगा। शाम को ६ बजे तक उसकी बेचैनी दूसरी तरह की थी, पर छ बजे के बाद उस बेचैनी ने एक दूसरा ही रूप धारण कर लिया। अब केवल नीलिमा के यहा जाने या न जाने की समस्या ही उसके सामने नही थी, बल्कि सब प्रत्यक्ष कारणों के अतीत एक वर्णनातीत घबराहट के भाव ने उसके केवल मन और शरीर को ही नहीं छा लिया, बल्कि उसकी सम्पूर्ण आत्मा को किसी भूतात्मा की तरह घर दबाया। किसी आसन्न सकट के आतक से जिस प्रकार कोई जन्तु एकदम लक्कड बन जाता है, वही अनुभूति बडी तेजी से महीप को भी जकडने लगी थी। जब साढे छ का घटा बजा तो जैसे कोई एक अज्ञात, अलौकिक शक्ति महीप के भीतर सहसा जागरित हो उठी। उसने भय और भ्रान्ति की समस्त भावनाओं को एक प्रबल झटके से फटकारा और वह किसी भी सकटपूर्ण स्थिति का सामना करने के लिए पूर्णत तैयार हो गया।

उसने देख लिया था कि ठाकुर साहब पहले ही अपनी मोटर में बाहर निकल गये थे। फुर्ती से नहा-धोकर, कपडे बदलकर वह निकल पडा। फाटक के बाहर ही एक तागा खाली मिल गया। उस पर सवार होकर वह अपने वचन को पूरा करने के उद्देश्य से चल पडा।

उन्नीसवां परिच्छेद

नीलिमा ने बडे दुस्साहस का काम किया था। वह स्वय इस बात को महसूस कर रही थी। उसका स्वभाव सकोच की जडता से कभी ग्रस्त नही रहा, इसमें सन्देह नहीं, पर ऐसी दुस्साहसिकता भी इसके पहले कभी उसमें नहीं

रही। किसी पुरुष के साथ रात के समय एकान्त मे बातें करके कोई ऐसा गुप्त 'एप्वाएटमेंट' करने का साहस उसने इसके पहले कभी नहीं किया जो उसकी मा से या प्रतिमा से छिपा हो। ८ तारीख़ की सन्ध्या को खन्ना-परिवार की महिलाओ को एक घनिष्ठ आत्मीय व्यक्ति के यहा विवाह-पार्टी में सम्मिलित होना था। यह बात पहले से ही नीलिमा को मालूम थी। यह सब जानकर ही उसने महीप से उस दिन मिलने की बात तय की थी।

८ तारीख़ को सुबह से ही उसने तबीअत खराब होने का बहाना बनाना आरम्भ कर दिया। जब प्रतिमा और उसकी मा जाने की तैयारी करने लगीं तो उसने 'एस्पिरीन' की एक टिकिया मंगाकर खाई और माथे पर अमृताजन मलना शुरू कर दिया। जब श्रीमती खन्ना ने पूछा कि वह तैयार क्यो नही हो रही है तो वह अमृताजन को और अधिक जोर से मस्तक पर मलती हुई बोली—"देखती नही हो मा, मै सिर-दर्द के इलाज में लगी हूँ। माथा भिन्ना रहा है। मै आज किसी हालत में भी विवाह-पार्टी में शरीक नहीं हो सकूगी। तुम लोग जाओ, मै दो-एक घण्टे के लिए लेटकर आराम करना चाहती हूँ।"

श्रीमती खन्ना चिन्तित हो उठी। उन्हे मालूम था कि नीलिमा कभी किसी भी पार्टी में शरीक होने से चूकनेवाली नही है। इसलिए उसका जी खराब होने के सम्बन्ध में सन्देह का लेश भी उनके मन में नहीं उठा। उन्होने कहा —"जब तुम्हारी तबीअत अच्छी नही है, तब हम लोगो का जाना भी कैसे हो सकता है? तुम्हे इस हालत में छोड़ा कैसे जा सकता है! डा० श्यामलाल को बुलाऊ?" डा० श्यामलाल खन्ना-परिवार के परचे हुए डाक्टर थे।

"नहीं, माँ, नहीं," खीझकर नीलिमा ने कहा—"तुम्हारे आगे तो जी खराब होने की चर्चा करना भी एक पाप है। कह दिया कि खाली सिर दर्द है, और कोई शिकायत नही है। बात-बात मे डाक्टर को बुलाने की तुम्हारी बीमारी कब छूटेगी? मै दो-एक घटा आराम कर लूगी, तो निश्चय ही मेरी

तबीअत ठीक हो जावेगी। तुम दोनो भी अगर नहीं जाओगी तो ब्रजविहारी बाबू तो नाराज़ होंगे ही, प्रेमलता भी बहुत बुरा मानेगी। उसके भाई के विवाह में हम लोगों का शरीक होना हर हालत मे आवश्यक है। मेरे सिर मे दर्द है, तो क्या हुआ! तुम लोगो के सिर में तो कोई दर्द नही है! या है?"

नीलिमा के बोलने का ढग आज कुछ अनोखा होने पर भी श्रीमती खन्ना के मन में किसी प्रकार का अन्यथा सन्देह नहीं हुआ, पर प्रतिमा की तीखी अन्तर्दृष्टि इन सब ऊपरी बातो के भीतर किसी असाधारण कारण को खोजने लगी। उसकी आश्चर्यजनक मानसिक घ्राण-शक्ति जैसे अन्तरिक्ष में छिपे हुए किसी असाधारण प्राणी की गन्ध-सी पा रही थी। पर वह प्राणी कौन हो सकता है? वह अपने मस्तिष्क के कुछ विशेष सूक्ष्म कोषों को कुरेदने लगी। उसने कहा—'दीदी ठीक तो कहती है, मा, हम लोगों का वहा जाना बहुत आवश्यक है। चिन्ता की कोई बात नहीं है। दीदी का सिर-दर्द हम लोगो के वापस आने तक निश्चय ही अच्छा हो जावेगा, तुम देख लेना!" यह कहकर उसने एक विचित्र सकेत-भरी दृष्टि से नीलिमा की ओर देखा। नीलिमा को वह सकेत अच्छा नहीं लगा। उसन तत्काल आखे फेर ली।

जब मा और प्रतिमा चली गई, तो नीलिमा ने चैन की एक लम्बी सास ली। पर तत्काल ही वह 'चैन' बेचैनी में बदल गया। रह-रहकर उसे लगता था जैसे उसने कोई महान् अपराध किया हो और महत्तर अपराध करने जा रही हो। मा से और प्रतिमा से छिपाकर उसने जो महीप को ठीक दिन और ठीक समय पर मिलने के लिए निमन्त्रित किया था वह बात उसी दिन से बहुत बेतुकी मालूम हो रही थी। सबसे अधिक जो बात उसके हृदय को खरोंच रही थी वह यह थी कि उसे इधर कुछ समय से ऐसा अनुभव हो रहा था जैसे उसका स्वभावगत अभिमान तथा आत्म-सम्मान का भाव किसी पुराने जमाने के बहुत मजबूत किले की दीवार की तरह एक-एक ईट करके ढहता चला जा रहा है। यह अनुभूति उसे रह-रहकर मार्मिक पीडा पहुचा रही थी। वह सोचती थी कि यदि

ऐसा न होता तो वह कभी इतने दिनो की आत्म-मर्यादा का उल्लघन कर के महीप को एकान्त मे बुलाकर उसे एक विशेष दिन, विशेप समय पर मिलने के लिए आमन्त्रित न करती––विशेषकर उस महीप को जिसे उसने कभी किसी गम्भीर विषय की चर्चा के लिए उपयुक्त नही समझा और जिसके साथ उसने व्यग और परिहास के सिवा और किसी भी रूप मे कोई वात कभी नही की। क्यो उसकी प्रकृति मे अचानक ऐसा भयकर परिवर्तन आ गया ? किन वाहरी और भीतरी चक्रो के धक्कम-धक्के का यह फल है कि उसके जीवन में ऐसी उथल-पुथल मचनी आरम्भ हो गई है और उसकी प्रकृति का मूल आधार ही डगमगा उठा है ?

वह वार-वार अपने वाये हाथ मे वँधी हुई छोटी-सी घडी को देखती जाती थी। ज्यो-ज्यो ७ वजने का समय निकट-से-निकटतर आता-जाता था त्यो-त्यो उसके मन की चञ्चल और अस्त-व्यस्त अवस्था भी वढती जाती थी। जव दीवार की घडी पर ठीक ७ का घटा वजा तो साथ ही उसके हृदय की धडकन भी उसी स्वर, उसी ताल और उसी लय में वज उठी।

मा और प्रतिमा के जाते ही उसने अपने अभ्यस्त हाथो से दस मिनट के भीतर ही अपना रूप और रग वदल डाला था। दिन भर उसने अपनी जो मरीज़ों की-सी सूरत वना रखी थी वह न जाने किस माया-मन्त्र से काफ़ूर हो गई थी। उसने जव कपडो की अलमारी से लगे वडे शीशे में अपना चेहरा देखा तो स्वयं उसे ऐसा अनुभव होने लगा जैसे चन्द मिनटो के भीतर उसकी कायापलट हो गई हो। पर वह अपने मन से प्रश्न करने लगी कि क्यो उसने आज विशेष रूप से अपने रूप का यह निखार किया है ? महीप को तो उसने निश्चय इस उद्देश्य से नही वुलाया है कि उसे अपनी रूप तरगिमा मे उद्भ्रान्त करे। जव उसने कादम्व पेड के नीचे उसे निमंत्रित किया था, उस समय इस तरह का कोई उद्देश्य कतई उसके मन में नही था। जिस उद्विग्नता ने उसे सकोच की समस्त मर्यादाओ को लंघन करके महीप से एकान्त में वाते करने के लिए प्रेरित

तबीअत ठीक हो जावेगी। तुम दोनों भी अगर नहीं जाओगी तो ब्रजविहारी बाबू तो नाराज होंगे ही, प्रेमलता भी बहुत बुरा मानेगी। उसके भाई के विवाह में हम लोगों का शरीक होना हर हालत मे आवश्यक है। मेरे सिर में दर्द है, तो क्या हुआ! तुम लोगो के सिर में तो कोई दर्द नहीं है! या है?"

नीलिमा के बोलने का ढग आज कुछ अनोखा होने पर भी श्रीमती खन्ना के मन में किसी प्रकार का अन्यथा सन्देह नही हुआ, पर प्रतिमा की तीखी अन्तर्दृष्टि इन सब ऊपरी बातो के भीतर किसी असाधारण कारण को खोजने लगी। उसकी आश्चर्यजनक मानसिक घ्राण-शक्ति जैसे अन्तरिक्ष मे छिपे हुए किसी असाधारण प्राणी की गन्ध-सी पा रही थी। पर वह प्राणी कौन हो सकता है? वह अपने मस्तिष्क के कुछ विशेष सूक्ष्म कोषों को कुरेदने लगी। उसने कहा—"दीदी ठीक तो कहती है, मा, हम लोगों का वहा जाना बहुत आवश्यक है। चिन्ता की कोई बात नहीं है। दीदी का सिर-दर्द हम लोगो के वापस आने तक निश्चय ही अच्छा हो जावेगा, तुम देख लेना!" यह कहकर उसने एक विचित्र सकेत-भरी दृष्टि से नीलिमा की ओर देखा। नीलिमा को वह सकेत अच्छा नहीं लगा। उसन तत्काल आखें फेर ली।

जब मा और प्रतिमा चली गई, तो नीलिमा ने चैन की एक लम्बी सास ली। पर तत्काल ही वह 'चैन' बेचैनी में बदल गया। रह-रहकर उसे लगता था जैसे उसने कोई महान् अपराध किया हो और महत्तर अपराध करने जा रही हो। मा से और प्रतिमा से छिपाकर उसने जो महीप को ठीक दिन और ठीक समय पर मिलने के लिए निमन्त्रित किया था वह बात उसी दिन से बहुत बेतुकी मालूम हो रही थी। सबसे अधिक जो बात उसके हृदय को खरोंच रही थी वह यह थी कि उसे इधर कुछ समय से ऐसा अनुभव हो रहा था जैसे उसका स्वभावगत अभिमान तथा आत्म-सम्मान का भाव किसी पुराने जमाने के बहुत मजबूत किले की दीवार की तरह एक-एक ईट करके ढहता चला जा रहा है। यह अनुभूति उसे रह-रहकर मार्मिक पीडा पहुचा रही थी। वह सोचती थी कि यदि

ऐसा न होता तो वह कभी इतने दिनों की आत्म-मर्यादा का उल्लघन कर के महीप को एकान्त मे बुलाकर उसे एक विशेष दिन, विशेष समय पर मिलने के लिए आमन्त्रित न करती—विशेषकर उस महीप को जिसे उसने कभी किसी गम्भीर विषय की चर्चा के लिए उपयुक्त नही समझा और जिसके साथ उसने व्यग और परिहास के सिवा और किसी भी रूप मे कोई बात कभी नही की। क्यो उसकी प्रकृति मे अचानक ऐसा भयकर परिवर्तन आ गया? किन बाहरी और भीतरी चक्रो के धक्कम-धक्के का यह फल है कि उसके जीवन मे ऐसी उथल-पुथल मचनी आरम्भ हो गई है और उसकी प्रकृति का मूल आधार ही डगमगा उठा है?

वह बार-बार अपने बायें हाथ मे बँधी हुई छोटी-सी घडी को देखती जाती थी। ज्यो-ज्यो ७ बजने का समय निकट-से-निकटतर आता-जाता था त्यो-त्यो उसके मन की चञ्चल और अस्त-व्यस्त अवस्था भी बढती जाती थी। जब दीवार की घडी पर ठीक ७ का घटा बजा तो साथ ही उसके हृदय की धडकन भी उसी स्वर, उसी ताल और उसी लय मे बज उठी।

मा और प्रतिमा के जाते ही उसने अपने अभ्यस्त हाथो से दस मिनट के भीतर ही अपना रूप और रग बदल डाला था। दिन भर उसने अपनी जो मरीज़ो की-सी सूरत बना रक्खी थी वह न जाने किस माया-मन्त्र से काफ़ूर हो गई थी। उसने जब कपडो की अलमारी से लगे बडे शीशे में अपना चेहरा देखा तो स्वयं उसे ऐसा अनुभव होने लगा जैसे चन्द मिनटो के भीतर उसकी कायापलट हो गई हो। पर वह अपने मन मे प्रश्न करने लगी कि क्यो उसने आज विशेष रूप से अपने रूप का यह निखार किया है? महीप को तो उसने निश्चय इस उद्देश्य से नहीं बुलाया है कि उसे अपनी रूप तरगिमा से उद्भ्रान्त करे। जब उसने कदम्ब पेड के नीचे उसे निमन्त्रित किया था, उस समय इस तरह का कोई उद्देश्य कतई उसके मन में नही था। जिस उद्विग्नता ने उसे सकोच की समस्त मर्यादाओ को लघन करके महीप से एकान्त में बातें करने के लिए प्रेरित

किया था उसका मूल कारण तो कुछ दूसरा ही था। तब आज क्यों उसे अपने रूप को सँवारने की आवश्यकता प्रतीत हुई? "नीलिमा! नीलिमा! तुम्हें क्या हो गया है?" वह बड़े शीशे में अपना मुह देखकर अपनी प्रतिच्छाया को सम्बोधित करके मन-ही-मन कहने लगी—"तुम क्या वही पिछली नीलिमा हो या उसकी छाया की भी छाया रह गई हो?"

इतने में नौकर ने भीतर आकर कहा—"बीबी जी, महीप बाबू आये हैं।"

नीलिमा जैसे चौंक उठी। वह यह सोचने ही लगी थी कि महीप यदि अपने वादे को पूरा न करता तो अच्छा होता। पर अब तो वह आ ही गया है और उससे मिलकर बातें करनी ही होंगी।

"उन्हें बुला लाओ।" उसने नौकर को आदेश देते हुए कहा, हाला कि मन-ही-मन वह कह रही थी—"उन्हें लौट जाने को कह दो।"

बीसवां परिच्छेद

महीप को देखते ही नीलिमा की सारी घबराहट, सब शकायें, समस्त द्विविधायें कपूर की तरह विलीन हो गईं और एक अप्रत्याशित अपूर्व-कल्पित उल्लास से उसका मन-प्राण भर गया। महीप ने ज्योंही कमरे के भीतर प्रवेश किया त्योंही उसका मुख आन्तरिक प्रसन्नता से भर गया और "आइए, मिस्टर प्रामेथ्यूज!" कहकर उसने उसका स्वागत किया।

महीप एक कोनेवाली कुर्सी पर बैठने जा रहा था, पर नीलिमा ने उसे टोका और उसे बीचवाली गद्देदार आरामकुर्सी पर बैठने के लिए कहा। महीप तकल्लुफ करने जा रहा था, पर नीलिमा ने हठपूर्वक उसे उसी कुर्सी पर बैठने को विवश किया जिसपर वह चाहती थी। वह स्वय भी उसके पासवाली कुर्सी पर बैठ गई और बोली—"हालाकि यह चाय पीने का 'टाइम' नहीं है, फिर भी मुझे मालूम है कि चाय आपको कभी अप्रिय नहीं मालूम होती। मैंने नौकर को आर्डर दे दिया है, और जब चाय आवेगी तो आपको किसी

प्रकार की आपत्ति नही सुनी जावेगी। यह चेतावनी मै आपको पहले ही दिये देती हूँ।"

नीलिमा ने कृत्रिम गम्भीर मुद्रा वनाकर यह वात कही थी, पर महीप को वरवस हँसी आ गई, जिस पर उसे स्वय आश्चर्य हो रहा था। रास्ते भर महीप इस आशका से पीडित हो रहा था कि नीलिमा और उसके परिवार के तथा समाज के दूसरे व्यक्तियो के वीच मे आज न चाहने पर भी वह रोनी-सी सूरत वनाये चुपचाप वैठा रहेगा—न चाहने पर भी उसके मुख की आकृति अत्यन्त दयनीय हो उठेगी। पता नही, यह आशका उसके मन में कैसे जम गई थी। पर नीलिमा को अकेले और प्रसन्नचित्त पाकर उसके मन से समस्त ग्लानि-कर चिन्ताएं छूमन्तर हो गई थी। सम्भवत उसी की प्रतिक्रिया हँसी के रूप मे वाहर फूट पडी थी।

महीप को हँसते देखकर नीलिमा के भी कृत्रिम गाम्भीर्य का पर्दा-फाश हो गया और वह भी मुक्त किन्तु स्निग्ध भाव से खिलखिलाकर अकारण ही हँस पडी, यहा तक कि हँसी के कारण उसकी आखो से आसू निकल पडे। जैसे दोनो ही एक दूसरे के अन्तर के अज्ञात तार के ठीक सुर को समझ गये हो। नीलिमा के जिस रूप की कल्पना महीप ने अपने दिवा-स्वप्नो मे कई वार की थी, उसका प्रत्यक्षीकरण उसने आज पहली वार किया। उसका वह रूप उसे ऐसा सुन्दर, ऐसा स्निग्ध, ऐसा प्रीतिकर लग रहा था, जिसका वर्णन इतने दिनो तक उसकी कविता लिखनेवाली कलम की नोक पर वार-वार आकर रह जाता था—न-जाने कौन विरोधी शक्ति ऐन मौके पर उसके उस मानसिक चित्र को धूमिल कर देती थी। आज उसने अपने अन्तर्मन के उस अस्पष्ट चित्र को प्रथम वार स्पष्ट रूप से अपनी आखो मे देखा। रह-रहकर एक विकल पुलक की तरंग उसके भीतर कल-कल शब्द कर रही थी। और ठीक वही दशा नीलिमा के मन की भी हो रही थी। किसने उन दोनो के अन्तस्तारो के सुरो को एक रूप मे मिला दिया था?

नीलिमा ने बडी सफाई के साथ अपने रेशमी रूमाल से अपनी हास-सजल आखें पोछ डाली और उसके बाद वास्तविक गम्भीरता के साथ बोली—"सचमुच आपने इतने दिनो तक एक दिन के लिए भी हम लोगो से न मिलकर बडा अन्याय किया। क्यो आप इस तरह अचानक हम लोगो से नाराज हो गये ?"

"इसका कारण क्या मुझसे पूछने की आवश्यकता है, नीलिमा जी ?"—महीप ने भी उसी गम्भीरता से उत्तर देते हुए कहा—"क्या सचमुच आपके मन से इस बात का कारण छिपा है ?"

नीलिमा के मुख पर इस बार सचमुच गाढी, अंधेरी छाया घिर आई, जैसे उसकी कोई चोरी, झूठ या अन्य दुष्कर्म प्रमाणित हो गया हो। कुछ क्षण तक वह बडे गौर से महीप की ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखती रही, जैसे उसके मन का यथार्थ भाव ताडने की चेष्टा कर रही हो। उसके बाद "तब आप क्या मुझे अन्तर्यामिनी समझते हैं ?" कहते हुए उसके मुख पर व्यग भरी मुसकान झलक उठी।

"हा नीलिमाजी, मैं कम-से-कम अपने लिए तो आपको अन्तर्यामिनी ही समझता हूँ।" महीप ने पहले की ही तरह गम्भीर भाव से कहा।

इतने में एक नौकर एक 'ट्रे' में नमकीन, मिष्ठान्न, केक, पेस्ट्री, फल आदि भोज्य-पदार्थ लिये चला आया। नीलिमा ने बीचवाली मेज के पास बैठने का प्रस्ताव किया। दोनो उठकर वही जा बैठे। नौकर ने तश्तरिया सजाकर दोनो के आगे रख दी। दोनो ने धीरे से खाना शुरू किया।

जब नौकर चला गया तब नीलिमा ने फिर एक बार अपने मुख को घनी अँधेरी छाया से ढकते हुए धीरे से कहा—"आज मैं आपसे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय पर सलाह लेना चाहती हूँ, महीपजी। इसीलिए मैंने आपको बुलाया है। मा और प्रतिमा निमन्त्रण में गई हुई है। उनके सामने मैं नही पूछ सकती थी। मेरे लिए जीने और मरने का सवाल पैदा हो उठा है। आपको शायद मालूम नही होगा कि ठाकुर साहब से मेरे विवाह की बातचीत चल रही है।"

"मुझे मालूम है।" अत्यन्त धीरता के साथ महीप ने कहा।

"मालूम है ? किसने आपको बताया ?"

"स्वय ठाकुर साहब ने।"

"ओह ! क्या बताया उन्होने ?"

"यही कि आपसे उनके विवाह की बात पक्की हो चुकी है।"

"पक्की हो चुकी है ! ठीक ये ही शब्द उन्होने कहे थे ?"

"ठीक शब्द तो मुझे याद नही है, पर उन्होने जो कुछ कहा था उसका आशय कम-से-कम मे यही समझा था।"

नीलिमा क्षण भर के लिए विचार-मग्न हो गयी। उसके बाद बोली—"खैर, ठाकुर साहब ने आपसे कुछ भी कहा हो, पर अभी तक बात पक्की नही हुई है। पर मुझे इस बात की आशका है कि बात शीघ्र ही पक्की हो जायगी, क्योकि मुझे और कोई रास्ता दिखाई नही देता। मेरे सामने जीने और मरने की समस्या उपस्थित है, महीपजी। मुझे उचित मार्ग सुझाइए। आपकी समझदारी पर मेरा पूर्ण विश्वास है, हँसी में मै भले ही आपसे कुछ कहूँ।"

महीप हैरान था। वह क्या मार्ग सुझावे और क्यो ? ऐसी कौन-सी आफत नीलिमा के समान स्वतन्त्र-प्रकृति नारी के ऊपर आ सकती है कि न चाहने पर भी उसे किसी पुरुष से विवाह करने को बाध्य होना पड़ रहा है ? और फिर रास्ता सुझाने के लिए उपयुक्त व्यक्ति नीलिमा ने ठीक उसी को क्यो समझा है ? यह अच्छा परिहास है !

वह कुछ कहना ही चाहता था कि नीलिमा ने सकेत मे उसे मना किया। महीप ने देखा, नौकर चाय लिए आ रहा है। वह समझ गया कि नीलिमा नौकर के सामने उस विषय की चर्चा नही चलाना चाहती।

जब नौकर चाय रखकर चला गया, तब नीलिमा ने प्यालो मे चाय ढालते हुए कहा—"अब कहिए, आप क्या कहना चाहते थे।"

"मै पूछना चाहता था कि आपके समान सुशिक्षिता, समझदार और 'प्रोग्रेसिव' विचारोवाली युवती के लिए यह समस्या कैसे आ खडी हुई कि न चाहने पर भी आप किसी से विवाह करने के लिए विवश हो उठी ?"

नीलिमा ने चाय के प्याले में चम्मच चलाते हुए एक बार तीखी दृष्टि से महीप की ओर देखा, और उसके बाद प्याले को उसकी ओर बढ़ाती हुई बोली—"मै कैसी ही 'प्रोग्रेसिव' क्यो न होऊँ, पर मै अपने भीतर इतना साहस नही पाती कि मा की एकान्त इच्छा के विरुद्ध विद्रोह करूँ। मा के प्रति ममता स्वाभाविक है, पर मेरी मा केवल मा ही नही है, बल्कि हम लोगो के पिता के स्थान में भी वही है। सासारिक तथा सामाजिक विषयो में उनकी दक्षता और अनुभवशीलता के फल-स्वरूप हम लोगो ने कभी पिताजी के अभाव का अनुभव नही किया। ऐसी हालत में यह कैसे सम्भव है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर उनका विरोध करूँ ?"

महीप का चेहरा कुछ तमतमा उठा था। यह गरम चाय का असर था या नीलिमा की बातो के ढग का, निश्चित रूप से कुछ कहा नही जा सकता। सभवत दोनो कारण सम्मिलित थे। नीलिमा की बातो के ढग से, पता नही क्यो, उसके मन मे खीझ उत्पन्न हो रही थी। पर उसने ऊपर से यथासम्भव शान्त भाव धारण करते हुए कहा—"देखिए नीलिमाजी, यदि आप मेरे जैसे अनधिकारी से इस अत्यन्त घरेलू और बिलकुल 'प्राइवेट' विषय पर सचमुच सलाह चाहती ही है तो मेरी धृष्टता को क्षमा करते हुए आप पहले मेरे इस प्रश्न का निश्चित उत्तर कुछ सोच-समझकर दीजिए—आपका अन्त करण इस विषय में क्या कहता है ? मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि आपका आन्तरिक विश्वास इस सम्बन्ध में क्या है। क्या सचमुच आप यह विश्वास करती है कि ठाकुर साहब से विवाह होना आपके लिए अनिष्टकर है ? कही ऐसी बात तो नही है कि आपका हृदय ठाकुर साहब को अयोग्य पात्र न समझता हो, पर आपकी बुद्धि पर किसी के सुझाव का असर पडा हो और उस सुझाव के फल-स्वरूप आपके हृदय के आगे एक कृत्रिम अवरोध आ खडा हुआ हो ?"

नीलिमा चकित दृष्टि से महीप की ओर देखती रह गयी। इस तरह के प्रश्न की सम्भावना की ओर उसका ध्यान नही गया था। वह सचमुच अपने भीतरी मन को टटोलने की चेष्टा करने लगी, यद्यपि यह प्रयास व्यर्थ सिद्ध हो रहा था ।

दो-तीन घूट चाय चुपचाप पी चुकने के बाद वह बोली—"आपके प्रश्न का उत्तर देने के पहले मै यह जानना चाहूँगी कि आपके प्रश्न का उद्देश्य क्या है—आपका सकेत किस बात की ओर है।"

"मेरा 'सकेत' स्पष्ट है", महीप ने निश्चित स्वर मे कहा—"यदि आपके हृदय का झुकाव तनिक भी इस विवाह के पक्ष मे है तो आपको निश्चय ही, बिना किसी झिझक के, अपनी मा की इच्छा का अनुसरण करना चाहिए। पर यदि आपका हृदय तीव्र रूप से उसके विरुद्ध प्रतिरोध कर रहा हो, तो मा की लाख इच्छा होने पर भी आपको सहमत नही होना चाहिए। क्योकि यह प्रश्न आपके लिए निश्चय ही जीवन और मृत्यु का है, इस बात को जितना ही आप महसूस कर रही है उतना ही मै भी कर रहा हूँ।"

नीलिमा फिर विचार मे मग्न हो गयी और चाय की शेष घूट पीने मे उसने कुछ अधिक समय लगाया।

उसे और अधिक विचार के लिए खुराक देने के इरादे से महीप बोला—"माता-पिता के स्नेह और ममता की चट्टान पर विवाह-सागर में तैरते हुए कितने ही युवक-युवतियो की जीवन-नौकाए टकराकर चकनाचूर हो चुकी है और हो रही है। मै अपनी आखो से कितने ही ऐसे मामले देख चुका हूँ। यदि हमारा नई शिक्षा-प्राप्त नारी-समाज भी उसी परम्परा का अन्ध अनुकरण करने में अपने को बाध्य समझता रहा, तो सामाजिक क्षेत्र मे प्रगति की आशा हमें सदा के लिए छोड देनी पडेगी। स्मरण रखिए, मैं यह लेक्चर केवल इस अनुमान पर दे रहा हूँ कि आपका हृदय उस विवाह के प्रति विमुख है। पर साथ ही मैं यह भी जानता हूँ कि मेरा यह अनुमान सर्वथा निरा ।

सकता है। इसलिए केवल आपका अन्त करण ही इस सम्बन्ध में कर्तव्या-कर्तव्य का ठीक निर्धारण कर सकता है।"

महीप इतनी लेकचरबाजी केवल इस उद्देश्य से कर रहा था कि उससे नीलिमा के मन को खरोच लगने से सम्भवत उसके अन्तर्मन की असली बात बाहर निकल पडे। उसके मन में यह सन्देह अभी तक अमिट रूप से बना हुआ था कि नीलिमा का हृदय ठाकुर साहब के प्रति किसी मूलगत कारण से आकर्षित है, उसकी बुद्धि भले ही इस विषय में उलझन में पडी हो। तथापि इस प्रकार का सदेह रहने पर भी, उसका अन्ध मन यह आशा कर रहा था कि नीलिमा स्पष्ट शब्दो में कहेगी—"मै ठाकुर साहब से हृदय से घृणा करती हूँ और मेरी इच्छा कतई उनसे विवाह करने की नही है।"

पर नीलिमा ने ऐसी कोई बात नही कही, बल्कि उसने एक दूसरा ही ढग अख्तियार किया, जो महीप को कतई प्रिय नही लगा।

नीलिमा ने कहा—"मै आपसे प्रार्थना करती हूँ कि बिना किसी हेर-फेर के मेरे एक प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करे—आप ठाकुर साहब को योग्य पात्र समझते है या नही ?"

यद्यपि यह प्रश्न करते समय नीलिमा के मुख पर न व्यग का कोई चिन्ह था न साधारण-सी मुसकान का, तथापि महीप की सन्दिग्ध आखो ने कल्पना का चश्मा चढाकर देखा तो उसे ऐसा लगा जैसे नीलिमा प्रश्न करती हुई निष्ठुर व्यगपूर्वक मन्द-मन्द मुस्करा रही हो। उसकी सारी आत्मा इस प्रश्न से जैसे जल उठी। उसके भीतर बहुत दिनो से दबी पडी ईर्ष्याग्नि पूरे जोरो से धधक उठी और बाहर को शोले उगलने के लिए अधीर हो उठी।

उसने कुछ तीखे स्वर में कहा—"ठाकुर साहब पूर्ण युवा है, शिक्षित है, सुन्दर है, धनी है, और सबसे बडी बात यह है—जैसा कि आप भी जानती है— कि वह आपके प्रति आकर्षित है। ऐसी हालत में उनके पात्रत्व की अयोग्यता का प्रश्न ही कैसे उठ सकता है। यदि आपने यह प्रश्न मुझे बनाने

के उद्देश्य से किया है तो दूसरी बात है। पर इसकी कोई सार्थकता मुझे नही दिखाई देती।"

नीलिमा ने अत्यन्त घबराहट के स्वर मे कहा—"यह आप क्या कहते हैं महीप जी? इस तरह के गम्भीर प्रश्न के सम्बन्ध मे मैं आपको बनाना चाहूँगी, यह कल्पना आपके मन मे कैसे उत्पन्न हुई, मैं समझ नही पाती!"

"आप समझ पावे चाहे न समझ पावे, पर एक बात स्पष्ट है, नीलिमा जी। वह यह कि आपके मन में परस्पर-विरोधी विचारो ने कैसी ही उलझन क्यो न उत्पन्न की हो, आपकी अन्तरात्मा ठाकुर साहब के व्यक्तित्व से परिपूर्ण रूप से प्रभावित है। ठाकुर साहब के व्यक्तित्व के ऊपरी पोशाक-पहनावे से कुछ आता-जाता नही। पर उनके भीतरी व्यक्तित्व की रहस्यमयी विशेषता के आकर्षण का प्रतिरोध करने मे आप नितान्त असमर्थ है, यह निश्चित है। इसलिए इस सम्बन्ध में आपको किसी भी पसोपेश मे पडना नही चाहिए। आपकी मा आपकी अपेक्षा आपकी भीतरी प्रकृति से अधिक परिचित है, मुझे ऐसा जान पडता है। इसीलिए वह इस विवाह के लिए आप पर जोर डाल रही है। मै नही जानता कि आपने इस विषय में मुझसे सलाह लेने की विशेष आवश्यकता क्यो समझी! आप जानती थीं कि आपको इस सम्बन्ध मे अपनी मा की इच्छा के अनुसार हर हालत मे चलना पडेगा—जैसा कि स्वय आपने बताया है। मा की इच्छा का विरोध करने का साहस आपमें नही है, और ठाकुर साहब के व्यक्तित्व का आकर्षण आपके लिए प्रबल है यह बात आपकी जानकारी में कतई न हो, ऐसा सम्भव नही है। यह सब होते हुए भी आपने मुझे सलाह लेने के लिए क्यो बुलाया, इसका कारण खोजते हुए यदि मैं कुछ दूसरा सन्देह करूँ, तो आप मुझे दोष न दे।"

"आप क्या सन्देह करते है?" मर्माहत होकर नीलिमा ने भीत दृष्टि मे महीप की ओर देखते हुए पूछा।

"यही कि आपने मुझे बेवकूफ बनाना चाहा है—जान बूझकर नही तो

अनजान में ही सही। आपकी नारी-प्रकृति में जो सहज चचलता छिपी है या प्रकट है—उसने " सहसा महीप की जबान, जो आकस्मिक भावावेश में कतरनी-जैसी च ? ने लगी थी, रुक गयी। नीलिमा के गोरे मुख पर जैसे किसी ने हलके नीले रग की स्याही पोत दी हो—उसका ऐसा घबराया हुआ, स्तब्ध और भ्रान्त रूप महीप ने पहले कभी नही देखा था। उसे अपनी बात के रुख को आगे बढाने का साहस नही हुआ और अपनी कही हुई बात पर बडा पछतावा होने लगा।

वह लज्जित भाव से बोला—"मैं क्षमा चाहता हूँ, मेरा आशय कुछ और था और मैं कह गया कुछ और। आपके स्वभाव के बडप्पन और हार्दिकता से यदि मै प्रभावित न होता, तो कभी ऐसी बात आज मेरी जबान से निकलती भी नही। नीलिमा जी, मैं भी एक मनुष्य हूँ, मेरे भी हृदय है, जिसमें कई आकाक्षाए—बल्कि महत्त्वाकाक्षाए—है। उन महत्त्वाकाक्षाओ की पूर्ति के लिए जिन लोगो के सम्बन्ध में मैंने यह आशा की थी कि वे मेरी सहायता करेंगे, वे ही जब उसमें विघ्न डालने के लिए तत्पर हो उठें, तब आप समझ सकती है कि ऐसी परिस्थिति मे मेरा खीझ उठना स्वाभाविक है। पर सच पूछिए, तो यह खीझ दूसरो के प्रति उतनी नही है जितनी स्वय अपने प्रति। मैंने जीवन में बहुत-सी मूर्खताए की है जिन्हें मैंने आदर्श के लिए त्याग समझा है, पर आज तक अपने एक भी आदर्श की पूर्ति की ओर मै एक भी कदम नही बढ पाया हूँ। अपने-आपको मै यह कहकर ठगता रहता हूँ कि मेरा तथाकथित त्याग निश्चय ही मुझे एक दिन मेरे कल्पित आदर्श की ओर ले जावेगा। अपने मन की यह मूर्खता स्वय मुझसे छिपी नही है। यह सब होते हुए भी मुझे यह सच्चा विश्वास है कि यदि अब भी मेरे मन का कोई सहृदय प्राणी मुझे जीवन में मिल जावे तो मै अब भी भटकने से बच सकता हूँ। पर इस बात की कोई आशा मुझे नही दिखाई देती।"

इक्कीसवां परिच्छेद

महीप की बातो के अनोखे और अप्रत्याशित ढग के कारण नीलिमा के मुख पर भय और भ्रान्ति के जो घने बादल घिर आये थे वे सहसा उसी के भीतर की एक अदृश्य आधी के वेग से फट पडे, और उनके भीतर से उसके सहज स्वभावानुकूल तीखे व्यग की वही मार्मिक मुसकान एक कोने में झलक उठी जिससे महीप भली भाति परिचित था। अत्यन्त धीर, शान्त, किन्तु सहज कटीले स्वर मे वह बोली—"मुझे मालूम है कि आपने आई० सी० एस० की परीक्षा में न बैठकर जो त्याग किया है वह किसी उच्च आदर्श की प्राप्ति के ही लिए किया है।"

महीप कुछ देर तक प्रश्न-भरी तीखी दृष्टि से नीलिमा की ओर देखता रहा, उसके बाद बोला—"आपने यह अनुमान कैसे लगाया, क्या मै जान सकता हूँ ?"

"हम लोग कूड-मगज अवश्य है, महीप बाबू ! पर उस हद तक नही, जिस हद तक आप समझते है।" यह कहते हुए नीलिमा की व्यग-भरी मुसकान और अधिक मार्मिक तीव्रता से, सान पर चढी तलवार की तेज धार की तरह झलझला उठी। उसके तीखे सौन्दर्य का निखार आज आरम्भ ही से महीप को असाधारण और अप्रत्याशित आकर्षण से भरा लग रहा था। पर इस समय जब उसके व्यग की मार्मिकता चरम अवस्था को पहुँच चुकी थी, उसके निखरे हुए सौन्दर्य का वह तेज भी जैसे पराकाष्ठा को पहुँच गया था। उसकी चकाचौध महीप को असह्य मालूम हो रही थी। उससे बचने के लिए उसने अपनी आखो को जैसे ओट में कर लिया। पूरी दृष्टि से उसकी ओर न देखकर बोला—"मै आपको चाहे और कुछ भी समझू, नीलिमाजी, पर कूड-मगज कभी नहीं समझ सकता। यदि यही समझता होता, तो विश्वास मानिए, आपके नौ बार निमन्त्रित करने पर भी आज आपके दरवाजे पर न आया होता और न मै अपने को इस कदर ज़लील होने देता, जिसकी वजह से आज मै स्वय अपनी नज़रो

गिर गया हूँ। आप यदि सचमुच मेरी दृष्टि में कूड-मगज होती, तो आज स्थिति ही न आती कि मै इस तरह की कडी बातें करने का साहस आपसे करता। आप कल्पना नही कर सकती कि आपकी बुद्धि और समभदारी के प्रति कितनी बडी श्रद्धा का भाव मेरे मन पर भूत की तरह सवार है, और वही भाव मेरे जीवन की डोर बरबस कहा से कहा खीचे लिए जा रहा है। मै कैसे आपको समझाऊँ कि यही श्रद्धा आपके प्रति मेरी खीभ और मेरे अन्तर्दाह का कारण है।"

नीलिमा का व्यगात्मक भाव पल में फिर भ्राति के घने बादलों के भीतर अन्तर्हित हो गया और उसकी मुखाकृति मूर्तिमान प्रश्न बनकर स्तब्ध रह गयी। पर वह बोली एक शब्द भी नही।

महीप जैसे अपने में खोया हुआ-सा कहता चला गया—"आपने मेरी सारी कविता, मेरे सारे ज्ञान, मेरी सारी आदर्शात्मक कल्पना को अपने में समाहित कर लिया है। इधर कुछ ही दिनो के भीतर आपके व्यक्तित्व का जो प्रभाव मेरे ऊपर पडा है इसके पहले वर्षों के परिचय से भी उसका चौथाई प्रभाव भी नही पड पाया था। इसके कुछ कारण तो मै जानता हूँ और कुछ नही जानता। इस बार आपके व्यक्तित्व की परिपक्वता ने जैसे सहसा पूरे जोरो से एक अप्रत्याशित आधी के प्रबल झोंके की तरह मेरे प्राणो को हिला दिया। मै स्वय अपने मन की इस बदली हुई दशा को देखकर चकराया हुआ हूँ। इसमें ठाकुर साहब का हाथ कहा तक है, मै ठीक कुछ कह नही सकता। फिर भी मुझे ऐसा लगता है कि यदि ठाकुर साहब आपके और मेरे बीच में न आये होते तो सम्भवत आपके व्यक्तित्व का वह रूप मेरे सामने न आया होता जो इस बार बरबस "

'जरा ठहरिए, मै एक बात आपसे पूछना चाहती हूँ। मै अभी तक जान न पाई कि आप किस उद्देश्य से ये सब बाते कर रहे है। एक बार मुझे लगता है कि आपका आशय मैने बहुत कुछ समझ लिया है, पर दूसरी बार आप कोई

ऐसी वात कह वैठते है जो मेरी धारणा को एकदम उलट देती है। आपको जानना चाहिए कि हम नये युग की लडकिया लडको की अपेक्षा अधिक यथार्थवादिनी हो गई है और कविता के घुमाव-फेर की अपेक्षा स्पष्टवादिता को अधिक पसन्द करती है। इसलिए मै आप से प्रार्थना करती हूँ कि आप साफ-साफ वतावे कि आपके मन में क्या वात है, तव मै निश्चित रूप से अपनी ओर से कोई उत्तर दूगी।"

महीप के काव्योत्साह पर सहसा घडो ठण्डा पानी—वर्फ से भी ठण्डा—पड गया। उसने नीलिमा के मुख के भाव पर गौर किया—देखा, पत्थर की मूर्ति की तरह निश्चल निर्विकार और निरुद्वेग भाव उसके मुख पर छाया हुआ है। अत्यन्त निर्मम होने पर भी वह भाव अत्यन्त सुन्दर था।

कुछ देर तक महीप स्तव्ध दृष्टि से, काठ के पुतले की तरह, नीलिमा की ओर देखता रहा। इतनी देर तक भावावेश मे उसने जो-जो वाते कही थी वे उसे भट्ठी की तेज आच में तपाई हुई लाल-लाल लोहे की छड़ो से उसके हृदय को ग्लानि और लज्जा से दागने लगी। वह सहसा उठ खडा हुआ। विषाद की एक गाढी अँधेरी छाया ने उसके गोरे मुख की महज दीप्ति को जैसे ग्रहण की तरह ढक लिया था।

उसे खडे होते देखकर नीलिमा भी चकित-सी उठ खडी हुई। महीप का वह अनोखा व्यवहार उसकी समझ मे कुछ भी नही आ रहा था।

अत्यन्त दीन भाव मे, मुरझाई हुई-सी आवाज मे महीप ने कहा—"मुझे क्षमा कीजिएगा, नीलिमाजी! मुझे इस समय स्वय याद नही है कि मै क्या ऊटपटाग वक गया। यदि मेरी किसी वात से आपका जी दुखा हो तो मै क्षमा चाहता हूँ। आपने कहा है कि आप यथार्थवादिनी है और साफ-साफ वाते पसन्द करती है। पर मै अभी तक छायावादी प्रभाव से पूरी तरह मुक्त नही हुआ हूँ। मेरे स्वभाव की यह विचित्रता अभी तक वैसी ही वनी हुई है कि मै किसी वात को जितना ही अधिक सुलझाने और स्पष्ट करने की चेष्टा करता

रही थी। यह निश्चित अनुभूति उसके मन में धीरे-धीरे घर करती चली जाती थी कि शीघ्र ही—निकटतम भविष्य में—नीलिमा के और उसके बीच महाकालरात्रि का वही आकाश-पातालव्यापी अगम अन्धकार एक अछेद्य व्यवधान का सघन पर्दा डाल देगा, जो सम्भवत मृत्यु-पर्यन्त नहीं हट पावेगा। तब इस अस्तगामी सूर्य के क्षणिक प्रकाश की तीव्रता का क्या मूल्य उसके लिए हो सकता है? यह केवल उस आनेवाले सर्वग्रासी अँधेरे की प्रगाढता को गाढतर और भीषणतर रूप देने मे ही सहायक सिद्ध होगा। महीप के तीव्र अनुभूतिशील कवि-हृदय को ऐसा अनुभव होने लगा जैसे विषाद की हिमालयाकार चट्टान उसके छोटे-से हृदय में किसी जादू की माया से समा गई हो और उसके चारों ओर एक अचल, अटल और दुर्लंघ्य दीवार खड़ी कर रही हो।

बाईसवां परिच्छेद

नीलिमा ने दो व्यक्तियो के लिए भोजन मँगाया। महीप ने मरे मन से उस का साथ दिया। ऐसी उदासीनता—वल्कि उदासी—का भाव जताते हुए महीप ने खाना खाया कि नीलिमा का हृदय जैसे एकदम नीचे धँस कर बैठ गया। भोजन करते समय महीप ने केवल दो ही-एक बातें मुह से निकाली होगी, और वे भी आटे-दाल के विषय में—नितान्त गद्य-भरी।

खा-पी चुकने पर ज्योही महीप सिगरेट जलाने लगा और नीलिमा ने दो बीडे पान के मुह में डाले त्योही बाहर फाटक के पास से मोटर का भोपू वजने की आवाज़ आई। अचानक महीप को लगा कि इतनी देर तक नीलिमा के साथ उस का अकेले बैठा रहना उचित नही रहा—इसके पहले ही यदि वह चला गया होता तो व्यर्थ के सकोच से वच जाता। नीलिमा का आग्रह मान कर वह मूर्खों की तरह भोजन करने क्यो बैठ गया, यह सोचकर वह मन-ही-मन ग्लानि से पीडित होने लगा। पल में यह प्रचण्ड सत्य विजली की तरह उसके सामने उद्-घाटित हो गया कि आज नीलिमा के अत्यन्त निकट सम्पर्क मे आने का फल केवल यह हुआ कि दोनो ने अपने को एक-दूसरे से बहुत दूर पाया। यह बात भी आज

महीप से छिपी न रही कि वह दूरी किसी सामाजिक विवशता के कारण उतनी नही है जितनी दोनो के मन के भीतरी विरोधो के कारण। इस अनुभव के फल-स्वरूप वह पहले ही से विषाद की जडता और सकोच की ग्लानि का अनुभव करने लगा था, उस पर जव फाटक के भीतर मोटर ने प्रवेश किया तव उसकी वेचैनी और अधिक वढ गई। उसके मन की प्रवृत्ति उस समय किसी से वाते करने या नीलिमा के साथ एकान्त में वैठे रहने के सम्वन्ध में किसी प्रकार की कोई सफाई देने की नही थी। पर अव सम्भवत उसे वाध्य होकर ऐसा करना पडेगा, यह सोच कर वह घवरा उठा। यदि सम्भव होता तो वह चुपचाप चोरो की तरह उठकर, सव की नजर वचाकर, चल देता। पर कार भीतर आ चुकी थी। प्रतिमा और उसकी मा ने भीतर प्रवेश किया।

"हल्लो मिस्टर प्रा—महीप वावू! आप यहा कव से तशरीफ रक्खे हुए है?" प्रतिमा ने अत्यन्त उल्लसित भाव मुख पर झलकाते हुए कहा।

महीप ने देखा कि वह चोरी करते हुए पकडा गया है—यद्यपि वह कुछ भी चराने में असमर्थ रहा। एक वार उसने झूठ वोलने का विचार किया और कहना चाहा कि अभी पहुँचा हूँ। पर इतनी वडी झूठ एक तो यो भी छिपी न रहती, तिस पर वह स्वभाव से सच वोलने के लिए लाचार था। उसने कहा—"मैं सात वजे से यहा आया हुआ हूँ।"

"ओः ठीक! दीदी, तुम्हारा सिर-दर्द तो वढ गया होगा? वेचारे ठाकुर साहव! उन्हें वडी निराशा हुई।"

प्रतिमा की वात आवी स्पष्ट थी और आधी पहेली। पर महीप न उस पहेली को स्पष्ट कराना चाहता था, न अपनी तरफ से उस चर्चा को आगे वढाने की इच्छा रखता था।

श्रीमती खन्ना ने वक्र दृष्टि से महीप की ओर देखते हुए अत्यन्त रूखे स्वर में कहा—"तुम अभी यही हो, महीप? तुम तो कानपुर जाने वाले थे! कव जा रहे हो?"

निपट ग्लानि की कडवी घूट को बरबस गटकते हुए महीप बोला—"जल्दी ही जाऊँगा—वैसे ठीक कुछ भी नही कहा जा सकता। एक दिन के लिए यहा आया था, पर इतने दिन हो गये, अभी तक पूरी वेतकल्लुफी से ठाकुर साहब के यहा डटा हुआ हूँ।"

"हा, ठाकुर साहब कह तो रहे थे।" विचित्र मुखमुद्रा से श्रीमती खन्ना ने कहा।

"क्या कह रहे थे?" अत्यन्त उत्सुकता से महीप ने पूछा।

"कुछ नही—यही कि—तुम अभी गये नही—यही हो।"

प्रतिमा बोली—"जब ठाकुर साहब के समान 'हास्पिटेवल होस्ट' मिल जायँ तब कौन उस आराम को छोड कर जाना चाहेगा! मैं आपसे अनुरोध करती हूँ, महीप जी, कि जब तक ठाकुर साहब अपने मुह से स्पष्ट शब्दो में आप से चले जाने के लिए न कहें तब तक आप आराम से उनके यहा जमे रहें। मैं चाहती हूँ कि उनके धैर्य की पूरी परीक्षा हो।"

श्रीमती खन्ना ने आक्रोश-भरी दृष्टि से प्रतिमा की ओर देखा। पर प्रतिमा तनिक भी विचलित नही हुई। बोली—"आपको अभी जाने की जल्दी क्या है? कुछ दिन और ठहरिए, और एक कवि की क्रान्तदर्शी दृष्टि से इस बात का सूक्ष्म निरीक्षण करते रहिए कि जिस प्रकार के समाज के बीच मे आप आ भटके हैं उस के मूल में कौन-सी प्रवृत्तिया काम कर रही हैं और किस प्रकार के रहस्यो का खेल चल रहा है।"

"प्रतिमा, फिजूल की बातें न करो। जाओ, कपडे बदल आओ।" घबराहट के साथ श्रीमती खन्ना ने कहा।

प्रतिमा ने कहा—"अभी जाती हूँ, मा।" पर वह खडी रही।

महीप सहसा उठ खडा हुआ और प्रतिमा को लक्ष्य करके बोला—"मै आपके सुझाव के लिए आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ। इस समय आज्ञा

दीजिए।" उसने पहले श्रीमती खन्ना की ओर हाथ जोड़े और तब नीलिमा और प्रतिमा की ओर। पर श्रीमती खन्ना ने उसके नमस्कार का कोई भी उत्तर न दिया, वल्कि मुह फेर लिया। नीलिमा और प्रतिमा ने मौन भाव से प्रति-नमस्कार किया।

महीप फाटक के वाहर कुछ ही दूर पहुँचा होगा कि खन्ना-परिवार का एक नौकर दौडा हुआ आया और महीप के आगे खडा हो गया और वोला—"वडी वीवी आपको वुलाती है।"

महीप जानता था कि खन्ना-परिवार के नये नौकर नीलिमा को 'वडी वीवी' कहते हैं। उसने एक वार आश्चर्य से नौकर की ओर देखा और फिर कुछ क्षण सोचकर लौट चला। फाटक के वाहर, इमली के एक घने पेड के नीचे, धुधली चादनी में महीप ने देखा, सफेद पत्थर पर खुदी हुई स्तव्ध किन्तु भौतिक और रहस्यमय विषाद की एक मूर्ति उसके सामने खडी है। क्षण-भर के लिए महीप सहम गया। नौकर चला गया था। नीलिमा ने वहुत ही धीमी आवाज मे, प्राय फुसफुसाते हुए, कहा—"मुझे क्षमा करना, महीप, मैं विवश हूँ ..."

सहसा महीप को एसा लगा जैसे किसी अज्ञात शक्ति ने उसके अन्तर को प्रवल वेग से मथना आरम्भ कर दिया, और उस मथन-क्रिया के फल-स्वरूप जैसे युगो से संचित वासना-राशि ऊपर को उथल उठी। नीलिमा ने अप्रत्याशित क्षण में, अप्रत्याशित स्थान पर, रहस्यमय ढंग से जो एक अपूर्व-कल्पित आकुलता व्यक्त की थी उसी के जादू की प्रतिक्रिया का भूत महीप के सिर पर अचानक, विना किसी पूर्व सूचना के, सवार हो गया। क्षण-भर के लिए सव कुछ भूलकर उसने, सभवत अपने अनजान ही में, नीलिमा का हाथ पकड लिया, और नीलमा से भी अधिक धीमे स्वर मे घवराहट की-सी हडवडी के साथ—"नीलिमा! नीलिमा! एसा कहकर क्यो मुझे अधिक उलझन मे डालती हो? क्यो कहती हो कि तुम विवश हो? अपनी निज की गढी हुई विवशता को एक झटके से झाड़-फटकार कर अपने हृदय की सच्ची अनुभूति का साथ देने के लिए

तैयार हो जाओ। तुम यदि अपने मन को मजबूत बना लो तो इसी क्षण तुम और मै दोनो आज की चादनी रात के इस धुधले अचल में आज तक के परिचित ससार की नजरो से सदा के लिए ओझल हो सकते है—एक नये, सुन्दर और स्वस्थ ससार के निर्माण के लिए। नीलिमा, क्या यह सम्भव नही है ?"

"यह कैसे हो सकता है, महीप, कैसे ?"—अत्यन्त अस्फुट स्वर में फुसफुसाती हुई नीलिमा बोली—"तुम किस खयाल में बातें कर रहे हो ?"

महीप का उन्मादग्रस्त व्यक्ति का-सा उतावलापन बढता चला जाता था। उसी उतावलेपन के साथ वह उसी तरह फुसफुसाता हुआ बोला—"मै खयाल में बातें नहीं कर रहा हूँ, मै घोर यथार्थ को ध्यान में रखते हुए ऐसा कह रहा हूँ। तुम्हारे समान समझदार नारी को जीवन के आमूल परिवर्तन के लिए निश्चय करने में एक क्षण से अधिक समय नहीं लग सकता। इसी क्षण अपने सारे पिछले जीवन को, समाज को और ससार को ऐसा भूल जाओ जैसे उनसे तुम्हारा सम्बन्ध कभी रहा ही न हो, और इसी हालत में, इन्हीं कपडों में, विना और किसी दूसरे सामान के, मेरे साथ चली चलो—मुझपर पूर्ण विश्वास करके। बोलो नीलिमा, चलोगी, चलोगी ? "

क्षण भर के लिए नीलिमा स्तब्ध खडी रही। न उसने अपना हाथ छुडाया, न वह कुछ बोली। सम्भवत पल-भर के लिए उसका मन वास्तव में कुछ डगमगाया और महीप के उस विचित्र पागलपन के-से प्रस्ताव को मानने के लिए उसके मन का एक अज्ञात कोना शायद कुछ विचलित हो उठा। पर उसके बाद ही सहसा एक हलके झटके से उसने हाथ छुडा लिया और अत्यन्त आकुलता के साथ बोली—"नहीं महीप, यह सम्भव नहीं है। तुम नहीं जानते मेरी विवशताओं को। मै असख्य बधनों से बँधी हुई हूँ—चाहे वे बन्धन अपने ही मन के क्यों न हो। मै जाती हूँ। केवल मेरी इतनी-सी प्रार्थना ध्यान में रखना, महीप, कि मुझे क्षमा कर देना। क्षमा, क्षमा, महीप, क्षमा!" यह कहकर वह प्राय दौडती हुई-सी फाटक के भीतर चली गई।

महीप कुछ देर के लिए पत्थर-सा जड़ बनकर वहीं खड़ा रहा। उसे चक्कर आ रहा था। उसके चारों ओर सब कुछ बड़ी तेज रफ्तार से—पृथ्वी की चाल से भी अधिक तीव्रता से—घूम रहा था, और उस सारे चक्र ने अमावस्या के अन्धकार से भी प्रगाढ़ काल-रूप धारण कर रक्खा था। महीप ने उस चक्रगति के साथ अपने मन को पूर्ण बन्धन-मुक्त अवस्था में छोड़ दिया, केवल अपने को गिरने से बचाने की चेष्टा करता रहा। जब चक्कर का वेग कुछ बढ़ा तब वह वहीं पेड़ के नीचे बैठ गया। प्राय तीन मिनट तक बैठा रहा। उसके बाद उठकर धीरे-धीरे भ्रान्त और अनिश्चित पगों से चलने लगा।

तेईसवां परिच्छेद

प्राय आधे मील तक पैदल चलने के बाद उसे एक खाली तांगा मिला। उस पर सवार होकर वह ठाकुर साहब के बंगले की ओर चल दिया। वह बहुत-कुछ सोचना चाहता था, पर ठीक-ठीक कुछ नहीं सोच पा रहा था। नीलिमा ने अन्तिम क्षण में अपने विचित्र व्यवहार से उसके मन की उदास किन्तु जड़ अवस्था में अचानक जो एक अनोखी उथल-पुथल मचा दी थी और एक ऐसी दुस्साहसिकता जगा दी थी जिसकी कल्पना उस क्षण के पहले वह कभी नहीं कर सकता था, उस पर एक बार वह शान्त चित्त से, निर्विकार भाव से, धैर्य के साथ विचार करना चाहता था। क्योंकि किसी अज्ञात, रहस्यमय प्रेरणा से यह दृढ़ विश्वास उसके मन मे जम गया था कि आज की उस अप्रत्याशित और क्षणिक घटना ने उसके भावी जीवन पर—चाहे हित के लिए हो या अहित के लिए—एक ऐसी छाप मार दी है जो अब कभी किसी उपाय से मिट नहीं सकती। उस छाप का प्रभाव उसके जीवन पर क्या और किस रूप में पड़ेगा, उसका कणमात्र आभास उसके अन्तर्जगत के किसी छिपे कोने में खोजने पर भी मिल सकेगा, इसकी तनिक भी आशा यद्यपि महीप को नहीं हो सकती थी, तथापि उसके अज्ञात महत्व की सघन गम्भीरता ने बरबस उसके

प्राणों को छा दिया था। उसी सघन छाया के अन्धकार में अपने को पूर्णत. छिपाने की चेष्टा करता हुआ महीप बँगले पर पहुँचा ।

उसने सोचा था कि बँगले पर जाकर चुपचाप लेट जायगा। पर वह यह भूल गया था कि धीराज का पलँग बाहर—उसके पलँग के पास ही—बिछा रहता है। धीराज अभी सोया नहीं था। सम्भवत उसी का इन्तजार कर रहा था, क्योंकि उसके पहुँचते ही अत्यन्त उत्सुकता से उसका स्वागत करता हुआ बोला—"आइए। आज आप बड़ी देर से आये। कहा चले गये थे?"

"टहलने चला गया था।" मरे मन से, मुरझाई हुई आवाज में, महीप ने उत्तर दिया। उसके बाद जल्दी-जल्दी कपड़े उतारकर और उन्हें अपने सिरहाने रखकर वह चारो खाने चित लेट गया।

धीराज उसकी ओर मुह करके, पाव चारपाई के नीचे लटकाकर इधर-उधर की बातें करने लगा। महीप केवल 'हा' या 'ना' करके चुप रह जाता था। वह बातें करने की मानसिक स्थिति में क़तई नहीं था। पर धीराज भी जैसे कसम खाये बैठा था कि महीप को अभी सोने नहीं देगा। इसका कारण बाद में स्पष्ट हो गया। कुछ देर तक निरर्थक बातें करने के बाद वह धीरे से बोला—"आज रूपा से खुलकर बातें करने का मौका मिल गया . "

उदासीन महीप के कान कुछ खड़े हुए। उसने पूछा—"क्या कहा उसने?"

"उसने साफ कह दिया है कि मैं पिछली सब बातों को भूल जाऊँ और भविष्य में उससे किसी प्रकार का कोई सम्पर्क न रक्खू—यहा तक कि उससे बातें करने का कोई सुयोग भी न ढूढू।"

"और कोई खास बात?"

"कोई खास बात नहीं।"

"ठाकुर साहब के सम्बन्ध में?"

"ठाकुर साहब के सम्बन्ध में उसने स्पष्ट कुछ कहा तो नही, पर उसकी

बातों से इतना अनुमान लगा पाया हूँ कि वह ठाकुर साहब की वश्यता पूर्ण रूप से स्वीकार किए हुए है और उनके किसी आदेश, इच्छा या समझौते के बन्धन में बँधी हुई है।"

महीप चारपाई पर उठ बैठा। उसने पूछा—"आपने क्या अपने मन की सब बातें उसके आगे खोलकर रख दी थी ?"

"मैने कोई भी बात नही छिपाई, पर मेरी किसी बात का उस पर कोई असर नही पडा। केवल एक अन्तिम बात मै और कहना चाहता था। कहने ही जा रहा था कि अचानक ठाकुर साहब भीतर आ खडे हुए। हम लोग रूपा के कमरे में थे; ठाकुर साहब भी अचानक चुपके से आ पहुँचे—ठीक खुफिया पुलिस की तरह्। सम्भवत वह पहले हो से कही पास ही खडे थे और चुपके से हम दोनो की बाते सुन रहे थे। आते ही अत्यन्त गम्भीर भाव से मुझसे बोले—'धीराज, तुम यहा कैसे चले आये ? यह बिलकुल बेकायदा बात है ! रूपा के कमरे में अकेले चले आने का कोई अधिकार तुम्हे नही है।' यह कहकर उन्होने मेरा हाथ पकडा और एक प्रकार से मुझे बलपूर्वक बाहर खीच ले गये।"

महीप सन्न रह गया। धीराज ने सहज शान्त भाव से जिस साधारण-सी घटना का वर्णन उसके आगे किया उसे सुनकर उसका हृदय जैसे दहल गया। उसे ऐसा लगा कि ठाकुर साहब के रहस्यपूर्ण स्वभाव की अछेद्य कठोरता के सम्बन्ध मे इससे अधिक भयकर दृष्टान्त की कल्पना वह नही कर सकता। सबसे बडी पहेली जो उसे जान पडती थी वह थी रूपा के सम्बन्ध मे ठाकुर साहब की इस कदर बेतरह बढी हुई दिलचस्पी। उसकी समझ मे यह बात बिलकुल नही आ रही थी कि रूपा के सम्बन्ध में वह धीराज के प्रति इस प्रकार का विद्वेषपूर्ण भाव क्यो रखते है, जब कि नीलिमा से उनके विवाह की बाते पक्की हो चुकी है। ठाकुर साहब को महीप इस हद तक नासमझ नही समझता था कि वह धीराज को लफगा समझते होगे। उसके मन में यह निश्चित विश्वास था कि ठाकुर साहब धीराज की सच्चरित्रता, स्वभाव की सुशीलता

और हृदय की निष्कपटता से भली भाति परिचित है। यह जानते हुए भी वह रूपा के सम्बन्ध में उसके साथ इस तरह पेश क्यो आते है जैसे वह नम्बरी लफगा हो ? यह बात भी महीप से छिपी नही रह गई थी कि इस मामले में ठाकुर साहब ईर्ष्यालु हो उठे है। पर रूपा से सम्बन्धित इस ईर्ष्या का क्या अर्थ हो सकता है, जब कि नीलिमा "मिस्ट्री ! मिस्ट्री ! यह एक रहस्य है जिसका समाधान इस समय कोई नही कर सकता, पर शीघ्र ही इस समय रहस्य के ऊपर का काला पर्दा फट जायगा, इसमें सन्देह के लिए तनिक भी गुजाइश नही है।" यह सोचता हुआ महीप फिर चारो खाने चित लेट गया और नीलिमा के साथ आज के अन्तिम मिलन की घटना की स्मृति को उभाडने की चेष्टा करता हुआ ऊपर चन्द्रमा की ओर एकटक अन्यमनस्क-भाव से देखता रहा।

धीराज भी एक ऐसी निगूढ चिन्ता में मग्न था जिसकी कोई रूप-रेखा सम्भवत उसके आगे भी स्पष्ट नही हो रही थी। वह भी लेट गया था, पर लेटने की क्रिया अपनी तत्कालीन मानसिक अवस्था में उसे कतई सुविधाजनक नही मालूम हो रही थी। कुछ देर बाद वह सहसा फिर उठ बैठा और बोला—"आप जानते है, मैंने किग्स कमीशन में भरती होने के लिए दरख्वास्त दी है ?"

"नही, मुझे इस बात की कोई खबर अभी तक नही थी।" महीप ने लेटे-ही-लेटे कहा।

"अच्छी तरह सोचने-समझने के बाद मै अन्त में इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि यहा जिस प्रकार का निष्क्रिय जीवन मै बिता रहा हूँ उससे किसी भी प्रकार की सक्रियता बेहतर है—चाहे वह लडाई में मर मिटने की ही सक्रियता क्यो न हो। प्रेम एक घातक रोग है—कितना बडा घातक है, इसकी कल्पना आपने कभी की होगी, इसमें मुझे सन्देह है, क्योकि आप कवि है, और कवियो ने सदा प्रेम की महत्ता का राग अलापा है, जो मुझे इस कदर

मूर्खतापूर्ण लगता है कि...माफ कीजिएगा, एक वार पहले भी मै इस वात की चर्चा आपसे कर चुका हूं, पर तव मेरा जी नही भरा था।"

अपने मन की चरम अवसाद की अवस्था में भी महीप को धीराज की इस तरह की वात से मन-ही-मन हंसी आई और साथ ही उसका कौतूहल भी उभड उठा। वह फिर उठ वैठा और मुस्कराता हुआ वोला—"यदि उस दिन आपका जी न भरा हो तो अव भर लीजिए"

चौबीसवां परिच्छेद

धीराज कुछ देर तक मौन वैठा रहा, पर उस मौन अवस्था मे भी उसके भीतर की भावना की तीव्रता ईथर में तरगित होती हुई जैसे महीप के अन्तर में आघात कर रही थी। उसके वाद सहसा मौन भग करता हुआ धीराज वोला—"मेरी तो यह धारणा है कि जो व्यक्ति प्रेम की मार्मिक शूल-वेदना का अनुभव करता है वह कवि हो ही नही सकता। मुझे इस वात पर विश्वास नही होता कि किसी कवि ने कभी प्रेम की इस जीवन-शोषी अनुभूति का सच्चा अनुभव किया होगा। कारण यह है कि कवियो का एकमात्र सहारा है कल्पना, और इस प्रकार की मर्मघाती अनुभूति की कल्पना नही की जा सकती और न उसका वर्णन ही किया जा सकता है—उसका तो केवल मौन अनुभव ही किया जा सकता है, और वह अनुभव भी कुछ विरले अभागो के भाग्य मे ही वदा होता है, शेष मनुष्य अपने पशु-सस्कारवश स्त्री-पुरुष के सहज पारस्परिक आकर्षण के नियम से एक साधारण सी गुदगुदी या हलकी-सी चुभन का अनुभव करके रह जाते हैं, और उसी को 'प्रेम-प्रेम' कहकर चिल्लाने लगते हैं—उसी को लेकर गीत या कविता रचने लगते हैं, कहानिया गढते हैं, दार्शनिक निवन्ध लिखने वैठ जाते हैं, कभी रोने का स्वाग भरते है और कभी हंसने का। जव मै इन स्वागो को देखता हूं तो मेरी आत्मा विकट व्यग-भरा अट्टहास करने लगती है..."

महीप धीराज की इस तरह की वातें सुनकर गम्भीर भाव से मन-ही-

मन सोचने लगा कि नीलिमा के सम्बन्ध मे उसकी (महीप की) जो अपनी अनुभूति है वह 'साधारण-सी गुदगुदी' है, 'हलकी-सी चुभन' है या वही मर्म-शोषी अनुभूति है, जिसका सकेत देने की चेष्टा धीराज पहले भी कर चुका है और आज भी अपनी पीडित आत्मा की तेज़ाब से भी तेज और कोलतार से भी गाढी काली स्याही द्वारा कर रहा है? वह कुछ भी ठीक निर्णय नही कर पाया।

धीराज कहता चला गया—"मै अनुमान करता हूँ कि अधिकाश मनुष्यो की अपेक्षा बिच्छू या दूसरे निम्न कोटि के जीव प्रेम की वास्तविक अनुभूति के अधिक निकट है जो केवल एक चरम क्षण की अनुभूति के उद्देश्य से ही अपने सारे जीवन की गति को उन्मुख किये रहते है। उनकी अज्ञात चेतना निश्चित रूप से यह जानती होगी कि उनके जीवन का प्रत्येक पग उसी अन्तिम अनुभव की ओर अग्रसर हो रहा है, प्रत्येक क्रिया उसी की ओर प्रेरित हो रही है। अन्त में जब वह चरम क्षण आता है तो उसके बाद ही वे अत्यन्त धीरता के साथ—तनिक भी शिकायत के बिना—अपने प्राणो की बलि दे देते है। बिच्छू के बारे में यह कहा जाता है कि वह अपनी प्रिया से प्रथम प्रेम-मिलन के बाद तत्काल आत्महत्या कर लेता है—उसके बाद वह फिर अपने जीवन की कोई सार्थकता नही समझता। कुछ जीव-तत्त्वज्ञो का यह भी कहना है कि बिच्छू आत्महत्या नही करता, बल्कि उसकी प्रेमिका प्रथम मिलन के बाद ही उसका काम तमाम कर डालती है और उसे खा जाती है। केवल बिच्छू ही नही, निम्न कोटि के और भी बहुत-से जीवो की परिणति इसी रूप में होती है। उन सब जीवो की अज्ञात चेतना निश्चय ही यह जानती होगी कि उनके प्रेम का परिणाम विनाश है, पर इस पूर्व अनुभूति के बावजूद वे प्रेम से नही कतराते और इच्छापूर्वक उस निश्चित विनाश को स्वीकार करते है, क्योंकि प्रजा-विस्तार के लिए यह आवश्यक है। प्रेम एक रोग है, पर वह सहज रोग है, जिसे प्रकृति ने जीवो के विनाश के लिए आकर्षक बनाया है। प्रेम का बलिदान यदि महान् है तो केवल इसी पाशविक अर्थ में कि वह

पुरानी सृष्टि का विनाश करके नये सृजन में सहायक सिद्ध होता है। पर कवियो ने उसे जो अपने-आप मे महान्, आत्मा को ऊँचा उठानेवाला, चिदानन्द की अलौकिक अनुभूति जगानेवाला वताया है, वह निरा भूठ और ढोग है।"

धीराज ने प्रेम के सम्बन्ध में वहुत-सी गहरी वाते एकान्त मे सोची है और अनुभव की है, यह वात महीप को मन-ही-मन स्वीकार करनी ही पड़ी। पर वह इस चर्चा को आगे वढाना नही चाहता था, क्योकि वह उसके मन के एक विशेष घाव को वार वार निर्ममता से आघात कर रही थी। उसने वात को तनिक हलका रूप देने के विचार से कहा—"तो आप किंग्स कमीशन में भरती होने जा रहे है?"

अपने अन्तरतम प्रदेश के लम्वे और मार्मिक उद्गार के वाद धीराज महीप से इस प्रकार के प्रश्न की प्रत्याशा नही करता था। उसने सोचा था कि महीप उसकी गम्भीर वात का प्रत्युत्तर गम्भीर ही रूप से देगा और एक कवि की हैसियत से प्रेम के सम्वन्ध मे अपनी आन्तरिक अनुभूति से उसे परिचित करावेगा। पर जव महीप ने ऐसा न करके किंग्स कमीशन की चर्चा चलाई तो उसे एक धक्का-सा लगा। उसने मुरझाई हुई आवाज़ में उत्तर दिया—"जी हा।"

"अच्छा, यह वताइए कि आप लडाई मे केवल मर-मिटने के लिए ही जाना चाहते है या उसके प्रति आपका कोई आन्तरिक आकर्पण भी है?"

"मै दो कारणो से लडाई के प्रति आकर्पित हुआ हूँ। एक तो यह कि प्रेमिक विच्छू की तरह यह स्पष्ट पूर्वानुभूति मेरी अन्तरात्मा मे छा गई है कि मेरी प्रेमाकाक्षा की परिणति मेरे विनाश मे होकर रहेगी—मै निश्चय ही किसी घातक दुर्घटना का शिकार वनकर रहूँगा। इसलिए मै सोचता हूँ कि यदि वह दुर्घटना लडाई के मैदान मेंहो तो शायद वह अपेक्षाकृत अधिक उन्नत और अधिक गौरवशाली हो। दूसरा कारण यह है कि लडाई में मरने से कम-से-कम इतना तो अवश्य ही होगा कि मेरे भीतर का जो पौरुष कुछ जन्मगत और कुछ समाजगत कारणो से इतने दिनो तक दवा रहा है, उसे एक व्यापक स्फूर्ति मिलेगी।

केवल आप और शारदा देवी। जोड़ा अच्छा है!" कहकर धीराज आज बहुत दिनों के बाद खुलकर मुस्कराया और उसके बाद चल दिया।

उसी दिन ठाकुर साहब और धीराज चले गए। रूपा और हेमा भी। महीप ने एक बार सोचा कि स्टेशन तक उन लोगों को पहुँचा आवे, पर फिर कुछ सोचकर रह गया।

उसी दिन तीसरे पहर शारदा देवी महीप के कमरे में चली आई, और आते ही अत्यन्त स्निग्ध मुसकान मुख पर झलकाती हुई बोलीं—"कहिए, आज तो आपको अपने दोनो मित्रों का बिछोह बहुत सता रहा होगा?" यह कहकर वह एक सोफा पर बैठ गई।

महीप उस समय अपने पलग पर लेटा हुआ बत्ती के प्रकाश में एक राजनीति सम्बन्धी पुस्तक पढ रहा था। बाहर की गरम हवा से बचने के लिए उसका कमरा चारों तरफ से बन्द कर दिया गया था, जिसकी वजह से दिन में ही वहा रात का भान हो रहा था। शारदा देवी को भीतर प्रवेश करते देखकर वह उठ बैठा और पुस्तक नीचे रखकर दोनों हाथों से नमस्कार करता हुआ बोला—"जी हा, ठाकुर धीराजसिंह के चले जाने से मुझे अवश्य अकेलेपन का अनुभव हो रहा है। वैसे आप इतना अनुमान तो लगा ही सकती है कि हम लोग, जो कवि-नामधारी है, अपने अकेलेपन में ही डूबे रहने के आदी होते है।"

"यह मै समझ सकती हूँ, पर साथ ही आपके सम्बन्ध में एक दूसरी बात का अनुमान भी मै लगा रही हूँ।" यह कहते हुए शारदा देवी के मुख पर एक रहस्य-भरी मुसकान टिमटिमा रही थी।

महीप ने तनिक घबराहट के स्वर में पूछा—"वह क्या?"

"वह यह कि इधर कुछ दिनों से आपको अपना अकेलेपन का बोझ जैसे बहुत भारी लग रहा है।"

अपने सम्बन्ध में सहसा इस प्रकार का मन्तव्य शारदा देवी के मुह से

सुनने के लिए महीप क़तई तैयार नहीं था। सुनते ही वह भीतर-ही-भीतर चौंक उठा। वह सोचने लगा कि शारदा देवी के इस अनुमान का कारण क्या हो सकता है? क्या उनकी अन्तरानुभूति सचमुच इतनी मार्मिक है या उन्होंने किसी जरिए कोई बात सुनी है?

उसने कहा—"क्या मैं जान सकता हूँ, शारदा देवी, कि आपके इस अनुमान का कारण क्या है? कुछ समय से एक ही मकान में रहने पर भी आपके निकट सपर्क में आने का सौभाग्य मुझे नहीं हुआ, फिर भी आप मेरे 'अकेलेपन के बोझ' से परिचित हैं, यह बात मुझे बडी रहस्यपूर्ण लग रही है।"

क्षण-भर के लिए शारदा देवी महीप की ओर एकटक देखती रहीं। उनकी उस दृष्टि से महीप को ऐसा लगा जैसे उसके अन्तर की कोई भी गुप्त बात शारदा देवी से छिपी नहीं है। ऐसा क्यों लगा, इसका कोई कारण वह नहीं बता सकता था, तथापि शारदा देवी के सम्बन्ध में अपनी उस नई अनुभूति से वह सिहर उठा।

शारदा देवी इस बार अत्यन्त गम्भीर भाव से बोलीं—"आपको मेरे निकट सम्पर्क में आने का 'सौभाग्य' भले ही न मिला हो, पर मुझे आपके निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य अवश्य मिला है।"

महीप को यह बात भी कुछ कम भेदभरी नहीं मालूम हुई। वह हतबुद्धि-सा शारदा देवी की ओर देखता रह गया। आज पहली बार उसने ध्यानपूर्वक उनकी ओर देखा और उनके मुख की बनावट और हाव-भाव पर ग़ौर किया। उनके सत्त्वहीन मुख की ऊपरी अभिव्यक्ति के नीचे उसे एक मार्मिक छाया का आभास दिखाई दिया, जिससे वह दहल उठा। वह कुछ क्षणों तक उनकी ओर विमूढ़ भाव से देखता हुआ मौन बैठा रहा और शारदा देवी भी उसी मर्मभेदी गम्भीर दृष्टि से उसकी ओर देखती रहीं।

उसके बाद सहसा महीप बोल उठा—"मैं आपसे हृदय से क्षमा चाहता हूँ, शारदा देवी। मैं सचमुच इधर किन्हीं कारणों से इतना अधिक आत्मगत

रहा हूँ कि अपने 'अकेलेपन के बोझ' को सँभालने के सिवा और कोई चिन्ता ही मुझे नहीं रही है। आप उम्र में मुझसे बड़ी है, सयानी है, समझदार है, और मेरा अन्त करण कहता है कि जीवन के अनुभव भी आपको गहरे हो चुके होंगे। इसलिए मैं विश्वास करता हूँ कि आप निश्चय ही अपने प्रति मेरी उदासीनता के लिए मुझे क्षमा कर देंगी।"

शारदा देवी के मुख का भाव और अधिक गम्भीर हो उठा। वह कुछ देर तक अपनी छोटी किन्तु भावपूर्ण आखो की स्थिर और पैनी दृष्टि से महीप की ओर परीक्षक की तरह देखती रही। उसके बाद बोली—"अपने प्रति आपकी उदासीनता के लिए मुझे तनिक भी दु ख नही है, यह आप जाने रहिए। मुझे दु ख यदि है तो इस बात का कि आप स्वय अपने प्रति उदासीन होते चले जा रहे है, जीवन का जो महान् गम्भीर लक्ष्य आपके सामने था वह जैसे आपकी आखो के आगे दिन-पर-दिन धुधला होता चला जा रहा है और अब मिटना ही चाहता है। यदि आप एक बार खूब गौर से और गहराई से इस विषय पर सोचें तो आपको यह जानकर स्वय आश्चर्य होगा कि आपके मन की यह स्थिति कितने तुच्छ कारण को लेकर उत्पन्न हुई है। अपने मन के भीतरी स्तर को एक बार निर्मम होकर चीर डालिए, तब आपको पता चलेगा कि वास्तविकता क्या है और आप किस दल-दल में फसे है।"

महीप ने देखा कि यह कहते हुए शारदा देवी की आखें दहक रही थी और उनसे सुई की तरह नुकीली चिनगारिया निकल रही थीं।

शारदा देवी उसी जलती हुई दृष्टि से उसकी ओर देखती हुई कहती चली गई—"बर्फीले देशो में भ्रमण करनेवाले यात्रियो के वृत्तान्तो को पढने से पता चलता है कि कभी-कभी ऐसी स्थिति आ जाती है कि यात्री ठण्ढ से अकडकर बर्फ के ऊपर ही लेट जाता है, और उस हालत में उसे बरबस ऐसी मीठी नीद आने लगती है कि वह उठने की चेष्टा ही नहीं करना चाहता। वह मीठी नीद उसके लिए घातक सिद्ध होती है। और यदि उसे बलपूर्वक न जगाया जाय तो

वह उसे ले बीतती है। आपके मन की नींद इस समय उसी दशा को पहुँची हुई है।"

महीप का सिर भन्नाने लगा। उसे अपने चारो ओर सब कुछ घूमता हुआ दिखाई देने लगा। उसे ऐसा अनुभव होने लगा जैसे उसके भीतर भी अचानक ज्वालामुखी का प्रचण्ड विस्फोट हुआ है और भीतर से पिघलती हुई आग निकलने के साथ ही उस विस्फोट के धक्के के कारण उसके सिर के भीतर बड़े-बडे चट्टान ढहकर नीचे गिर रहे है। वह खोया हुआ-सा शारदा देवी की ओर देखता रह गया---एक शब्द भी उसके मुह से नही निकला।

छब्बीसवां परिच्छेद

महीप ने शारदा देवी का एक बिलकुल नया और अप्रत्याशित रूप देखा, जिसके लिए वह कतई तैयार नही था। उसे यह सोचकर आश्चर्य होने लगा कि वह दुबली-पतली नारी, जिसके नि सत्त्व मुख का चमडा किसी जानवर की सुखाई हुई खाल की तरह चीमड हो उठा है, इतनी प्रचण्ड जीवनी-शक्ति इतने दिनो तक कहा छिपाए हुए थी ? वह क्या चाहती है ? वह ठाकुर साहब के यहा किस रहस्यपूर्ण ध्येय की पूर्ति के लिए, किस घात मे बैठी है ? सबसे अधिक आश्चर्य महीप को शारदा देवी की पैनी साथ ही चौकन्नी दृष्टि से हो रहा था। जैसी ही तीक्ष्ण उनकी बाह्य दृष्टि उसे लग रही थी, वैसी ही, बल्कि उससे भी अधिक, तीव्र उनकी अन्तर्दृष्टि जान पडती थी, जिसने उसके अन्तर को भेदकर एक ऐसे स्थान को स्पर्श कर लिया था, जो स्वय उसकी अपनी आखो से भी बहुत-कुछ छिपा हुआ था।

शारदा देवी की आखो मे एक अस्वाभाविक प्रकाश विकीरित होकर एक्स'-किरणो की तरह उसके बाहरी स्तरो को आसानी से चीरता हुआ जैसे उसके मर्म का पर्दाफाश कर रहा था। कुछ क्षणो तक उसी विचित्र दृष्टि से देखती हुई वह महीप की भ्रान्ति को अधिकाधिक बढाती चली गई। उसके बाद

फिर एक वार उस मोहाच्छन्न वातावरण के सन्नाटे को भग करती हुई बोली—"जिस दिन पहले-पहल मैंने आपको यहा देखा और ठाकुर साहब ने आपका परिचय कराया उस दिन मेरे मन में जो भाव जगा उसका वर्णन में नहीं कर सकती। मेरे मन में तत्काल यह प्रश्न उठा—'इतने दिनो से एक-एक पल, एक-एक घडी, एक-एक दिन मैं जिस अनजान व्यक्ति की प्रतीक्षा में बिताती आ रही हूँ, क्या यह वही व्यक्ति आज अचानक मेरे पास आ पहुँचा है ?' आपकी रचनाओ से मैं पहले ही से बहुत कुछ परिचित थी, और कवियो के सम्बन्ध में वचपन ही से मेरी वडी ऊँची धारणा रही है। मैं वरावर उन्हें महान् आदर्शवादी और विश्वकल्याण की भावना में सराबोर मानती रही हूँ। इसलिए आपको निकट पाकर मैंने समझा था कि आप मुझे उस लक्ष्य की ओर मार्ग सुझाने में सहायक सिद्ध होगे जिसकी अस्पष्ट झाकी इतने दिनो से प्रतिदिन, प्रतिपल मेरी आखो के आगे झिलमिलाती रही है। अपने चारो ओर के सूनेपन में मुझे एक भी व्यक्ति आज तक ऐसा नही मिला जिसके आगे अपने उस लक्ष्य का आभास-मात्र भी मैं दे पाती। इसलिए जब आप पर आपके सम्वन्ध में भी मुझे धोखा हुआ। जरा सोचिए, आप किस ऊँचाई से आजकल किस जमीन पर उतर पडे हैं! मैंने सुना है कि आपने किसी ऊँचे आदर्श की प्रेरणा से आई० सी० एस० की परीक्षा देने से इनकार कर दिया। क्या आजकल आप उसी ऊँचे आदर्श के लिए बेचैन है? अपने अन्त करण से पूछिए। क्या वहा से कोई धिक्कार-भरी आवाज नही उठ रही है? जिस दलदल में आजकल आप अपने को फँसाये वैठे है, उससे तो यही अच्छा था कि आपने आई० सी० एस० की परीक्षा देकर उसमें सफलता पा ली होती। उस हालत में आपकी व० आव क्षा निश्चय ही चरितार्थ हो गई होती, जिसकी वर्तमान असफलता की अनुभूति अ.पक। जडता की चरम सीमा की ओर ढकेले लिए जा रही है।"

इतने में एक नौकर आया। उसने शारदा देवी को सूचित किया कि फर्निचर-मार्ट से कुछ चीजें आई हैं जिनके लिए ठाकुर साहव आर्डर दे गये थे। उन्हें देखकर पसन्द करना है।

शारदा देवी उठ खडी हुई और जाने के पहले पाषाण-मूर्ति की तरह स्तब्ध महीप को लक्ष्य करके बोली—"मेरी बातो पर आप एक बार एकान्त में ध्यान देकर विचार कर लीजिएगा।" कहकर वह चली गई।

महीप यह सोचकर दग था कि शारदा देवी ने उसकी तत्कालीन बाहरी और भीतरी परिस्थितियो के सम्बन्ध में इस हद तक जानकारी प्राप्त किस जरिए से कर ली। उनकी जानकारी पूरी और निश्चित रूप से यथार्थ है, इस सम्बन्ध में तनिक भी सन्देह उसे नही रह गया था। यह सोचकर भी वह चकित था कि शारदा देवी उसके मर्म के ठीक उस स्थान को कुरेदने में कैसे समर्थ हुई, जिसके ऊपर वह गाढा काला पर्दा डाले हुए था—स्वय अपनी आखो से छिपाये रखने के लिए। साथ ही यह प्रश्न उसे अत्यन्त विचलित कर रहा था कि शारदा देवी उससे चाहती क्या है।

इस प्रश्न का उत्तर सोचने की व्यर्थ चेष्टा करते हुए एक दूसरा प्रश्न उसके मन पर तीव्रता से आघात करने लगा। वह सोचने लगा—"यह शारदा देवी है कौन? जो प्रचण्ड धिक्कार वह मेरे भीतर उभाडना चाहती है वह उनके भीतर किस मर्मघाती अनुभूति की प्रेरणा का फल है? एक जमीदार की लडकी की 'गार्जियन-ट्यूटरेस' की हैसियत से निश्चय ही वैसी तीखी और खरी बाते कहने की साहसिकता उनमें नही आ सकती जैसी आज उन्होने मुझसे कही है। क्या सचमुच वह केवल 'गार्जियन-ट्यूटरेस' की हैसियत मे ही ठाकुर साहब के यहा रहती है? या यहा उनके रहने मे और भी कोई रहस्य छिपा है? और जिस 'लक्ष्य' की अस्पष्ट-झाकी की बात उन्होने कही थी वह क्या हो सकता है?"

सोचते-सोचते महीप का सिर चकराने लगा और वह किसी भी बात के सम्बन्ध में किसी भी परिणाम पर नही पहुँच पाया।

सत्ताईसवां परिच्छेद

उसके बाद फिर तीन दिन तक शारदा देवी से कोई भी बात घनिष्ठ रूप से करने का सयोग महीप को नही मिला। इसका प्रधान कारण यह था कि शारदा देवी स्वय उसके लिए कोई सुयोग नही देना चाहती थी—उनके रुख से महीप को यही जान पडा। जिस गम्भीर विषय की चर्चा उन्होने स्वयं सहसा अप्रत्याशित रूप से छेडी थी उसे अधूरा छोड करके महीप को भ्रान्ति के भँवर में डालकर जब वह चली गईं, फिर उसे पूरा करने की कोई आवश्यकता ही जैसे उन्हें प्रतीत नही हुई। एक बार दिन के भोजन के समय महीप ने जब परोक्ष रूप से स्वय उस विषय की चर्चा चलाने की चेष्टा की, तो तरकारी में नमक कम पडने की शिकायत करके शारदा देवी ने वह बात ही टाल दी, और पाकशास्त्र पर एक लम्बा लेक्चर दे डाला। उसके बाद महीप को फिर दूसरी बार उस विषय का उल्लेख करने का साहस ही नही हुआ।

तीन दिन तक यही हाल रहा। जब कभी दोनों का मिलना होता था तब शारदा देवी कभी तो पाकशास्त्र की चर्चा चला देती, कभी काव्यशास्त्र की और कभी वनस्पतिशास्त्र की।

चौथे दिन ठाकुर साहब का एक तार शारदा देवी को मिला, जिसमें यह सूचित किया गया था कि शिकार खेलते समय एक दुर्घटना के फल-स्वरूप धीराज की मृत्यु हो गई। दुर्घटना किस रूप में और कैसे हुई इस बात का उल्लेख तार में नही था। शारदा देवी अत्यन्त घबराई हुई महीप के पास गईं। उस समय महीप अन्तरराष्ट्रीय राजनीति से सम्बन्धित कोई पुस्तक पढने में व्यस्त था। शारदा देवी को देखकर वह स्वागत के लिए कुर्सी पर से उठ खडा हुआ। शारदा देवी घबराहट के कारण जैसे कुछ बोलने में समर्थ नही हो पा रही थी। उन्होने चुपचाप वह तार महीप के हाथ में दे दिया। तार पढते ही महीप को ऐसा बिजली का-सा धक्का लगा कि वह खडा न रह सका

और वरवस घम से कुर्सी पर एक प्रकार से पीछे की ओर गिर गया। शारदा देवी की आखो के कोयो में आसू की वूदें सफेद चिनगारियो की तरह चमक रही थी और महीप शोकाकुल, विस्मित और साथ ही भीत दृष्टि से उनकी ओर देख रहा था।

कुछ देर तक दोनो निपट मौन धारण किए निश्चल रहे। उसके वाद महीप के मुह से जैसे वरवस निकल पड़ा—"मेरी समझ में नही आया कि मामला क्या है।"

"पर मेरी समझ मे आ गया है।" कहती हुई शारदा देवी पास ही एक सोफा पर वैठ गई। उनके वोलने के ढग में और उनके मुख की अभिव्यक्ति में महीप को वही रौद्र रूप दिखाई दिया जिसका आभास उसे चार दिन पहले मिल चुका था।

"मुझे तो यह वात भेद-भरी मालूम होती है",—साहस वटोरकर महीप वोला। वास्तव में तार पढते ही उसके मन मे विजली के वेग से एक विशेष सन्देह जग उठा। पर वह सन्देह ऐसा भयावह था कि उसकी कल्पना मे ही वह स्वय आतकित हो उठा था।

शारदा देवी ने एक वार दोनो दरवाजो की ओर सरसरी नजर दौडाई (हालाकि इस प्रकार की सावधानी वरतने की कोई आवश्यकता नही थी, क्योकि सभी नौकर अपनी कोठरियो में दिवा-निद्रा मे मग्न थे), और तव महीप की ओर अपनी गर्दन कुछ वढाकर वहुत ही धीमी आवाज में वोली—"इस दुर्घटना में निश्चय ही आपके ठाकुर साहव का हाथ है—तार पढते ही यह वात मेरे आगे प्रत्यक्ष सत्य की तरह झलक उठी थी।"

महीप चौंककर प्राय उछल पड़ा। वह आखे फाडकर भ्रान्त दृष्टि से शारदा देवी की ओर देखता रह गया। शारदा देवी ने ठीक वही वात कही थी जिसका सन्देह उसके मन में स्वत.—विना किसी ज्ञात कारण के—वरवस उभर उठा था। यह सोचकर उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि दोनो के मन में

तत्काल एक ही तरह का सन्देह क्यो उत्पन्न हो गया। यह कोई रहस्यमय काकताली है, दो चिन्ताप्रणालियो का आकस्मिक सामञ्जस्य है, या क्या है? और सन्देह भी कहा—शारदा देवी तो उसे अपना दृढ विश्वास बता रही थी! महीप अपने ही सन्देह से घबरा रहा था, उस पर जब शारदा देवी ने अपने 'निश्चित विश्वास' की बात बताई तो वह जैसे दहल उठा। तब क्या वास्तव मे ठाकुर साहब पर नही, उनका चरित्र इस हद तक भयावह नही हो सकता—भले ही उनके स्वभाव में दूसरे प्रकार की हीनताए भरी हो।

धीराज के स्थिर-विषाद से म्लान मुख की दर्शनीय और आकर्षक आकृति रह-रहकर महीप की मानसिक आखो के आगे झिलमिला रही थी। कुछ ही दिनो के अल्प परिचय से धीराज के व्यक्तित्व की छाप जिस रूप में उसके मन पर पडी हुई थी वह रह-रहकर उसके मन को तीव्र रूप से आन्दोलित करने लगी। उसे ऐसा बोध होने लगा जैसे धीराज की छायात्मा एक सूक्ष्म किन्तु सजीव रूप धारण करके उससे किसी बात के लिए कातर प्रार्थना कर रही हो। पर किस बात के लिए? उस कातर प्रार्थना का क्या अर्थ हो सकता है? वह अत्यन्त मार्मिक रूप से करुण, दीन और असहाय किन्तु तीव्र अनुभूतिशील छायात्मा उससे क्या चाहती है? अपने प्रति किए गए अमानुषिक अन्याय का प्रतिकार? सोचते ही जैसे महीप की सारी आत्मा एक लोमहर्षक भौतिक अनुभूति के स्पन्दन से फडफडा उठी। चन्द सेकिंडो के भीतर एक निराले अपार्थिव भावना-लोक में पूर्णतया डूबने के बाद जब महीप का मन उतराकर प्रत्यक्ष पार्थिव जगत् में लौट आया, तब वह भीत स्वर में बोला—"क्षमा कीजिएगा, मै आपका आशय ठीक समझ नही पाया। इस दुर्घटना में ठाकुर साहब का हाथ किस रूप में होने की बात आप सोच रही है?"

शारदा देवी की आखो की हिंसकता और भी अधिक तीव्रता से प्रज्वलित हो उठी थी। उन्होने फिर एक बार दोनो दरवाजो की ओर बिजली की तेजी से देखा और उसके बाद पहले से भी अधिक धीमे किन्तु प्रचण्ड आक्रोश

को फुफकार-भरे स्वर मे कहा—"इस रूप मे कि ठाकुर साहव ने धीराजसिंह की हत्या की है—जान-बूझकर! पहले से ही निश्चित किए गए विचार के अनुसार शिकार खेलने का वहाना उन्होने निश्चय ही पहले सोच लिया था। जगली जानवर के शिकार की ओट मे वह एक पालतू मनुष्य का शिकार करने का इरादा पहले से ही रखते थे, यह विश्वास मेरे मन में दृढ से दृढतर होकर जमता चला जा रहा है।"

महीप भ्रात दृष्टि से उनकी ओर देखता हुआ प्राय. फुसफुसाता हुआ वोला—"पर शारदा देवी, इस तरह की विचित्र धारणा आपके मन में उत्पन्न होने का कारण क्या हो सकता है?"

"कारण वहुत-से है, कुछ प्रत्यक्ष और कुछ परोक्ष। ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह कितने वड़े जालिम, कितने भयकर धूर्त, किस हद तक रगे सियार है, इसकी कल्पना अभी आप नही कर सकते, क्योकि उनके निकट सम्पर्क मे आये अभी आपको अधिक समय नही हुआ है। पर मै जानती हूँ, क्योकि मुझे इस वात का प्रत्यक्ष अनुभव है। और मेरा विश्वास था कि धीराजसिंह को भी ठाकुर साहव के स्वभाव के सम्वन्ध में वहुत कुछ जानकारी होगी, पर इस घटना से इस सम्वन्ध में मुझे सन्देह होने लगा है।"

महीप कुछ नहीं वोला, केवल वेवकूफो की तरह शारदा देवी की ओर ताकता रह गया।

धीराज ने जव सूचित किया था कि वह ठाकुर साहव के साथ शिकार खेलने जा रहा है तभी महीप के मन में किसी अज्ञात दुर्घटना की अस्पष्ट आशका जग उठी थी। ठाकुर साहव के स्वभाव की प्रत्यक्ष शालीनता के भीतर कोई एक जहरीला साप कुण्डली वाधे हुए है, यह सन्देह भी उनके उसके मन मे वहुत दिनो से अस्पष्ट रूप से वर्तमान था। पर यह सव होने पर भी वह साप इस हद तक खतरनाक सिद्ध हो सकता है, इस वात की कल्पना उसने नहीं की थी। किन्तु शारदा देवी के सुझाने पर ठाकुर साहव का वह रूप सहसा

विजली के-से प्रकाश में उसकी आखों के आगे सुस्पष्ट हो उठा, उसे ऐसा बोध होने लगा, हालांकि वह 'सुस्पष्टता' अब भी उसके सचेत मन के आगे अस्पष्ट ही थी।

कुछ क्षणों तक दोनों मौन रहे, यद्यपि दोनों के भीतर, सचेत मन के नीचे, एक ऐसा भयावह कोलाहल मच रहा था कि जान पडता था जैसे किसी कालान्तक युद्ध में दोनो पक्षो के असख्य सैनिक उन्मत्त होकर मरण-चात्कार कर रहे हो। वे दोनों पक्ष कौन थे और वह युद्ध किस कारण से हो रहा था, इस वात का अन्दाज लगाना उन दोनों में से किसी के लिए भी सम्भव नहीं था।

अट्ठाईसवां परिच्छेद

अचानक शारदा देवी ने उस आतककारी स्तब्धता को भग करते हुए जैसे अपनी वात की विखरी हुई कडियों को फिर से जोडकर धीरे से कहना शुरू किया—"यदि ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह के कुचक्रो की एक पूरी सूची तैयार की जाय, और उनकी प्रत्येक काली करतूत का विस्तृत इतिहास तैयार किया जा सके, तो समाज का रोआ-रोआ आतक से सिहरकर ववूल के काटों की तरह खडा हो जाय। उन कुचक्रो में उनके हत्याचक्र भी सम्मिलित हैं, जो ऐसी सफाई से, परोक्ष उपायो से, किये गये हैं कि विचार करने पर दग रह जाना पडता है। इस सम्वन्ध में अपनी प्रत्यक्ष जानकारी का एक उदाहरण मैं आपको दे सकती हूँ। मेरे पुरखे तीन पुश्तो से ठाकुर साहव की ही जमींदारी में निवास करते आये हैं, यद्यपि हम लोग मूल निवासी हैं इटावे के। मेरे पिता जी ठाकुर साहव के पिता जी के प्राइवेट सेक्रेटरी थे। पिता जी अपेक्षाकृत प्रगतिशील विचारो के आदमी थे। दो लडकियो के सिवा उनके और कोई सन्तान नहीं थी—एक मैं और एक मुझसे दो साल वडी मेरी वहन। पिता जी आरम्भ ही से हम दोनों की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देते रहे। ठाकुर

लक्ष्मीनारायण सिंह के पिता ठाकुर बलवीरनारायण सिंह बड़े ही सज्जन पुरुष थे। उन्होंने पिता जी को अन्य सभी बातों की स्वतन्त्रता के साथ पूरी आर्थिक सुविधा भी दे रक्खी थी और हम दोनों बहनों को वे अपनी ही लड़कियों की तरह मानते थे—उनकी अपनी कोई लड़की नहीं थी। पिता जी ने जब मुझे और दीदी को—जिसका नाम गौरी था—पहले कालेज और उसके बाद युनिवर्सिटी की शिक्षा देने का विचार किया तो ठाकुर बलवीरनारायण सिंह ने तनिक भी आपत्ति नहीं की, हालांकि वे स्वयं कट्टर पुराणपन्थी थे।

"जिन दिनों हम दोनों बहनें युनिवर्सिटी में पढ़ती थीं उन्हीं दिनों ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह भी वहीं पढ़ते थे। हम यद्यपि लड़कियों के होस्टल में रहती थीं, तथापि इस बात से ठाकुर साहब का हम लोगों से मिलना-जुलना बन्द नहीं हुआ था।

"मुझसे यह बात छिपी नहीं थी कि ठाकुर साहब की आंखें बहुत दिनों से दीदी पर गड़ी हुई हैं। दीदी स्वभाव की बहुत ही भोली और बड़ी सहृदय थी। आरम्भ में कुछ समय तक अपने सकोचशील स्वभाव के कारण ठाकुर साहब से कतराती रही, पर बाद में वह धीरे-धीरे ठाकुर साहब की लगन से प्रभावित हो गई। ठाकुर साहब सदा अपनी धुन के पक्के रहे हैं, और जब किसी बात का निश्चय वह अपने मन में एक बार कर लेते हैं, तब फिर लाख बाधाओं के रहते भी अपने लक्ष्य से पीछे नहीं हटते—चाहे उसके लिए उन्हें कितना ही जलील क्यों न होना पड़े, कितने ही खतरे क्यों न उठाने पड़ें। दीदी के कतराने में उनका उत्साह तनिक भी ठण्डा नहीं पड़ा, और वह बड़ी शराफत से पेश आते हुए बार-बार उसके प्रति अपना निवेदन प्रकट करते रहे, जिससे अन्त में उन्हें पूरी सफलता मिल गई।

"दीदी आरम्भ में मेरा साथ किसी समय नहीं छोड़ती थी, पर बाद में ठाकुर साहब की कृपा से धीरे-धीरे यहां तक नौबत आई कि अक्सर दिन में घण्टों के लिए मुझसे अलग रहने लगी। ठाकुर साहब से उसकी घनिष्ठता

किस हद तक हो चुकी है, बहुत दिनो तक इसका कोई निश्चित पता मुझे नहीं लग पाया। पर बाद में एक ऐसी घटना घटी जिसने सारी बात पानी की तरह मेरे आगे साफ रख दी।

"तब हम लोग गरमी की छुट्टियों में घर—ठाकुर साहब की रियासत में—गये हुए थे। एक दिन दीदी शाम को किस समय और किस काम से बाहर निकली और कहा गई, यह बात मै न जान पाई। अँधेरा हो गया, पर वह तब भी लौटकर न आई। ठाकुर साहब के यहा उनके घर की स्त्रियों से पुछवाया गया, पर मालूम हुआ कि उन लोगो की भी कोई खबर नहीं है। पिता जी ने घबराकर चारों ओर खोजने के लिए आदमी दौडाये, पर कहीं कोई पता नहीं चला।

"दूसरे दिन गाव से दो मील दूर एक सदियो पुराने मन्दिर के खण्डहर के भीतर वह मरी पडी पाई गई। उसकी लाश के पास शीशे के दो गिलास भी रक्खे पाये गए। इस घटना के कुछ दिन बाद उसका एक पत्र मुझे मिला, जिसे वह मेरी एक ऐसी किताब के भीतर बन्द करके रख गई थी जिसे मै महीने में एक ही आध बार खोल कर पढा करती थी। शायद वह नही चाहती थी कि पत्र मुझे तत्काल मिल जाय। वह पत्र उसने मेरे लिए लिखा था। उसमें उसने लिखा था—'चूंकि ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह के घर के लोग नहीं चाहते कि उनसे मेरा विवाह हो, इसलिए हम दोनों ने निश्चय किया है कि दोनों एक साथ आत्महत्या करेंगे। यह सूचना मै तुम्हें इसलिए दे रही हूँ ताकि मेरी आत्महत्या की घटना तुम्हारे लिए चिर-रहस्य बनकर न रह जाय।'

"पर ठाकुर साहब ने आत्महत्या नहीं की, जैसा कि आप भी जानते है। आत्महत्या करना तो दूर, दीदी के मरने के एक महीने बाद जब मैने उन्हें देखा तो वह पहले से अधिक स्वस्थ और प्रसन्न दिखाई दिये। इस बात से रह-रहकर एक सन्देह मेरे मन में जमता चला गया। यह निश्चित था कि उसने शीशे के गिलास में कोई विष पिया था, जो सादे पानी में घोलकर

पिलाया गया था और वह विष भी ऐसा रहा होगा जिसके पानी में घुलने पर भी पानी के रंग में कोई विशेष अन्तर नही आता और जो दूसरा गिलास वहा रक्खा था उसमें से ठाकुर साहब ने दीदी के सामने ही कोई ऐसा तरल पदार्थ पिया होगा जो विष नही था—सभवत वह शुद्ध जल ही रहा हो—और दीदी के मन पर यह विश्वास जमा दिया गया होगा कि दोनो गिलासो में विष है।

"आज मेरे मन मे इस बात का पूरा विश्वास जम गया है कि ऐसी अचिन्तनीय धूर्तता ठाकुर साहब द्वारा पूर्णतया सम्भव है। मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि दीदी के साथ विवाह की कोई चर्चा ठाकुर साहब के घर वालो के आगे नहीं चलाई गई थी। यह ठाकुर साहब की निरी धूर्तता थी कि उन्होने दीदी के मन मे उस तरह का विश्वास जमा दिया था। ठाकुर बलवीरनारायण सिंह मालूम होने पर दीदी के साथ अपने लडके के विवाह मे कभी कोई बाधा न डालते, मुझे इस बात का पूरा विश्वास है। असल मे बात स्पष्ट ही यह थी कि ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह किसी कारण से चाहते थे कि दीदी से सदा के लिए उनका पिण्ड छूटे, और साथ ही वह सीधे अपने हाथो से उसकी हत्या भी नही करना चाहते थे। इस कारण उन्होंने दोनो के 'एक साथ आत्महत्या' करने का वह अभिनय रचा ."

महीप को ऐसा लग रहा था जैसे भूतलोक से जीवित लौटा हुआ कोई व्यक्ति दूर किसी प्लेटफार्म से वहा के रोमाञ्चकर अनुभवो का वर्णन कर रहा हो, और उस भूत-जगत् के क्रूर-कर्मी पिशाचो के खिलाफ उसके ठण्डे रक्त को प्रचण्ड ताप ने खौलाने मे सफल सिद्ध हो रहा हो। बाहर से वह जितनी ही निस्पन्द और निर्वाक् अवस्था मे तन्मयता के साथ शारदा देवी की बातें सुन रहा था, भीतर से उसी वेग से भीषण तूफानी तरंगे उठकर उसे अस्त-व्यस्त कर रही थी। पर वह बोला कुछ भी नहीं—कुछ बोल ही न पाया, जैसे उसी भौतिक लोक के जादू ने उसकी जबान को एकदम जड़ बना दिया हो। केवल विस्मित और विभ्रान्त दृष्टि से वह शारदा देवी की ओर देखता रहा।

साहब की बाट जोह रही है। मुझे उसके इस भोलेपन पर बहुत दुःख हुआ, और इस बात पर आश्चर्य हुआ कि कम्यूनिस्ट विचारों की महिला होते हुए भी वह एक नम्बरी लफंगे पर विश्वास करके उसके प्रेम में भुली जा रही है। क्योंकि यह निश्चित था कि यदि वह चाहती तो विदेशों की कम्यूनिस्ट संस्थाओं से सम्पर्क स्थापित करके उनसे आर्थिक सहायता भी प्राप्त कर सकती थी और साथ ही अपने विचारो के प्रचार की सुविधा भी।

"तीसरे पत्र में उसने लिखा कि वह उसी अनाथालय में बीमार पड़ी हुई है और साथ ही यह भी अनुरोध किया था कि मैं ठाकुर साहब के पास जाकर उनसे फिर एक बार यह प्रार्थना करूं कि वे तुरन्त लन्दन चले आवें। मैंने ठाकुर साहब के पास जाकर अपने कर्तव्य का पालन किया। पर मैं पहले ही से जानती थी कि उसका कोई फल नहीं होगा, और मेरी धारणा ठीक ही निकली। ठाकुर साहब ने कहा कि चूंकि समिधा ने पादड़ियों का आश्रय ग्रहण करके कम्यूनिस्ट आदर्शों के खिलाफ काम किया है और अपनी पार्टी को धोखा दिया है, इसलिए वह उससे कोई सम्पर्क रखना अत्यन्त अनुचित समझते हैं। उनकी दलील का यह नया ढंग देखकर मैं दंग रह गई। मैंने समिधा को इस बात की भी सूचना दे दी।

"उसके बाद समिधा का कोई पत्र मुझे नहीं मिला। अन्त में एक दिन संयोग से किसी एक संवादपत्र के एक कोने में छोटे-से टाइप में छपा हुआ एक समाचार मैंने पढ़ा, जिससे यह स्पष्ट हो गया कि समिधा उसी 'अनाथालय' में कुछ दिन तक किसी रोग से पीड़ित रहने के बाद मर गई है। मैं सन्न रह गई। ठाकुर साहब का ध्यान भी मैंने उस मर्मघाती समाचार की ओर आकर्षित किया, पर उसका कुछ भी प्रभाव उन पर नहीं पड़ा, बल्कि उलटे उस अत्यन्त दयनीय परिस्थितियों में मृत लड़की को तिरस्कृत करते हुए उन्होंने कहा—'अपनी परिस्थिति के लिए वह स्वयं दोषी रही है।' उनकी इस तरह की बात सुनकर मेरा हृदय दहल उठा।

"तब से मेरे भीतर एक भयानक परिवर्तन आरम्भ हो गया। दीदी के साथ जो आतंकजनक, अन्यायपूर्ण व्यवहार ठाकुर साहब ने किया था उसकी स्मृति सौगुनी तीव्रता से मेरे भीतर उमड उठी। उस नर-पिशाच से अपनी दीदी और समिधा की तरफ से बदला लेने के लिए मैं हर घड़ी इस कदर बेचैन रहने लगी कि मुझे ऐसा जान पडता था जैसे असंख्य सुइयाँ अपनी चुभन से मुझे उकसा रही हों। पर अपने नारी-हृदय की सहज अक्षमतावश मैं प्रत्येक बार ऐसे मौके पर अपने को असमर्थ मालूम करती आई हूँ जिसके लिए प्रकृति ने मुझे अस्त्र चुना है। हैमलेट की वह प्रसिद्ध उक्ति आपको याद होगी—

Time is out of joint, O cursed Spite !
That I was ever born to set it right.

"वास्तव में प्रकृति ने इस धूर्त आदमखोर को उसके पापाचार का दण्ड देने के लिए मुझको चुनकर मेरे साथ बडा अन्याय किया है..."

उन्तीसवां परिच्छेद

महीप इतनी देर तक जैसे सांस रोककर निरतिशय स्तब्ध भाव से शारदा देवी की बातें सुन रहा था—जैसे आधी रात मे इस पृथ्वीलोक से परे किसी भयानक जगत् की कोई कहानी सुन रहा हो। पर अब उसे ऐसा लगने लगा था कि एकदम चुप्पी साध लेने से उसका दम घुट जायगा और उस भयावने लोक के रहस्यमय जीव उसे दबोच डालेंगे। इसलिए उसने एक लम्बी सांस ली और उसके बाद शारदा देवी को बीच ही में टोकता हुआ वह बोला—"पर यह विश्वास आपके मन में क्यों जमा हुआ है कि आप ही को प्रकृति ने उस पापाचार का दण्ड देने के लिए चुना है?"

"क्यों जमा हुआ है, इसका कारण मैं स्वयं नहीं जानती। सम्भव है यह मेरे अपने ही स्वभाव की प्रतिक्रिया हो, और यह भी बहुत सम्भव है कि किसी रहस्यमय कारण से मुझे यह प्रेरणा मिली हो। कभी-कभी रात में जब मैं

मन और मस्तिष्क की भ्रान्त अवस्था में ऊघती रही हूँ, मुझे ऐसा वोध हुआ है जैसे कभी दीदी और कभी समिधा की अस्पष्ट अशरीरी छाया मेरे सामने आ खडी हुई हो और अपने मुख की अत्यन्त करुण अभिव्यक्ति से मेरे भीतर एक मार्मिक अनुभूति जगाकर मुझे उस भयानक कर्त्तव्य के लिए प्रेरित कर रही हो जो मेरी अपेक्षा किसी सवल-प्राण पुरुष के लिए अधिक उपयुक्त है। मै जानती हूँ कि ये सव मेरी ही अन्तर्भावनाओ की प्रतिच्छायाए है, फिर भी उनके सव कुछ ढक लेने वाले प्रभाव से मै अपने को मुक्त नहीं कर पाती हूँ।"

कुछ क्षण तक दोनो मौन रहे, केवल एक दूसरे के मुह की ओर कभी एकटक ध्यान से और कभी अनमने भाव से देखते रहे। महीप को ऐसा लग रहा था कि जो मर्मगत प्रश्न उसके भीतर स्पष्ट रूप से उठ रहा है उसे वह व्यक्त कर नही पाता, और शारदा देवी को ऐसा लग रहा था कि वह अपनी वात को जिस रूप में महीप के आगे समझाकर रखना चाहती है उसे ठीक तरह से रख नही पाती।

कुछ देर वाद महीप वोला—"आपने मुझसे कहा था कि आप किसी एक ध्येय की पूर्ति के लिए यहा बैठी हैं। तव क्या वह ध्येय यही है—अपनी दीदी और समिधा के प्रति किये गये अन्याय का वदला लेना?"

"हा, उस ध्येय का एक रूप यह भी है,"—शारदा देवी ने अत्यन्त स्थिर-भाव से कहा—"पर इतने ही तक उसकी समाप्ति नही हो जाती। इस एक व्यक्तिगत कारण को वीज वनाकर मैं उसे एक व्यापक और विस्तृत सामाजिक रूप देना चाहती हूँ। जिस प्रकार की अत्याचारिता का उल्लेख मैंने किया है, वह अकेले ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिह ही तक सीमित नही है। इस मनोवृत्ति का घातक विप उनके भाई-विरादरो ने देश के कोने-कोने में फैला रक्खा है। इसके विरुद्ध जहाद की वात आज से नहीं, वर्पो—वल्कि युगो पहले से—निम्न मध्यश्रेणी की शिक्षित जनता सोचती आई है, और उसे छिटफुट रूप से कार्य में परिणत करने की चेष्टा भी उसने की है। पर अभी तक उसे इस

चेष्टा मे तनिक भी सफलता नही मिल पाई और न निकट भविष्य मे मिलने की कोई सम्भावना ही मुझे दिखाई देती है। पर इस कारण से क्या हम लोगो को, जो इस व्यापक अत्याचारी मनोवृत्ति के नये शिकार है, अपने उद्योग मे, अपने कर्त्तव्य-पथ से, विचलित हो जाना होगा ?"

महीप को इस बात पर परम आश्चर्य हो रहा था कि प्रेतात्मा की नि सत्त्व मुखाकृतिवाली, युग-युग से नि शोषित नारी की वह सजीव प्रतिमा अपने भीतर इतनी आग इतने दिनो तक किस अज्ञात और अधेरे कोने मे सचित करके छिपाये बैठी थी ? वह यह अनुभव कर रहा था कि उसका (महीप का) जो रक्त इतने दिनो तक बर्फ की तरह ठण्डा बनकर अत्यन्त जड़ और उदासीन रूप धारण किये हुए था वह बिजली के तेज 'हीटर' की-सी गरमी से केवल पिघला ही नही है, बल्कि काफी गरमा गया है, और धीरे-धीरे उस स्थिति को पहुँचता जा रहा है जब वह सभवत पूर्णतया खौल भी सकता है। पर वह मूर्तिमती प्रतिहिंसा उससे चाहती क्या है ? महीप के मन मे उसकी पूरी परीक्षा लेने की इच्छा हुई।

वह बोला—"दुर्बलो के प्रति सबलो के अत्याचार की कहानी ससार मे बहुत पुरानी है, और अब वह प्रतिदिन के अनुभवो से सिद्ध सर्वमान्य तथ्य मे परिणत हो चुकी है। इस कारण उसके लिए इस कदर विचलित हो उठने से कैसे काम चलेगा ?"

शारदा देवी के रोष पर जैसे सान चढ गया। उन्होने तमककर कहा—"आज बीसवी शताब्दी आधी बीत चुकी है। आज के युद्ध ने व्यापक विनाश का जो रूप हमारे सामने रक्खा है उसने अपनी ध्वस-लीला के साथ ही सदियो से जड जमाये हुए भ्रान्त विचारो की जडे क्या नही हिला दी है ? ऐसी हालत मे भी यदि हम उस घिसी-घिसाई पुरानी कहानी से भीत और निराश होकर हाथ-पर-हाथ रक्खे बैठे रहे, तो सौ-सौ धिक्कार है हमारी इस कब्र के मृत पत्थर की-सी जडता पर !"

महीप यद्यपि भीतर-ही-भीतर शारदा देवी की इस धिक्कार-भरी गर्जन

वाणी से प्रभावित हो उठा, तथापि प्रकट में एक व्यग-भरी मुसकान उसके मुख पर खेल गई। उसने कहा—"जिन तीन महान् राष्ट्रो ने युद्ध के बाद विश्व के सामूहिक कल्याण का ठेका ले रक्खा था, जो आज तक दलित राष्ट्रो के उद्धार को ही अपने लडाई में कूद पडने का प्रधान उद्देश्य घोषित करते चले आ रहे थे, वे आज, जब कि युद्ध अपने अतिम चरण पर है, ऐलानिया यह बात कहने लगे है कि छोटे राष्ट्रो और बडे राष्ट्रो, दुर्बलो और सबलो, के बीच भेद-भाव बराबर रहा है और बराबर रहेगा। कम-से-कम उसमें से एक महाराष्ट्र के महानायक ने यह बात स्पष्ट कर दी है कि दुर्बल राष्ट्रो के शोषण द्वारा सबल राष्ट्रो के शोषण का क्रम युद्ध के बाद भी पहले की ही तरह, बल्कि उससे भी अधिक तीव्र रूप में, जारी रहेगा। इसलिए वर्तमान युद्ध की ध्वस-लीला से कुछ विशेष आशा करने का उत्साह कम-से-कम मुझे तो नही होता।"

शारदा देवी कुछ देर तक व्याकुल दृष्टि से महीप की ओर ताकती रही, जैसे उनके दीर्घकाल से पाले हुए स्वप्न को अत्यन्त निर्ममता के साथ हथौडो की चोटो से चकनाचूर किया जा रहा हो। पर कुछ ही क्षणो बाद उनकी पूर्व दृढता फिर से लौट आई। उन्होने कहा—"यदि आपकी ही बात की सचाई पर विश्वास कर लिया जाय तो भी इस बात का कोई कारण मुझे नही दिखाई देता कि हृदय-हीन अत्याचारो की मार्मिक अनुभूति से पीडित हम लोग या हमारे ही समान अनुभूतिवाले दूसरे लोग अपने-अपने क्षेत्रो में विरोध के प्रदर्शन से विरत हो जावें। मै जानती हूँ कि मेरा क्षेत्र क्या है। उस क्षेत्र में जिस रूप में अपने विरोध का प्रदर्शन करने का इरादा मै रखती हूँ उससे ससार के सामूहिक अत्याचार के महासागर का एक कण भी प्रत्यक्ष रूप से विचलित नही होगा, यह भी मै जानती हूँ—क्योकि मेरा क्षेत्र ऊपरी दृष्टि से देखने से अत्यन्त सीमित और सकुचित है, फिर भी मेरी पीडित अन्तरात्मा का यह दृढ विश्वास है कि उस सीमित क्षेत्र मे प्रदर्शित मेरा विरोध एक प्रतीक सिद्ध होगा और अलक्ष्य मे, अज्ञात रूप मे, अपने प्रभाव के परमाणुओ को अदृश्य ईथर मे तरगित करता रहेगा। आप यदि उसमे हाथ बटावे तो आपके उस

सहयोग का मै सदा स्वागत करूँगी, और यदि आप तनिक भी सहयोग न देना चाहे तो मुझे इसकी भी कोई परवा नही है—मै अकेली अपने कर्त्तव्य का पालन करूँगी।" यह कहते हुए उनकी आखो से आसू की बडी-बडी, गरम-गरम बूदे टपाटप निकलकर उनके सूखे हुए गालो को तर करने लगी। किसी कारण उनका भावोद्वेग सहसा उथल उठा था। सम्भवत' ऊपर से अपने निश्चय की दृढता प्रकट करने पर भी भीतर से उन्हे निराशा होने लगी थी। महीप की बातो का रुख उन्हे अपने प्रतिकूल मालूम पड़ने लगा था।

शारदा देवी की अन्तिम बात से महीप का आश्चर्य चरम सीमा पर पहुँच गया।

तीसवां परिच्छेद

एक नौकर ने आकर सूचना दी कि धोबी आया हुआ है। शारदा देवी को बीच ही मे उठकर जाना पडा। महीप भी अपने दो-चार कपडे देना चाहता था। उसके पास कपडे एक तो यो ही कम थे, तिस पर जो थे भी वे प्राय सब के सब मैले हो चले थे। पर आलस्यवश उसने न नौकर को पुकारा न स्वय उठा। नौकर धोबी के आने की सूचना देते ही तत्काल अन्तर्धान हो गया था और उसने महीप से पूछा तक नही कि उसके भी कुछ कपडे धुलने को जावेगे या नही। आज पहली बार महीप का ध्यान इस बात की ओर गया कि ठाकुर साहब के नौकर बराबर उसकी उपेक्षा करते रहे है। जिस व्यक्ति की उपेक्षा स्वय मालिक करे उनके प्रति नौकरो की उपेक्षा सम्पूर्ण स्वाभाविक है, यह बात आज उसके दिमाग मे घुमी।

"पर ठाकुर साहब तो स्वय आग्रह के साथ मुझे यहा बुला लाये थे!" वह मन-ही-मन कहने लगा—"तब क्यों उनकी उपेक्षा मेरे प्रति दिन-पर-दिन बढती चली गई है?"

अपने मन के इस प्रश्न पर उसे स्वय हँसी आने लगी, क्योकि उसका

अन्तर्मन वहुत पहले इस 'क्यो' का उत्तर दे चुका था, और आज शारदा देवी से ठाकुर साहव के बहुत से रहस्यो का आभास मिलने के वाद भी इस प्रकार का प्रश्न करना मन की मूर्खता के सिवा और कुछ नही है, यह सोचकर उसे स्वय अपने स्वभाव के परिवर्तन पर आश्चर्य होने लगा। आज पहली बार उसे ठाकुर साहव के यहा का अन्न उजाडने के लिए अपने ऊपर ग्लानि होने लगी।

सोफा पर बैठे-बैठे शारदा देवी की बातो पर वह जितना ही विचार करने की चेष्टा करने लगा उतनी ही उसकी उलझन बढती चली जाती थी। ज्यो-ज्यो वह उस रहस्यमयी नारी के निकट-से-निकटतर सम्पर्क में आता जाता था त्यो-त्यो उसके भीतरी व्यक्तित्व के नये-नये रूप उसके आगे उघडते चले जाते थे और प्रत्येक नया रूप अपनी अप्रत्याशित आकस्मिकता से उसे धक्का देकर जैसे दो क़दम पीछे हटा देता था।

आज तक शारदा देवी का व्यक्तित्व कुछ दूसरे ही रूप में उसकी आखो के आगे आया करता था। मकडा जिस प्रकार अपने जाले में मक्खी को फँसा कर उसे न तो मारकर खाता है न समूचा निगलता है, वल्कि उसके शरीर के भीतर के अदृश्य और परमाणुवत् सूक्ष्म छिद्रो से उसका समस्त सत्व चूस कर उसके शारीरिक ढाचे को ज्यो-का त्यो छोड देता है, शारदा देवी की कल्पना ठीक उसी नि सत्व जीव के रूप मे उसके मन में उठा करती थी। पर अव महीप को ऐसा जान पडने लगा कि जिस मकडे ने इस मानवीय मक्खी का शोषण किया है वह चूक गया है—उसने इस भ्रम में पडकर उसे इस धोखे में त्याग दिया है कि वह पूर्णतया निर्जीव हो गई है। उसे इस वात की खवर नही है कि वाहर से एकदम मृत मालूम पडने पर भी उसके भीतर जीवनी शक्ति अभी पूर्ण मात्रा में वर्तमान है और वह पलटे में अपने नि शोपक के मर्मस्थल पर डक मारने के फेर में है, क्योकि वह मक्खी साधारण मक्खी नही है, वल्कि ऐसी मक्खी है जो मा के पेट से ही अपने साथ आत्मरक्षा का अस्त्र—डक—लेकर आई है।

महीप जान गया था कि शारदा देवी ने अभी अधूरी कहानी कही है। शोषण के जो प्रत्यक्ष चिन्ह उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व से स्पष्ट प्रकट होते थे उनके कारणो के सम्बन्ध मे अभी तक कोई भी इगित उन्होने नही दिया था। कहानी के शेषाश से परिचित होने के लिए वह अत्यन्त अधीर हो उठा था।

कुछ देर बाद शारदा देवी जब लौटकर आई तो महीप ने देखा कि उनके मुख पर आसुओ का कोई चिन्ह शेष नही रह गया था, बल्कि एक आश्चर्यजनक प्रसन्नता का भाव उनके चीमड मुख पर व्यक्त हो रहा था। उनके मुख की प्रसन्नता की वह झलक महीप को आज एकदम नयी लग रही थी, पता नही क्यो! इसके पहले जब कभी उसने शारदा देवी को मुस्कराते देखा, उसके मन में बराबर यही धारणा जमती रही कि उनकी उस मुसकान के भीतर एक अत्यन्त करुण रुदन छिपा हुआ है। पर आज—अभी—मुसकान की जो तीव्रता उनके मुख पर झलकती हुई दिखाई देती थी उसके अन्तराल मे करुणा का लेश भी किसी अश में वर्तमान नही था। वह मुक्त मुसकान जैसे मुक्त अन्तर की ही सहज-स्वाभाविक अभिव्यक्ति थी। पर अभी-अभी इतने कम समय मे उनका सैकडो द्वन्द्वो से उलझा हुआ अन्तर सहसा परिपूर्ण रूप से उन्मुक्त कैसे हो उठा? क्या आज वर्षो बाद एक अपेक्षा-कृत सहृदय व्यक्ति के आगे (महीप जानता था कि शारदा देवी यदि उसे सहृदय न मानती होती तो अत्यन्त गोपनीय तत्त्वो का उद्घाटन उसके आगे न करती) अपने हृदय को उँडेलने का सुयोग प्राप्त होने के कारण उनके भीतर की दयनीयता का बरसाती बादल फटकर साफ हो गया है? महीप को ऐसा लग रहा था जैसे उनके मुख का चीमडपन भी कुछ घट गया है और उनके मुख पर थोटी-सी चिकनाई आ गई है। यह उसकी आखो का भ्रम भी हो सकता था, पर उस भ्रम का भी एक निजी महत्त्व था। आज पहली बार महीप के मन मे यह धारणा जमी कि शारदा देवी किसी जमाने में अत्यन्त सुन्दर—आश्चर्यजनक रूप से सुन्दर—दिखाई देती होगी। उनका कपाल, भौहे, आखे, नाक, होठ, ठुड्डी आदि का प्राकृतिक गठन इस बात की गवाही देता था। बाद में किसी या किन्ही कारणो

से उनकी आत्मा का और शरीर का सारा सत्व ही जब निःशोषित हो गया, तब इस भूतपूर्व सौंदर्य-प्रतिमा ने वह प्रेत-रूप धारण कर लिया जो इस समय उन के मुख पर स्पष्ट व्यक्त हो रहा है।

शारदा देवी ने कहा—"आपके जो कपडे धुलने को हो उन्हें दे दीजिए।"

महीप ने तत्काल उठकर अपने मैले कपडे बटोरे। शारदा देवी ने एक नौकर को बुलाकर वे कपडे उसे धोबी को देने के लिए सौंप दिये। उसके बाद वह स्वय भी किसी काम से कमरे के बाहर चली गई। महीप ने इस बात पर गौर किया कि ठाकुर साहब के प्रति अपना जो मनोभाव आज उन्होंने व्यक्त किया था उसके बावजूद वह ठाकुर साहब की अनुपस्थिति में उनके घर की देख-रेख पूरे मनोयोग के साथ कर रही थी और छोटी-से-छोटी बात की ओर उनका ध्यान इस हद तक था कि ऐसा जान पडता था जैसे घर की गृहिणी वही हो।

शाम की चाय शारदा देवी ने महीप के साथ ही पी, और पीते हुए यह प्रस्ताव किया कि चूकि आज पूर्णिमा है, इसलिए रात में नाव पर सैर की जाय। यह प्रस्ताव महीप को एकदम अप्रत्याशित लगा और अस्वाभाविक भी, हालाकि उसमें क्या अस्वाभाविकता है, यह वह स्वय नही जानता था। फिर भी क्षणिक हिचकिचाहट के बाद उसने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

इकतीसवां परिच्छेद

यद्यपि मोटर तैयार थी, तथापि शारदा देवी ने बग्घी जुतवाई। नौ बजे के करीब वे लोग रवाना हुए। रास्ते भर दोनो एक प्रकार से मौन रहे—जो दो-एक बातें हुई भी वे बहुत ही साधारण और व्यावहारिक ढग की। बलुआ-घाट के पास पहुँचने पर शारदा देवी ने बग्घी हाकने वाले को रुके रहने का आदेश दिया। उसके बाद दोनो उतर कर घाट पर गये। एक अपेक्षाकृत सुविधाजनक नाव तय करके दोनो उस पर जा बैठे।

पूर्व आकाश में पूर्ण चन्द्रमा धीरे-धीरे ऊपर को उठता चला जा रहा था

और यमुना की नील लहरियो पर उसका प्रकाश चादी विखेर रहा था। चारो ओर अपेक्षाकृत प्रशान्त वातावरण छाया हुआ था। केवल पूर्ण चन्द्र के दुर्निवार आकर्षण से नदी की उच्छृखल तरगें उद्दाम वेग से उछलती हुई बीच-बीच मे एक दूसरे से टकराकर कभी भौतिक अट्टहास करती हुई ठहाका मार उठती थी और कभी एक विचित्र और रहस्यमय व्यग के स्वर मे खिलखिला पड़ती थी। दोनो प्रकार की आवाजे महीप को किसी अज्ञात और मार्मिक महत्त्व से भरी मालूम हो रही थी। उसके अन्तर मे कविता के जो द्वार इधर कुछ दिनो से एकदम वन्द पडे थे वे जैसे एक प्रचण्ड आधी के अत्यन्त निर्मम वेग से टूट कर खुल पडे हो। पर आज की कविता ने स्वय जगकर उसके भीतर के जिन सुप्त भावो को जगा दिया था उनकी तुलना महीप जव अपने पिछले जीवन के भावो से करने लगा तो उसकी अन्तरात्मा जैसे दहल उठी। अपनी सव पिछली अनुभूतिया आज के तूफानी भावो की तुलना मे उसे तट पर वालू, सीप तथा चमकीले ककडो से खेलने वाले वच्चो के मन के वुद्‌वुदो की तरह लग रही थी। उसे आश्चर्य हो रहा था कि स्तव्ध रात्रि के उस एकान्त और अपेक्षाकृत शान्त वातावरण मे इस प्रकार का तहलका उसके अन्तर्लोक के भावजगत् मे सहसा क्यो मचने लगा। उस असाधारण वातावरण मे शारदा देवी का निकट सम्पर्क उसके भीतर के उस तूफानी भावोद्वेग के उमडने का एक कारण अवश्य उसे मालूम हुआ, पर क्या वही प्रधान कारण था? "नहीं, वह केवल एक सहायक कारण है, इससे अधिक नही। मूल कारण कुछ दूसरा ही है, जिसे तुम अभी ठीक तरह से नही पकड पा रहे हो।" यह उत्तर किसी ने उसके भीतर से तत्काल उसे दे दिया।

पर यह होते हुए भी महीप भीतर-ही-भीतर यह अनुभव कर रहा था कि जो असाधारण-प्रकृति सर्वगोपित नारी उसकी वगल में वैठी है वह इस समय ऊपर से कैसी ही शान्त क्यो न जान पड़ती हो, उसके भीतर भी आज दिन मे ही भीषण तूफानी हिलकोरे अत्यन्त अशान्त रूप धारण किए हुए है, जो उनके (महीप के) अपने भाव-जगत् की आधी से भी कई गुना अधिक तीव्र और

उनकी वाचाल प्रकृति में अकस्मात् इतना बड़ा परिवर्तन कैसे आ गया, इस पर महीप को आश्चर्य होना चाहिए था। पर उसे कोई आश्चर्य नहीं हुआ और शारदा देवी का वह स्तब्ध मनोभाव तत्कालीन वातावरण की असाधारण रहस्यमयता को देखते हुए उसे स्वाभाविक लगा।

कुछ देर भावमग्न रहने के बाद वह फिर बोला—"मुझे ऐसा लगता है कि आपकी अन्तरानुभूति जितनी ही तीव्र है उतनी ही सूक्ष्म है, और जो काव्यमय भाव अन्तर्जगत् की आत्मा में और बाह्य जगत् की ईथरी तरगो में तैरते रहते है उनके प्रति आपके प्राण अत्यन्त सजग है।"

"किस कारण से आपके मन में इस प्रकार की धारणा जगी है?" महीप को ऐसा भ्रम हुआ कि यह प्रश्न करते हुए शारदा-देवी की आवाज़ जैसे काप रही हो।

वह बोला—"इसका भी कोई स्पष्ट कारण आपको बताने में मै असमर्थ हूँ।"

फिर एक ठण्ढी और लम्बी सास शारदा देवी के मुह से जैसे बरबस निकल पड़ी। उसके बाद अपने गले को कुछ अधिक परिस्फुट करते हुए उन्होंने कहा—"मै विश्वास कर सकती हूँ कि किसी ज़माने में मेरी अन्तरानुभूति तीव्र रूप से काव्यमय रही होगी। पर वह ज़माना मेरे जीवन में क्षणिक स्वप्न की तरह आकर बीच ही में अत्यन्त निर्मम रूप से टूट गया और टूटते ही उसने मुझे वास्तविकता की ठोस मिट्टी पर ऐसे ज़ोरो से पटक दिया कि मेरे अन्तर की सारी कविता शीशे की तरह चकनाचूर हो गई और उस टूटे शीशे के बिखरे कण मेरे पावों में गड़कर उन्हे लहूलुहान करने लगे।"

सहसा महीप को याद आया कि शारदा देवी ने आज दिन में अपने अनुभव की जो अधूरी कहानी सुनाई थी, अपने अज्ञात में उन्होंने जैसे उसकी पूर्ति की ओर सकेत कर दिया है।

वह बोल उठा—"कोई अधिकार न होने पर भी मैं एक प्रश्न आपसे करने की धृष्टता करना चाहता हूँ। आपने आज ठाकुर साहब के जीवन से सम्बन्धित जिन गुप्त और साथ ही आतककारी बातों से मुझे परिचित कराया उनसे

आप निश्चय ही बहुत पहले से परिचित रही होंगी। ठाकुर साहब के स्वभाव की हृदयहीनता के दो ज्वलन्त प्रमाण प्रत्यक्ष रहने पर भी आप क्यों—क्षमा कीजिएगा—अभी तक आप उनके साथ इस प्रकार का ..आप उनके यहां उनके परिवार के एक सदस्य की तरह रहती हैं, यह कैसे सम्भव हुआ है, मैं समझ नहीं पाया।"

"यह एक बडी अप्रिय कहानी है, सुनकर क्या कीजिएगा!" यह कहती हुई शारदा देवी पीछे की ओर हटकर, तकिये से सटकर बैठकर गईं। उनके हटने से नाव कुछ डावाडोल हुई और महीप गिरते-गिरते बचा।

कुछ देर बाद जब दोनों फिर से स्थिर हो गये, तो महीप बोला—"आपको सुनाने में यदि आपत्ति हो तो मैं हठ नहीं करूँगा, पर इतना आप जान लीजिए कि मैं सुनने के लिए बहुत उत्सुक हूँ। जब से मैं ठाकुर साहब के यहां आया हूँ तभी से मेरे मन में यह जानने की उत्सुकता अत्यन्त तीव्र रही है कि आप किस रूप में ठाकुर साहब के यहां....आप इस परिवार की सदस्या कैसे बन गईं।"

"इसका कारण मेरी दुर्मति के सिवा और कुछ नहीं है।" कहकर शारदा देवी ने फिर एक बार लम्बी सांस खींची। महीप अत्यन्त उत्सुक भाव से इस बात की प्रतीक्षा करने लगा कि इस छोटी-सी किन्तु भेद-भरी भूमिका के बाद शारदा देवी क्या कहती हैं।

शारदा देवी कहने लगीं—"ठाकुर साहब के व्यक्तित्व ने मुझे आरम्भ ही से बहुत प्रभावित कर रक्खा था। जिन दिनों दीदी से उनका हेल-मेल चल रहा था तभी से—बल्कि उससे भी पहले से—मैं ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह के शील-स्वभाव और रूप-रंग के प्रति आकर्षित हो चुकी थी। यह बात आज आपके आगे स्वीकार करते हुए मैं संकुचित इसलिए नहीं हो रही हूँ कि एक तो मेरे समान सैकड़ों पीड़नों से जर्जर नारी के भीतर संकोच के लिए कहीं कोई गुंजाइश रह नहीं जाती, दूसरे ठाकुर धीराजसिंह की हत्या की जिस ताजी

घटना का समाचार आज मिला है उसने रहे-सहे संकोच को भी सोख लिया है, तीसरे जिस परिपूर्ण एकान्त वातावरण में इस समय हम दोनों है वह जीवन की गूढतम स्वीकारोक्तियों के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है। खैर। ठाकुर साहब को उन दिनो इस बात का तनिक भी पता नहीं था कि मै उनके प्रति आकर्षित हूँ। मैने किसी क्षीणतम सकेत से भी न तो उनके और न दीदी के आगे अपने मन की यह गोपन भावना कभी प्रकट होने दी।

"जब दीदी ने आत्महत्या की और उसकी चिट्ठी द्वारा उसकी आत्महत्या का कारण जानने के साथ ही मुझसे यह बात भी छिपी न रही कि उसके जीवन की ही तरह उसकी मृत्यु के साथ भी किस प्रकार का पैशाचिक परिहास किया गया है, तब मुझे स्वभावत ऐसा भयकर धक्का पहुँचा जैसा अधिक-से-अधिक सभव था। जिस कम्यूनिस्ट लडकी का जिक्र मैने आपसे किया था उसकी करुण मृत्यु का भी अत्यन्त मार्मिक प्रभाव मुझ पर स्वभावत पडा। इन दोनो कारणों से मेरा हृदय आक्रोश से भर उठा। पर अपने मन की इस अविश्वसनीय दुर्बलता की क्या सफाई मै आपको दूँ कि इन सब कारणों के बावजूद ठाकुर साहब का आकर्षण मेरे लिए वैसा ही बना रहा। मै उनसे डरने लगी और चिढने भी लगी। पर यह सब होने पर भी आज जब मै अपने मन की उस समय की भावना का विश्लेषण करती हूँ तो यह बात मेरे आगे दिन के प्रकाश की तरह स्पष्ट हो उठती है कि मेरे भीतर की सभी ऊपरी भावनाओ के नीचे स्फटिक की तरह निर्मल एक ऐसी अन्तर्धारा बही चली जा रही थी जिसे प्रेम के सिवा और कोई दूसरा नाम नहीं दिया जा सकता। मेरी यह सुप्त अन्तर्भावना स्वय मुझसे छिपी रहती थी। पर बीच-बीच में असावधानी के कुछ क्षणो में जब कुछ समय के लिए यह मेरे सचेत मन के आगे स्पष्ट हो उठती थी तो मै आतकित हो उठती और स्वय अपने प्रति एक हिंसात्मक भावना मेरे भीतर जग उठती।

"जब ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह के पिता की मृत्यु हुई और वह सर्वेसर्वा

बन गये, तो एक अज्ञात भय की भावना मेरे मन को जकड़ने लगी, हालाकि उनके प्रत्यक्ष व्यवहार से किसी प्रकार के भय के लिए कोई गुंजाइश नहीं रहनी चाहिए थी। वह समय-समय पर पिता जी के पास आते थे। उनसे वह बड़े आदर के साथ बातें करते थे और मेरे साथ बड़ी शिष्टता से पेश आते थे। मैंने पिता जी को दीदी की उस चिट्ठी से परिचित नहीं कराया था जिसे वह मरने के पहले मेरे लिए लिखकर छोड़ गई थी। इसलिए वह ठाकुर साहब की किसी भी काली करतूत से परिचित नहीं थे और उनके प्रति पिता के समान स्नेह-भावना रखते थे।

"कुछ समय बाद पिता जी की भी मृत्यु हो गई। मरने के पहले मेरे विवाह का उद्योग उन्होंने किया था, पर मैंने ऐसा प्रबल विरोध किया कि अन्त में उन्हें हार मानकर चुप रह जाना पड़ा था। उनकी मृत्यु के बाद मैं अनाथ हो गई। कुछ रुपया पिता जी मेरे लिए अवश्य छोड़ गए थे, पर अपने निपट अकेलेपन की स्थिति में रुपये का कोई मूल्य मेरे लिए नहीं था। ठाकुर साहब की भी अपने सहृदय स्नेह के दबाव से मुझे एक प्रकार से बलपूर्वक अपने यहां ले गई। कोई दूसरी गति न देखकर मैं उन्हीं के साथ रहने लगी।

"समय बीतता चला गया और उसके साथ ही ठाकुर साहब के प्रति मेरे मन की भावनाएं भी बदलती चली गईं। भय, क्रोध और घृणा के भाव मेरे मन से जैसे धुल गये और शेष रह गई केवल एक ही भावना।

"ठाकुर साहब का व्यवहार आरम्भ में मेरे साथ बड़ा ही सौजन्यपूर्ण और संवेदना से भरा था। वह मेरी ओर धीमी—बहुत ही धीमी—चाल से बढ़ रहे थे। जब वह आधे से अधिक रास्ता तय कर चुके तब मुझे उनकी निकटता का अनुभव हुआ।

"मैं पिता जी की एकान्त संरक्षकता में पली थी। मां के स्नेह की कोई स्मृति मेरे मन में नहीं है। जब मैं चार वर्ष की थी तभी मां की मृत्यु हो चुकी थी। पिता जी की जिस छत्र-छाया में मैं निश्चिन्त होकर शान्त और

एकरसमय जीवन बिता रही थी वही मेरे लिए सब कुछ था। उसके परे भी संसार का कोई नक्शा हो सकता है, इसकी कोई कल्पना मैंने कभी नहीं की थी, और यह भी मैंने कभी नहीं सोचा था कि वह छत्र-छाया एक दिन अचानक भंग हो सकती है। इसलिए उनकी मृत्यु ने मुझे भयभीत कर दिया था और मैं उस भय की भावना से बचने के लिए अपने अन्तर के एकान्त कोने में सिकुड़ती, सिमटती जाती थी। पर धीरे-धीरे ठाकुर-परिवार की उदारता ने (उस समय मैं उसे उदारता ही समझ रही थी) मेरी अनाथपन की अनुभूति की तीव्रता बहुत कुछ कम कर दी और ठाकुर साहब के 'सौजन्य और संवेदना' ने मुझे आश्वस्त कर दिया। ठाकुर साहब ने जैसे मेरे स्नेही और संरक्षक पिता के स्थान की भी पूर्ति कर दी।

"इस आश्वासन का फल यह हुआ कि मेरे भीतर ठाकुर साहब के प्रति स्वभावगत आकर्षण की अनुभूति दिन-पर-दिन उभरती चली गई—कुछ जान में और कुछ अनजान में यहां तक कि मेरी दबी हुई काव्य-प्रवृत्ति भी जग उठी और मैं अपने प्रेम को नाना छल-छद्मों से कविताओं के रूप में व्यक्त करने लगी।

"मेरी कविताओं ने ठाकुर साहब के ऊपरी मन को अवश्य ही गुदगुदाया होगा। क्योंकि मेरे प्रति वह उत्तरोत्तर अधिक स्नेहशील होते जाते थे। कभी-कभी तो वह घण्टों मेरे साथ बैठकर काव्य-चर्चा करते रहते। मेरी कविताओं की प्रशंसा तो वह करते ही थे।

"आज मैं समझ गई हूँ—और यह बात आपके आगे स्वीकार करने में कोई संकोच मुझे नहीं मालूम होता—कि मेरे स्वभाव के भीतर कोई ऐसी मूलगत विकृति रही होगी जिसने ठाकुर साहब के चरित्र के सम्बन्ध में मेरी बहुत कुछ जानकारी के बावजूद मुझे उनकी ओर बरबस आकर्षित किया। यह भी संभव है कि अपनी इस विकृति के सम्बन्ध में मेरी धारणा गलत हो और अपनी अनाथ, असहाय और विवश अवस्था के कारण वह कमजोरी मुझमें आई हो। पर कारण चाहे कुछ हो, यह निश्चित है कि उनके प्रति मेरा

वह आकर्षण बढते-बढते धीरे-धीरे एक प्रकार के पागलपन का-सा रूप धारण करने लगा। और ठाकुर साहब अपने 'स्नेह और संवेदनापूर्ण' व्यवहार से उस पागलपन की भावना को और अधिक उसकाने में सहायता कर रहे थे।

"फल वही हुआ जो ऐसी स्थिति में होना चाहिए था। जब मुझे उठते-बैठते, सोते-जागते और सांस लेते समय विश्व में सर्वत्र केवल उन्ही की प्रतिच्छाया दीख रही थी, तो मेरी उस मानसिक अवस्था में उन्होने मुझे घेर लिया। ऐसी स्थित में स्वभावत. मेरा पतन अनिवार्य हो गया। पर उस समय मैंने उस स्थिति को अपना पतन नही माना था।

"ठाकुर साहब की मा ने उनके विवाह के लिए बहुत जगह कोशिशे की और इस बात का पूरा ध्यान रक्खा कि उनकी रुचि के अनुसार एक बहुत सुन्दरी, समझदार, पढी-लिखी, कुलीन और साथ ही स्वजातीय लड़की उन्हे मिले। ऐसी तीन-चार लड़किया उन्हे मिली थीं। पर ठाकुर साहब ने एक को भी स्वीकार नहीं करना चाहा। दूसरी बातों में वह मां का बड़ा दबाव मानकर चलते थे, पर इस मामले मे वह अपने हठ से तनिक भी विचलित नहीं हुए। इस बात से मुझे स्वभावतः बडी प्रसन्नता हुई। मेरे मन में यह विश्वास जम गया कि वह मुझ ही से विवाह करने के इरादे से मा के विवाह-सम्बन्धी प्रस्तावों को ठुकरा रहे है। साथ ही मुझे ठाकुर साहब की बातों से यह भी मालूम हुआ कि उनकी मा मेरे साथ विवाह की बात का घोर विरोध कर रही है और इस विरोध के लिए आमरण अनशन करने तक को तैयार है। आज मुझे ठाकुर साहब की इस बात की सचाई पर भी पूरा सन्देह होने लगा है।

"कुछ भी हो, मेरे पूर्ण आत्म-समर्पण के कुछ समय बाद मुझे यह अनुभव होने लगा कि मेरे प्रति ठाकुर साहब के मनोभाव में धीरे-धीरे परिवर्तन आने लगा है। जिस दिन से रूपा से उनका परिचय हुआ उस दिन से मेरे प्रति उनकी उदासीनता निश्चित रूप मे मेरे सामने आने लगी। और धीरे-धीरे

वह उदासीनता पत्थर की तरह निश्चल और उसी की तरह कठोर और सुदृढ बन गई। मैं रूपा को इसके लिए तनिक भी दोष नहीं देती हूँ और न कभी एक क्षण के लिए भी मेरे मन में उसके प्रति ईर्ष्या का भाव उत्पन्न हुआ, क्योंकि मैं जानती हूँ कि वह भी मेरी ही तरह दुश्चक्र का शिकार बनी है।

"मुझे भाग्य के विधान की यह बात सबसे अधिक आश्चर्यजनक लगती है कि रूपा भी ठीक उसी कारण से ठाकुर-परिवार में आई, जिस कारण से मैं —अर्थात् अपने पिता की मृत्यु से अनाथ अवस्था को प्राप्त होने पर। मेरी ही तरह उसकी वह अनाथ अवस्था आर्थिक अभाव के कारण नहीं, बल्कि संरक्षकता के अभाव के कारण थी। पर नहीं, मैं गलत बात कह रही हूँ। पिता की मृत्यु के बाद भी रूपा अनाथ न होती, और न संरक्षकता का अभाव ही उसके लिए रहता, क्योंकि ठाकुर धीराजसिंह उसे जी-जान से चाहते थे, और उसके लिए मर-मिटने को तैयार थे। धीराजसिंह के ऊपर एक तो ऐसा कोई पारिवारिक बन्धन नहीं था जिससे वह रूपा की संरक्षकता का पूरा भार अपने ऊपर लेने से हिचकते, दूसरे यदि कोई ऐसा बन्धन होता तो भी रूपा के लिए वह उसे तोडकर आजीवन उसका साथ देते। पर धीराजसिंह में एक भारी कमी यह रही कि वह दृढ स्वभाववाले नहीं थे। जिस बात को वह न्यायोचित समझते थे उसे दृढता से अपनाने की शक्ति उनमें कभी नहीं रही। किसी प्रबल इच्छाशक्ति वाले व्यक्ति के—चाहे वह कैसा ही भयंकर अन्यायी क्यों न रहा हो—संघर्ष में आने के शारीरिक तथा चारित्रिक साहस का उनमें सदा अभाव रहा। फल यह हुआ कि ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह ने जब रूपा के न चाहने पर भी उसकी संरक्षकता का भार अपने हाथों में ले लिया तो धीराज-सिंह कायरता से पीछे हट गये।

"ठाकुर साहब क्यों रूपा के संरक्षक बनने के उत्सुक रहे, इस बात मे यद्यपि कोई रहस्यमयता नहीं होनी चाहिए, फिर भी वह कभी-कभी बडी रहस्यमय लगती है। रूपा की सुन्दर, कोमल छवि और सहज शान्त स्वभाव उन्हे

स्वभावतः आकर्षण लगा होगा, यह मै मानती हूँ। पर मेरा यह निश्चित विश्वास है कि न तो कभी उसके साथ विवाह का विचार उनके मन मे रहा है और न कभी उसके साथ उनका प्रेम-सम्बन्ध किसी रूप मे रहा है। फिर भी वह रूपा को एक ईर्ष्यालु पति की तरह अत्यन्त सावधानी से सुरक्षित अवस्था में अपने साथ रक्खे हुए है, जैसे जौहरो का कोई प्रेमी किसी ऐसे रत्न को बडी हिफाजत से अपने पास रखता है जो उसके सचय में सबसे अधिक मूल्यवान् हो। वह रत्न उसके जीवन के किसी भी काम मे नही आता —उसे केवल बडे जतन से सजोकर, दूसरो की ईर्ष्यालु दृष्टि से बचाकर अपने पास रक्खा जाता है। उन्हे मालूम था कि रूपा और धीराजसिंह एक दूसरे को चाहते है, इसी कारण उन्होंने भरसक उन दोनो को कभी एक-दूसरे से खुलकर मिलने की सुविधा नही दी, और धीराजसिंह की हत्या—हा हत्या—का कारण भी यही है।"

बत्तीसवां परिच्छेद

नाव सगम के पास पहुँच चुकी थी। परिपूर्ण पूर्णिमा की उस रात मे गगा और यमुना की तरगे न जाने किस अज्ञात मिलन की उद्दाम आकाक्षा से हिल्लोलित होकर प्रमत्त प्रवाह मे एक दूसरे से टकराती हुई अन्त में कछार पर सिर पटक रही थी। सारे वातावरण में कभी एक अस्पष्ट हाहाकार भरा स्वर गूज उठता था और कभी एक तरल अट्टहास का सम्मिलित शब्द जैसे मानव-हृदय की विवशताओ और विफलताओ की कहानी का उपहास कर रहा था। महीप शारदा देवी के मुह से निकले हुए एक-एक शब्द को एकान्त मन से, अत्यन्त ध्यानपूर्वक स्तब्ध हृदय से सुन रहा था।

धीराजसिंह की हत्या का उल्लेख करते ही शारदा देवी जैसे स्वय अपनी बात से सहमकर चुप हो गई। महीप ने नाववाले से नाव लौटा ले चलने के लिए कहा।

नाव लौटकर जब कुछ दूर आगे बढी तो महीप ने कहा—"धीराजसिंह के स्वभाव की 'कायरता' से ठाकुर साहब अवश्य ही परिचित रहे होंगे। वह निश्चय ही यह जानते रहे होंगे कि धीराजसिंह रूपा को चाहे कितना ही क्यो न चाहते हों, उनसे कोई खतरा उन्हे नहीं हो सकता। तब फिर उनकी हत्या की क्या आवश्यकता ठाकुर साहब को जान पडी ?"

"ठाकुर साहब सन्देह के लिए तनिक भी गुंजाइश कहीं नहीं छोडना चाहते—यह उनके स्वभाव की विशेषता है", अपने स्वर में पहले से अधिक गम्भीरता भरते हुए शारदा देवी ने कहा। "सन्देह का कारण चाहे प्रत्यक्ष में हानि की सम्भावना से एकदम शून्य क्यो न हो, वह उसे काटे की तरह जड से उखाडकर फेंके बिना चैन नहीं ले सकते। धीराजसिंह कही किसी असावधानी के क्षण में रूपा को उनके चंगुल से भगा न ले जायँ, यह आशका निश्चय ही उन्हे बेचैन कर रही होगी। साथ ही प्रकट रूप से उनकी हत्या करने का साहस भी ठाकुर साहब नही कर सकते थे—जिस प्रकार वह दीदी को सीधे-सीधे विष खिलाकर या रिवाल्वर से गोली चलाकर नहीं मार सकते थे। जिस प्रकार उन्होंने एक कुटिल चक्र से दीदी की आत्महत्या का जाल रचा उसी प्रकार धीराजसिंह को शिकार खेलने का निमत्रण देकर 'शिकार की दुर्घटना' की आड में उन्हें मार डाला या मरवा डाला होगा।"

महीप सिहर उठा और उसके रोए खडे हो उठे। असल में उसने अभी तक धीराज की तथाकथित हत्या की विभीषिका पर एकान्त में एक क्षण के लिए भी अच्छी तरह विचार नहीं किया था। शारदा देवी के व्यक्तित्व के और जीवन के जिस अप्रत्याशित स्वरूप का परिचय उसे आज मिला था उसने उसके मन को अपनी निगूढ रहस्यमयता से इस कदर छा लिया था कि किसी दूसरे विषय पर ध्यान से विचार करने का अवसर ही उसे नहीं मिल पाता था। पर इस समय शारदा देवी की अन्तिम बात ने सहसा

उसके भ्रमित मन के एक सुस्थिर क्षण में इस ढंग से प्रवेश किया कि उसकी भयंकरता के पूर्ण अनुभव से वह चौंक उठा। धीराज की तथाकथित हत्या से सम्बन्धित बात एक नये ही प्रकाश में उसके मन की आंखों के आगे चमक उठी और एक अत्यन्त भावुक, तीव्र अनुभूतिशील और साथ ही (आश्चर्य है कि) घोर बौद्धिक युवक के जीवन का हृदय को दहला देने वाला 'ट्रेजिक' रूप उसके आगे बिजली की झलक से प्रभासित हो उठा। धीराज के जिस जीवन से वह नहीं के बराबर परिचित था उस अज्ञात जीवन की झांकी न जाने किस रहस्य-लोक से 'ईथर' मे प्रक्षेपित होकर महीप की अन्तश्चेतना की आकस्मिक दिव्य दृष्टि के आगे टेलीविजन के-से पट से जैसे पल मे आदि से अन्त तक अत्यन्त मार्मिक रूप से करुण रगों मे छवि-मान हो उठी। उस एक दिव्य पल के भीतर जैसे धीराज का पूरा जीवन-काल सना गया था। धीराज के प्रत्यक्ष-स्थूल-जीवन का केवल क्षणिक —बल्कि क्षणिकतम—परिचय महीप को हुआ था। पर अभी जो दिव्य दृष्टि उसकी अन्तश्चेतना को प्राप्त हुई थी उससे केवल धीराज के प्रत्यक्ष जीवन का आद्यन्त रूप ही उसके सामने नहीं आया, बल्कि उस प्रत्यक्ष और स्थूल जीवन के अन्तराल मे चिर-गतिशील रहनेवाला अप्रत्यक्ष, सूक्ष्म अनुभूतिमय जीवन भी परिस्फुट हो उठा। अपने अन्तर्मन के इस आश्चर्य-मय संवेदन की तीव्रता का अनुभव करके महीप भीतर-ही-भीतर कराह उठा। उसे ऐसा लगा कि धीराज की अशरीरी आत्मा जैसे अकस्मात्, उसकी असाव-धानी के क्षण में, उसकी छाती को चीरकर उसके हृदय में प्रवेश करके अत्यन्त साघातिक रूप से करुण विलाप करती हुई बिलख रही हो।

इस भावना से आतंकित-सा होकर वह अपने अनजान ही में सम्भलकर बैठने के उद्देश्य से अपने स्थान पर से कुछ हटा और इस चेष्टा में शारदा देवी के शरीर से उसका घुटना छू गया। पल में बिजली के स्पर्श की तरह, ज्वलन्त अंगारों की-सी एक नोखी अनुभूति महीप के प्रति रक्तकण में व्याप्त हो गई। उसने तत्काल अपना पांव हटा लिया। उसे ऐसा लगा कि उस

जलती हुई अनुभूति में भी एक धधकती हुई आत्मा की चटखती हुई कराह, एक सत्त्वहीन खाल की धौंकनी से निकली हुई गरम सास भरी हुई हैं। और इस अनुभूति के साथ ही किसी रहस्यमयी प्रेरणा से उसकी अन्तरात्मा की दिव्य दृष्टि जैसे फिर एक बार खुल गई और इस बार शारदा देवी क स्थूल, और प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त, जीवन के अन्तराल में उनके जन्मकाल से लेकर तत्काल तक प्रवाहित होने वाले सूक्ष्म जीवन के अत्यन्त मार्मिक रूप की झाकी उसके आगे प्रत्यक्ष सत्य की तरह स्पष्ट हो उठी—हालाकि शारदा देवी के प्रत्यक्ष जीवन से उसका परिचय केवल इतना ही था जितना कि धीराज के जीवन से।. अपनी अन्तरात्मा की इस दिव्य अनुभूति पर उसे परम आश्चर्य होता यदि उस पर तटस्थ रूप से विचार करने का अवसर उसे प्राप्त होता। उसके अन्तर्जगत् के टेलीविजन-पट पर जो यह दूसरा चित्र पहले की ही तरह भूतकाल के किसी रहस्यमय अज्ञात लोक से प्रक्षेपित हुआ उसमें उसने देखा कि शारदा देवी के उस सूक्ष्म जीवन में असख्य महात्वाकाक्षाए, अस्फुट किन्तु विश्वप्राण को पुलक-विह्वल करने वाली अत्यन्त मधुर और मनोरम आशाए, कठोर जीवन के सघर्ष को स्निग्ध और सहनीय बनानेवाली प्रफुल्ल प्रेमानुभूति—सब किसी विषैले हाथ के स्पर्श से झुलसकर काले और कुरूप बनते चले जा रहे हैं। महीप का अन्त प्राण उस निर्मम दृश्य से हाय-हाय कर उठा, पर कोई उस मर्मान्तिक घातकता का निवारण करनेवाला उसे नहीं दिखाई दिया। क्या प्राणों की वे सब सुन्दर, सुकुमार, मगलमयी, पुलक-हिल्लोलमयी, स्निग्ध-सजल अनुभूतिया इसी तरह झुलसकर काली और कुरूप बनती चली जायगी—और अपने पीछे छोड देंगी जड़, निष्प्राण कोयलो का एक ढेर? इस हौलनाक दृश्य को महीप का अन्त प्राण सहन नही कर सका और उसने तत्काल अपनी दिव्य आखें मूद लीं।

अन्त प्राण के द्वार रुद्ध करके महीप सचेत लोक में पहुँचने ही जा रहा था कि सहसा दूर कहीं से अत्यन्त मर्म-मधुर और पुलक-विकल स्वर में

बांसुरी बज उठी। जीवन में असंख्य बार महीप के कानों में बांसुरी की स्वर-लहरी तरंगित हुई होगी, पर आज जिस प्रकार के वातावरण में और जिस मानसिक स्थिति में उसने अलौकिक वेदना के कल-कम्पन से गूंजता हुआ वह स्वर सुना वह अपूर्व था। क्षणकाल के लिए वह भूल गया स्वार्थान्ध मानव द्वारा विवश मानव (या मानवी) के शोषण की बात; भूल गया शक्तिमद से प्रमत्त राष्ट्रों द्वारा परिचालित युद्ध की विश्वव्यापी विनाशलीला के भौतिक नर्तन की बात; भूल गया अपने और दूसरों के जीवन के असंख्य विफल संघर्षों की बात। वह अनुभव करने लगा केवल एक स्निग्ध, शीतल, किन्तु सुतीव्र प्रकाश-पुंज से झरते हुए शुभ्र साम्ययुक्त भावों की असंख्य फुलझड़ियां, और उन फुलझड़ियों के प्रकाश में स्रोत से सागर-संगम तक विभासित, आनन्द और विषाद के सम-सामंजस्य से विकल, भावनात्र शेष जीवन-धारा की एक अटूट रेखा। बाहर चारों ओर, यमुना की नील लहरियों के ऊपर और दोनों ओर की तटवर्ती भूमि पर चांदी की तरह बिखरी हुई चांदनी और भीतर परिपूर्ण जीवन की पुंजित प्रकाशमयी भावानुभूति! महीप को ऐसा लगा जैसे एक मोहमयी मूर्च्छा उसे समाधि-मग्न कर देगी।

नाव आगे बढ़ती चली गई और बांसुरी का स्वर जैसे उलटी दिशा की ओर अग्रसर होता हुआ पीछे हटता चला गया। धीरे-धीरे वह स्वर-लहरी वायु में प्रवाहित गन्ध की तरह एकदम विलीन हो गई। महीप धीरे-धीरे अपने आपे में आने लगा। कुछ समय बाद उस दिव्य अनुभूति की प्रतिक्रिया उसके भीतर आरम्भ होने ही जा रही थी कि अचानक उसके कानों में किसी के सिसकने की आवाज़ आई। चौंककर उसने शारदा देवी की ओर देखा। वह आंचल में अपना मुंह ढांपकर बेअख्तियार फफक रही थी और फफकते हुए उनका सारा शरीर हिल रहा था। अत्यन्त घबराहट के साथ महीप ने पूछा—"आपको क्या हो गया? आप—आप रो क्यों रही हैं?"

पर शारदा देवी ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह उसी तरह मुंह ढांपे निस-

कती और फफकती चली गई। बीच-बीच में उनकी सिसकियां हिचकियों का रूप धारण कर लेती थीं। यह स्पष्ट था कि वह अपने को रोकने की बहुत चेष्टा कर रही है, पर किसी भी उपाय से वे सिसकिया और हिचकियां रुकना ही नहीं चाहतीं।

काफी देर बाद इस सम्भावना की ओर महीप का ध्यान गया कि वाता-वरण की और बासुरी की जो प्रतिक्रिया उसके मन पर हुई है वही—अन्य रूप में—दूसरे के मन पर भी हो सकती है।

शारदा देवी ने जब कोई उत्तर नहीं दिया तो महीप ने फिर दुबारा उनसे इस सम्बन्ध में कोई प्रश्न करना उचित नहीं समझा। यह बात भी उसकी समझ में आ गई थी कि इस समय खूब रोकर जी हलका कर लेना उनके लिए हितकर ही सिद्ध होगा। अपने जीवन की व्यर्थता और विवशता का जो इतिहास उन्होंने आज अत्यन्त सन्निकट रूप से उसे सुनाया था, एक अत्याचारी वर्ग के सजीव प्रतीक का यथार्थ रूप उसके आगे चित्रित करके, अपने व्यक्तिगत जीवन की विफलता के बीज से प्रतिहिंसा की आग सुलगा-कर सामाजिक क्रान्ति की चिनगारिया बिखेरने के अपने जिस लक्ष्य की ओर उन्होंने सकेत किया था, बहुत दिनो के अन्तर्दमन के बाद बन्धन तोडकर बाहर निकले हुए उस मानसिक उद्वेग की चरम परिणति यदि पूर्णिमा की उस रात में यमुना की श्याम तरगों के ऊपर, नारी-हृदय से फूटे हुए मुक्त आसुओं के रूप में हो जाय, तो वह हर हालत में अच्छा ही है, ऐसा सोचकर महीप चुप हो रहा।

जब बलुवा घाट के पास नाव आ लगी, तो दोनो उतरने के लिए उठ खडे हुए। नाव डगमगा रही थी, और शारदा देवी उतरने की चेष्टा में गिरते-गिरते समल गई। महीप ने धीरे से उनका हाथ पकडकर उतारा, और उसके बाद नाववाले का भाडा चुकाकर स्वय भी उतर पडा।

ऊपर चढकर दोनों बग्घी पर सवार हुए। शारदा देवी आसू पोंछ चुकी

थी। पर रास्ते भर वह महीप से एक शब्द भी नहीं बोलीं। बगले पर जब बग्घी पहुँची तो शारदा देवी उतरकर चुपचाप चलकर कहा गायब हुईं, इस बात का कुछ भी अनुमान महीप नहीं लगा पाया। कोनेवाले जिस कमरे मे वह रहता था उसके सामने पश्चिम की ओर के खुले मैदान पर उसका पलग बिछा हुआ था। कुर्ता उतारकर वह चुपचाप उसी पर जाकर लेट गया।

तैंतीसवां परिच्छेद

दिन भर जिस तरह की बातें महीप ने सुनी थीं और जो विचित्र अनुभूतिया उसे हुई थीं, उनके कारण ऐसी मानसिक चचलता उसको डावाडोल कर रही थी जो उसे नींद नहीं आने दे रही थी। पूर्ण चन्द्र का प्रकाश उसकी आखों पर कोमल किरण-बाणों से जो मीठा आघात कर रहा था वह भी नींद के लिए विघ्न सिद्ध हो रहा था।

लेटे-लेटे महीप का ध्यान धीरे-धीरे दो बातों पर केन्द्रित हुआ। एक तो यह कि शारदा देवी के रोने के कारण का स्पष्ट अनुमान करने पर भी वह ऐसा अनुभव कर रहा था जैसे वह उसके लिए रहस्यमय ही रह गया। दूसरा यह कि अपनी सारी कहानी में नीलिमा का उल्लेख कहीं न करके शारदा देवी ने उसे एकदम अधूरा ही छोड दिया—जान-बूझकर या अनजाने मे, वह कह नहीं सकता था। महीप को पूरा विश्वास था कि शारदा देवी को नीलिमा से सम्बन्ध रखनेवाली बहुत-सी भीतरी बातें मालूम हैं।

वह देर से सोया और दूसरे दिन सुबह कुछ देर ही से जागा। उठकर, हाथ-मुह धोकर, वह अपने कमरे में बैठकर अखबार पढने लगा। थोडी देर बाद शारदा देवी ने भीतर प्रवेश किया। वह नहा-धोकर, सज-सवरकर एक बैगनी रग की छपी हुई साडी पहने आई थीं जो रेशम की न होने पर भी दूर से बहुत ही मुलायम रेशम की-सी लगती थी। महीप ने आश्चर्य से देखा कि आज उनके मुख का चीमड़पन बहुत-कुछ घटा हुआ था, और ऐसा जान

एक ही ओर प्रवाहित हुई? वास्तव में महीप को इस बात पर विचार करके परम आश्चर्य हुआ। दो व्यक्तियों की कल्पना-धारा एक ही क्षण में इस हद तक समान रूप धारण कर सकती है, इस बात का अनुभव उसे जीवन में पहली बार हुआ। पर शारदा देवी से उसने इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा।

शारदा देवी के मुख का भाव गम्भीर से गम्भीरतर होता चला जाता था। कुछ देर तक चुप रह कर शून्य दृष्टि से महीप की ओर देखने के बाद वह फिर कहने लगी—"जब मैं कभी अपने व्यर्थ जीवन के पन्नों को एकान्त में पलटती हूँ, तो कभी-कभी मुझे यह भय होने लगता है कि मैं पागल हो जाऊँगी। मेरे समान तीव्र अनुभूतिशील नारी जीवन के ऐसे मर्मघाती अनुभवों के बाद भी पागल नहीं हुई, यह रहस्य स्वयं मुझे चक्कर में डाले हुए है। इस तथ्य में मुझे प्रकृति का कोई एक निश्चित उद्देश्य छिपा हुआ जान पड़ता है जो मुझे घोर निराशा के क्षणों में उत्साहित करता रहता है। मेरे छोटे से हृदय के भीतर असख्य महत्वाकाक्षाए बचपन से ही वर्तमान रही है। पर अपनी एक छोटी-से-छोटी आकांक्षा भी मैं जीवन में कभी चरितार्थ नहीं कर पाई, महत्वा-काक्षा की कौन कहे। अपने किस अपराध के कारण यह महादण्ड मुझे मिला? मैंने समाज का क्या बिगाड़ा था? जिस नृशस हत्यारे ने अपने सामाजिक अधिकार और आर्थिक प्रभुत्व के बल पर मुझे केवल नैतिक दृष्टि से ही पतित नहीं किया, शारीरिक दृष्टि से ही शोषित नहीं किया, बल्कि सामाजिक दृष्टि से भी एकदम ज़लील कर दिया, अभी तक उसका बाल भी मैं बाका नहीं कर पाई, यह कल्पना रह-रह कर असख्य बिच्छुओ की तरह प्रतिपल मुझे डसती जाती है। फिर भी, जैसा कि आप देख रहे है, मैं जीवित हूँ, और यह आशा रखती हूँ कि जीवित रहूँगी। अपनी आत्मा के इस कोयले को, जो ठीक से आग नहीं पकड़ पाता और बार-बार जलाने पर फिर-फिर बुझ जाता है, एक बार अच्छी तरह धधकाये बिना मुझे कल नहीं पड सकती और मेरा विश्वास है कि तब तक मैं मर भी नहीं सकती। चाहे मुझे उसमें कई कनस्टर

मिट्टी का तेल डालकर जलाना पड़े—एक न एक दिन मै उसे जला कर ही छोड़ूंगी।"

महीप ने देखा, हड्डियो के भीतर धसी हुई उनकी दोनों आंखें ऐसा कहते हुए सचमुच दहकने लगी है। प्रज्वलित प्रतिहिंसा की सजीव प्रतीक उन आखों की ओर वह मन्त्रमूढ-सा देखता ही रह गया।

शारदा देवी कहती चली गई—"इस युग के जमींदारो और अर्थपतियों ने अन्याय और अत्याचार के नये-नये कलात्मक रूप सीख लिए है और अपनी सुरक्षा के भी नये-नये सगठित तरीके उन्हें मालूम हो गये है। पर वे यह नहीं सोचते कि प्रकृति दूसरे उपायों मे, परोक्ष में, उनके विनाश के साधनों को गुप्त और अज्ञात रूप से जुटाती चली जा रही है। वे यह नहीं सोचते कि सगठन का क्रम उलटी दिशा मे भी चल सकता है।"

यहां पर महीप ने उनके मन का निश्चित भाव जानने के उद्देश्य से उन्हें टोका। उसने कहा—"तो क्या आपका यह विश्वास है कि इस देश मे भी रूस की ही तरह किसानों और मजदूरो की क्राति ही जमींदारों और अर्थ-पतियों का अन्त करने मे सफल होगी ?"

"नहीं, कतई नहीं", प्याले में ठण्डी पड़ी हुई चाय की एक घूट पीने के बाद शारदा देवी ने अत्यन्त तीव्र स्वर मे कहा—"भारत मे मजदूरों और किसानो की क्रान्ति कभी मच नहीं पावेगी और न कभी मजदूर वर्ग का 'डिक्टेटरशिप' कायम होने पावेगा। यहा यदि कभी वास्तविक अर्थ में किसी वर्ग की कोई क्रान्ति सफल होगी तो वह होगी उस वर्ग की जिसे मार्क्स ने अत्यन्त उपेक्षा—बल्कि अत्यन्त घृणा—की दृष्टि से देखा है। वह वर्ग है निम्न मध्यवर्ग—'पेती बूर्जवाजी', और वह क्राति मचेगी उन्हीं 'छोटे-छोटे', 'तुच्छ' और 'व्यक्तिगत' कारणों से जिनका अनुभव मैं अपने जीवन में कर रही हूं, और जिसके जीवनशोषी पीड़न का अनुभव मेरी ही तरह के असख्य दूसरे व्यक्ति प्रतिपल कर रहे हैं। मै जानती हूं कि यदि मै तरे नाम इस

बात की घोषणा करूँ तो सभी राजनीतिक दल मेरी इस बात को निरी अज्ञता और लडकपन समझकर या तो हँसेंगे या मेरी बुद्धि पर तरस खायेंगे, और आप भी निश्चय ही मन-ही-मन अविश्वासपूर्वक हँसेंगे--वल्कि हँस रहे हैं—आपके मुख पर की अव्यक्त मुसकान यही बताती है। पर यदि आप दीर्घजीवी हुए—जिसकी मुझे पूरी आशा है—तो आप एक दिन देखेंगे कि मेरी जिस बात को इस समय आप 'लडकपन' समझ रहे हैं उसके भीतर कितना प्रचण्ड सत्य छिपा हुआ है।

"छुटपन से ही कम्यूनिस्ट क्रान्ति सम्बन्धी विषयों के प्रति मुझे गहरी 'दिलचस्पी रही है—अवश्य सैद्धान्तिक रूप से—और उन विषयों का अध्ययन मैंने भारत की प्राचीन संस्कृति, निरन्तर परिवर्तित होनेवाली सामाजिक परिस्थिति और आधुनिक राजनीतिक प्रगति को मूल में परिचालित करने-वाले मनोविज्ञान के आधार पर एकान्त दृष्टि से किया है। इसलिए मैं अपने विश्वास का जो कारण आपको बताने जा रही हूँ उस पर आप एक बार ध्यानपूर्वक, निरपेक्ष भाव से, विचार करें।

"भारत का 'पेती बूर्जवा' उस वर्ग से सम्बन्ध रखता है जो एक ओर तीव्र अनुभूतिशील और बौद्धिक है, और दूसरी ओर जो सामाजिक और आर्थिक विषमता के चक्रों के बीच में सबसे अधिक पिसा हुआ है। यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध कर दी है वर्तमान महायुद्ध ने, जिसके फलस्वरूप किसानों और मजदूरों की आर्थिक स्थिति पहले की अपेक्षा बहुत सुविधाजनक हो उठी है। इसके विपरीत, निम्न मध्यवर्गवाले या तो बेकार हैं, या छोटी-मोटी नौकरियों के तिनकों का सहारा पकडकर इस चरम महँगाई में कम-से-कम आठ-आठ, दस-दस प्राणियों के परिवारों का निर्वाह करने का असम्भव प्रयास कर रहे हैं, जो पर्याप्त कपडे के अभाव से न अपनी लज्जा ढक पा रहे हैं, न बाजार के महँगे अन्न से पूरा पेट भरने में समर्थ हैं और न अपनी परम्परागत लौकिकता को किसी भी हद तक निभा पाते हैं। फल यह देखने

मे आ रहा है कि या तो वे लोग फटाफट आत्महत्या कर रहे हैं या महामारियों और दूसरी बीमारियों के शिकार बन रहे हैं, या पागल हो रहे हैं।

"किसानो का यह हाल है कि जमींदारों की लूट-खसोट के बावजूद इस समय उन्हें अपने लिए काफी अन्न, और पहले की अपेक्षा कई गुना अधिक धन बटोरने की सुविधा प्राप्त हो गई है, और मजदूरो का यह हाल है कि उनके परिवार का एक भी प्राणी इस समय बेकार नहीं है और वे पहले की अपेक्षा काफी अच्छी मजदूरी पा रहे हैं। बौद्धिकता का प्रश्न उनके लिए कभी बड़ा नहीं रहा, और फटे-पुराने कपडे पहनने के आदी वे पहले से ही रहे हैं—चाहे इसका कारण सामाजिक अर्थ-विधान की कितनी ही बडी विषमता क्यो न रही हो, और उनकी अनुभूतिशीलता कभी तीव्र नहीं रही है—चाहे इसका भी कारण सामन्तवादी सभ्यता की एकांगीय स्वार्थपरायणता ही क्यों न रहा हो, जिसने इस वर्ग में बौद्धिकता का प्रचार कभी न होने देकर उसकी अनुभूतिशीलता को भी जड बना दिया। कारण चाहे कुछ भी हो, तथ्य है वही जो मैंने आपको बताया है। पर निम्न मध्यवर्ग के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। उसकी एक स्वतन्त्र बौद्धिक परम्परा है, जिसने उसे एक ओर प्रत्येक विषय पर सूक्ष्म रूप से विचार करने की क्षमता दी है दूसरी ओर अनुभूति की तीव्रता। पर आर्थिक सुविधा और सामाजिक प्रतिष्ठा—ये दो बातें उन्हें कभी प्राप्त नहीं रही हैं। अपने प्रति होनेवाले इस सामूहिक और परम्परागत अन्याय की तीखी वेदना इस वर्ग के व्यष्टिगत और साथ ही समष्टिगत मन के भीतर सब समय ज्ञात में या अज्ञात में वर्तमान रहती है। उच्च शिक्षा का जो आदर्श साधारणत समाज मे वर्तमान पाया जाता है उस दृष्टि से यह वर्ग विशेष शिक्षित नहीं जान पड़ेगा। आमतौर से इस वर्ग के व्यक्तियों की शिक्षा हाई स्कूल मे समाप्त हो जाती है, और बहुत-से तो हाई स्कूल की शिक्षा को भी पूरा कर सकने की आर्थिक सुविधा नही पाते। फिर भी सबसे अधिक बौद्धिक और सबसे

अधिक विचारशील व्यक्ति आपको इसी वर्ग में मिलेंगे, यद्यपि उनकी बौद्धिकता और विचारशीलता का कोई मूल्य न अर्थपतियों ने कभी स्वीकार किया है न राष्ट्रपतियों ने। ६० प्रतिशत साहित्यिक इसी वर्ग से सम्बन्ध रखते है, जिन्होने साहित्य के माध्यम से केवल अपनी तीव्र भावानुभूति ही व्यक्त नहीं की है, बल्कि अपने पीडित प्राणो की गहन अनुभूति से प्राप्त अत्यन्त उच्च और भावी समाज के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विचार भी समाज को दिए है, ६० प्रतिशत तथाकथित कम्यूनिस्ट और समाजवादी क्रान्तिकारी भी इस वर्ग से निकले हैं। हमार 'कम्यूनिस्टों' ने आज तक बहुत-से गलत रास्ते पकडे है सन्देह नहीं, पर उनके भीतर भी बृहत् और व्यापक विश्व-क्रान्ति के अग्निगर्भ बीज निश्चय ही निहित रहे हैं।

"आपके सम्बन्ध में मेरे मन में पहले ही से जो आशा और आस्था की भावना वर्तमान रही है उसका कारण यही रहा है कि आप उसी सदियो के लौह-चक्र से पिसे हुए वर्ग के चिन्ताशील साहित्यिक है। इसमें सन्देह नहीं कि इस वर्ग के क्रान्तदर्शी चिन्तक आज तक एक दूसरे के प्रति अविश्वास और पारस्परिक विरोध मे ही अपनी शक्ति का अपव्यय करते रहे हैं। पर वर्तमान महायुद्ध में प्रभुत्वपरायण राष्ट्रों के पारस्परिक स्वार्थपूर्ण सघर्ष और दुर्बलों के विश्वव्यापी सहार-काण्ड ने इस वर्ग के भीतर एक ऐसी सगठनमूलक चेतना अज्ञात में भर दी है जो उसके सदस्यों को एक दूसरे के बहुत निकट ले आवेगी। जो तथाकथित कम्यूनिस्ट नवयुवक इस समय निम्न-मध्यवर्ग (अर्थात् अपने ही वर्ग) के प्रति व्यग या उपेक्षा का भाव जताते हैं वे अन्त में उसकी बिखरी हुई शक्ति के सयोजन और सगठन से अत्यन्त प्रभावित होकर उसी में फिर से जा मिलेंगे। पर अभी इस वर्ग में पूर्ण सहयोग और युगान्तरकारी सगठन की भावना जागरित होने मे बहुत समय लगेगा। अगले महायुद्ध के बाद निश्चय ही एक और महायुद्ध होगा, इस बात के निश्चित लक्षण वर्तमान महायुद्ध के समाप्त होते न होते स्पष्ट हो गये हैं। अगले महायुद्ध के बाद निम्न मध्यवर्ग पूर्णतया सगठित हो उठेगा। उसके

वाद एक और महायुद्ध होगा। उस चौथे महायुद्ध की जो विश्वव्यापी प्रतिक्रिया होगी उसके फलस्वरूप भारतीय निम्न मध्यवर्ग की विश्वव्यापी सहयोगात्मक शक्ति अपने जो चमत्कार दिखावेगी उसकी कल्पना भी इस समय ठीक-ठीक नहीं की जा सकती। उस महायुद्ध के (जिसे मैं अंतिम महायुद्ध समझती हूँ) फलस्वरूप जो विश्वव्यापी विनाश-कांड मचेगा उसकी भयकरता कल्पातीत है, सदेह नहीं, पर उसके वाद भी मानव जीवन निश्चय ही शेष रहेगा—आत्म-पीड़न के वाद निखरे हुए रूप में।

"कुछ भी हो, मैं निम्न मध्यवर्ग की वात कह रही थी। भविष्य का यह संगठित निम्न मध्यवर्ग अपनी क्रांति के साधन मजदूरों और किसानों से ही जुटावेगा इसमें सन्देह नही, पर उनकी वह शक्ति पूर्णत. उसके अपने नियन्त्रण में रहेगी। मार्क्स का यह सिद्धान्त कि मजदूरो और किसानो की महाशक्ति के भीतर मध्य-वर्ग को अपने को मिटा देना होगा—भावी क्रान्ति के सम्वन्ध मे कतई लागू नहीं होगा। 'डिक्टटरशिप आफ दि प्रोलेटेरियट' के नारे का कोई अर्थ तव नहीं रह जावेगा। तव जो नारा लागू होगा वह है 'डिक्टेटरशिप आफ दी पेती वूर्जवाजी', पर वास्तव में यह नारा वुलन्द नहीं किया जावेगा। 'जनसाधारण का एकाधिपत्य' या इसी तरह का और कोई नाम उस नयी शासन-प्रणाली को दिया जावेगा।

"इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि मजदूर और किसान निम्न मध्य-वर्ग को शक्ति के केवल साधन-मात्र रह जावेगे। निम्न मध्यवर्ग शक्ति प्राप्त करने पर इस वात की पूरी कोशिश करेगा कि 'प्रोलेटेरियट' वर्ग की जनता जल्दी से जल्दी उसी के वौद्धिक स्तर तक पहुँच जावे, और उस भावी युग मे वैज्ञानिक शिक्षा-पणाली के जो द्रुतगतिशील साधन उसे प्राप्त होंगे—जैसे टेलीविजन द्वारा शिक्षण, आदि—उनकी सहायता से अपने इस लक्ष्य तक पहुँचने में उसे देर नहीं लगेगी; और इस लक्ष्य को प्राप्त कर लेने पर—निम्न मध्यवर्ग तथा 'प्रोलेटेरियट' सम्प्रदाय मे कोई अन्तर नहीं रह जायगा। और ऊपर के स्तरों के जो वर्ग है, वे जब अपने विशेष

पार्थिव अधिकारों को त्यागने के लिए बाध्य हो जायगे तब निम्न मध्यवर्ग के ही स्तर पर आने में उन्हें भी कोई देर नहीं लगेगी। इसका कारण यह है कि शिक्षा और संस्कृति की परम्परा में वे निम्न मध्यवर्ग से कभी पिछड़े नहीं रहे, बल्कि आगे ही रहे हैं—भले ही उनमें तीव्र अनुभूतिशीलता और 'डिनेमिक' बौद्धिकता का निपट अभाव रहा हो।

"इस सारी चक्रगति का यह परिणाम होगा कि सारा समाज सिर से लेकर पावा तक एकरूप हो जायगा, निम्न मध्यवर्ग के मूल अन्त केन्द्र के चारों ओर एक सुसंस्कृत, सुव्यवस्थित और वर्गभेद-रहित सुसम्पन्न समाज पार्थिव उन्नति के समस्त सम्भव साधनों का सदुपयोग करने के बाद अपने मूल लक्ष्य—सांस्कृतिक और आध्यात्मिक उन्नति—की ओर अग्रसर होता चला जायगा, और तभी मानवता के चरम कल्याण का स्वप्न सफल हो सकेगा। मार्क्सियन क्रान्ति का चरम लक्ष्य भौतिक सुख-साधनों तक सीमित है, इसलिए वह भारतीय निम्नमध्यवर्ग को ऊपर से आकर्षित करने पर भी उसके भीतरी प्राणों को कभी नहीं गुदगुदा पाता। पेट की ज्वाला—भूखे प्राणों की पीड़ा—क्या है, इस बात का अनुभव निम्नमध्यवर्ग से अधिक किसी को नहीं है, पर पेट की वह सर्वशोषी आग भी उसकी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक उन्नति के लक्ष्य को मिटाने में कभी समर्थ नहीं हुई है।"

महीप को ऐसा लग रहा था जैसे उसका प्रत्येक रोमछिद्र अपने कान खड़े करके शारदा देवी के उस आकस्मिक धारावाही भाषण को सुन रहा है। इधर दो दिन से शारदा देवी के विचारों का जो कुछ परिचय उसे मिला था उससे उसके मन में यह धारणा जमने लगी थी कि वह उनके मानसिक तथा बौद्धिक स्तर की गहराई की थाह पा चुका है। पर आज उसकी यह धारणा मूलत छिन्न हो गई। वह अभी तक उनके सम्बन्ध मे कितने बड़े भ्रम में पड़ा हुआ था, यह सोचकर उसे आश्चर्य हुआ। भावी क्रान्ति का जो चित्र उन्होंने उसके सामने रक्खा था वह उसे विचित्र कल्पनापूर्ण—'फेन्टे-

स्टिक'—लग रहा था, सन्देह नहीं, पर साथ ही यह धारणा उसके मन में जमने लगी थी कि वह चित्र कैसा ही 'फेन्टेस्टिक' क्यों न हो, और उस चित्र से उसके निजी विश्वासों का चाहे कैसा ही विरोध क्यों न हो, वह उपेक्षणीय किसी भी हालत में नहीं है। प्रारम्भ में शारदा देवी की बातें सुनकर मन्द मुसकान की जो झलक उसके मुख पर व्यक्त हो उठी थी, वह अब परम आश्चर्य और विभ्रान्ति में परिणत हो गई थी।

उसने शारदा देवी के दृष्टिकोण को और अधिक स्पष्ट रूप से जानने के उद्देश्य से प्रश्न किया—"तब क्या यह क्रान्ति—जिसका वर्णन आपने किया है—मार्क्स के सिद्धान्तों की विरोधी होगी?"

"क़तई नहीं", अपने शब्दों पर जोर देते हुए शारदा देवी ने कहा—"ऊपरी दृष्टि से भले ही यह ऐसी जान पड़ती हो, पर सतह के नीचे दृष्टि डालने पर यह बात स्पष्ट हो जायगी कि यह क्रान्ति मार्क्स के सिद्धान्तों की विरोधी नहीं, बल्कि उसी का विकसित, परिशोधित और बहुत अधिक सुसंस्कृत रूप होगी। मार्क्स के अपेक्षाकृत जीर्ण सिद्धान्त में नये प्राण डालने, उसे नया रूप और नया रंग देने की बहुत बड़ी आवश्यकता भावी संसार महसूस करेगा और भारत में इस आवश्यकता की पूर्ति का प्रथम प्रदर्शन होगा—यह भविष्यज्ञान मेरे भीतर की कोई भेदभरी दृष्टि मुझे दे रही है।" यह कहते हुए शारदा देवी के चीमड़ मुख के दो कोटरों पर स्थित आंखों में से जैसे तीव्र प्रकाशमय तीरों की तरह कई तीखी किरणें एक साथ विकीर्ण होने लगीं। उस ज्वलन्त प्रकाश में, उस प्रदीप्त तेजोराशि की चकाचौंध में, महीप को ऐसा लगा कि शारदा देवी के मुख का चीमड़पन एकदम विलुप्त हो गया है और एक दिव्यज्ञानमयी मूर्तिमान पुंजप्रभा एक अलौकिक स्वर्गातीत सन्देश लिये हुए उसके सामने विराजमान है—वह अनिर्वचनीय जीवन-संदेश जिसके लिए वह अपने छोटे-से कवि-जीवन में इतने दिनों से, ज्ञान या अज्ञान में, छटपटाता आ रहा था।

चौंतीसवां परिच्छेद

महीप कुछ क्षणों तक मन्त्र-मुग्ध-सा शारदा देवी की ओर देखता रहा—समाधि-मग्न-सा। निद्रा-विचरण की-सी अवस्था में उसकी आत्मा जैसे किसी दूसरे ही लोक में, जीवन की अनुभूति के किसी दूसरे ही स्तर में जा पहुँची। उसे ऐसा अनुभव हो रहा था कि उसकी आत्मा का एक-एक कण पिघलकर सामने स्थित उस ज्योतिपुज में अपने को होमने के लिए विकल हो उठा है, जैसे कोई व्यक्ति अपने अदृश्य हाथों से, होम की अदृश्य लकड़ी—स्रुवा—से 'स्वाहा! स्वाहा!' करके तपाये हुए घी की तरह उसकी आत्मा के उस सत्व को उस ज्वाला में डालता चला जाता है। "तब क्या यही हिप्नोटिज्म है?"—महीप के भीतर से प्रश्न उठा। कहा गई वह निपट दयनीय और नितान्त असहाय-सी लगनेवाली क्लिष्ट, करुण और निष्प्राण शोषितात्मा? उसके स्थान पर महीप के सामने बैठी हुई थी एक विश्व-नियन्त्री महाशक्ति। युग-युग से शोषित नारी अपने प्रेत-प्राणो के किस रहस्यमय, अदृश्य स्थान मे शक्ति के उस अखण्ड दीपक को इतने दिनों से सावधानी से सजोये हुई थी? क्या उस दीये की कभी न बुझनेवाली ऊर्ध्वमुखी लौ से वह शोषक मानव के नैतिक अनुभूति से रहित, जड और आत्मगत ससार में सचमुच आग लगाये विना नहीं मानेगी?

महीप ने उस मूर्तिमती अखण्ड लौ को श्रद्धा से मन-ही-मन प्रणाम किया। आज वह उलटे अपने को उस सर्वदर्शिनी तेजोमयी नारी के आगे अत्यन्त असहाय और अनाथ शिशु-सा अनुभव करने लगा। बौद्धिकता के जिस ऊँचे गर्वीले स्तर से वह इतने दिनों तक शारदा देवी को अवहेलना की दृष्टि से देखता आ रहा था वह मीनार जैसे सहसा ढह गई। अन्तर्ज्ञान और वहिर्बुद्धि, दोनों दृष्टियों से उसने उन्हें अपने से बहुत ऊँचा उठा हुआ पाया।

पर महीप अपनी उस विचित्र और अपूर्व अनुभूति का लेश भी भरसक वाहर प्रकट नहीं होने देना चाहता था। वह अपने को भरसक सभालकर,

एक परीक्षक का-सा भाव जताकर, शारदा देवी से प्रश्न करना चाहता था। उसने पूछा—"तो क्या आपकी यह धारणा है कि भावी भारत गांधीवाद से प्रभावित नहीं होगा ?"

"कोई महान् मूर्ख भी इस बात पर सन्देह नहीं करेगा कि इस देश की दासता की जंजीरों को तोडने के लिए गांधीवाद ही एक मात्र चरम अस्त्र है, जो बहुत-कुछ सफल हो चुका है और आगे चलकर और अधिक सफल होगा। फिर भी इस बात की बहुत संभावना है कि गांधीवाद एक दिन भारत को छोडकर विदेशों में—विशेषकर पाश्चात्य देशों में—शरण लेगा; ठीक जिस प्रकार बुद्धवाद ने भारत से हटकर चीन, जापान आदि देशों को छा लिया था। निरन्तर परिवर्तनशील युगधाराओं के अनुसार विभिन्न राजनीतिक वादों का प्रभाव भी जनमनोवृत्ति पर बदलते हुए रूपों में पडता रहता है। भावी संसार पर गांधीवाद के प्रभाव के सम्बन्ध में इस समय कोई भी बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती। अन्तर-राष्ट्रीय राजनीतिक वायुमण्डल की वर्तमान अस्त-व्यस्त अवस्था के बीच की दरारों से वर्तमान के पार यदि कोई बात निश्चित रूप से दिखाई देती है तो वह यह है कि पूंजीवाद अपनी वर्तमान अवस्था में कभी ठहरने नहीं पावेगा। साम्राज्यवाद का यह चचेरा भाई आधुनिक विश्व-विनाशी युद्ध के मूल में पैठा हुआ चारों ओर अपनी विषैली सांसें छोड रहा है। सुदूर भविष्य में इसका तिरोभाव निश्चित है।"

"सुदूर भविष्य में क्यों ?"

"इसलिए कि निकट भविष्य में उसकी प्रचण्ड प्रगति को विधाता भी नहीं रोक सकेगा। जो औद्योगिक क्रान्ति भारत में इस युद्ध के बाद होने जा रही है उसके विराट् रूप की कल्पना भी इस समय ठीक से नहीं की जा सकेगी। इस बात की भी पूरी सम्भावना है कि यह औद्योगिक क्रान्ति सदियों की जडता में ग्रस्त इस देश में एक नया जागरण लाने में समर्थ होगी। मुमूर्षु में प्राणों का संचार करने के लिए कभी-कभी विषैले उत्तेजनों

की भी आवश्यकता पड़ती है। वह विराट् औद्योगिक क्रान्ति अपने विनाश का बीज स्वय अपने भीतर वहन करती हुई भी देश में एक नयी चेतना का सचार करती हुई सी चलेगी। सदियों से भूख की ज्वाला से पीडित, जीविका के उच्च मान से सदा वचित, मजदूर श्रेणी की जनता उद्योग-धन्धों के विस्तार के फलस्वरूप अपने को स्वर्ग की सीढियों पर चढती हुई-सी पावेगी और काफी लम्बे अर्से तक पूजीपतियों के 'रामराज्य' में अपने को सुरक्षित-सा समझेगी। इसलिए यह आशा नहीं की जा सकती कि उनमें निकट भविष्य में जनक्रान्ति की चिनगारिया अग्निगाण्ड के रूप में भडक उठेंगी। यदि मजदूरों को अपने-आप में छोड दिया जाय तो सुदूर भविष्य में भी उनसे क्रान्ति की आशा नहीं की जा सकेगी। पर एक वर्ग ऐसा है जिसका अन्तर्दाह औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप घटने के बजाय कई गुना अधिक भभक उठेगा। और वह है वही निम्न मध्यवर्ग, जिसके बारें में मैं पहले कह चुकी हूँ। औद्योगिक क्रान्ति के साथ ही इस वर्ग की तीव्र अनुभूतिशीलता और बौद्धिकता के क्षेत्र में भी क्रान्ति मचेगी और उसके मानसिक क्षेत्रों का विस्तार जितना ही अधिक बढ़ेगा उसकी असन्तोष की भावना के कारण भी उतने ही बढ़ जायंगे। फल यह होगा कि समस्त देश में विविध वर्गों तथा विविध सम्प्रदायों में फैली हुई क्रान्ति की अव्यक्त, अर्द्ध व्यक्त और व्यक्त लहरें निम्न वर्ग के सगठित असन्तोष से उत्पन्न महा-क्रान्ति की तूफानी लहरों की बाढ में मिलकर एकाकार होकर एक समान लक्ष्य, बल्कि महालक्ष्य, की ओर दौड़ चलेंगी, और तब ससार चकित होकर देखेगा कि भारत ने एक ऐसे विश्व-आदर्श, एक ऐसे 'वर्ल्ड आर्डर' की स्थापना की है जिसके लिए वह इतनी सदियों से ज्ञात मे या अज्ञात में छटपटा रहा था, पर जिसकी चरितार्थता में प्रतियुग में वह नये-नये जटिल बाधाओं को सामने खडा पाता था। फ्रास में राज्यक्रान्ति मची, तब साधारण मानवता इस आशा के उल्लास से एक बार उछल पडी थी कि सम्भवत सदियों के राजनीतिक अन्धकार के बाद विश्व में एक न्यायी आदर्श स्थापित होने

जा रहा है जो मानव-समाज की सारी विषमताओं को दूर करके संसार में एक स्वर्ण-युग ला देगा। पर मानवीय भाग्य की इस विडम्बना पर ग़ौर कीजिए कि उसी क्रान्ति के फलस्वरूप नेपोलियन जैसे एक डिक्टेटर का जन्म हुआ जिसने अपनी प्रचण्ड दानवीय प्रतिभा से प्रेरित होकर अपने विराट् अहंभाव की पूर्ति के लिए समस्त राष्ट्रों को दासत्व-शृंखला में बाँधने का बीड़ा उठा लिया। एक शताब्दी बाद रूस में मार्क्स द्वारा प्रेरित क्रान्ति मची, उस क्रान्ति ने अवश्य मानवता को सच्चे विश्व कल्याणकारी आदर्श की ओर कई क़दम आगे बढ़ाया। उसके फलस्वरूप विश्व के एक छोर से लेकर दूसरे तक का साधारण जन-समाज फिर एक बार इस आशा से नयी, ताज़ी उमंगों की उमड़ती हुई लहरों में डूबने-उतराने लगा कि इस बार निश्चय ही मानवता ने उस व्यापक और मांगलिक समता के महान् आदर्श का आँचल पकड़ लिया है जो बार-बार उसके हाथ से फिसलता जाता था। पर फ़िर एक बार उसके भाग्य की विडम्बना ने अट्टहास किया। मार्क्सिस्ट सिद्धान्त के कच्चे सूत के धागों को नाना बाधाओं के बीच में बाटकर सुदृढ़ करने के प्रयत्नों में रूस सच्ची लगन से जुटा ही था कि उसकी प्रतिक्रिया इटली में फासिस्ट और जर्मनी में नात्सी आन्दोलनों के रूप में व्यापक विश्वग्रासी आकार में सामने आने लगी। धीरे-धीरे इस आन्दोलन ने ऐसा विकट रूप धारण किया जिसका फल आप और हम सभी प्रत्यक्ष देख रहे हैं। ऐसे सामूहिक नर-संहार की कल्पना भी विश्व के इति-हास में कभी की नहीं जा सकती थी जैसा इस द्वितीय विश्व महायुद्ध ने प्रत्यक्ष कर दिखाया है। इस महायुद्ध का एक फल यह भी देखने में आया कि रूस को अन्तर-राष्ट्रीय कम्यूनिस्ट संगठन भंग कर देना पड़ा, अपने ही देश और अपनी ही जाति के संगठन के प्रति अपनी सब शक्तियों को केन्द्रित करने के लिए बाध्य होना पड़ा।

"आज विश्व-समता और अशक्त पराधीन राष्ट्रों के आत्म-निर्णय का जन्मजात शत्रु नात्सीवाद पूर्ण पराभूत होने जा रहा है। इससे संसार के जन-

गांधीवादी दृष्टिकोण से तनिक भी इधर-उधर होता था उसके प्रति उसके मन में कभी श्रद्धा नहीं जम पाती थी, चाहे उसकी बुद्धि उस सम्बन्ध में उसे कितना ही क्यों न भरमाती हो। उसकी दृष्टि में राजनीति से सम्बन्धित सबसे बड़ा प्रश्न था विश्व की महाशक्तियों द्वारा उपेक्षित और अपमानित अपने गुलाम देश की आज़ादी का और आपस की फूट में अत्यन्त मूर्खतापूर्ण ढग से देश की महत्वपूर्ण प्राणशक्ति का अपव्यय करने वाले विभिन्न सम्प्रदायों की सुदृढ़ एकता का। पर इस समय उसके लिए यह प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं था कि शारदा देवी के विचार क्या हैं, बल्कि यह था कि शारदा देवी क्या हैं, कहा से आई हैं, कहां जा रही हैं और किन रहस्यमय मार्गों से होकर चल रही हैं। इस प्रश्न के उत्तर में शारदा देवी के भाषण से उसे जो-जो नये अनुभव प्राप्त हो रहे थे वे उनका ऐसा आश्चर्यजनक रूप उसके सामने रख रहे थे, जो उसे अप्रत्याशित लगते थे। एक बात महीप को विशेष रूप से प्रभावित कर रही था, वह थी शारदा देवी की आश्चर्य-जनक बौद्धिकता। एक ताल्लुक़ेदार की लड़की की देख-रेख करनेवाली और उसे स्कूली शिक्षा देनेवाली महिला से वह स्पप्न में भी इस प्रकार के क्रान्ति-कारी विचार—केवल विचार ही नहीं बल्कि उस विचार के सूक्ष्म विश्लेषण और आदि से अन्त तक उसके स्पष्ट और सुलझे हुए ढग से निरूपण की क्षमता—की कल्पना नहीं कर सकता था।

सबसे अधिक आश्चर्य महीप को इस बात पर हो रहा था कि शारदा देवी का भाषण सुनने के बाद उनके मुख का निःसत्त्व और निर्जीव रूप उसे एक अपूर्व श्री और अवर्णनीय सौन्दर्य के तेज से मण्डित दिखाई देने लगा था, जैसे ऐसा सतेज और मोहक रूप उसने जीवन में इसके पहले कभी किसी नारी के मुख पर देखा ही न हो। वह खूब अच्छी तरह जानता था कि उनकी बातों से उनके मुख की शारीरिक आकृति में कोई अन्तर नहीं आ सकता, पर यह जानते हुए भी उसकी आखें जैसे धोखा खा रही थीं, और जैसे और अधिक धोखा खाने के लिए लालायित हो रही थीं।

नौकर एक 'टी-पाट' में चाय का गरम पानी लाकर रख गया। शारदा देवी दोनों प्यालों में उडेलने लगीं। क्षणकाल के लिए जो सन्नाटा रहा उसने महीप को जैसे अनन्त काल-चक्र के भँवर मे डाल दिया। शारदा देवी को रहस्यमयता का पार पाने की चेष्टा में वह उस अनन्त काल-चक्र में न जाने किस असीम सागर में गोते खाता चला गया। जब उतराकर बाहर आया तो वह अगाव रहस्य वैसे का वैसे ही बना हुआ था।

विस्मय-भरी पुलकित दृष्टि से शारदा देवी की ओर से देखता हुआ वह बोला—"आपने एक बार कहा था कि आप एक व्यक्तिगत कारण को बनाकर उसे एक व्यापक और विस्तृत सामाजिक रूप देना चाहती हैं और यह भी कहा था कि एक सीमित क्षेत्र मे प्रदर्शित आपका विरोध एक प्रतीक सिद्ध होगा। तब क्या आपकी उस बात से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सुदूर भविष्य में होने वाली निम्न मध्यवर्ग की जिस महाक्रान्ति का उल्लेख आपने किया, उसके बीज व्यक्तिगत कारणों से संगठित किये जायगे? सामूहिक चेतना को उभाडनेवाला कारण क्या आपकी दृष्टि में महत्त्वपूर्ण नहीं है?"

शारदा देवी तनिक व्यंग के साथ मन्द-मन्द मुस्कराने लगीं, जैसे प्रश्नकर्ता की समझदारी के प्रति उनके मन मे अविश्वास उत्पन्न होने लगा हो। उन्होंने कहा—"आप कवि होकर भी इस तरह का प्रश्न कर रहे हैं, यह सचमुच आश्चर्य की बात है। क्या सामूहिक चेतना इस जीवन से परे किसी आकाश-लोक से उड़कर आती है? समाज के बहुसंख्यक व्यक्तियों की समान अनुभूतियों का सम्मिलित संवेदन ही तो सामूहिक चेतना है। अलग-अलग व्यक्तियों के अलग-अलग पीडितों की मूलगत अनुभूति जब एक दूसरे से मिलते-जुलते कारणों मे जगती है तब सामूहिक चेतना एक विशिष्ट और निश्चित रूप धारण कर लेती है। समाज में विभिन्न व्यक्तियों की तीखी अनुभूतियों की बिखरी हुई चिनगारियां उपयुक्त समय

पाकर चुम्बक-क्षेत्र में बिखरे हुए लोह-कणो की तरह एकत्र होती है और तब एक सामूहिक विस्फोट उत्पन्न करती है। जो चेतना समाज के विभिन्न व्यक्तियों के तीव्र पीडन की समान अनुभूतियो के सगठन-द्वारा परिचालित न होकर केवल कृत्रिम उपायों से प्रचार-कार्य द्वारा जगाई जाती है उसे वास्तविक अर्थ में 'चेतना' नहीं कहा जा सकता, और इस प्रकार की कृत्रिम चेतना कभी उस प्रकार के भीषण विस्फोट को उत्पन्न करने में समर्थ नहीं हो सकती जो ससार की सभी महाक्रान्तियों के अवसरों पर प्रत्यक्ष की गई थी। जो लोग यह बात भूल जाते है कि उन महाक्रान्तियों के अन्तराल में लाखो-करोडो स्त्री-पुरुषो के निजी पीडनों की बिखरी हुई अनुभूतियों के फुटकर बीज वर्तमान रहे है—जो बाद में महायुद्ध की आधी के फलस्वरूप एकत्र होकर सामूहिक विस्फोट उत्पन्न करने में सफल हुए थे, उन मूर्खों द्वारा कभी कोई क्रान्ति नहीं मच पावेगी—चाहे वे कितने ही बडे नेता क्यो न बन जावें यह बात निश्चित है। समाजिक तथा आर्थिक अत्याचारो से पीडित स्त्री-पुरुषो की व्यक्तिगत अनुभूतिया ही उस रासायनिक विस्फोटकों के उपादानों को उत्पन्न करती है जो समाज की सडी हुई जडो को हिलाकर, उसे डाइनेमाइट की-सी शक्ति से उडाकर एक सुन्दर और समुन्नत सामाजिक, आर्थिक और सास्कृतिक विधान का निर्माण करते है।"

यह कहते हुए शारदा देवी की आखें एक अज्ञात प्रतिहिंसा की तीव्रता से जैसे जलने लगीं। कुछ क्षणो के लिए महीप को ऐसा मालूम हुआ कि शारदा देवी उसकी ओर देखती हुई भी जैसे शून्य की ओर देख रही है। वह वास्तव में भीत हो उठा। उसे उस भीषण मौन को भंग करने का भी साहस नहीं हुआ।

कुछ ही क्षणो बाद शारदा देवी ने स्वयं ही वह मौन भग किया। उन्होंने कहा—"सुदर भविष्य की जिस क्रान्ति की बात मैंने आपसे कही है

उसमें नारी का बहुत बड़ा हाथ रहेगा। जिस कारण से दीदी को धोखे से आत्महत्या करनी पड़ी है, समिधा को निराशा और व्यर्थता की अनुभूति से मृत्यु का शिकार बनना पड़ा, रूपा को जीवित मृत्यु को अपनाना पड़ रहा है, मुझे घोर दलित और अपमानित परिस्थिति को स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा है और हमारी ही तरह देश की लाखों-करोड़ों नारियों को जानकर या अनजान में घोर सामाजिक विवशता का शिकार बनकर अत्यन्त असहाय और दयनीय जीवन का असहनीय भार चुपचाप ढोना पड़ रहा है, वह कोई साधारण कारण कदापि नहीं हो सकता। उस कारण के बीज समाज के उसी दुष्ट व्रण के भीतर निहित हैं जिसने आर्थिक दासता से सम्पूर्ण शोषित वर्ग के जीवन को विषमय बना रखा है। वर्तमान युग में सारी मानव-जाति को मोटे तौर पर दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—एक पुरुष-वर्ग और दूसरा स्त्री-वर्ग। ये दोनों शोषक वर्ग और शोषित वर्ग के ही पर्यायवाची हैं। जिस अल्पसंख्यक सबल वर्ग ने राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक दासता से सारे विश्व के दुर्बल राष्ट्रों या वर्गों को गुलामी की जंजीर से जकड़ रखा है वह पुरुष वर्ग है, और सभी दलित वर्ग—निम्न मध्यवर्ग, मजदूर, किसान, अछूत, नारी-समाज आदि—स्त्री-वर्ग के अन्तर्गत आ जाते हैं। सबल पुरुषों द्वारा अबला नारियों का शोषण, पूंजीपतियों तथा सामन्तवादियों द्वारा मजदूरों और किसानों का शोषण और प्रभुताशाली राष्ट्रों द्वारा दुर्बल राष्ट्रों का शोषण—इन तीनों में केवल रूपक की दृष्टि से ही साम्य नहीं है, बल्कि वास्तविक दृष्टि से—राजनीतिक अर्थशास्त्र की दृष्टि से—भी ये तीनों एक दूसरे से मूलगत सम्बन्ध रखते हैं। इसलिए सभी शोषित नारियों के निर्यातनों की व्यक्तिगत कहानियां सुदूर भविष्य की क्रान्ति के मूल उपादान जुटा रही हैं, इस चरम तथ्य की अवहेलना करना क्रान्ति के असली बीजों को ही ठुकराना है। अन्धी दुनिया केवल पेड़-पौधों को और उनमें लगने वाले फलों को ही देख पाती है। बीज

उसके लिए अदृश्य ही रह जाते हैं, पर उन पेड़ों-पौधों को लगानेवाला किसान भी यदि बीजों की उपेक्षा करे तो उसकी मूर्खता अकथनीय है।"

शारदा देवी के अन्तिम कथन से महीप की समझ में यह बात किसी हद तक आने लगी कि 'निम्न मध्यवर्ग की भावी क्रान्ति' और शोषक और शोषितों के सम्बन्ध में इतना लम्बा-चौड़ा भाषण उन्होंने उसे क्यों दिया।

चाय दूसरी बार भी ठण्ढी होने जा रही थी। महीप बड़े गौर से—जीवन के एक विभ्रान्त दर्शक की दृष्टि से—शारदा देवी की ओर देखता हुआ घूंट-घूंट करके चाय पीने लगा। शारदा देवी भी अनमनी-सी होकर चाय पीने लगीं। पर उनके मुख के उस अनमने भाव के ऊपर भी जैसे कालान्त की भीतर दबी हुई महा आग बीच-बीच में अत्यन्त तीव्रता से झलक उठती थी। उनके बोलने की अपेक्षा उनके मौन की भीषण स्तब्धता से महीप अधिक आतंकित हो उठा। चाय की तीन घूंटें पी चुकने के बाद उसे ऐसा अनुभव होने लगा जैसे उसका सिर मन की चरम भ्रान्त अवस्था के कारण भिन्नाने लगा है। कुछ क्षणों के लिए उसके मन की भ्रान्ति इस अविश्वसनीय स्थिति को पहुंच गई कि उसे ऐसा लगा कि शारदा देवी जिस कुर्सी पर बैठी हैं वह ऊंची हो उठी है और साथ ही उसके शरीर का आकार भी बहुत बड़ा हो गया है। शारदा देवी उसी उन्मन भाव से धीरे-धीरे चाय पी रही थीं।

महीप एक प्याला समाप्त करने के बाद गला साफ करके बोला—"आपकी बातों से मेरे मन में यह अनोखी धारणा उत्पन्न होने लगी है कि आपका जन्म भारत में न होकर रूस में होना चाहिए था।"

शारदा देवी ने बड़े गौर से महीप की ओर देखा। धीरे-धीरे उनके मुख पर से गम्भीरता का काला पर्दा हटने लगा और भीतर का शान्त और कोमल रूप अपनी मृदु-मन्द झलक दिखाने लगा। बहुत ही मन्द—प्राय अव्यक्त—मुसकान बिखेरते हुए उन्होंने कहा—"क्यों, आपके मन में यह अनोखी धारणा मेरी किस बात से उत्पन्न होने लगी है?"

"अपनी व्यक्तिगत प्रतिहिंसा की प्रवृत्ति को सामूहिक प्रतिहिंसा का रूप देने के सम्बन्ध में जो व्यापक योजना आपके मन में तैयार है, उसके सब पहलुओं पर ऐसी घोर वास्तविकता के दृष्टिकोण से और साथ ही सूक्ष्म विस्तार के साथ आपने विचार किया है, जो भारतीय प्रतिभा की विशेषता नहीं है। केवल रूस की अर्द्ध-मंगोलियन प्रतिभा ही उस रूप में सोच सकती है।"

इस बात से शारदा देवी के मुख की मुसकान अधिक परिस्फुट हो उठी। उन्होंने अपनी बात को आधा परिहास और आधी गम्भीरता का रूप देते हुए कहा—"तब तो मेरे भारत ही में उत्पन्न होने की और भी अधिक आवश्यकता थी। भारत ने आध्यात्मिक दृष्टिकोण से बहुत अधिक सोचा है और अति-जीवन का एक ऐसा सूक्ष्म और निगूढ़ रूप संसार के आगे रक्खा है जो सचमुच आश्चर्यजनक है। पर यथार्थ जीवन के प्रत्यक्ष और कठोर सत्य की अवज्ञा के मूल्य पर अति-जीवन को अपनाने में जो दुर्दशा देश की हुई है वह किसी से छिपी नहीं है। ऐसी हालत में मेरे समान कोई व्यक्ति यदि विशुद्ध आर्य प्रतिभा के स्थान पर अर्द्ध-मंगोलियन रूसी प्रतिभा के संस्कार लेकर देश में उत्पन्न हो तो वह देश को प्रगति की ओर ही ले जायगा, दुर्गति की ओर नहीं।" कहते हुए उनकी मुसकान एक अस्पष्ट व्यंग की झलक से और अधिक खिल उठी।

छत्तीसवां परिच्छेद

महीप कुछ कहने ही जा रहा था कि एक नौकर के साथ एक पियन ने भीतर प्रवेश किया। उसके हाथ में पियन-बुक के अलावा लिफ़ाफ़े में बन्द कुछ पत्र थे। एक पत्र उसने शारदा देवी को दिया और एक महीप को। पियन-बुक में हस्ताक्षर करने के बाद महीप आश्चर्य के साथ पत्र खोलने लगा। कौन उसे ठाकुर साहब के पते पर पत्र भेज सकता है, यह बात उसकी समझ

में नहीं आ पाती थी। क्या नीलिमा—? पर लिफ़ाफ़े पर उसके हाथ के अक्षर तो नहीं थे। इसके अलावा, उस रात की 'चरम घटना' के बाद नीलिमा से किसी पत्र की आशा करना एक हवाई कल्पना को मन में स्थान देने के सिवा और क्या हो सकता था? उस रात में नीलिमा से विदा होते समय जो अन्तिम वार्तालाप उसके और महीप के बीच हुआ था उसे महीप ने इस रूप में ग्रहण किया था कि उस 'चरम परिणति' के बाद फिर नीलिमा के और उसके बीच और कोई भी बातचीत कभी सम्भव नहीं होगी। पर उस अन्तिम मिलन को इस रूप में ग्रहण करने पर भी वह जो ठाकुर साहब के यहा अभी तक जमा हुआ था और कानपुर में 'किसी अत्यन्त आवश्यक काम' से जाने के प्रारम्भिक विचार को एक प्रकार से भूल-सा गया था, उसका क्या कारण हो सकता है? "इसका अर्थ क्या यह नहीं है कि मेरे भीतर मेरे अनजान में अभी तक यह आशा बनी हुई है कि नीलिमा से पिछली बार मेरी जो भेंट हुई थी वह सचमुच अन्तिम ही होकर नहीं रह जायगी, और फिर, कम-से-कम एक बार, उससे मेरी भेंट और होगी?" महीप ने अपने-आप से यह प्रश्न कई बार किया था। लिफ़ाफा खोलते हुए फिर वही प्रश्न एक बार बिजली की तीव्र गति से उसके मन को छू गया।

लिफाफ़ा खोलने पर उसे बड़ी निराशा हुई। उसके भीतर विजय-कुमार वर्मा नामक किसी नवयुवक के विवाह के उपलक्ष्य में प्रीति-भोज का निमन्त्रण-पत्र था। न तो विजयकुमार से और न निमत्रण-दाता से ही महीप का कोई परिचय था, और यदि परिचय होता भी तो वह सम्भवत निमत्रण में सम्मिलित होने से भरसक कतराता।

महीप ने यह अनुमान लगा लिया कि शारदा देवी के लिए भी उसी स्थान से निमन्त्रण आया होगा। पर शारदा देवी जब लिफ़ाफ़ा खोल कर पत्र पढती हुई मुस्कराने लगीं, तो महीप को कुछ कौतूहल हुआ। पत्र पढ़कर शारदा देवी ने कहा—"आपको भी शायद विजय के यहा से निमन्त्रण-पत्र मिला है?"

"जी हां।"

"तब आप इसे भी पढ़ लीजिए।" यह कहकर उन्होंने अपना पत्र महीप की ओर बढ़ा दिया। महीप पत्र लेकर पढ़ने लगा। छपे हुए निमन्त्रण-पत्र के नीचे शान्ताकुमारी नाम की किसी लड़की ने शारदा देवी को लिखा था कि वह 'कविवर महीप जी' को अवश्य अपने साथ लेती आवें, क्योंकि उसके साथ कालेज में पढ़ने वाली बहुत-सी लड़कियां और विजय के साथ युनिवर्सिटी में पढ़नेवाले बहुत-से लड़के 'कविवर महीप जी' के दर्शनों के लिए और उनकी कविता सुनने के लिए बहुत उत्सुक हैं।

जब महीप पत्र पढ़ चुका तो शारदा देवी स्निग्ध व्यंग की मुसकान आंखों में और ओठों के इर्द-गिर्द झलकाती हुई बोलीं—"कहिए कविवर! पत्र पढ़कर आपने क्या निश्चय किया?"

महीप भी मुस्करा रहा था। उसने कहा—"इन लोगों ने भी सोचा होगा कि बिना भाड़े के इतना बड़ा भाड़ इन्हें नहीं मिल सकेगा। विवाह का सगुन मनाने का यह जो नया ढंग शिक्षित वर्ग में चल पड़ा है वह वास्तव में कम-खर्च वालानशीं है।"

शारदा देवी महीप की इस बात पर खिलखिला कर हंस पड़ीं। आज पहली बार महीप ने उन्हें खिलखिलाते देखा। उसे मन-ही-मन बड़ी प्रसन्नता हुई। पर कुछ ही क्षण बाद शारदा देवी ने तनिक गम्भीर रूप धारण कर लिया और कहा—'कुछ भी हो, मैं आपसे व्यक्तिगत रूप से अनुरोध करती हूं कि आप अवश्य चलें। मैं शान्ता और विजय दोनों को अच्छी तरह जानती हूं और उनके परिवारवालों को भी। वे लोग बहुत ही भले, बड़े ही सरल-स्वभाव और श्रद्धालु प्रकृति के हैं। शान्ता ने आपके सम्बन्ध में कई बार मुझसे बातें की हैं। वह आपकी कविताओं की बहुत ही अच्छी पाठिका है, और आपके प्रति बहुत बड़ी श्रद्धा रखती है। सच पूछिए तो महात्मा गांधी के बाद वह आप ही को मानती है..."

शारदा देवी ने अन्तिम बात सीधे ढग से कहनी चाही थी, पर महीप जब अट्टहास कर उठा तो वह भी फिर एक बार मुक्त भाव से खिलखिला उठी। हास्य का यह क्रम कुछ देर तक दोनो के बीच चलता रहा। गम्भीर राजनीतिक विषय की जो गहन चर्चा बहुत देर से चल रही थी उसने जैसे सारे वातावरण को पत्थर बरसाने वाले गरजते हुए बादलो की सघन अन्धकारमयी छाया से घेर लिया था, जिससे उन दोनों की सास की स्वाभाविक गति रुद्ध-सी होने लगी थी। पर उस निमन्त्रण-पत्र ने उन बादलों को फाडकर मुक्त हास्य के लिए जैसे पथ खोल दिया था। इसलिए दोनो किसी विशेष बात पर उतना नहीं हँस रहे थे जितना बिना किसी उद्देश्य के—केवल अपने भाराक्रान्त मन को हलका करने के लिए हँस रहे थे। और आश्चर्य की बात यह थी कि दोनों ऐसा अनुभव करने लगे थे कि सकारण अथवा अकारण हास्य द्वारा वे एक-दूसरे को पहले से बहुत अधिक निकट पाने लगे है।

कुछ स्थिर होने के बाद शारदा देवी ने फिर कहा—"हँसने की बात नहीं है। शान्ता सचमुच आपकी भक्त है। आप सचमुच बडे भाग्यशाली है कि इतनी कम अवस्था मे आपके भक्तो की सख्या काफी बडी हो गई है।"

महीप फिर एक बार अट्टहास कर उठा—मुक्त रूप से। उसे स्वय अपने अट्टहास पर आश्चर्य हो रहा था, क्योकि आज के पहले कब उसने अट्टहास किया था, यह बात उसके स्मरण में ही नहीं आती थी। हासातिरेक से उसकी आखों के कोये भीग गये थे। पलकों के बालों से कोयो को पोछने के बाद उसने कुछ स्थिर होकर पूछा—"मेरे भक्तों की सख्या काफी बडी है, यह बात आपकी जानकारी मे कैसे आई है, क्या मै जान सकता हूँ? क्योकि, यदि आप विश्वास करें तो, मेरी जानकारी में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है। क्या आप दो-एक उदाहरण दे सकती है?"

"हा। आपकी सबसे कट्टर भक्त है प्रतिमा। ऐसी कट्टर कि यदि वह स्त्री न होकर पुरुष होती, तो निश्चय ही आपका पक्ष समर्थन करते

हुए उसके हाथ से कई व्यक्तियों के सिर फट चुके होते। केवल ज़बान से ही उसने आपके पक्ष मे लडते हुए बहुत से व्यक्तियों को मार्मिक रूप से घायल किया है। प्रतिमा को मैं मूर्ख भी नहीं समझती। बहुत सी बातों में वह बडी समझदार लडकी है। पर आपके पक्ष मे जब वह बातें करने लगती है तो उसके समान दुराग्रही भी फिर दूसरा मुश्किल से मिलेगा। कई बार मुझसे वह आपके सम्बन्ध में लड़ पड़ी है। उसके व्यंग भी बड़े कड़े होते हैं . . ."

महीप के मुख पर से उपहास का भाव एकदम ग़ायब हो गया था। वह अत्यन्त गम्भीरता और परम उत्सुकता से सुन रहा था। अपने प्रति प्रतिमा के पक्षपात से वह स्वयं भी किसी हद तक परिचित हो चुका था, पर उस 'दुराग्रह' का जो उत्कट स्वरूप शारदा देवी ने चित्रित किया था उसकी कोई जानकारी उसे नहीं थी। साथ ही यह जानने के लिए भी वह अधीर हो उठा था कि उसके सम्बन्ध की किस बात को लेकर प्रतिमा शारदा देवी से लड पड़ी थी। पर इस सम्बन्ध में संकोचवश कोई प्रश्न करने का साहस उसे नहीं हुआ।

अपनी आकस्मिक गम्भीरता को फिर एक बार परिहास में परिणत करने की कृत्रिम चेष्टा करते हुए महीप ने कहा—"अच्छा, मान लिया कि आपने एक अकाट्य रूप से प्रमाणित उदाहरण दे दिया। पर एक ही उदाहरण से तो काम नहीं चलेगा। आपने बताया था कि मेरे भक्तों की संख्या काफ़ी बड़ी है!"

शारदा देवी ने एक बार परीक्षक की-सी अन्तर्भेदी दृष्टि से उसकी ओर देखा, और फिर सहज भाव से कहने लगीं—"आपके दूसरे भक्त रहे हैं ठाकुर धीराजसिंह।"

धीराज का नाम लेते ही शारदा देवी का मुह तत्काल अत्यन्त गम्भीर हो आया और भीतर-ही-भीतर उन्होंने दांत से अपनी जीभ काटी—जैसे

असावधानी से उन्होंने गलत समय पर एक गलत नाम ले लिया हो। महीप के मुख पर भी क्षण भर के लिए एक घनी छाया घिर आई।

पर शारदा देवी मुह से निकली हुई बात को अधूरा छोडना नहीं चाहती थीं। क्षण-भर ठहरने के बाद वह कहने लगीं—"हा, बेचारे धीराजसिह भी आपके भक्तों में से थे। समय-समय पर आपकी भाव-धारा की कडी आलोचना करने के बावजूद भी वह आपके भक्त थे। आपकी कविताओं से उन्हे अपने जीवन में बडी महत्त्वपूर्ण प्रेरणाए मिली थीं—बहस में भले ही वह उन प्रेरणाओं का विरोध करते रहे हों। उन प्रेरणाओं ने उनके जीवन में भयकर द्वन्द्व मचा दिये थे। वास्तविक जीवन के कडवे अनुभवों के फल-स्वरूप वह उन प्रेरणाओं से छुटकारा पाना चाहते थे, पर चाहने पर भी उनसे मुक्त नहीं हो पाते थे।"

धीराज की चर्चा से दोनों एक बार गहन रूप से विचारमग्न हो गये। कुछ क्षण के लिए कमरे में मृत्यु-मौन सन्नाटा छा गया—जैसे आधी रात में आधे गाडे हुए मुर्दे अचानक कब्रों की मिट्टी इधर-उधर छितराकर उठ खडे हुए हों। महीप सोचने लगा कि यदि ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह ने वास्तव में धीराज की हत्या की हो, जैसा कि शारदा देवी का अनुमान है (और शारदा देवी का अनुमान ठाकुर साहब के सम्बन्ध में उपेक्षणीय नहीं हो सकता, इतना महीप जान चुका था) तो इस हत्याकाड के सम्बन्ध में शिष्टता-वश चुप्पी साध लेने से काम न चलेगा। पर यदि वह चुप्पी न साधे तो क्या अपनी प्रकृति के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए उसे घोर मानसिक सघर्ष का सामना नहीं करना पडेगा जिससे वह बराबर कतराने की चेष्टा करता रहा है? और, विद्रोह करके भी वह कर ही क्या सकेगा? सहसा उसके मन में इस विचार से आतक छा गया कि निकट भविष्य में उसके तत्कालीन जड जीवन में भूकम्प का आना अनिवार्य है। उसे अपने चारो ओर ऐसे उपकरण जुटते हुए दिखाई दे रहे थे जो आने वाले

भूकम्प की पूर्व सूचना उसे दे रहे थे। उसके न चाहने और कतराने पर भी ये उपकरण जुट रहे थे, जो उसे भाग्य की एक पूर्व-कल्पित निश्चित योजना-सी लगने लगी थी। जब से वह ठाकुर साहब के यहा आया था तब से निपट जड-जीवन बिताने के कारण वह उस जडता का आदी इस हद तक हो गया था कि किसी तूफानी—बल्कि साधारण—सक्रियता की कल्पना से भी उचकने लगा था। आज पहली बार उसे अपने मन की इस शोचनीय दशा का ज्ञान हुआ और वह सिहर उठा। एक ओर उस जड़ता को त्यागने की प्रवृत्ति उसे नहीं होती थी, दूसरी ओर अपनी उस जडता के बोझ से वह अत्यन्त भयभीत भी हो उठा।

शारदा देवी के जीवन के अनुभवो का परिचय प्राप्त होने पर वह इधर कुछ दिनो से अपने को एक आश्चर्यजनक और रहस्यमय लोक मे पहुँचा हुआ पाने लगा था और उसकी उलझन में पडकर वह धीराज की बात एकदम भूल ही गया था। इसलिए आज फिर जब शारदा देवी ने उसकी चर्चा चलाई तो वह अत्यन्त विचलित हो उठा। उसे यह बोध होने लगा कि नीलिमा, धीराज (की मृतात्मा) और शारदा देवी—ये तीन व्यक्ति तीन तरफ़ से उस पर अकुश चला कर उसके जड़ और निष्क्रिय प्राणों को न जाने भविष्य की किस अज्ञात सक्रियता की ओर ढकेले जा रहे है जिससे उसके मन की वर्तमान सुखालस्यमयी अनुभूति में बाधा प्राप्त होने से उसे अत्यन्त कष्ट हो रहा है।

वह चुप रहा। केवल जिज्ञासु-दृष्टि से शारदा देवी की ओर देखता रहा। शारदा देवी ने एक विशेष अर्थ-भरी दृष्टि से महीप की ओर देखते हुए कहा—"नीलिमा के सम्बन्ध मे मै निश्चित रूप से नहीं कह सकती कि वह आपकी भक्त है या नहीं। जहा तक मै अनुमान लगा पाई हूँ, आपकी बहुत सी कविताए उसे प्रिय अवश्य रही है। पर आपकी व्यावहारिक बुद्धि पर उसे पूर्ण विश्वास है, ऐसा मै नहीं कह सकती। बल्कि मुझे इस

बात पर सन्देह है—और आश्चर्य भी—कि बहुत से सामाजिक और सासारिक प्रश्नों पर ठाकुर साहब की विवेचना आपकी विवेचना की अपेक्षा उसे अधिक प्रभावित करती है!"

नीलिमा की चर्चा चलाते हुए शारदा देवी के मुख पर एक व्यग पी हुई-सी विचित्र और अपरिस्फुट मुसकान खेलने लगी थी।

भीतर-ही-भीतर एक असहनीय मार्मिक पीडा से कराहने पर भी महीप ने बाहर भरसक उस पीडा का आभास प्रकट नहीं होने दिया, और नीलिमा की चर्चा को परिहास में परिणत करने की चेष्टा करता हुआ वह बोला—"तब तो नीलिमा निश्चय ही मेरी भक्त नहीं है। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप केवल मेरे भक्तो का ही पता नहीं रखतीं, बल्कि उन लोगों का भी पता आपको है, जो मुझे मूर्ख समझते है और मुझसे घृणा करते है। तो आपका यह विश्वास है कि नीलिमा ठाकुर साहब के विचारों से प्रभावित है?"

अपने अन्तिम प्रश्न से महीप ने बात का सिलसिला ही जैसे बदल दिया। शारदा देवी ने फिर एक बार पहले ही की तरह एक विशेष अर्थ-भरी तीखी दृष्टि से उसकी ओर देखा और कहा—"प्रभावित अवश्य है, पर ठीक किस हद तक और किस रूप में यह मै नहीं कह सकती। क्योकि, जैसा कि मै कह चुकी हूँ, आपकी कविताए उसे बहुत पसन्द है, और स्वभावत आपकी कविताओं का काफी महत्त्वपूर्ण प्रभाव उसके जीवन के दृष्टिकोण पर, उसके भाव-जगत् पर पडा होगा। पर यह होने पर भी उसकी व्यावहारिक बुद्धि ठाकुर साहब की ओर ही अधिक झुकी हुई है, ऐसा मुझे लगता है। इसके अलावा, ठाकुर साहब के व्यक्तित्व में स्त्रियों के लिए एक विशेष आकर्षण है। उस आकर्षण का कारण क्या है, यह मै नहीं जानती और न शायद नीलिमा ही बता सकती है। पर इतना निश्चित है कि जो भूल ठाकुर साहब को समझने में मैने आरम्भ में की थी वही अब नीलिमा भी करने जा रही है।"

"कैसी भूल ?"—महीप ने अनजान-सा बनकर पूछा।

"यह धारणा कि ठाकुर साहब से विवाह करने में ही उसका कल्याण है।"

"तब क्या ठाकुर साहब से नीलिमा का विवाह सचमुच होने जा रहा है ?"

"इसमें भी आपके मन में क्या अभी तक कोई सन्देह बना हुआ है ? विवाह इसी महीने होने जा रहा है। सब बातें एकदम पक्की हो चुकी हैं।"

भीतर से उठनेवाली हूक को बरबस दबाने का प्रयत्न करते हुए महीप ने कहा—"यह भी तो हो सकता है कि जो कारण आपकी दीदी, समिधा, आप और—और—शायद रूपा के सम्बन्ध में भी लागू हुआ था, वही नीलिमा के सम्बन्ध में . . ."

शारदा देवी ने एक तीखे और मार्मिक व्यंग के साथ—जिसमें महीप को घृणा और प्रतिहिंसा की ज्वाला-सी झलकती हुई दिखाई दी—मुस्कराकर बीच ही में उसकी बात काटते हुए कहा—"तब आप न तो नीलिमा को पहचान पाये हैं, न ठाकुर साहब को। नीलिमा के साथ ठाकुर साहब की कोई चालबाजी नहीं चल सकती, यह बात ठाकुर साहब अच्छी तरह जानते हैं। नीलिमा ऐसी मां की देख-रेख में पली है, जो जीवन में छोटी-से-छोटी बात के सम्बन्ध में सदा सजग और चौकन्नी रही है। यही शिक्षा बहुत छोटी अवस्था से नीलिमा ने भी पाई है। इसीलिए मुझे आश्चर्य होता है कि वह ठाकुर साहब से विवाह के लिए क्यों राजी हुई है। शायद वह जानती है कि ठाकुर साहब कैसे ही कुटिल और कुचक्री क्यों न हों, वह विवाह के बाद भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे—इस कारण कि ठाकुर साहब की चोटी पकड़ कर उन्हें इच्छानुसार घुमाने की अपनी योग्यता के सम्बन्ध में उसमें पूरा आत्म-विश्वास है। यह दूसरी बात है कि उसका यह आत्म-विश्वास उसे धोखा भी दे सकता है। जो भी हो, इतना निश्चित है कि ठाकुर साहब चाहने पर भी इस विवाह को टाल नहीं सकेंगे—जब तक स्वयं नीलिमा न कतराये। नीलिमा चालाक लड़की

है—बड़ी ही चालाक। उसने स्वयं अपने को न फँसाकर ठाकुर साहब को ऐसे बन्धनों में फँसा रक्खा है कि वह चाहने पर भी बच नहीं सकते, हालांकि ठाकुर साहब इस मामले में बचना भी नहीं चाहते—क्योंकि इस विवाह के लिए नीलिमा की अपेक्षा वही अधिक उत्सुक दीख पड़ते हैं।"

"तब क्या वास्तव में नीलिमा इस विवाह के लिए विशेष उत्सुक नहीं है ?"

"मैं तो समझती हूँ कि नहीं है। किन्तु उत्सुक न होने पर भी वह इस विवाह को आवश्यक और अनिवार्य समझती है।"

"क्यों ? अनिवार्य क्यों समझती है ?"

"इसके बहुत-से कारण हैं, जिनमें दो को मैं प्रधान समझती हूँ। एक तो यह कि ठाकुर साहब के समान सम्पन्न और सामाजिक दृष्टि से प्रभावशाली व्यक्ति को पति रूप में पाकर नीलिमा के समान फैशनेबुल समाज में, किन्तु अपेक्षाकृत असम्पन्न घर में, पली-पुसी लड़की अपने को सुरक्षित समझ सकती है। दूसरा कारण यह है कि उसकी मां इस विवाह के पीछे जैसे अपने प्राणों की बाजी लगाये बैठी है, और नीलिमा अपनी मां के स्नेह-बन्धन में इस हद तक बँधी हुई है कि उनके लिए वह सब कुछ कर सकती है—अनिच्छित पुरुष से विवाह कर सकती है और इच्छित पुरुष को बरबाद कर सकती है।"

"लेकिन यहां पर तो अनिच्छित और इच्छित पुरुष का प्रश्न ही नहीं उठता। क्योंकि आपने जो कारण बताये हैं उनसे यह स्पष्ट है कि नीलिमा इच्छित पुरुष से ही विवाह करने जा रही है—अनिच्छित से नहीं। आपने बताया है कि नीलिमा की व्यावहारिक बुद्धि ठाकुर साहब की ओर अधिक झुकी है और ठाकुर साहब के व्यक्तित्व में स्त्रियों के लिए—अर्थात् नीलिमा के लिए भी—एक विशेष आकर्षण है। इन कारणों से यह स्पष्ट है कि जिस व्यक्ति से वह विवाह करने जा रही है उसे उसका मन हर तरह से चाहता है।"

"नहीं, इन कारणों से यह बात कतई स्पष्ट नहीं है,"—एक भेद-भरी अभिव्यक्ति मुख पर झलकाते हुए शारदा देवी ने कहा—"मुझे पूरा विश्वास है कि इस विवाह को लेकर नीलिमा के भीतर एक ऐसा द्वन्द्व मच रहा होगा जो उसके मन को अत्यन्त निर्ममता से झकझोर कर उसे एक पल के लिए भी चैन नहीं लेने देता होगा। उसके स्वभाव से मैं बहुत-कुछ परिचित हूँ। उसकी मूल प्रकृति यह बात कभी सहन नहीं कर सकती कि एक ऐसे व्यक्ति के आकर्षण का प्रतिरोध करने में वह असमर्थ सिद्ध हुई है जिसका जीवन कभी किसी महान् आदर्श की ओर उन्मुख नहीं रहा है। उच्च मध्य-वर्ग के फैशनेबुल समाज की दूसरी लड़कियों से नीलिमा में यह अन्तर है कि सामाजिक सुख-साधनों के प्रलोभनों के बहाव में बहते हुए भी जीवन के किसी महान् (किन्तु अस्पष्ट) लक्ष्य की ओर पग बढ़ाने के लिए उसका अन्तर्मन सदा उत्सुक रहा है। वह स्वयं नहीं जानती कि वह महान् लक्ष्य या आदर्श क्या है या क्या होना चाहिए, पर इतना अनुभव वह निश्चित रूप से करती है कि जीवित से लगनेवाले जिन गुड्डों और गुड़ियों के समाज के बीच में वह रहती है, उनके रात-दिन के ढोंग-भरे जीवन की कृत्रिमता के परे जीवन की महान् वास्तविकता कहीं-न-कहीं अवश्य वर्तमान है। उस अदृश्य वास्तविकता की अस्पष्ट झाँकी सब समय ज्ञात में या अज्ञात में उसके सामने रहती है, और कृत्रिम दिनचर्या में गले तक डूबे रहने पर भी वह एक क्षण के लिए भी उस कुहरे से ढके ध्रुवतारा को नहीं भूल पाती। यही कारण है कि उसकी अन्तरात्मा ठाकुर साहब से विवाह के लिए कतई उत्सुक नहीं है। वह जानती है कि जिस विलासी समाज के जीवन की जड़ता ने उसे गले तक डुबा रक्खा है, ठाकुर साहब से विवाह होने पर वह उसे पूर्णतः—नाक, कान और आँखों सहित—डुबा देगी। इस आशंका ने उसकी भीतरी चेतना को निश्चय ही आतंकित कर रक्खा होगा। एक ओर विलासी समाज की सम्मोहकता से अपने को छुड़ाने का मनोबल उसमें नहीं है, दूसरी ओर जीवन के किसी महान् अज्ञात आदर्श के लिए उसके

प्राण छटपटाते रहते है। इन्हीं कारणों से एक प्राणघाती असनजस के झूले में उसका हृदय और उसकी बुद्धि सब समय झूलते रहते है । ऐसा कोई पुरुष उसे नहीं मिल पाता जो उसकी इन दोनो प्रवृत्तियों में सामजस्य लाने मे सहायक सिद्ध हो। ठाकुर साहब उसके मन की एक प्रवृत्ति की चरितार्थता में सहायक सिद्ध हो सकते है और आप—आप शायद उसकी दूसरी प्रवृत्ति को किसी हद तक सन्तुष्ट कर सकें। पर आप दोनों में से एक को स्वीकार करना उसके लिए ऐसा है कि या तो वह कटा हुआ सिर ग्रहण करे या कटा हुआ धड। दोनों को सयुक्त और सजीव रूप में पाना उसके लिए असम्भव हो गया है। जिस समाज में वह रहती है उसमें टिके रहने के लिए चूकि धड के विना काम नहीं चल सकता, इसलिए वह विवश होकर अन्त मे धड को स्वीकार करने के लिए राजी हो गई—ठाकुर साहब वही धड है।"

महीप बरबस निकलती हुई लम्बी सास को बलपूर्वक दबाने की चेष्टा करता हुआ कुछ क्षण तक चुप हो रहा। उसके बाद सहसा उसने जैसे किसी एक अज्ञात शत्रु से लडने के लिए साहस बटोर लिया और बोला—"तब क्या आपके मन में नोलिमा के प्रति किसी बात के लिए कोई शिकायत नहीं है ?"

"नहीं!" अत्यन्त गम्भीर मुद्रा बनाकर दृढ स्वर मे शारदा देवी ने कहा—"इसमे सन्देह नहीं कि बीच-बीच मे मेरे मन में नीलिमा को कोसने की प्रवृत्ति जग उठी है, पर मेरा वह मनोभाव अधिक समय के लिए कभी नहीं ठहर पाया। दूसरे ही क्षण नीलिमा के प्रति मेरा-आक्रोश दया की भावना में बदल जाता रहा है। वह कैसी हो समझदार लडकी क्यो न हो, उसे उस व्यक्ति के स्वभाव और चरित्र के आलजाल से अच्छी तरह परिचित होने के वे सुयोग या कुयोग प्राप्त नहीं हुए है, जो मुझे हुए है। इसके अलावा, जैसा कि मै कह चुकी हूँ, उसकी अपनी कुछ निजी और कुछ समाजगत विवशताए है। मेरा सारा आक्रोश तो उस धूर्त के प्रति है जो

अपने रहस्य-जटिल कुचक्रों का जाल सब समय अपने चारों ओर फैलाये रहता है, और जो गिरगिट की तरह रंग पर रंग बदलने की कला में अपना सानी नहीं रखता।"

महीप फिर एक बार मूर्खों की तरह आंखें फाड़कर चुपचाप शारदा देवी की ओर देखता रह गया। बहुत-से प्रश्न करने के लिए उसका मन तिलमिला रहा था, पर एक भी प्रश्न की रूप-रेखा उसके आगे स्पष्ट नहीं हो पाती थी। शारदा देवी सहसा उठ खड़ी हुई और कमरे से बाहर जाती हुई बोली—"शाम को शान्ता के यहां आपको हर हालत में चलना होगा—तैयार रहें।"

शारदा देवी के चले जाने पर वह कुछ देर तक कुर्सी पर जड़ और निश्चल अवस्था में बैठा रहा।

तीसरे पहर शारदा देवी ने फिर एक बार महीप को याद दिलाई कि उसे शान्ताकुमारी के यहां चलना होगा। महीप ने बहुत विरोध किया, पर शारदा देवी जैसे उसे ले चलने के लिए कसम खाये बैठी थीं। लाचार होकर अन्त में महीप को राजी होना ही पड़ा।

सन्ध्या होने पर वह नहा-धोकर, सज-सँवरकर तैयार हुआ। आज उसने पहली बार अपने बनाव पर विशेष ध्यान दिया। आज उसके युवक-मन की सहज प्रवृत्ति क्यों इस क़दर सजग हो उठी थी इसका कारण वह स्वयं नहीं जानता था। धोबी के यहां से ताज़े धुले जो अच्छे-से-अच्छे कपड़े उसके पास थे—गाढ़े का एक अच्छी तरह सिला हुआ कुरता और हरे किनारे की खद्दर की धोती—उन्हें पहनकर, बालों में कंघी करने के सम्बन्ध में भी उसने विशेष ध्यान दिया और अपने गोरे और मखमल की तरह मुलायम 'क्लीन शेव्ड' गालों पर दो-चार बार हाथ भी फेरे। उसके बाद अन्तिम बार दीवार पर टंगे गोलाकार शीशे में अपना मुंह देखकर वह स्वयं खूब हँसा। क्यों हँसा, इसका भी कारण वह नहीं जान सका।

वह हँस ही रहा था कि पीछे से शारदा देवी कमरे में अचानक आ पहुँचीं। उनके अत्यन्त निकट पहुँचने पर महीप ने उन्हें देखा। शारदा देवी दबे पांव आई थीं। म्हीप का शीशे में अपना मुह देखकर हँसना उन्होंने देख लिया था, और शायद उसकी उस अर्द्ध-स्वप्न की-सी एकान्त मानसिक अवस्था में विघ्न डालना उन्होंने उचित नहीं समझा था। अथवा यह भी सम्भव है कि वह महीप को अचानक आश्चर्य में डालने के लिए नि शब्द पगों से आई हों। कुछ भी हो, महीप ने जब पीछे लौटकर अचानक शारदा देवी को देखा तो वह ठिठक गया। प्रथम क्षण में उसे ऐसा लगा जैसे वह चोरी करता हुआ पकड लिया गया हो। पर शारदा देवी जब गम्भीर बनने की चेष्टा करने पर भी सहसा 'फिक्क' करके हँस पडीं तो उस हँसी का छुतहा प्रभाव महीप पर भी पडा और वह भी मुक्त भाव से अट्टहास कर उठा। कुछ देर तक दोनों, बिना कुछ बोले, अपनी-अपनी हँसी का एक दूसरे को बिना कोई कारण बताये, हँसते रहे। शारदा देवी की आखों से बहुत अधिक हँसने के कारण आसू तक निकल गये थे।

"बहुत सुन्दर—वास्तव में वह कभी बहुत ही सुन्दर दिखाई देती रही होंगी,"—महीप मन-ही-मन कहने लगा—"और इस समय भी कतई कुरूप नहीं दिखाई दे रही है।" वास्तव में शारदा देवी के चीमड मुख की उस समय की अभिव्यक्ति उसे बहुत ही स्निग्ध और प्रिय लग रही थी।

"आज मैंने जाना कि आप सचमुच कवि है और युवक है,"—आखों को सफाई से पोंछने के बाद शारदा देवी ने कहा।

"तो आज तक आप क्या यह समझती थीं कि मै अकवि हूँ और वृद्ध हूँ?"

"नहीं, मै समझती थी कि आप केवल किताबी कवि है और बालक है।"

"अर्थात् बाल-कवि हूँ?"

"करीब-करीब यही समझिए। मै आपको उपेक्षित बालक समझती थी

जिसको न स्वय अपने सजाव-सिंगार का कोई ध्यान है, न जिसे कोई दूसरा इस सम्बन्ध में सुझानेवाला है। आज आप सचमुच युवक मालूम पडते है और छैला भी।"

"वाका छैला?"

"वाका-वाका मै कुछ नहीं जानती। आपको तो वाल की खाल निकालने और वात में वतगड खोज निकालने में एक सुख मिलता है—एक निराला सुख जिसे मै अभी तक ठीक समझ नही पाई। मुझे तो कभी-कभी ऐसा लगता है कि आपको वजाय कवि होने के प्रेस-रिपोर्टर होना चाहिए था। प्रकृति की यह खामखयाली ही थी कि उसने आपके भीतर कविता के वीज भर दिए, वर्ना—"

"वर्ना क्या?"

"वर्ना आप एक अच्छे खासे प्रेस-रिपोर्टर या खुफिया विभाग के कर्मचारी हो सकते थे।"

महीप फिर एक वार खुलकर अट्टहास कर उठा। वह स्वय नहीं जानता था कि आज उसमें खुलकर हँसने की इतनी अधिक शक्ति कहा से आ गई, और जरा-जरा-सी वात पर उसके भीतर फुरेरिया क्यों उठ रही है।

कुछ सँभलने के वाद उसने पूछा—"क्यों, आपके मन में यह धारणा कैसे जम गई कि मै एक अच्छा-खासा प्रेस-रिपोर्टर या जासूस हो सकता हूँ?"

"आपकी वातो के ढग से। तीन-चार दिन के भीतर मैने आपसे न जाने कितने विषयो पर कितनी वाते कही होगी—स्वय मुझे याद नहीं रह गया कि मैने क्या-क्या कहा—पर आपने किसी भी विषय पर अपना कोई निजी मत प्रकट नही किया। केवल मेरे भीतर को अधिक-से-अधिक वाते वाहर निकलवाने के उद्देश्य से वीच-वीच मे आप परोक्ष रूप में कोई वात कह देते थे, जो आपका निजी मत न होकर केवल प्रश्न के ही रूप में मेरे सामने आता था। आप सचमुच जितने छोटे हैं उतने ही"—

"खोटे हैं!"—शारदा देवी की वात स्वय पूरा करते हुए महीप ने कहा, और वह फिर एक बार हँस पडा।

"चलिए, वहुत हो चुका। अब देर न कीजिए, समय हो चुका है।"

सैंतीसवां परिच्छेद

शान्ता के यहा पहुँचने पर महीप ने देखा कि वहा सज-धजकर आये हुए युवकों और युवतियों की भरमार थी। बाहर खुले स्थान पर बैठने का प्रबन्ध किया गया था। कुछ लोग बैठे हुए थे, कुछ व्यस्त भाव से इधर-उधर चक्कर लगा रहे थे और कुछ खडे-खडे आपस में हास्यालाप कर रहे थे।

शारदा देवी को देखकर एक गेहुआ रग की हँसमुख नौजवान लडकी तेज कदम रखती हुई चली आई। स्निग्ध भाव मुख पर झलकाती हुई उनसे मिली। पारस्परिक अभिवादन के वाद शारदा देवी ने महीप से उस लडकी का परिचय कराया। महीप को मालूम हुआ कि वही शान्ता है। महीप से परिचित होने पर शान्ता के मुख पर एक सकोच-भरी प्रसन्नता झलक उठी। उसने महीप की कविताए पढी थीं, पर उसे कभी देखा नहीं था। उसने कहा—"आपने हम लोगो के यहां पधारकर वडी कृपा की। मै इसके लिए आपको धन्यवाद—"

"नहीं, तुम्हें इसके लिए मुझे धन्यवाद देना चाहिए", बीच में ही टोकते हुए दुष्टतापूर्ण मुसकान के साथ शारदा देवी ने कहा—"महीप जो किसी तरह आने को राजी नहीं होते थे। मै उन्हें एक प्रकार से वलपूर्वक पकड लाई हूँ।"

शान्ता की मुसकान और अधिक खिल उठी। उसने एक वार सरसरी दृष्टि से सिर से लेकर पावो तक महीप को देखा। उसे जैसे सचमुच इस वात पर विश्वास होने लगा कि उस 'वच्चा कवि' को वलपूर्वक पकड लाना शारदा देवी के लिए असम्भव नहीं है। वास्तव मे महीप को देखकर शान्ता

को निराशा हुई थी। वह उसे एक परिपूर्ण युवक समझे बैठी थी, जब कि वह एक 'बच्चा' साबित हुआ। फिर भी वह एक सुन्दर बच्चा था, जिसे खिलौने की तरह खेलाने का सुख प्राप्त किया जा सकता है। यह धारणा मन में लेकर शान्ता दोनों से बैठने का अनुरोध करके चली गई।

महीप जब एक मेज के पास शारदा देवी के साथ बैठ गया, तब उसने देखा, शान्ता दो-चार लड़कियों के बीच में जाकर वहां से महीप की ओर इंगितपूर्वक देखने लगी। सम्भवतः वह उन लड़कियों को बता रही थी कि वही 'कविवर महीप' हैं। लड़कियां भी कौतूहलवश महीप की ओर देखने लगीं। एक लड़की, जो उन सबसे अधिक स्वस्थ थी, महीप को देखकर खिल-खिलाकर हँस पड़ी। महीप ने उस ढीठ लड़की की 'बेहयाई' से अपने को अपमानित अनुभव किया। पर उस अपमान का बदला चुकाने का कोई उपाय न देखकर वह चुपचाप मन मारकर रह गया।

निमन्त्रित युवकों और युवतियों की संख्या बढ़ती चली गई। अधेड़ अथवा वृद्ध स्त्री-पुरुष वहां नहीं के बराबर थे। सभी लोग सुन्दर और मूल्यवान् महीन कपड़े पहने थे। विशेष कर युवतियों की रंग-बिरंगी साड़ियां देखकर महीप दंग था। उसे यह सोचकर आश्चर्य हो रहा था कि कपड़े के अकाल के इस ज़माने में ऐसे सुन्दर कपड़े ये लोग पा कहां जाते हैं, जब कि लज्जा ढकने के लिए भी वस्त्र न मिलने के कारण कई युवतियों के आत्म-हत्या करने के समाचार संवादपत्रों में छप चुके थे। उन रंग-बिरंगी साड़ियों को हवा में फहराते देखकर महीप को ऐसा लग रहा था, जैसे उसके चारों ओर ऐसी आग लगी हुई है जिसकी दुर्निवार लपटों ने सब तरफ से सब कुछ ढक लिया है। वह सर्वग्रासी आग महीप को जितनी ही भयावनी लग रही थी उतनी ही आकर्षक भी। उसे याद आया कि एक बार जब वह अपनी बिरादरी के किसी व्यक्ति की मृत्यु पर शवयात्रा के साथ रात के समय श्मशान गया हुआ था, तब वहां चिता जलने पर प्रायः निर्धूम आग की लपटों

ने एक ऐसा सम्मोहक दृश्य उसके आगे खड़ा कर दिया था जिससे वह अपनी आंखें फिरा नहीं पाता था। लाश की चर्बी के जलने से चटखने का शब्द हो रहा था, चिनगारियां आतिशबाजी की तरह ऊपर को छूट रही थीं और लपटें चारों ओर के अन्धकारमय वातावरण के बीच में अतृप्त दैत्य-बालाओं की-सी लपलपाती हुई जीभों से शून्य में से सब कुछ शोषकर स्वाहा करने को विकल हो रही थीं। उन दैत्यबालाओं की अतृप्त वासनाओं का पूर्ण प्रज्वलित, रक्त प्रकाश एक विशेष सीमा तक फैलकर, उस सीमा के बाहर के समस्त विश्व को लुप्त किए हुए था। विनाश का वैसा सम्मोहक रूप महीप ने उसके पहले अपने जीवन में कभी नहीं देखा था। आज के समारोह ने न जाने किस रहस्यमय कारण से, उसी भूले हुए दृश्य को उसके आगे फिर सजीव कर दिया।

उस सम्मोहन के बीच में भी उसके अन्तर्वासी की आंखें सचेत थीं और एक विशेष ज्वाला को खोज रही थीं। यद्यपि उसे इस बात का कुछ भी पता नहीं था कि शान्ता से नीलिमा का परिचय है या नहीं, और यदि है तो किस हद तक है, तथापि उसके मन में यह आशा न जाने क्यों बंध गई थी कि नीलिमा अवश्य ही उस भोज में सम्मिलित होगी। प्रतिक्षण उसकी आंखें केवल उसी को खोज रही थीं—कभी जानकर और कभी अन-जान में।

सहसा चकित होकर उसने देखा कि एक प्रज्वलित प्रकाशमय टूटता हुआ तारा बड़ी तेजी से छूटकर शान्ता से आकर लिपट गया। क्षणिक भ्रान्ति की अवस्था में उसे आश्चर्य हुआ कि शान्ता की साड़ी जल नहीं उठी। पर तत्काल वह संभल गया और यह सोचकर उसे स्वयं अपने ऊपर ग्लानि हुई कि उसका मन आज-कल इस कदर भ्रमशील, दुर्बल और चंचल हो उठा है। वह ज्योतिस्फुलिंग नीलिमा ही थी, सन्देह नहीं, पर उसे दूर से देखते ही उसका मन जो इस कदर विचलित, बल्कि भ्रान्त, हो उठा, इसका

अर्थ क्या यह नहीं है कि अपने मन पर से उसका नियन्त्रण दिन-पर-दिन क्षीण-से-क्षीणतर होता चला जा रहा है और मिरगी के रोगी की-सी एक मोहाच्छन्न अवस्था धीरे-धीरे उसके अनजान में उसके मन और मस्तिष्क को घेरती चली जा रही है? आज पहली बार उसे यह अनुभव हुआ कि वह स्वाभाविक दुर्वलता का शिकार बनता चला जा रहा है और यदि वह अभी से न सँभल गया तो बाद में कोई डाक्टर भी उसका इलाज करने में अपने को असमर्थ अनुभव करेगा।

पर इस तरह की विचार-धारा ने उसके मानसिक उद्वेग को शान्त करने में कोई सहायता नहीं पहुँचाई। नीलिमा ने अभी तक उसे नहीं देखा था और वह हँस-हँसकर अपने प्रत्येक अंग को प्राय हिलाती हुई शान्ता से बातें कर रही थी। शान्ता भी मुक्त भाव से मुस्करा रही थी। सम्भवत: दोनों आज बहुत दिनों बाद मिले थे। प्रतिमा और श्रीमती स्वप्ना महीप को कहीं नहीं दिखाई दीं।

महीप फिर कुछ समय के लिए योगनिद्रा की-सी अवस्था में विचित्र, और प्रकट रूप से अर्थहीन, स्वप्नों के भँवर में डूबने-उतराने लगा था। सहसा एक तोप के गोले के-से विस्फोट से वह जाग पड़ा। शारदा देवी कह रही थीं—"बुलाऊँ नीलिमा को?" और अपनी तत्कालीन अर्द्धचेतन अवस्था में महीप का उनके बोलने का शब्द तोप की आवाज की तरह लगा। चौंककर उसने शारदा देवी की ओर देखा। उनके मुख पर एक विचित्र अर्थ-भरी मुसकान खेल रही थी।

महीप ने घबराहट के स्वर में कहा—"नहीं, नहीं, उन्हें यहां बुलाने की कोई...आप क्यों उन्हें बुलाना चाहती हैं? यहां उन्हें बुलाना उचित न होगा।"

"क्यों?" अत्यन्त धीरता के साथ शारदा देवी ने कहा—"बहुत दिनों से उससे भेंट नहीं हुई है। उससे मिलकर दो-चार बातें करना चाहती हूँ। आप क्यों आपत्ति करते हैं? आप चुपचाप बैठे रहिए।" यह कहकर शारदा

देवी ने महीप को और अधिक आपत्ति के लिए कोई अवसर दिये बिना ही पास खडी एक प्राय १८ वर्ष की लडकी से नीलिमा को बुला लाने के लिए कहा। लडकी तत्काल सीधे नीलिमा के पास जा पहुँची। महीप ने देखा कि लड़की के पहुँचते ही नीलिमा कौतूहल-भरी दृष्टि से उन दोनों की ओर देखने लगी। महीप मन-ही-मन यह प्रश्न कर रहा था कि क्या नीलिमा उसे देखकर भी शारदा देवी के पास आने को राजी होगी? शारदा देवी का प्रस्ताव वास्तव में उसे अवसर के अत्यन्त प्रतिकूल जान पड़ा जो सभवत. उसे—और नीलिमा को भी—जान-बूझकर अशोभन परिस्थिति मे डालने के लिए किया गया था। पर क्यों? शारदा देवी को इसमें क्या सुख मिल सकता है? यह अन्तिम प्रश्न करते हुए उसने एक बार तीखी दृष्टि से शारदा देवी की ओर देखा—शायद उनके मुख के भाव से अपने मन के प्रश्न का उत्तर पाने की बाल-आशा से। पर शारदा देवी के मुख पर केवल एक शान्त किन्तु भेद-भरी मुसकान खेल रही थी, जिससे किसी प्रकार का भी निश्चित अनुमान लगा सकना प्राय असम्भव था।

नीलिमा शायद क्षण-भर के लिए झिझकी, या शायद नहीं झिझकी हो, और वह केवल महीप के शकित मन का भ्रम ही रहा हो, जो भी हो, सन्देश पहुँचने के कुछ ही क्षण बाद वह धीरे-धीरे उस ओर के लिए आगे बढी जिधर शारदा देवी और महीप बैठे थे। प्रारम्भ में उसकी मुख-मुद्रा कुछ गम्भीर थी, पर शारदा देवी के निकट पहुँचने पर वह गम्भीरता सकोच-भरी मुसकान में बदल गई। शारदा देवी स्निग्ध भाव से मुस्कराती हुई कुछ सँभलकर बैठ गईं, जैसे उसके लिए जगह खाली करना चाहती हो। महीप अत्यन्त गुरु-गम्भीर मुद्रा बनाये नीलिमा की ओर देखता हुआ चुपचाप काठ के पुतले की तरह बैठा रहा—न तनिक हिला न डुला।

नीलिमा ने सकुचाते हुए शारदा देवी से हाथ जोडकर नमस्कार कहा। महीप की ओर उसने देखकर भी जैसे नहीं देखा।

शारदा देवी ने अत्यन्त स्निग्ध स्वर में धीरे से कहा—"आओ, बैठो।"

नीलिमा तपाक से उनकी बगल में बैठ गई।

"प्रतिमा और मां कहा है?" शारदा देवी ने पूछा।

"प्रतिमा तो एक दूसरी जगह निमन्त्रण में गई है, मा घर ही पर है। उन्हें निमन्त्रण नही मिला।" सकोच-भरे क्षीण स्वर में नीलिमा ने कहा।

नीलिमा अचानक नववधू की तरह सकोच-शील बन गई थी। "पर साडी का पल्ला उसकी गर्दन के नीचे लटक रहा है," महीप ने मन-ही-मन कहा। उसे यह सोचकर स्वय आश्चर्य होने लगा कि नीलिमा की सकोचशीलता का ध्यान आते ही साडी के पल्ले की बात पर उसका ध्यान क्यो गया। नव-वधू की कल्पना के साथ घूघट का जो सस्कार भारतीय स्त्री-पुरुषों के मन पर सदियों से जमा हुआ है, उससे उसका भी अन्तर्मन अभी तक मुक्त नहीं हो पाया, यह सोचकर अपने मन की नादानी पर उसे स्वय, भीतर ही भीतर, हँसी आने लगी।

"ठाकुर साहब का कोई पत्र आया?"

यह अप्रत्याशित प्रश्न शारदा देवी ने ऐसे सहज भाव से किया कि नीलिमा कुछ क्षण के लिए देखती ही रह गई। महीप भी शारदा देवी के आत्मविश्वासपूर्ण सहज साहस को देखकर चकित रह गया।

नीलिमा ने तनिक मुह बिचकाकर नाखून से मेज पर बिछा हुआ कपडा खुरचने की चेष्टा करते हुए कहा—"मुझे कुछ पता नही। मा के पास शायद आया है। दुर्घटना का समाचार तो आपको मिल ही चुका होगा?"

"कौन-सी दुर्घटना?"

"ठाकुर धीराजसिंह की मृत्यु—सचमुच यह बडी ही शोचनीय दुर्घटना है।" सहज भाव से शारदा देवी की ओर देखते हुए नीलिमा ने कहा। धीराज की चर्चा चलाकर वह अपना क्षणिक संकोच भाड चुकी थी।

धीराज की चर्चा से शारदा देवी का मुख अत्यन्त गम्भीर हो आया। उनका उज्ज्वल गोरा मुख सहसा जैसे सघन बादलों की कालिमा से ढक गया। अत्यन्त उदास स्वर में उन्होंने कहा—"हा, ठाकुर साहब का तार मिला था। पर उसके बाद उनका कोई पत्र नहीं आया, जिससे उस दुर्घटना का विवरण जाना जा सकता। तुम्हें कुछ पता है कि दुर्घटना कैसे हुई?"

नीलिमा ठीक से बैठ गई थी और पूरी दृष्टि से शारदा देवी की ओर देख रही थी। उसने कहा—"पता चला है कि धीराजसिंह प्राय चालीस गज की दूरी पर खड़े एक हिरन पर निशाना लगा रहे थे। दुर्योग से उनकी बन्दूक की गोली छिटककर स्वय उन्हीं को जा लगी, जिससे तत्काल उनकी मृत्यु हो गई।"

"उफ!" कहकर शारदा देवी सचमुच रो पड़ीं। कुछ देर तक वह अचल से आसू पोंछती रहीं। इस बीच महीप और नीलिमा एक-दूसरे को अत्यन्त गम्भीर दृष्टि से देखते रहे। जैसे दो परिपूर्ण विदेशी एक-दूसरे की भाषा का एक शब्द भी समझने में अपने को पूर्णतया असमर्थ मालूम कर रहे थे, हालाकि एक-दूसरे का परिचय पाने के लिए वे दोनों (विदेशी) जैसे उत्सुक थे और इस बात के लिए अत्यन्त अधीर हो रहे थे कि किस साकेतिक भाषा में बातें करके एक-दूसरे को अपने मन की बात समझावें।

शारदा देवी की विकलता ने कुछ समय के लिए सारे वातावरण को अत्यन्त गुरु-गम्भीर रूप दे दिया। पर शीघ्र ही वह आखें पोंछकर सँभलकर बैठ गई। उन्होंने पूछा—"ठाकुर साहब कब तक लौट रहे है, कुछ पता है?"

'मुझे तो कुछ ठीक पता नहीं है", नीलिमा ने फिर कुछ सकोच मे पड़कर कहा, "पर मा कहती थीं कि शायद वह तीन-चार दिन बाद लौटेंगे। वह शायद जल्दी हो लौट आते, पर राजा साहब उन्हें रोके हुए है।"

अड़तीसवां परिच्छेद

कुछ देर तक फिर सन्नाटा छाया रहा। जब से नीलिमा आई थी तब से महीप एक शब्द भी नहीं बोला था। सहसा शारदा देवी के ध्यान में यह बात आई। एक विचित्र व्यंग-भरी मुसकान मुख पर झलकाते हुए उन्होंने महीप की ओर संकेत करके नीलिमा से कहा—"तुम दोनों का क्या आपस में परिचय नहीं है? तब मैं परिचय करा दूं। यह हैं कविवर महीप जी, और (महीप की ओर देख कर नीलिमा की ओर संकेत करके) यह है कुमारी नीलिमा खन्ना, भावी श्रीमती ..."

सहसा नीलिमा बीच में ही टोकती हुई बोल उठी—"पर आपने यह कैसे मान लिया कि हम दोनों का आपस में परिचय नहीं है?" यह कहते हुए उसने एक मार्मिक मुसकान-भरी दृष्टि से महीप की ओर देखा। महीप का रोआं-रोआं विकल हो उठा।

"इसलिए मान लिया कि तुम दोनों एक दूसरे से मुंह फुलाये बैठे हो", शारदा देवी ने कहा।

"किसी भी कविवर के आगे मौन सम्भ्रम का भाव प्रकट करना कविता-प्रेमियों का कर्तव्य है। मैंने केवल इसी नियम का पालन किया है, पर कविवर को चाहिए कि वह मौन न रह कर हम लोगों को अपने प्रवचनों से कृतार्थ करते रहें।" यह कहते हुए नीलिमा ने अपनी मुसकान की मार्मिकता को तीखेपन का पुट और अधिक देकर महीप की ओर देखा।

महीप इस चुनौती से तिलमिला उठा, वह रह न सका। आखिर उसका कण्ठ फूट ही पड़ा। उसने कहा—"पर आज-कल ऐसी महिलाओं की संख्या दिन पर दिन बढ़ती चली जा रही है जो कविवरों के प्रवचनों को या तो पागल का प्रलाप या मूर्ख-संलाप समझती हैं, इसलिए किसी भी कविवर के लिए 'मौनं हि शोभनम्' इस सिद्धान्त के पालन के सिवा दूसरा कोई चारा नहीं है।"

"मैं आपकी पहली बात की ताईद करती हूँ, पर दूसरी बात मानने को तैयार नहीं हूँ—यह इसलिए कि मूर्खों के सलाप का अपना एक निजी महत्त्व भी तो है।" अपना समस्त सकोच एक ही बार में झाडकर, परिपूर्ण स्थिरता के साथ नीलिमा ने कहा। उसकी आखों की अव्यक्त मुसकान में दुष्टता झलक रही थी।

महीप स्तब्ध रह गया। इतनी बडी ढिठाई की आशा—और वह भी ऐसे समय में जब दोनों के तार कम-से-कम व्यावहारिक क्षेत्र में, एक दूसरे से फिर एक बार जुडने के लक्षण प्रकट करने लगे थे—महीप ने नीलिमा से नही की थी। उसे लगा कि नीलिमा इससे बडा अपमान उसका नहीं कर सकती। शारदा देवी भी नीलिमा की इस तरह की बात से कुछ चौंक-सी उठीं।

महीप के भी सकोच का पर्दा जैसे किसी ने एक तेज़ छुरे से आर-पार चीर डाला था। तनिक खीझ-भरे स्वर में उसने कहा—"मूर्खों के सलाप का महत्त्व है, यह मैं मानता हूँ, और वह महत्त्व ऐसा है जो भविष्य में एक-न-एक दिन समझदारों की बुद्धि को ग्रस्त कर के ही रहेगा। पर यह समय की बात है, और अभी मूर्खों के लिए मौन रहना ही मैं श्रेयस्कर समझता हूँ।"

"पर 'तावच्च शोभते मूर्खो यावत्किंचिन्न भाषते' यह नीति इस प्रगतिशील युग में पुरानी हो चली है, यह भी आपको मानना पडेगा।" कहकर नीलिमा अवखुले स्वर में खिलखिला उठी। महीप के मुह पर जैसे किसी ने जूता मार दिया।

शारदा देवी सहसा बोल उठीं—"अरे, तुम दोनों ने तो बाकायदा लड़ाई शुरू कर दी!"

नीलिमा खिलखिलाकर हँस पडी। वह मुक्तहास इस कदर छुतहा सिद्ध हुआ कि महीप भी बरबस मुस्करा उठा और उसने आश्चर्य के साथ महसूस किया कि नीलिमा के उस मुक्तहास ने जैसे एक ही बार झाडू फेरकर उसके अन्तर की समस्त ग्लानि और समस्त ज्वाला को झाडकर साफ़ कर दिया।

उसने यह भी अनुभव किया कि इतने दिनो के परिचय के बाद भी अभी तक वह उस मायाविनी को समझ नहीं पाया है। उस दिन का चित्र उसकी आखो के आगे नाच रहा था जब वह रात में नीलिमा के वहा से लौट रहा था और नीलिमा ने उसे फाटक पर रुकवाने के बाद एकान्त में उससे मिलकर उसके विदा होने के पूर्व अत्यन्त करुण भाव से कहा था—"क्षमा, क्षमा, महीप, क्षमा!" उसके उस रात के उस रूप में और आज के रूप मे जमीन और आसमान का अन्तर था। उन दोनों में किस रूप को वह सत्य माने और किसको असत्य? क्या उस रात का वह एकान्त करुण और अत्यन्त मार्मिक रूप से विह्वल रूप किसी भी कारण से बनावटी माना जा सकता है? क्या कोई नारी मुखडा बदलने की कला मे इस कदर निपुण हो सकती है? क्या उस रात वह नाटकीय रूप नीलिमा ने केवल इसलिए दिखाया था कि उसके—महीप के—अन्तरतम प्रदेश की छिपी हुई भावना का पर्दा फाश करके उसके उन्नत अहभाव के सम्पूर्ण सयम को निपट उपहास में परिणत कर दिया जाय? यही सम्भव है, अन्यथा नीलिमा के आज के इस तीक्ष्ण व्यग और मुक्त परिहास का कोई अर्थ नहीं होता।

इस तरह सोचने पर भी महीप को नीलिमा का सामीप्य प्रिय लग रहा था और इसके लिए वह अपने-आपको धिक्कार रहा था।

मुक्त हास के 'फिट' से सँभलने पर नीलिमा ने शारदा देवी को लक्ष्य करके कहा—"महीप जी सदा लड़ाई मोल लिया करते है। वह या तो बिल्कुल चुप रहेंगे या यदि बोलेंगे तो कोई-न-कोई बात अवश्य ही ऐसी छेड देंगे जिस पर लड़ाई अनिवार्य रूप से छिड़ जायगी। उनके समान अप्रगतिशील वीर नायक को शायद झगड़ा मोल लेने की आवश्यकता रहती है। उन्हे निरन्तर अपने सामने की समस्त रुकावटों को ठेलकर, अपनी प्रगति के मार्ग पर खड़े मनुष्यो को धक्का देते हुए आगे बढ़ना पड़ता है। पर हम लोग—मेरा मतलब मेरी ही जैसी प्रकृति के लोगों से है—जिनमें न तो आगे बढ़ने का साहस है

सी मोटरों के हार्नों के बजने के कारण न तो उनके कानों में नीलिमा की आवाज गई, न उन्होंने महीप को जाते देखा।

महीप को आते देखकर नीलिमा उलटी दिशा की ओर बढी और महीप उसका अनुसरण करता हुआ चला गया। महीप को ऐसा लगा रहा था जैसे किसी अज्ञात भूतलोक की एक मायावेषी लुभावनी और मोहिनी छाया अपने रहस्यपूर्ण गूढ इगित-द्वारा उसे बहकाये लिए जा रही है—न जाने किस घोर विभीषिकापूर्ण गहन अन्धकारमय अतल गर्भ में ढकेलने के लिए!

बँगले की भीतरी सीमा समाप्त होने पर नीलिमा सहसा बाई ओर को मुड गई और एक अपेक्षाकृत अँधेरे में और एकान्त स्थान में एक दूसरे को आलिगन किए हुए बास के पेडों के नीचे खडी हो गई। महीप भी उसका अनुसरण करता हुआ पुलकित, भीत और आशकित हृदय से वहीं पहुँचा। उसका हृदय उसे बता रहा था कि आज उसे ठीक पिछली बार की ही तरह चक्कर में उलझाया जा रहा है, पर निश्चय ही नये ढग से। वह नया ढग क्या है, यह जानने की उत्सुकता उसके मन में अत्यन्त तीव्र हो उठी थी। इसीलिए वह आया भी था, नहीं तो वह शायद पहले ही क्षमा मागकर नीलिमा के प्रस्ताव को टाल देता।

महीप जब नीलिमा के एकदम निकट पहुँच गया तो नीलिमा ने प्रायः फुसफुसाते हुए कहा—"महीप मुझे इस बात का बहुत दुःख है कि आज भी मैंने अपनी बातों से तुम्हारा जी दुखाया। पर तुम्हारी समझदारी पर मेरा पूरा विश्वास है, और मैं जानती हूँ कि तुम मेरी इस तरह की बातों से कोई गलत धारणा मन में उत्पन्न नहीं होने दोगे।"

महीप के भीतर कोई विकट अट्टहास कर उठा। पर उस अट्टहास की ओर से उसने कान बन्द कर लिए और नीलिमा की बात की सचाई और सहृदयता पर विश्वास करने के लिए वह फिर एक बार उत्सुक हो उठा।

पर प्रकट में बोला—"मेरी ग़लत धारणा से किसी का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं नीलिमा, यह तुम भी अच्छी तरह जानती हो।"

क्षण-भर के लिए नीलिमा चुप रही। महीप को ऐसा लगा जैसे उसने एक लम्बी सांस को बरबस दबाने की व्यर्थ चेष्टा की। दूसरे ही क्षण वह बोली—"तुम्हारी ग़लत धारणा से किसका कितना बनता और कितना बिगड़ता है, वह तुम न कभी जान सकोगे, न इसका ठीक-ठीक हिसाब कभी कोई तुम्हारे आगे पेश करने को आवेगा। ये सब बातें जाने दो। महीप, मैं तुमसे एक अनुरोध करना चाहती हूँ और इसीलिए मैंने तुम्हें बुलाया है। क्या तुम पिछली सब बातें भूलकर मुझसे और एक बार किसी दिन एकान्त में मिल सकते हो?"

क्षण-भर के लिए महीप के मन में यह प्रेरणा उठी कि नीलिमा के प्रस्ताव को तत्काल ठुकराकर किसी ऐसी उलझन में फँसने की सभावना से बच जाय जो उसकी तत्कालीन मानसिक स्थिति को और अधिक जटिल बना सकती है—उसके मन के पहले से ही कसे हुए तार को और अधिक निर्मयता से कसकर उसे तोड़ भी सकती है। पर दूसरे ही क्षण उसका मन फिसल गया और वह बोला—"मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

"तब ठीक है; आज बुधवार है, परसों शुक्रवार को ठीक ७ बजे रीजेंट में मिलना। मैं बाहर खड़ी रहूँगी।"

"अच्छी बात है", भरी हुई आवाज़ में महीप ने कहा।

"भूलना मत—रीजेंट में शुक्रवार को ७ बजे शाम। अब जाओ, शारदा जी तुम्हारा इन्तज़ार कर रही होंगी।" यह कहकर नीलिमा तेज़ क़दम रखती हुई पिछवाड़े की तरफ़ से चली गई।

महीप जब लौटकर शारदा देवी के पास पहुँचा, तब वह व्यस्त आँखों से इधर-उधर शायद उसी को खोज रही थी। "चलिए!" महीप ने कहा। शारदा देवी ने चौंककर पीछे की ओर देखा।

"कहा चले गए थे ? मै तो आपको खोजते-खोजते परेशान हो गई।"

"एक परिचित व्यक्ति से भेट हो गई थी। अब चलिए, तागेवाले को आपने विदा कर दिया था या रोक लिया था ?"

"खडा होगा कहीं।"

फाटक के बाहर महीप तागा खोजने लगा। तागेवाला सो रहा था। उसे जगाया गया। जब दोनो बैठ गये और तागा चल पडा तो महीप ने कहा--"आज पता नहीं क्यों, बहुत देर से मेरी दाईं आख फडक रही है।"

"यह तो अच्छा शकुन माना जाता है। तब तो निश्चय ही किसी मनचाहे व्यक्ति से आपकी भेंट शीघ्र ही होगी, या कहीं से कोई शुभ समाचार प्राप्त होगा।"

शारदा देवी के बोलने के ढग से इस बात का पता लगाना कठिन था कि वह व्यग में कह रही है या परिहास में, या सरल भाव से।

महीप कुछ चौंक उठा। उसने कहा—"आप क्या सचमुच शकुन-अप-शकुन की बातो पर विश्वास करती है ?"

"पहले यह बताइए कि आप विश्वास करते है या नही ?" शारदा देवी ने कुछ तीखे ढग से प्रश्न किया।

महीप बोला—"दिल के बहलाने को यह खयाल अच्छा है।"

"तब मैंने भी आपका 'दिल बहलाने के' लिए ही कहा है।"

सडक की बिजली के प्रकाश में महीप ने देखा, ऐसा कहते हुए शारदा देवी के सम्पूर्ण मुख पर एक तीव्र व्यग झलक उठा है।

चन्तालीसवां परिच्छेद

मध्य भारत के उस पहाडी जगल में जब धीराज सज-धजकर ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिह की शिकार-पार्टी के साथ शिकार खेलने गया तो गले

में कारतूस की माला डाले और हाथ मे बन्दूक लिए वह तन मे और मन में ऐसी फुर्ती का अनुभव कर रहा था, जैसी उसने जीवन मे पहले शायद कभी अनुभव नहीं की थी। उसे ऐसा लग रहा था जैसे उसका सुदूर भूतकाल का विस्मृत जीवन फिर लौट आया है और विफलता तथा पराजय की जो अनुभूति इतने दिनो मे उसकी आत्मा को एक सर्वशोषी ग्लानि की अनुभूति से दबाती चली आ रही थी वह रात के क्षणिक स्वप्न की तरह न जाने कहा विलीन हो गई है। किसी के प्रति उसके मन में वैर या ईर्ष्या की भावना जैसे नहीं रह गई थी, और सबके प्रति उन्मुक्त प्रेम की बाढ भी उमड उठी थी। रास्ते भर वह ठाकुर साहब से खुले हृदय से, स्निग्ध मुसकान के साथ, बातें करता रहा, जैसे वह कभी हीनता की किसी भी भावना के कारण ठाकुर साहब से दबा नहीं रहा हो, और उनके समान—बल्कि उनसे ऊँचे—स्तर के अनुभूति-लोक में बराबर विचरण करता रहा हो।

केवल चार आदमी शिकार खेलने के लिए गये थे—ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह, धीराज, ठाकुर साहब का नौकर बैजूलाल और राजा साहब के मॅझले लडके राजकुमार बलवीर सिंह। प्रात का समय था। ठंडी पहाडी हवा चल रही थी। सबके मन मे उत्साह था, उमग थी। जब उन लोगो ने अपेक्षा-कृत घने जगल के बीच मे प्रवेश किया तो चारो स्वत प्रवृत्त होकर विभिन्न दिशाओ की ओर बढ चले। धीराज बबूर के पेड़ो की दो घनी कतारो के बीच मे होकर पश्चिम की ओर एक ऊँचे टीले की तरफ़ बढा। चढ़ाई धीरे-धीरे तय करता हुआ जब वह चोटी पर पहुँचा, तो उसने चारो ओर नजर दौड़ाई। हवा बहुत ही मन्द चल रही थी और झींगुरों की अविरत झनकार के सिवा किसी प्रकार कोई शब्द नहीं नहीं सुनाई देता था। झींगुरों की झनकार वातावरण के सन्नाटे की गभीरता को और अधिक प्रगाढ बनाने मे सहायक सिद्ध हो रही थी। उस एकान्त शान्ति में धीराज क्षणकाल के लिए अपने भीतर के काव्य-जगत् की दार्शनिकता मे पूर्ण रूप से निमग्न

हो गया। उस निमग्नता की अवस्था में उसने क्या पाया वह स्वय नहीं जान सका, पर उसके अन्त प्रात का कोना-कोना एक अत्यन्त रहस्यमय, अनिर्वचनीय और सुखद अनुभूति से जैसे उथल उठा। वह काफी देर तक बन्दूक हाथ में लिए सामने नीचे की ओर शून्य दृष्टि से देखता हुआ निश्चल अवस्था में खडा रहा।

सहसा उसने बन्दूक धीरे से नीचे रख दी और स्वयं भी बैठ गया। जो ब्रीचेज वह पहने था उसकी वाईं जेब से उसने एक पाकेट-बुक बाहर निकाली, जिसके भीतर एक बहुत ही पतली छोटी-सी पेंसिल रक्खी हुई थी। उसके कई लिखे हुए पन्नों को उलटने के बाद एक सादे पृष्ठ पर वह अत्यन्त ध्यानमग्न अवस्था में कुछ लिखने लगा। प्राय २० मिनट तक वह लिखता रहा। वह लिख ही रहा था कि सहसा पास ही कहीं से कुछ खडकने की सी आवाज हुई। तत्काल उसके भीतर का शिकारी सचेत हो उठा और उसके कान जैसे खडे हो गये। पाकेट-बुक को चुपचाप जेब में डालकर वह चौकन्ना होकर बैठ गया। बन्दूक उसने धीरे से उठा ली और किसी भी अज्ञात परिस्थिति के लिए तैयार हो गया।

कुछ देर तक सन्नाटा रहा। उसके बाद फिर खडकने की आवाज सुनाई दी, जो यद्यपि बहुत ही धीमी थी, किन्तु तत्कालीन स्तब्ध वातावरण में धीराज के सजग कानों को काफी तीव्र लगी। वह शिकार की घात में बैठी बिल्ली की तरह दुबके हुए कदमो से धीरे से कुछ नीचे उतरा।

नीचे उतरने पर उसने देखा, सामने प्राय ६० गज की दूरी पर झाऊ के कुछ पेडों की छाया के नीचे एक तलैया के किनारे एक हिरन अत्यन्त सजग होकर, भीत और चकित दृष्टि से चारों ओर देख रहा है। धीराज ने बबूर के दो पेडो के पीछे अपने को छिपा लिया और उन पेडों के बीच से बन्दूक की नली को आगे बढ़ाकर निशाना लगाने लगा। साथ ही बडे गौर से वह हिरन की प्रत्येक गतिविधि का निरीक्षण करने लगा। स्पष्ट ही हिरन

पानी पीने के इरादे से आया था, पर पीने का साहस नहीं होता था। तलैया में मुह डालते ही वह अपने ही द्वारा उत्पन्न क्षीण शब्द से स्वय चौंक उठता था। दोनों कानों को खड़ा करके वह अत्यन्त शकित दृष्टि से चारों ओर देखने लगता था। बार-बार वह ऐसा ही करता था, और जी भरकर पानी नहीं पीता था। आत्मरक्षा के पशु-सस्कार से प्रेरित होकर वह जैसे किसी सूक्ष्म और अव्यक्त ज्ञानेन्द्रिय द्वारा यह अनुभव कर रहा था कि कोई प्राणी आस-पास उसकी घात में छिपा है।

उस समय धीराज की आंखों मे जैसे उसके प्राणों की समस्त शक्ति एकत्र होकर समा गई थी। इसके पहले वह कई बार जानवरों और चिड़ियों का शिकार कर चुका था। पर अपने प्राणो की रक्षा के लिए, इस प्रकार मार्मिक रूप से सचेत किसी जानवर को देखने का अवसर उसे उस दिन सम्भवत: पहली ही बार प्राप्त हुआ था। उस भीत हिरन की ओर देखते-देखते धीराज धीरे-धीरे अनमना-सा ही उठा और फिर एक बार न जाने किन दार्शनिक, काव्यात्मक अथवा मनोवैज्ञानिक विचारों में मग्न-सा हो गया। उसे अपना तात्कालिक लक्ष्य जैसे भूल गया और गोली से भरी बन्दूक को ठीक से पकड़ने में उसके ढीले हाथ जैसे अपने को असमर्थ अनुभव करने लगे।

ठीक उसी समय, दक्षिण की ओर, प्राय: दो सौ गज के फासले पर एक खाईनुमा, नसे हुए पहाडी नाले की आड मे राजकुमार बलवीर सिंह भी उसी हिरन की ओर बन्दूक का निशाना लगाए खडे थे। उन्हें पता नहीं था कि धीराज भी उसी हिरन को लक्ष्य बनाये हुए था। एक क्षण ऐसा आया जब कुंवर साहब बन्दूक का घोड़ा प्राय: दबा ही चुके थे। पर सहसा ठीक उसी क्षण में उन्होंने पास ही कहीं से गोली चलने की आवाज सुनी, और उसी दम उन्होंने देखा कि हिरन पानी पीना छोड़कर बड़ी तेजी से उल्टे पांव भागा चला जा रहा है। भागते हुए हिरन पर उन्होंने गोली चलाई,

पर वह निशाना ठीक नहीं बैठा और कुवर साहब ने खीझकर बन्दूक जमीन पर पटक दी।

पटकने के बाद वह उसी नाले पर झाऊ के एक पेड़ की छाया में कुछ देर तक सुस्ताने के इरादे से बैठने जा रहे थे। पर सहसा वह उठ खडे हुए और यह जानने के विचार से कि जिस गोली की आवाज सुनकर हिरन भाग निकला वह कहा से और किसने चलाई, वह उत्तर की ओर बढे। थोडी-सी चढाई तय करके वह जब कुछ ऊपर चढ चुके, तो एक स्थान पर सूखी पत्तियों के ऊपर उनके शिकारी जूते फिसल पडे और वह रपटकर नोचे गिरे। किसी तरह सँभलकर वह फिर उठ खडे हुए और कपडों पर से धूल झाडकर फिर ऊपर चढ गए। कुछ दूर जाने पर उन्होंने जो दृश्य देखा वह अत्यन्त भयावह था। धीराज लहू-लुहान अवस्था में बबूर के दो पेडों के नीचे पडा हुआ कराह रहा था और एक सूखे तिनके को अपने ही खून में डुबोकर लेटे-ही-लेटे अपने रूमाल पर अत्यन्त कष्ट के साथ कुछ लिखने की चेष्टा कर रहा था। कुवर बलबीर सिंह क्षण-भर के लिए ठिठककर जहा-के-तहा खडे रह गये। उसके बाद जब भ्रांत अवस्था में कदम बढाया तब धीराज तिनका फेंककर चित लेट चुका था। कुवर साहब एक पग भी आगे नहीं बढ पाये थे कि उन्होंने देखा कि सहसा ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह न जाने किस गुप्त स्थान से बाहर निकलकर एक चील की तरह झपट्टा मारते हुए-से उसी रूमाल पर टूटे पडे जिस पर धीराज ने अपने रक्त से न जाने क्या लिखा था, और उसे उठाकर तेज कदमों से नीचे की ओर जैसे भगने लगे।

कुवर बलबीर सिंह अत्यन्त भ्रान्त मानसिक अवस्था में जब धीराज के पास पहुँचे तो उन्होंने देखा कि वह उनके पहुँचने के पहले ही अन्तिम सास ले चुका था। नीचे से ठाकुर साहब बडी घबराहट के स्वर में बैजूलाल को पुकार रहे थे, पर बैजूलाल पहले ही घटना-स्थल पर पहुँच चुका था। उसने बताया कि वह इतनी देर तक पास ही कहीं छिपा था।

जब ठाकुर साहब, कुंवर साहब और बैजूलाल, तीनों धीराज की लाश के पास इकट्ठे हुए तो कुछ समय तक तीनों एकटक लाश की ओर देखते हुए सन्न खड़े रहे। जैसे तीनों उस मृत शरीर से प्रश्न करना चाहते हों कि यह अप्रत्याशित दुर्घटना क्यों और कैसे हो गई? खून धीराज के पेट के ऊपरी भाग के किसी स्थान से निकल रहा था। धीराज के मुख की अभिव्यक्ति में विशेष विकृति नहीं आने पाई थी, और यदि रक्त का कोई चिन्ह उस समय वहा पर न होता, तो किसी भी दर्शक को यह भ्रम हो सकता था कि धीराज सो रहा है।

तीनों के मुख पर खेद के चिन्ह स्पष्ट प्रकट हो रहे थे, पर ठाकुर साहब के चेहरे से ऐसा जान पड़ता था जैसे वह सबसे अधिक घबराए हुए हैं। कुछ देर बाद ठाकुर साहब जब कुछ स्वस्थ हुए तो उन्होंने यह प्रस्ताव किया कि बैजूलाल को भेजकर आदमियों को बुलाया जाय और अर्थी तैयार करने का सब सामान भी वहीं मँगा लिया जाय, ताकि वे लोग सीधे घटनास्थल से श्मशान-यात्रा को जा सकें।

"पर हुआ क्या?" कुंवर बलवीरसिंह ने पूछा।

ठाकुर साहब ने अत्यन्त गम्भीर स्वर में उत्तर दिया—"स्पष्ट है कि गोली असावधानी के कारण धीराज की बन्दूक से छिटककर स्वयं उसके पेट में जा लगी है।"

बैजूलाल बोला—"आश्चर्य है, क्योंकि ठाकुर धीराजसिंह असावधान शिकारी कभी नहीं रहे।" यह कहकर वह परीक्षक की-सी दृष्टि से ठाकुर साहब की ओर देखने लगा।

उसके इस मन्तव्य की पूर्ण उपेक्षा करते हुए ठाकुर साहब बोले—"तुम अब देर न करो, क्योंकि जंगल में लाश का अधिक समय इस तरह पड़े रहना खतरे से खाली नहीं है। जल्दी जाकर आदमियों को बुलाओ और अर्थी का प्रबन्ध करो। तब तक हम दोनों लाश पर पहरा देते रहेंगे।"

बैंजूलाल के चले जाने के बाद ठाकुर साहब लाश के पास ही किंचित् ऊँचे एक स्थान पर बबूर के दो-तीन पेडों की छाया में बैठ गये और कुंवर बलवीर सिंह उनसे केवल दो-तीन हाथ की दूरी पर सूखी पत्तियों के ऊपर हाथ-पाव पसारकर लेट गये। वह शरीर से और मन से अपने को अत्यन्त थकित अनुभव कर रहे थे। थोडी ही देर बाद वह गहरी नींद में सो गये।

ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह अत्यन्त गम्भीर विचारो में मग्न होकर बैठे रहे। न चाहने पर भी बीच-बीच में जब लाश की ओर उनकी दृष्टि चली जाती थी तब उनकी मुद्रा और अधिक गम्भीर हो उठती थी और वह बरबस सिहर-से उठते थे, और बार-बार उन्हें सँभलकर बैठना पडता था। बैठे-बैठे सहसा उन्हें जैसे कुछ याद आया। वह तत्काल उठ खडे हुए और धीराज-सिंह की लाश के पास जाकर उसकी 'ब्रीचेज' की जेब में उन्होंने हाथ डाला। एक पाकेट बुक उनके हाथ लगी। उन्होने एक बार चौकन्नी दृष्टि से चारों ओर देखकर उसे चुपचाप अपनी जेब में रख लिया। कुवर बलवीर सिंह अभी तक सोये हुए थे और उस जगल में किसी दूसरे व्यक्ति की उपस्थिति की सभावना उस समय नहीं थी। फिर भी ठाकुर साहब बार-बार चोरो की तरह चारों ओर देख रहे थे। कुछ देर बाद वह फिर उसी स्थान पर बैठ गये जहा पहले बैठे थे और किन्हीं गम्भीर चिन्ताओं में मग्न हो गए।

काफी देर बाद राजा साहब का दल घटनास्थल पर पहुँचा। स्वय राजा साहब भी, जिनकी उम्र पचास साल से अधिक थी, आये थे, और अन्य व्यक्तियों के अलावा एक डाक्टर और रियासत का एक पुलिस कर्मचारी भी 'पोस्ट-मार्टम' की 'फार्मेलिटी' के निर्वाह के लिए आये हुए थे। 'जाच' के बाद 'आकस्मिक दुर्घटना-जनित मृत्यु' का 'वर्डिक्ट' दिया गया। उसके बाद वहीं अर्थी तैयार कराई गई और वहीं से सब लोग सीधे श्मशान के लिए चल पडे।

चालीसवां परिच्छेद

शुक्रवार को महीप जब रीजेंट सिनेमा के पास पहुँचा तब साढ़े छ. बजे थे। उसे इस बात का पूरा विश्वास था कि नीलिमा के साथ आज उसकी जो भेंट होगी, उसका अपने आप मे कोई भी विशेष महत्व नहीं हो सकता। फिर भी एक अदम्य कौतूहल, एक विचित्र पागलपन का-सा मनोभाव उसे बरबस वहां खींच लाया था। उसका अन्तर्मन उससे कह रहा था कि इस भेंट का परिणाम निश्चित रूप मे यह होगा कि वह अपने साथ एक नई टीस लेकर वापस जायगा—एक ऐसी टीस, जिसे शान्त भाव से सहन करने की कोई क्षमता अब उसमें शेष नहीं रह गई है और जो या तो उसे भीतर-ही-भीतर तुषाग्नि की तरह जला डालेगी या एक भयकर विद्रोह-जनित विस्फोट के रूप में अत्यन्त अशोभन ढग से बाहर फूट पड़ेगी। पर आज वह दोनों सम्भावनाओं के लिए पूर्णतः तैयार होकर आया था। एक निराली आत्मघाती प्रेरणा उसे जैसे बलपूर्वक घसीटती चली आई हो।

सिनेमा-हाल के बाहर वाले बरामदे में वह अत्यन्त अधैर्य के साथ चक्कर काटने लगा। शायद उस दिन कोई विशेष फिल्म दिखाया जा रहा था, क्योंकि दर्शकों की खासी अच्छी भीड़ वहा इकट्ठी होती चली जा रही थी। उस भीड़ में छिपकर वह अपने को एक प्रकार से सुरक्षित समझ रहा था, यद्यपि इस बात की चिन्ता भी उसके मन मे बनी हुई थी कि कहीं नीलिमा उस भीड़ मे खो न जाय या उसे न देखकर सिनेमा हाल मे न चली जाय। वह मोटर या तांगे पर से उतरनेवाली प्रत्येक लम्बे कदवाली फैशनेबुल युवती को बड़े गौर से देख रहा था और जब तक वह प्रत्येक के मुख की आकृति भली-भांति देख न लेता तब तक सन्तुष्ट न होता।

सिनेमा की घड़ी में सात बजने में केवल एक मिनट शेष रह गया, पर नीलिमा नहीं दिखाई दी। महीप का अधैर्य बेहद बढ़ उठा। और अधैर्य बढ़ने के साथ-ही-साथ उसके भीतर क्रोध और इतने दिनों मे दबे हुए नपुंसक

विद्रोह की भावनाए भी न जाने अन्तःप्रदेश की किस रासायनिक मथन-क्रिया के फल-स्वरूप कहा से उमड उठी थीं, इस बात की ओर उसका ध्यान ही नहीं था।

वह चक्कर काटने से ऊब उठा था, इसलिए दीवार पर टँगे फिल्म-सम्बन्धी चित्रों को देखने के उद्देश्य से एक स्थान पर खडा हो गया। प्राय एक मिनट तक वह अनमने भाव से चित्रों की ओर देखता रहा। इतने में सहसा पीछे से उसके कानों के पास ही किसी की चिर-परिचित मर्मवाणी झकृत हो उठी—"तुम्हें आये कितनी देर हुई?"

स्वप्न से चौंककर महीप ने लौटकर देखा—नीलिमा खडी थी। एक ऐसी मनोमोहक सादगी आज नीलिमा के सहज सुन्दर मुख पर व्याप्त हो रही थी जिसे देखकर पल में महीप का सारा क्रोध जाता रहा और विद्रोह की जो अज्ञात तूफानी लहरें अपने भीषण वेग-द्वारा अपने आगे से सब कुछ ढा देने की धमकी दिखा रही थीं वे किसी आश्चर्यजनक मायामन्त्र से तत्काल जैसे शान्त हो गई।

"प्राय आधे घटे से मै इन्तजार कर रहा था।" अपने मुख के अत्यन्त गुरु गम्भीर भाव को कुछ कोमल बनाने की चेष्टा करते हुए महीप ने कहा।

"मैने सात बजे का समय निश्चित किया था और ठीक सात बजे मै आ पहुँची हूँ," अपने बायें हाथ में बँधी हुई बहुत ही छोटे आकार की—प्राय बटननुमा—स्वर्णमण्डित घडी की ओर देखते हुए नीलिमा ने कहा।

महीप के खिन्न मुख की अन्धकार-छाया सहसा सूर्यास्त के समय फटे हुए बादलों की तरह एक आपेक्षिक रूप से मधुर व्यग की उज्ज्वल लालिमा से रजित हो उठी। उसके मुख की अभिव्यक्ति में वह आकस्मिक परिवर्तन अपने आप ही—बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के—हो आया, जिसे देखकर नीलिमा अत्यन्त चकित और विचलित हो उठी। महीप ने कहा—"मेरे पास एक तो घड़ी नहीं है, जिस पर अधैर्य और उत्सुकता का पलडा मेरा ही भारी है।"

महीप के मुख की उस अस्वाभाविक चमक का छुतहा प्रभाव नीलिमा के मन पर और स्वभावत. मुख पर भी पडा। उसका भी चेहरा खिल उठा। क्षण भर के लिए वह महीप की ओर बडे गौर से देखती रही। उस क्षण के लिए उसकी आखो मे एक ऐसी निराली पुलक-वेदना छलक रही थी जो महीप के मन को तल से सतह तक हिलकोरने लगी। पर दूसरे ही क्षण अपने मुख के और आखो के उस निगूढतम मार्मिक भाव को किसी मोटे ब्रश से लीप-पोतकर एकाकार करती हुई और निपट व्यावहारिक रूप धारण करती हुई वह बोली—"अच्छा, यह तो बताओ कि अब विचार क्या है ? फिल्म देखोगे या कही टहलने का इरादा है ?"

महीप को स्वभावत. इस प्रश्न से बडा आश्चर्य हुआ, क्योकि वह स्वय कोई इरादा करके नही आया था, उसने केवल आख मूदकर नीलिमा के प्रस्ताव का अनुसरण किया था। फिल्म देखने के लिए वह कतई उत्सुक नही था, क्योकि सुबह से जो मर्मगत तूफानी भाव—फिर चाहे वे कैसे ही उलटे-सीधे और ऊटपटाग क्यो न हो—उसके भीतर उमड़ रहे थे, उनकी शान्ति किसी भी फिल्म के देखने से नही हो सकती, यह बात वह भली भाति जानता था। वह सोच रहा था कि क्या नीलिमा ने उसे केवल फिल्म देखने या 'टहलने' के इरादे से ही बुलाया है, या वह कोई खास बात कहना चाहती है ? पर प्रकट में उसने कहा—"जैसी तुम्हारी इच्छा हो, मेरा कोई भी खास इरादा नही है।"

"तो चलो, फिल्म देख लिया जाय। एक अच्छा-सा नया फिल्म आया है।"

महीप भरे मन से राजी हो गया। उसने अपनी जेब टटोली तो सौभाग्य से दस रुपये का एक नोट निकल आया। नीलिमा अपने थैली-नुमा बटुवे से रुपया निकालने ही जा रही थी, पर महीप ने उसे रोका और लपककर 'कॉटर' की ओर बढ़ा। पहले दर्जे के दो टिकट खरीदकर उसने नीलिमा से भीतर चलने के लिए कहा।

सिनेमा-घर के भीतर युवक-युवती के जोडे का नैकट्य एक निराली ही अनुभूति उत्पन्न करता है, जिसकी विशेषता का अनुभव दूसरी किसी भी परिस्थिति में शायद नही हो सकता। सिनेमा-हाल के प्रायान्धकार में एक प्राय स्तब्ध दर्शक-मडली के बीच में एक दूसरे के निकटतम सम्पर्क में बैठकर सामने चित्रपट पर पल-पल में परिवर्तित होनेवाले प्रत्याशित अथवा अप्रत्याशित दृश्यो को देखते हुए एक विचित्र ही रहस्य और रोमासमय लोक में जा पहुँचने की पूरी सम्भावना बनी रहती है—विशेष कर उस हालत में जब युवक-युवती का वह जोडा नाना विरोधी और विषम परिस्थितियो से सघर्ष करता हुआ पहली बार उस निकटता की स्थिति को पहुँच पाया हो।

'रेड इडियनो' के मुक्त तथापि रहस्य और रोमांसमय जीवन से सबधित रगीन फिल्म दिखाया जा रहा था। एक सुन्दरी अर्ध-बर्बर नारी गहन रात्रि के विजन और एकान्त वातावरण में धीर और सावधान पगो से आगे बढ़ती हुई उस व्यक्ति की छाती में छुरा भोकने जा रही थी, जिसने उसे जलील करने के बाद उसके प्रेम को ठुकरा दिया था। और दर्शकगण इस कदर मग्न होकर उसे देख रहे थे कि सारे हाल में एक भेद भरे भूतलोक की निस्तब्ध रात्रि का-सा अतलस्पर्शी सन्नाटा छाया हुआ था। प्रत्येक दर्शक का मन इस हद तक सचेत और जागरूक हो उठा था कि उस पर पडनेवाले सूक्ष्म से सूक्ष्म स्पर्श की अनुभूति भी जैसे भीषल विस्फोट कर उठती थी। मन की इस परिपूर्ण मग्न तथा चेतनावस्था में नीलिमा की रेशमी साडी का सुगन्ध से महकता हुआ पल्ला महीप के कुहने को बीच-बीच में छू जाता था और कभी-कभी नीलिमा का सैंडल—शायद भूल से—महीप के चप्पल मडित पावो को हलके-से दबाव के साथ स्पर्श कर जाता था।

महीप के तन और मन पर आज यह जो अर्धस्फुट स्पर्श बीच-बीच में कुछ क्षणो के अन्तर से हो रहा था, उसकी प्रतिक्रिया एक निराले ही रूप

में उसके भीतर हो रही थी। इस प्रतिक्रिया के फल-स्वरूप जो अनुभूति उसके भीतर सुरसुरा रही थी वह उसके लिए एकदम नयी थी।

इकतालीसवां परिच्छेद

'इटरवल' के बाद जब नीलिमा ने महीप से कहा कि उसका जी नहीं लग रहा है और वहां से उठकर कहीं चलने का प्रस्ताव किया, तब महीप को सहसा ऐसा लगा कि नीलिमा किसी कारण से आज अत्यन्त विचलित हो उठी है और इतनी देर तक वह बरबस अपने मन की अस्थिरता और अशान्ति को दबाये हुए थी। सिनेमा-हाल के जगमगाते हुए प्रकाश मे महीप ने देखा कि नीलिमा की आखो मे एक ऐसा निराला भाव बिजली के वेग से झलक उठा जिससे उसके भीतर की एक भेद-भरी बेचैनी अप्रत्याशित रूप से व्यक्त हो पडी। महीप का हृदय दहल उठा, यद्यपि उसके अन्तर का एक अज्ञात कोना नीलिमा की उस अस्पष्ट बेचैनी के कारण पुलकित भी हो उठा था। अपने अन्तर के उस असामयिक और अनुचित उल्लास के लिए उसका अन्तर्मन स्वय अपने को तिरस्कृत भी कर रहा था।

कुछ भी हो, महीप की अन्त प्रज्ञा को यह आभास मिल गया था कि नीलिमा की आखो में उसने एक क्षण के लिए बेचैनी की जो झलक देखी है वह किसी ऊपरी और बाहरी कारण से उत्पन्न नहीं है, बल्कि किसी मूलगत कारण से वह भीतर ही भीतर छटपटा रही है। जब दोनो सिनेमा-हाल से उठकर बाहर आये, तो महीप ने देखा कि नीलिमा की आखों में वही विचित्र और रहस्यपूर्ण अन्यमनस्कता और अशान्ति झलक रही है। उसकी आंखो की पुतलिया एक अजीब घबराहट, एक अनोखे विचलन की अवस्था में बड़ी तेजी से इधर से उधर और उधर से इधर घूम रही थीं। जब वह घर से आई थी तब वह घबराई हुई थी या नहीं, इस बात का पता महीप नहीं लगा पाया था—इस बात की ओर तब उसका ध्यान ही

नहीं गया था। पर आधा फिल्म देखने के वाद ज्योंही 'इटरवल' हुआ त्योंही उसका एकदम बदला हुआ रूप महीप के सामने आया। उस आमूल वदले हुए रूप का कारण 'फिल्म' नहीं हो सकता—फिर चाहे वह कैसा ही रहस्य-रोमाचपूर्ण क्यों न हो—यह वात महीप भली भाति जानता था। तव वह कारण क्या हो सकता है ? क्षणिक विचार के बाद महीप के मन में यह वात दृढता से जम गई कि नीलिमा उस कारण को घर ही से अपने साथ लाई थी, और सिनेमा-हाल के रहस्यमय वातावरण में वह फिल्म की गति की तेजी के ही अनुपात मे वहुत वढ गया है।

महीप ने पूछा—"कहा चलने की इच्छा है ?"

नीलिमा महीप की आवाज से चौंक उठी। उसने पूछा—"क्या कहा ?"

"किस ओर चला जाय ?"

"जिधर तुम्हारी इच्छा हो।"

इसके वाद अधिक कुछ पूछना व्यर्थ समझकर महीप ने एक तागा बुलाया और जब दोनों उस पर बैठ गये तब महीप ने उससे अलफ्रेड पार्क की तरफ चलने के लिए कहा।

नीलिमा फिर अन्यमनस्क हो चली थी। आज यह एक नयी वात महीप ने उसके स्वभाव में पाई। इसके पहले कभी उसने नीलिमा को इस प्रकार विमन और मौन व्याकुलता से आच्छन्न नहीं देखा था। उसे अपने मन की इस प्रवृत्ति पर स्वय आश्चर्य हो रहा था कि नीलिमा के मन की उस असाधारण विकलता और उदासी से खिन्न होने के वदले वह भीतर-ही-भीतर पुलकित और प्रसन्न हो रहा था। न जाने क्यो, उसे लग रहा था कि नीलिमा के मन की खिन्नता उसके लिए किसी शुभ-सूचना की द्योतक हो सकती है।

तागे के हिचकोलो के कारण नीलिमा की साडी का छोर वीच-वीच में

महीप को छू जाता था, और केवल इतना ही स्पर्श उसे किसी अनन्त रहस्यमय प्रेमलोक की अनिर्वचनीय काव्य-अनुभूति से परिचित करा रहा था। "नहीं, नीलिमा के प्रति मेरी प्रेमाकाक्षा तनिक भी कम नहीं हुई है, बल्कि व्यवधान और बाधा, अपमान और उपेक्षा से उसकी आग पहले से कई गुना अधिक सुलग गई है।" महीप मन-ही-मन कह रहा था। आज पहली बार वह अपने प्रेम के पागलपन के परिमाण का अनुभव किसी हद तक करने में समर्थ हुआ। और इस अनुभव से भीतर ही भीतर चौंक उठा। आज नीलिमा के उस अनमने और मौन विषाद ने उसके भीतर के किसी चोर-दरवाजे को दबाकर एक निराली ही तिलस्माती दुनिया के लिए रास्ता खोल दिया था जिसका पता इतने दिनो तक उसे नहीं था। उस रहस्यमय अन्तर्लोक के भीतर उसने देखा कि वहा वे तूफानी तरगें उमड रही है जो समुचित परिचालन से केवल उसके अपने जीवन मे ही नहीं, बल्कि बाहर के विश्व-जीवन मे भी उथल-पुथल मचा सकती है, वह निर्धूम आग दहक रही है जो मृत, जड और विभ्रान्त ससार में सजीवन, सम्मोहन और समाश्वासन का मन्त्र फूक सकती है। पर उस सन्निहित शक्ति के सचालन के लिए आवश्यकता है उस नारी-शक्ति की जो उसकी बगल मे बैठी हुई अपने सीमित व्यक्तिगत स्वार्थ के सघर्ष से उत्पन्न अन्तर्द्वन्द्वो मे बुरी तरह उलझी हुई है। क्या उस शक्ति को किसी भी उपाय से हस्तगत करना उसके जीवन का सबसे प्रधान और सबसे आवश्यक कर्तव्य नहीं है?

एक मोड पर जाते हुए तागे ने ऐसे जोर से झटका खाया कि दोनों के घुटने एक दूसरे से बड़े जोरों से टकरा गये। दोनों के स्वप्न भग हो गये। नीलिमा संभलकर बैठ गई, पर बोली कुछ भी नहीं।

तागे ने जब पार्क के भीतर प्रवेश किया तब कुछ ही दूर भीतर पहुँचने पर महीप ने उसे रुकवा दिया। दोनो उतरे और एक अशोक के पेड़ के नीचे एक अपेक्षाकृत अंधेरे स्थान मे एक बेंच पर बैठ गये। बैठने के बाद भी

नीलिमा चुप रही। महीप को उसका वह रहस्यमय और अशोभन दीर्घ मौन अब असह्य प्रतीत होने लगा। अन्त में वह बोल उठा—"तुम्हारी यह चुप्पी मुझे अजीब-सी लग रही है, नीलिमा। क्या तुम्हारी तबीअत अचानक कुछ खराब हो गई है? अगर ऐसा हो, तो कहो, तुम्हें तुम्हारे घर पहुँचा आऊँ?"

"चलो!"—सहसा नीलिमा के मुह से निकल पडा। पर फिर तत्काल ही वह बोल उठी—"पर आज घर वापस जाने के लिए मेरे पाव नहीं उठ रहे है।"

महीप की रीढ के निचले सिरे से लेकर ऊपर तक एक अनोखी सुरसुरी-सी दौड गई। एक अस्पष्ट आशा और आशका की मिश्रित अनुभूति भूत की तरह उसे घर दबाने लगी। उसने दबी हुई आवाज में, जिससे उसका दुर्दमनीय कौतूहल, उत्सुकता और उत्कण्ठा एक साथ प्रकट होती थी, पूछा—"क्यों?"

"मै मा से झगडकर आई हू।"

"क्यों?"

"उसने मेरी चाय में चीनी ज्यादा डाल दी थी।"

"इस समय मजाक रहने दो, सच-सच बताओ कि बात क्या हुई।"

'सच ही तो कहती हूँ। झगडा इसी बात से शुरू हुआ। उसे मालूम है कि मै चीनी बहुत कम लेती हूँ—एक प्याले में डेढ चम्मच से ज्यादा नहीं लेती। पर उसने आज चार चम्मच से भी अधिक चीनी डाल दी "

"वह शायद किसी और बात की चिन्ता में डूबी होंगी।"

"सम्भव है। उस चिन्ता का कारण भी मै जानती हूँ। जो भी हो, मै इतनी ही बात से उत्तेजित हो उठी और चाय पीना छोडकर बड़बडाती हुई उठ खडी हुई। मा ने मुझे बहुत समझाया पर वह जितना ही समझाती थीं मै उतना ही बिगड उठती थी। अन्त में मा भी उत्तेजित हो उठीं और मुझे डाट बताने लगीं। मै भी पलटे में उन्हें जली-कटी सुनाने लगी। बात यहा तक पहुँची कि मैने मा से कह दिया कि, मै ठाकुर साहब से हरगिज़

विवाह नहीं करूँगी। आज पहली बार मैंने मा से इस तरह की बात कही थी। उनका चेहरा एकदम स्याह हो गया था। उसके बाद वह कुछ बोलीं नहीं, केवल अत्यन्त निराशा और आश्चर्य से मेरी ओर देखती रह गई। मैं अपने कमरे में जाकर, भीतर से दरवाजे में सिटकनी लगाकर पलँग पर लेट गई। बहुत देर तक सिसकियां भरती रही। अपने रोने का कोई कारण स्वयं मुझे नहीं मालूम था। बहुत देर तक मैं उसी अवस्था में लेटी रही। तुम्हारे साथ जो 'एप्वायंटमेंट' मैं ने किया था उसे पूरा करने की भी इच्छा नहीं होती थी, और मैं दिन-भर और रात-भर उसी हालत में पलग पर लेटे-लेटे चुपचाप खूब जी खोलकर रोते रहना चाहती थी। पर जब समय हो आया तो मैं सहसा उठ बैठी और जल्दबाजी के साथ कपड़े बदलकर किसी को कोई सूचना दिये बिना चली आई। पर तुम्हारे पास आने पर मेरा चित्त शान्त होने के बजाय और अधिक बेचैन हो उठा है।" यह कहकर नीलिमा ने एक लम्बी आह भरी और उस आह को दबाने की तनिक भी चेष्टा नहीं की।

उसकी उस आह का छुतहा प्रभाव महीप पर भी पड़ा और उसके मुह से भी बरबस एक अस्पष्ट-सी आह निकल पड़ी।

कुछ देर तक दोनों चुप रहे। सामने कुछ दूर, पार्क के किनारे-किनारे, एक मोटर सर्चलाइट का तीव्र प्रकाश बिखेरती हुई धीमी गति से चली जा रही थी। महीप की आंखें सम्मोहित-सी उसी गतिशील प्रकाश का अनुसरण कर रही थीं। जब मोटर आंखों से एकदम ओझल हो गई, तब महीप को जैसे किसी बात का स्मरण हो आया और वह नीलिमा के पास से कुछ हटकर सभलकर बैठ गया।

बयालीसवां परिच्छेद

वह अशोभन मौन काफी देर तक जारी रहा। उसके बाद महीप ने फिर एक बार जैसे करवट बदली और नीलिमा की ओर आधी दृष्टि से देखा

हुआ वह अत्यन्त शान्त, धीर और गम्भीर भाव से बोला—"देखो नीलिमा, मैं पहले ही यह जानता था कि तुमने आज मेरे साथ अकेले में मिलने की जो बात तय की है, वह व्यर्थ है और उसका कोई महत्त्व नही है। यह जानता हुआ भी मैं जो तुम्हारा प्रस्ताव टाल न सका इसका कारण तुम समझ न सकोगी, ठीक जिस प्रकार मैं कभी यह नहीं समझ पाऊंगा कि तुम मुझसे न मिलने का इरादा करने पर भी ऐन मौके पर बिना कुछ सोचे-समझे सीधी नियत स्थान पर क्यों चली आई। मालूम होता है कि हम दोनों के भीतर कोई ऐसा रहस्य छिपा है जो दोनो के अनजान में दोनो को बार-बार बरबस सही रास्ते की ओर ले जाता है, और फिर सहसा बीच ही में, बिना किसी भी प्रकट कारण के, दोनों को भरमाकर एक दूसरे से बिलकुल उलटी दिशाओं में ढकेल देता है। यह रहस्य क्या है, वह अतीन्द्रिय है या ज्ञानेन्द्रियों की परिधि के भीतर ही पर्यवसित है, यह मैं इस समय कुछ बता नहीं सकता—क्योंकि मैं नहीं जानता। पर इतना मुझे अवश्य बोध होता है कि यह 'रहस्य' एक-न-एक दिन हम दोनों में से किसी एक के लिए—या सम्भवत. दोनो के लिए—अत्यन्त घातक सिद्ध होगा। हम दोनों एक दूसरे के निकट रहे या दूर, वह हम दोनों के जीवन में, हम लोगो के अनजान में ऐसी-ऐसी जटिल उलझनें उत्पन्न करता रहेगा, ऐसी-ऐसी धोखे की टट्टिया तानता रहेगा, ऐसी प्राणघाती खाइया खोदता रहेगा कि जीवन में एक घडी के लिए भी दोनो में से किसी को चैन नहीं मिलेगा, किसी भी काल में, दोनो के जीवन में शान्ति नहीं रहेगी, सब समय एक अस्पष्ट हाहाकार-भरी अनुभूति हिम-प्रदेश के प्राणहीन देवदारु-वन की तरह शून्य में निष्फल उसासें भरती रहेगी—कभी करुण मर्मर स्वर में सिसकारती हुई और कभी दैत्य-गर्जना के तूफानी स्वर में फुफकारती हुई।"

महीप यद्यपि बहुत धीरे से बोल रहा था तथापि उसका अन्तरावेग परिपूर्ण चाप से नीलिमा के समस्त मन और समस्त प्राण को अभिभूत कर रहा था। आज पहली बार उसने महीप के व्यक्तित्व के उस आश्चर्यजनक

स्वरूप का अनुभव किया जिसकी कल्पना एकान्त में महीप की कविताए पढते समय उसके मन मे वरवस उठने लगती थी, पर महीप की प्रत्यक्ष उपस्थिति मे जो न जाने कहा विलीन हो जाती थी। उस स्तब्ध रात्रि मे पार्क के उस एकान्त कोने मे महीप ने जब अपने अन्तर्दर्शी कवि-हृदय के वाहर का गाढा नीला—वल्कि काला—पर्दा सहसा, अप्रत्याशित रूप से नीलिमा के आगे खोल दिया तो वह चौंक उठी। महीप ने न जाने किस अपरिचित लोक के रहस्यमय जादू का मन्त्र फूकना शुरू कर दिया, नीलिमा ठीक से कुछ समझ न पाई। पर वह जादू किसी रासायनिक तेजाव की तरह उसकी आत्मा मे पडकर उसके भीतर विचित्र रासायनिक प्रतिक्रियाए उत्पन्न करने लगा। पहली प्रतिक्रिया एक रोमाचकर आश्चर्य और भय के मिश्रण के रूप में हुई और वह वरवस, विना कुछ सोचे, सहसा महीप से लिपट गई। अत्यन्त भीत स्वर में वह प्राय. फुसफुसाती हुई कहने लगी—"तुम यह क्या कहते हो महीप! क्यों ऐसा भयकर अभिशाप तुम्हारे भीतर से निकल रहा है? क्यो तुम मुझे इस तरह डरा रहे हो?" कहती हुई वह इधर-उधर अपनी वगल में और अपने पीछे, अत्यन्त घवराई हुई दृष्टि से देखने लगी, जैसे कुछ अद्भुत, अज्ञात और रहस्यमय जीव उसके चारो ओर सचमुच सिसकारिया भर रहे हो या फुफकार रहे हों। उसने द्विगुण प्रवलता से महीप को दोनो हाथो से जकड लिया।

महीप ने हिम-प्रदेश के विजन देवदारु-वन के हाहाकार की जो वात कही थी, उसका स्पष्ट अनुमान करना नीलिमा के लिए असम्भव था, क्योंकि उसने कभी कोई हिम-प्रदेश देखा नही था, और विजन देवदारु-वन के हाहाकार का कोई अनुभव उसे नही था, तथापि इसी एक वात ने महीप की दूसरी वातो की अपेक्षा अपने मर्मान्तक प्रभाव से उसे अत्यन्त विचलित कर दिया था। न जाने कौन रहस्यमय दिव्य प्रकाश अचानक नीलिमा की आखों के आगे झलक उठा था, जिसमे उस क्षण में महीप उसे सर्वदर्शी अन्तर्यामी के रूप मे लगने लगा, जिसके आगे उसके (नीलिमा के) अन्तर्लोक की भून,

वर्तमान और भविष्य की प्रत्येक अनुभूति जैसे स्फटिक-निर्मल जल के छिछले कुण्ड के नीचे चमकनेवाले ककड़ों की तरह स्पष्ट विभासित हो रही थी और छिपी नहीं रह सकती थी। आज महीप का 'बबुआ' रूप एकदम विलीन हो गया था। नीलिमा को ऐसा लगता था जैसे शारीरिक दृष्टि से भी वह कद में बहुत लम्बा हो चला है और बेंच पर बैठा हुआ भी अपने पीछे खड़े अशोक के पेड़ से टक्कर लेना चाहता है। उस क्षण के लिए वास्तव में—शाब्दिक अर्थ में—महीप सनातन विराट् पुरुष के रूप में उसके आगे व्यक्त हो उठा, जिसकी शरण में माथा टेकने के सिवा दूसरा कोई चारा नीलिमा को अपनी युग-युग से पीड़ित आत्मा के त्राण का नहीं दिखाई देता था।

अकस्मात् उसका यह काया-पलट—बल्कि उसकी आत्मा का मूलगत परिशोधन—कैसे, किस स्पर्शातीत माया के प्रभाव से हो गया, यह सोचने और समझने की न तो शक्ति ही नीलिमा में शेष रह गई थी और न प्रवृत्ति ही, वह केवल एक आश्रय-अन्वेषिणी सुकुमार लतिका की तरह तत्काल के लिए पूर्णत समर्पणशील होकर, महीप के गले में अपना दाहिना हाथ डाले और उसके कन्धे पर अपना नगा सिर स्थापित किये अर्ध-मूर्च्छित अवस्था में मोह-मग्न हो रही थी।

महीप परिस्थिति से ऊपर उठने की प्रबल चेष्टा कर रहा था। वह इतना अन्धा नहीं था कि यह भी न जानता हो कि नीलिमा की तत्कालीन सम्मोहित मानसिक स्थिति क्षणिक हिप्नोटिक प्रभाव के दूर होने के साथ ही इस तरह विलीन हो सकती है, जैसे कभी उसका अस्तित्व किसी रूप में रहा ही न हो। इसलिए वह पूरी इच्छा-शक्ति के प्रयोग से अपने को तब तक स्थिर रखने की चेष्टा कर रहा था जब तक इस बात का ठीक पता न चल जाय कि नीलिमा के मन के ऊपरी तूफान और उथल-पुथल के नीचे स्थित उसकी स्थिर भावना में कोई वास्तविक परिवर्तन आया या नहीं।

वह चुपचाप सिकुड़ा, सिमटा हुआ बैठा रहा, यद्यपि नीलिमा के आत्म-समर्पित शरीर के स्पर्श से एक मर्मघाती पुलक की अनुभूति उसे बुरी तरह विकल कर रही थी। आज जब उसके जीवन की चरम साधना सफल होने जा रही थी तब न जाने उसके भीतर का कौन अज्ञातवासी उसे परिपूर्ण शक्ति से निश्चल और निरुद्वेग बने रहने के लिए अपने वज्र-कठिन आदेश का पालन करने को बाध्य कर रहा था।

सहसा महीप को पता चला कि उसकी बाईं बाहु का ऊपरी भाग भीग गया है। वह चौंक पड़ा। अधिक कुछ सोचे-समझे बिना उसने सहसा नीलिमा की ठुड्डी पकड़ ली और दूर जलती हुई बिजली के क्षीण प्रकाश में उसकी आंखों में चमकती हुई बूंदों को देखकर घबराये हुए स्वर में बोला—"नीलिमा, यह क्या! तुम क्या रो रही हो?"

नीलिमा कुछ न बोलकर दायां हाथ महीप के कन्धे पर रक्खे हुए बायें हाथ से आंचल पकड़कर आंखें पोंछने लगी। महीप की बुद्धि बुरी तरह भरमा गई थी। वह अपने को एक ऐसी विचित्र परिस्थिति में पा रहा था जो चारों ओर काले-काले रहस्यमय पटों से घिरी हुई थी, जिनके न बीच में कुछ दिखाई देता न परे। न वह नीलिमा की मनोभावना को ठीक से कुछ समझ पा रहा था, न अपना कर्तव्य ही निर्धारित कर पा रहा था। पर इतना वह अवश्य समझ रहा था कि नीलिमा के मन में चाहे कोई बात या बातें हों, उसे हर हालत में दिलासा देना उसका कर्तव्य है—'फर्स्ट एड' में चूक हो जाने से सम्भव है उसके भीतर की कोई गहरी चोट 'सेप्टिक' हो जावे। इस भावना ने महीप की उस निश्चलता को सहसा बिजली के वेग से काफूर कर दिया जो इस समय तक उसके मन को बरबस आच्छन्न किये हुए थी। उसकी समस्त मानसिक बाधाएं और द्विविधाएं न जाने कहां विलीन हो गईं। किसी अज्ञात भीतरी प्रेरणा ने परिचालित पुतले की तरह उसने भी बिना कुछ सोचे-समझे नीलिमा

के गले पर अपना बाया हाथ डाल दिया और दाहिने हाथ से उसकी ठुड्डी उसी तरह पकडे हुए अत्यन्त सहृदय, सवेदनात्मक और साथ ही आवेशपूर्ण स्वर में बोला—"नीलिमा, घबराओ नही, सँभलकर बैठ जाओ, चलो तुम्हे घर पहुँचा दू।"

"नहीं, नहीं, मै आज घर किसी भी हालत में नहीं जाऊगी।" प्राय सिसकती हुई आवाज में नीलिमा बोल उठी। वह अभी तक महीप के कन्धे पर अपना माथा टेके हुए थी।

महीप को ऐसा लगा जैसे उसका हृदय अपने स्थान से हटकर नीचे किसी गहरे गड्ढे में गिरने को है। उसे फिर एक बार उस दिन की बात याद आई जब नीलिमा उसके विदा होने के समय अपने बँगले के फाटक के बाहर मिलने आई थी। तब महीप के प्राणो की गति कई हजार 'वाल्ट' की शक्तिशाली बिजली के वेग से चल रही थी, और उसी असाधारण प्राण-शक्ति की प्रेरणा से उसने नीलिमा से प्रार्थना की थी कि वह उसी क्षण, बिना कुछ सोचे-विचारे उसके साथ चली चले। तब नीलिमा ने क्षणिक द्विविधा के बाद स्पष्ट शब्दों में इनकार कर दिया था और अपनी किसी अज्ञात विवशता का उल्लेख करके उससे क्षमा मागी थी। महीप सोचने लगा कि उस समय की और आज की परिस्थियो में कितना अन्तर है! आज नीलिमा उसके समझाने पर भी घर को लौट चलना नही चाहती, और यदि वह—महीप—चाहे, तो वह इस समय ससार के किसी भी अज्ञात स्थान के लिए उसके साथ बिना क्षण-भर की द्विविधा के चलने को तैयार है। पर क्या उसकी उस अस्थायी मानसिक परिस्थिति का (महीप को पूरा विश्वास था कि नीलिमा की तत्कालीन असाधारण मानसिकता अस्थायी है) लाभ उठाना न्यायोचित होगा? यह प्रश्न चीर-फाड के लिए उद्यत छुरे की पैनी धार की तरह महीप के कलेजे को छुए हुए था। आज महीप अपने प्राणों में कई हजार 'वाल्ट' वाली बिजली की शक्ति नहीं पा

रहा था—आज जैसे 'स्विच आफ' हो गया था। इसका कारण था। उस दिन की घटना की चरम परिणति के बाद जब नीलिमा ने अपनी 'विवशता' का उल्लेख किया था, और यह संकेत किया था कि वह सम्भवतः उसके अपने 'मन की ही विवशता है', तब से महीप की भीतरी आंखें चौकन्नी हो गई थीं। उसके बाद अभी दो दिन पहले शान्ता के यहां दावत के अवसर पर नीलिमा ने शारदा देवी के सामने उसे बेवकूफ बनाया था। आज वही नीलिमा इस तरह उसके कन्धे का आश्रय पकड़कर सिसक रही है, जैसे महीप के सिवा उसके विकट भंवर में डोलते हुए जीवन का कोई दूसरा आधार ही न हो। उस विचित्र परिस्थिति में महीप की बुद्धि कोई भी निश्चित कर्तव्य निर्धारित करने में अपने को असमर्थ अनुभव कर रही थी।

"क्या कोई शक्ति इस अनन्त रहस्यमय विश्व में ऐसी नहीं है, जो मेरे अन्तःकरण को यह सुझा सके कि ऐसी संकट की घड़ी में मेरे लिए सबसे उचित कर्तव्य क्या हो सकता है? भगवान्! इस भूलभुलैया के चक्कर को पार करने का रास्ता मुझे दिखा दो!"

सिद्धान्त रूप से महीप यद्यपि ईश्वर की दयामयी शक्ति पर विश्वास नहीं करता था, तथापि उसका घनघोर रूप से विभ्रान्त अन्तर्मन आज चरम संकट के क्षण में ईश्वर का काल्पनिक सहारा पकड़ने को उतावला हो उठा।

तेंतालीसवां परिच्छेद

काफ़ी देर तक हतबुद्धि अवस्था में महीप बाहर से मौन रहकर अन्तरालाप—बल्कि अन्तर-प्रलाप—में निमग्न रहा। उसके बाद सहसा उसमें न जाने कहां से स्फूर्ति आ गई, और उसने निश्चय कर लिया कि परिस्थिति चाहे कैसा ही रंग क्यों न बदले, वह हर हालत में साहसपूर्वक उसका सामना करेगा।

अत्यन्त धीर स्वर में उसने कहा—"तो तुम कहां चलना चाहती हो?"

"मैं मा के पास नहीं जाऊंगी, उसके अलावा चाहे कहीं भी ले चलो।"

"तो उठो!"—बिना ठीक से कुछ सोचे महीप बोल उठा, और नीलिमा का दायां हाथ पकड़कर वह उसे उठाने लगा।

नीलिमा धीरे से, प्राय अर्द्धमूर्छित अवस्था में, उठी। महीप का हाथ कुछ ढीला पड़ते ही वह गिरने लगी थी, पर महीप ने तत्काल उसे फिर से मजबूती से पकड़ लिया। बड़ी कठिनाई से महीप उसे उस स्थान तक ले जाने में समर्थ हुआ जहा तागा खड़ा था। जब दोनों तागे पर बैठ गये तो महीप सोचने लगा कहा चलना चाहिए। जब तागा पार्क के बाहर चला आया, तब तागेवाले ने पूछा—"बाबूजी, किधर चलूं?"

महीप अभी तक कुछ सोच नहीं पाया था। क्षण-भर के लिए उसने फिर सोचा, उसके बाद सहसा बोल उठा—"बड़े स्टेशन की तरफ।"

वह स्वय नहीं जानता था कि स्टेशन चलने के लिए उसने क्यों कहा। तागा शहर की प्रधान सड़क से होकर चलने लगा। नीलिमा अभी तक अर्ध-चेतनावस्था में झूम-सी रही थी और महीप, इस डर से कि कहीं तागे के हिचकोले से वह गिर न पड़े, उसका बाया हाथ पकड़े था, यद्यपि स्वय उसका आधा मन निद्रा-विचरण की-सी दशा में भ्रमित हो रहा था।

जब तांगा स्टेशन-रोड की तरफ मुड़ा तब महीप का भ्रमित मन वास्तविकता की ओर लौटने लगा। एक बार उसने सोचा कि तागेवाले से लौट चलने को कहे और नीलिमा के न चाहने पर भी उसकी मा के पास पहुँचा आवे। पर मन के इस इरादे को उसने वाणी का रूप नहीं दिया और तागा तेजी से स्टेशन की ओर दौड़ा चला गया।

तागे के घोड़े ने स्टेशन के फाटक के भीतर घुसकर बरसाती के भीतर पहुँचकर ही विश्राम लिया। स्टेशन के भीतर कुलियों और यात्रियों का कोलाहल और किसी एक गाड़ी के इजिन की सीटी की आवाज सुनकर

नीलिमा की योग-निद्रा टूटी। उसने अकृत्रिम आश्चर्य से महीप से पूछा—"यह तुम कहा चले आये?"

महीप ने अपने भीतर की डावाडोल अवस्था और घबराहट को बल-पूर्वक छिपाकर ऊपर अत्यन्त शान्त और गम्भीर भाव से कहा—"हम लोग बड़े स्टेशन पहुँच गए हैं। कानपुर को गाडी इसी स्टेशन से जाती है।"

"कानपुर?" फिर उसी अकपट आश्चर्य से नीलिमा ने पूछा।

पर महीप की बुद्धि तब तक कुछ स्थिर हो चुकी थी। बीच स्टेशन में नीलिमा के उस आश्चर्यसूचक प्रश्न का कोई उत्तर देकर बात को बढाना निरापद नहीं है, यह वह जानता था। इसलिए प्रश्न को टालकर उसने नीलिमा का हाथ पकडकर उससे धीरे से उतरने को कहा। तांगे वाले को उचित किराया देकर, उसे विदा करके, वह नीलिमा को स्टेशन के भीतर एक प्रकार से खींच ले गया।

पास ही इन्टर क्लास का टिकट-घर था। वह दूसरे दर्जे के टिकट खरीदना चाहता था, पर उसके बटुवे में रुपयों की कमी थी और नीलिमा से वह उस समय कुछ मागना नहीं चाहता था। नीलिमा से दो मिनट खडे रहने को कहकर वह ड्योढे दर्जे के दो टिकट खरीदने के इरादे से खिडकी के पास गया। दो-चार आदमी और टिकट खरीदने के इरादे से खडे थे और टिकट बेचनेवाला बाबू व्यस्त था। दो मिनट के स्थान पर प्राय पन्द्रह मिनट लग गये। महीप बीच-बीच मे घबराहट के साथ पीछे नीलिमा की ओर देखता जाता था। उसे भय था कि नीलिमा के मन की तत्कालीन असाधारण अवस्था में कहीं वह चक्कर खाकर गिर न पड़े। उसका अनुमान कुछ गलत भी नहीं था। नीलिमा के पाव सचमुच लडखडा रहे थे और उसका सिर चकरा रहा था। वह धीरे से पास ही दीवार के पास जाकर उस पर पीठ अटाकर खडी हो गई।

जब महीप टिकट खरीदकर आया तो नीलिमा का बाया हाथ पकडकर

उसने अत्यन्त स्निग्ध स्वर में भीतर प्लेटफार्म की ओर चलने के लिए कहा। नीलिमा आश्चर्यजनक रूप से अनमनी हो उठी थी। बिजली की तेज रोशनी में महीप ने देखा, उसकी आखो में एक अस्वाभाविक प्रकाश चमक रहा था। महीप भीतर-ही-भीतर चौंक उठा और डर गया। पर बाहर से उसने शान्त भाव जताते हुए कहा—"चलो, गाडी आने का समय हो चला है।"

सहसा नीलिमा एक विचित्र और भयावने ढग से चीख मारती हुई बोल उठी—"तुम मुझसे कहा चलने के लिए कह रहे हो? यहा तुम मुझे क्यों ले आये? किसने तुमसे स्टेशन चलने को कहा था? मुझे घर ले चलो।" कहकर वह धाड़ें मार-मारकर रोने लगी। चारो ओर से भीड जमा हो गई और एक खासा तमाशा लग गया। महीप हर तरह समझाने की कोशिश करने लगा, पर नीलिमा किसी तरह मानती ही नहीं थी—केवल रोती चली जाती थी। उसे सम्भवत उस समय न भीड का ध्यान था, न अपनी वास्तविक परिस्थिति की कोई खबर थी और न महीप की। महीप हौलदिल हो उठा था। उसके पहले अपने जीवन में कभी उसने अपने को वैसी परिस्थिति में नहीं पाया था। स्टेशन के वहिर्भाग की सारी तमाशबीन जनता की कुतूहली और व्यग तथा मुसकान-भरी दृष्टि का लक्ष्य बना हुआ था। इसके अलावा उसे एक दूसरी ही बात का भय होने लगा था, जिसकी आशका उसका अन्तर्मन पहले ही अस्पष्ट रूप से करता आ रहा था।

जहा डर वहां बाघ का घर। सहसा महीप ने भीत दृष्टि से देखा कि रेलवे-पुलिस का एक कर्मचारी—जो पोशाक-पहनावे से अपेक्षाकृत ऊचे ओहदे का मालूम होता था—न जाने कहा से अपने शिकार की गन्ध सूंघकर घटनास्थल पर आ पहुंचा। पुलिस-कर्मचारी को आते देखकर भीड और ज्यादा बढ़ गई और घटनास्थल के अधिक-से-अधिक निकट पहुंचने के उद्देश्य से लोग एक-दूसरे को धक्का देने लगे।

पुलिस-कर्मचारी ने आते ही अपनी धीर-गम्भीर आंखों से, जो अत्यन्त कटु क्रूरता और मार्मिक व्यंग को पिये हुए थीं, महीप की ओर देखते हुए प्रकट रूप से शान्त स्वर में कहा—"क्यों साहब, मामला क्या है?"

महीप साहस बटोर कर बोला—"मामला कुछ भी हो, आपसे कोई सरोकार नहीं है।"

इस उत्तर से पुलिस-कर्मचारी तिलमिला उठा। बोला—"मुझसे सरोकार है कि नहीं, यह बाद में मालूम होगा, पर अभी मेहरबानी करके बताइए कि यह क्यों रो रही है और आप लोग कहां जाने के इरादे से स्टेशन आये हुए हैं?"

"हम लोग कहीं भी जाने के इरादे से आये हुए हों, आपको कुछ भी बताने के लिए मैं मजबूर नहीं हूँ।" महीप ने उसी दृढ़ता से कहा।

"पर आपको बताना ही होगा। आप लोगों की वजह से यहां इतनी भीड़ जमा हो गई है, जिससे मुसाफिरों को आने-जाने में दिक्कत उठानी पड़ रही है। इसके अलावा, मामला ऐसा नजर आता है, जिसमें दस्तन्दाजी करना मेरे लिए बहुत जरूरी है।" यह कह कर पुलिस-कर्मचारी सीधे नीलिमा के पास जा पहुँचा और बोला—"क्या आप मेहरबानी करके यह बतावेंगी कि आप क्यों रो रही हैं और आपको कहां जाना है?"

नीलिमा को हिस्टीरिया का-सा जो 'फिट' आया था, पुलिस-कर्मचारी की उपस्थिति में वह पल भर में काफूर हो गया था। उसके होश ठिकाने लग गये थे। उसने कहा—"मेरे पांव में मोच आ गई थी, इसलिए मैं रो रही थी। हम लोग स्टेशन में यों ही टहलने के इरादे से चले आये थे। हमें कहीं नहीं जाना है। घर वापस चले जायेंगे।"

"पर टिकट तो आप लोग कटा चुके हैं! क्या साहब?" महीप की ओर कुटिल दृष्टि से देखते हुए पुलिस-कर्मचारी बोला।

"जी—नहीं!"—हकलाते हुए महीप ने कहा।

"माफ कीजिएगा, मैं तलाशी लेने के लिए मजबूर हूँ।"

महीप के प्रबल प्रतिरोध के बावजूद उस भीमकाय और (न जाने जीवन के किस सुख और सन्तोष के कारण) हृष्ट-पुष्ट पुलिस-कर्मचारी ने उसकी तलाशी ली और दोनों टिकट उसकी जेब से बरामद कर लिये।

"तो जनाब कानपुर को तशरीफ ले जा रहे थे! और (नीलिमा की ओर कुटिल व्यंगभरी दृष्टि से घूर कर) अब आप घर को लौट जाना चाहती हैं?"

"जी हां,"—आश्चर्यजनक दृढ़ता से नीलिमा ने कहा।

"क्या मैं पूछ सकता हूँ, ये आपके कौन लगते हैं?" महीप की ओर संकेत करते हुए उसने नीलिमा से प्रश्न किया।

"यह मेरे 'हसबैंड' हैं,"—नीलिमा ने उसी आश्चर्यजनक धैर्य और सुदृढ साहस के साथ उत्तर दिया। महीप अपनी चरम दुर्गति की उस परिस्थिति में भी नीलिमा की ओर विस्मित दृष्टि से आँखें फाड़-फाड़कर देखता रह गया।

पुलिस-कर्मचारी भी नीलिमा के उत्तर से कुछ क्षण के लिए ठिठक कर रह गया। पर वह बड़ा घाघ और अपने पेशे में बरसों से घिसा हुआ था। उसने कहा—"माफ कीजिएगा, एक शरीफ औरत की बात पर यकीन करने पर भी कानूनन् मैं इस बात के लिए मजबूर हूँ कि आपके साथ आपके घर चलकर आपके बयान की सचाई का सबूत—"

"आपको कोई अधिकार मेरे साथ मेरे घर चलने का नहीं है!" नीलिमा ने तीव्र क्रोध के आवेश में अँगरेजी में कहा।

"पर मुझे चलना ही होगा। अगर आप लोग रजामन्दी के साथ नहीं चलेंगे तो मुझे जबरन आप लोगों को पकड़कर ले चलना होगा।"

पुलिस-कर्मचारी का स्वर यद्यपि अभी तक पहले की ही तरह धीर और शांत बना हुआ था, तथापि उसके स्वर में कठोरता अधिक थी। महीप अपनी

स्थिति की हीनता के बोझ से लज्जा और ग्लानि से गडा जा रहा था और इस कदर हीलदिल हो उठा था कि एक शब्द भी उसके मुह से नहीं निकल पाता था। नीलिमा का भी साहस धीरे-धीरे क्षीण पडता चला जा रहा था। वह कुछ देर तक वडवडाती रही, पर जव पुलिस-कर्मचारी अपने निश्चय पर वज्र की तरह अटल रहा और अधिक प्रतिरोध करने पर वल-प्रयोग की धमकी दिखाने लगा, तव अन्त मे वह भी ढीली पड गई और तग आकर वोली—"अच्छी वात है, यदि आप यही चाहते है तो चलिए।"

दो कान्स्टेविल पहले ही से पास ही खडे थे। उनमें से एक को पुलिस-कर्मचारी ने एक तागा ले आने का आदेश दिया। दो मिनट के भीतर एक तागा आ पहुँचा। पुलिस-कर्मचारी ने नीलिमा और महीप दोनो को लक्ष्य करके कहा—"तशरीफ ले चलिए।" दोनो मन मार कर मौन भाव से तागे की तरफ आगे वढे। पुलिस-कर्मचारी आगे तागे वाले के साथ वैठ गया और नीलिमा तथा महीप पीछे। नीलिमा ने अपने मकान का पता वता दिया और तागे का स्वस्थ घोडा तागे वाले के एक हलके झटके का इशारा समझ कर सरपट दौडा चला गया।

चौवालीसवां परिच्छेद

रास्ते भर महीप निरतिशय आत्मग्लानि के मर्मघाती मूक प्रहारो को, सिर नीचा किये, सहन करता चला जा रहा था—अपने दातो को भीतर ही भीतर पीसता हुआ। वार-वार वह अपनी छाती मे छुरा भोकने की कल्पना कर रहा था, यद्यपि उसका अन्तर्मन भली-भाति जानता था कि इस प्रकार का कोई काण्ड करने में वह स्वभाव से असमर्थ है। "पर इस दारुण अपमान—इस अत्यन्त दयनीय दुर्गति—का क्या उपचार होगा, जो आज अप्रत्याशित रूप से मेरी हुई है।" वह मन-ही-मन प्रश्न करने लगा। नीलिमा से सम्बन्धित जितनी भी मीठी तथा कडवी स्मृतिया आज तक उसके मन मे वर्तमान थी वे सब उसे कसैली—वल्कि विषैली—लगने लगी थी। इतने दिनों तक अपने मन

शारदा देवी सहसा अत्यन्त गम्भीर हो उठीं और सजग दृष्टि से एक बार चारो ओर देखकर बहुत ही धीमी आवाज में उन्होंने कहा—"मेरा अनुमान सत्य जान पड़ता है। बुधई ने, जो शिकार-पार्टी के साथ था, मुझे बताया है कि धीराजसिंह की मृत्यु किसी की गोली लगने से हुई है, और गोली लगने पर धीराजसिंह ने मृत्यु के ठीक पहले अपने खून से एक कपड़े पर कुछ लिखा था। क्या लिखा था, इस बात का पता अभी तक किसी को नहीं है। पर ज्योंही उन्होंने लिखना समाप्त किया त्योंही ठाकुर लक्ष्मीनारायणसिंह दौड़े हुए उनके पास जा पहुँचे और उन्होंने चुपके से वह रक्ताक्षरो से युक्त कपड़ा अपने पास छिपाकर रख लिया। बुधई दूर से चुपचाप यह दृश्य देख रहा था। पर उसने देखा अनदेखा कर दिया—सम्भवत कायरतावश। पर बुधई का कहना है कि ठाकुर धीराजसिंह को गोली कैसे लगी, यह वह नहीं जानता। गोली की आवाज सुनने पर उसका ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ था।"

महीप मर्माहत-सा होकर बैठा रहा। कुछ क्षणों के लिए उसमें ऐसी अन्यमनस्कता आ गई कि वह शून्य दृष्टि से न मालूम क्या देखता रहा।

कुछ देर बाद शारदा देवी उस गहन-गम्भीर मौन वातावरण को अत्यन्त निर्ममता से बेधती हुई बोल उठीं—"आज मै आपको एक महत्त्वपूर्ण समाचार सुनाने के लिए आई हूँ। इसी महीने की २० तारीख को नीलिमा के साथ ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह का विवाह निश्चित हो चुका है।"

इस बार महीप सचमुच जैसे उछल पड़ा। वह अकचकाता हुआ सीधी तरह से बैठ गया और भ्रान्त दृष्टि से बोला—"आप यह क्या कहती है ? क्या यह पक्की खबर है या कोई उड़ती हुई अफवाह आपके सुनने में आई है ?"

"यह अफवाह नहीं है, जनाब, यह ध्रुव सत्य है। आपको अब अन्तिम रूप से इस स्थिति का सामना करने के लिए तैयार हो जाना चाहिए, या तो डेरा-डण्डा उठाकर चल दीजिए या .."

"या क्या?"—शारदा देवी को रुकते देखकर महीप ने पूछा। उसके चेहरे पर जैसे किसी ने स्याही पोत दी हो। उसने फिर अन्यमनस्कता के अंधेरे में अपने को गर्क कर दिया। कुछ देर तक न जाने किस भंवर के बीच वह गोते खाता रहा। बाद में अचानक बोल उठा—"ठीक है, मुझे अवश्य इस स्थिति का सामना करने के लिए तैयार हो जाना होगा। माफ कीजिएगा, मुझे एक जरूरी काम से बाहर जाना है। आशा करता हूँ कल आपसे फिर इसी समय इसी स्थान में भेंट हो सकेगी। इस समय आज्ञा दीजिए।" यह कहकर वह बाहर निकल गया।

छियालीसवां परिच्छेद

नीलिमा उस रात अपनी अस्वाभाविक और असामान्य मनोदशा के कारण जिस घटना-चक्र के फेर में पड़ गई थी और उस असाधारण घटना-चक्र के ही कारण महीप को अपना 'हस्बैंड' बताकर जो एक नई उलझन उसने अपने और साथ ही महीप के मन में उत्पन्न कर दी थी उससे वह दो ही दिन बाद अपने को मुक्त करने में आश्चर्यजनक रूप से सफल हो गई। उसकी मां ने उस रात उसे एकान्त में ले जाकर न जाने क्या मन्त्र पढ़ाया जिसने उसकी उस दिन की और रात की—स्टेशन में अपने अस्वाभाविक व्यवहार की—समस्त ग्लानि को चीनी मिट्टी की तश्तरी में लगी हुई राख की तरह धोकर ऐसा साफ कर दिया कि उसका लेशमात्र दाग भी उसके हृदय में रह नहीं पाया। वास्तव में मां के स्नेह के ससुर पीउन को अठगुने रूप में वापस पाने के इरादे से ही जैसे उसके अन्तर्मन ने वह जाल रचा था, जिसने तनिक-सी बात का बहाना पाकर उसे मां की तरफ से विद्रोही बना डाला था। यही कारण था कि वह जब महीप के पास गई थी, तब फिर उस रात मां के पास लौटने की प्रवृत्ति उसके मन में किसी प्रकार नहीं जग पाती थी। यही कारण था कि महीप के व्यक्तित्व का

ऐसा जादू उस रात पार्क में उसके ऊपर चल गया था कि वह अपने को उसके प्रति पूर्णतया समर्पित करने की सीमा तक पहुँच चुकी थी। उसका अन्तर्मन उसके साथ एक विचित्र नृशंसतापूर्ण और साथ ही कौतुकप्रद खेल खेल रहा था, जो उसके साथ के दूसरे व्यक्ति को पूर्णतया ले डूबने के लिए उतारू हो उठा था। अज्ञात से जिस निद्रा-विचरण की-सी अवस्था में वह महीप के साथ स्टेशन तक गई थी उसमें उसे अपनी अन्तश्चेतना की उस कूट और क्रूर क्रीडा का कोई भान नहीं हो पाया था। स्टेशन पहुँचने तक उसकी मानसिकता इस स्थिति में थी कि उसे लगता था जैसे अनन्तकाल तक असीम देश तक वह बराबर इसी प्रकार महीप के साथ चलती रहेगी--निर्द्वन्द्व और निर्मुक्त भाव से बिना किसी भी पारिवारिक, सामाजिक अथवा मानसिक बन्धन का अनुभव रचमात्र भी किये हुए। समस्त विश्व में, समग्र काल मे जैसे महीप ही उसके जीवन का एकमात्र सहयात्री, एकमात्र नियन्ता और एकमात्र आत्मीय है, यह विश्वास उस समय उसके मन की उस अप-साधारण अवस्था में ऐसी प्रबलता से जमा हुआ था कि लगता था जैसे वह जीवन में कभी किसी भी काल में टल ही नही सकता।

पर स्टेशन पहुँचते ही जब तागे की गति रुकी, तब सहसा नीलिमा के मन की अति-प्राकृत दशा की गति भी स्थगित हो गई। उसका जो अप-साधारण व्यक्तित्व कुछ अजीब से मनोवैज्ञानिक कारणो से उस दिन उभर उठा था वह बडी तीव्र गति से विलीन होने लगा---जैसे कोई विमान आकाश मे मीलो ऊपर---स्ट्रेटास्फेयर में---उड़ान भरने के बाद सहसा सीधे नीचे उतरने को बाध्य हुआ हो और उस उद्देश्य से बडी तेजी से गोते खाता चला जा रहा हो। उस गोताखोरी की मध्यावस्था में उसके मन की आखें जिन अजीब ढग से बदलते हुए सप्रेक्षणो---'पर्सपेक्शनो' में---वास्तविक तथा काल्पनिक दृश्यो को देख रही थी, उनकी अनुभूति नीलिमा को विचित्र और विभ्रामक लग रही थी। जब महीप टिकट खरीदने गया और नीलिमा व्यस्त यात्रियो की भीड

के बीच में एक स्थान पर खडी रही तब उसे (नीलिमा को) अचानक ऐसा लगा कि उसका जो विमान कुछ ही क्षण पहले 'स्ट्रेटास्फेयर' मे उडान भर रहा था वह पृथ्वी पर टकरा कर चकनाचूर हो गया है। उसकी मा ने न जाने टेलीपेथी की किस चुम्बक-शक्ति से 'राकेट' से भी तीव्र गति से चलनेवाला कौन अस्त्र उसके उस मनोविमान पर फेका था! क्योकि उस दिन सन्ध्या मे ही उसका जो दूसरा व्यक्तित्व उभरा हुआ था वह जब एक विस्फोट के साथ सहसा विलीन हो गया, तब तत्काल बिजली की तरह उसकी आखो के आगे सर्वत्र मा का ही रूप विभासित हो उठा और एक मात्र मा की ही चिन्ता ने सजीव रूप धारण करके उसके सारे मन को चारो ओर से तूफानी बादलो की तरह छा दिया। यही कारण था कि महीप जब टिकट खरीदकर उसके पास पहुँचा तब वह चीख मार उठी। उसका प्रतिदिन के जीवन का वही साधारण व्यक्तित्व कराह उठा जिसमे एक पल के लिए भी मा के स्नेह-बन्धन से मुक्त होने का साहस कभी नही हुआ, कभी इच्छा ही नही हुई! उसकी सारी बहिरात्मा गुहार मार उठी—"मा! मा! मा!" जिस मा से जीवन में पहली बार भयकर विद्रोह करके वह चली आई थी उसके सहस्र कर अपने को चारों ओर फैलाकर विह्वल और विकल अनुभव के साथ जैसे कह रहे थे—"आ जा बेटी, आ जा! तेरे लिए इस जीवन में एकमात्र इन्ही हाथो मे आश्रय है! एकमात्र मा की गोद ही ऐसा स्थान है जहा नाना विरोधी और विषम चक्रो से भरे इस जीवन में तू अपने चिर दिन के अभ्यास के अनुसार तहूलियत से बैठ सकती है और आराम से करवट ले सकती है। इसे छोडकर इतनी देर तक तू व्यर्थ के किन भ्रामक स्वप्नो, महत्वाकाक्षा की किन मरीचिकाओ से भरे लोक मे भटकती रही? आ जा, बेटी, आ जा!"

नीलिमा उस एकान्त आग्रहपूर्ण आह्वान की उपेक्षा नहीं कर सकी। जब महीप ने टिकट खरीदने के बाद उसे प्लेटफार्म के भीतर चलने के लिए कहा तब उसके मन की ठीक वह दशा हो रही थी जैसी चन्द महीने के बच्चे की नींद टूटने पर—किसी अस्पष्ट छायालोक का स्वप्न भग होने पर—

होती है, और वह कुछ समय के लिए जागरण-लोक की नई परिस्थिति से अपने मन का ठीक सयोजन न कर पाने के कारण अर्द्धचेतनावस्था मे मा के स्पर्श की अज्ञात लालसा से बिलखने लगता है। यही कारण था कि उस क्षण के लिए वास्तविकता के दृष्टिकोण से महीप की परिस्थिति को (और साथ ही उतने आदमियो की भीड मे स्वय अपनी यथार्थ स्थिति को) समझने की समर्थता उसमें नही रह गई थी। उसने चिल्लाकर और रोकर महीप को जिस अस्वाभाविक और अवमाननापूर्ण परिस्थिति में डाल दिया था वह जान-बूझकर नही, वल्कि अर्द्धचेतन मन की प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्तिवश। वाद में जब पुलिस कर्मचारी ने टोका तब नीलिमा के मन की प्रतिक्रिया ने एक दूसरी ही दिशा पकड ली। महीप की तौहीनी का यथार्थ रूप उसके सामने आ गया और वह पूर्णतया 'सचेत' हो उठी। उस 'सचेत' अवस्था में उसने तात्कालिक विपत्ति से छुटकारा पाने के उद्देश्य से ही महीप को अपना 'हसबैंड' बताया था, सन्देह नही, पर वाद मे 'हसबड' शब्द का जादू उसके मन पर कुछ दूसरा ही प्रभाव डालने लगा। अपने मन की 'सचेत' अवस्था में भी उसने यह सकल्प किया था कि वह अपनी मा के आगे भी सच्चे हृदय से यह स्वीकार कर लगी कि महीप को उसने अपना 'हसबैंड' मान लिया है और अपने इस सकल्प को वह कार्यरूप मे परिणत करके रहेगी। पर मा से जव वह मिली और उन्होने अपने मातृ-हृदय की आकुल विह्वलता से जब अपनी अन्तर्वेदना उसके आगे आसुओ से पिघलते हुए शब्दो में व्यक्त की, तब वह स्वय भी फिर एक बार पिघल उठी। वास्तव में उसका अन्तर्मन पहले से ही पिघलने के लिए तैयार बैठा था, केवल उसके लिए अधिक-से-अधिक विह्वलतापूर्ण वातावरण तैयार करने का कुचक्र रच रहा था। अपना यह मनोविश्लेषण नीलिमा ने दूसरे दिन रात में सोने के पूर्व पलँग पर लेटे-लेटे स्वय किसी हद तक कर लिया था। उसके वाद जब दूसरे दिन ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिह कई दिनो के वाद उससे मिले, तब उसने आश्चर्य के साथ इस बात पर गौर किया कि केवल कुछ ही दिनो की अनुपस्थिति में ठाकुर साहब मे एक आश्चर्यजनक परि-

वर्तन हो गया है—ऐसा परिवर्तन जो पहली ही दृष्टि में अपना प्रभाव छोड़े बिना नहीं रह सकता। उसकी मार्मिक रूप से अनुभूतिशील आंखों ने देखा कि ठाकुर साहब की आंखों की अभिव्यक्ति में एक अस्पष्ट व्यंग और क्रूरता का जो भाव सब समय उनकी सहज मुसकान के क्षणों में भी वर्तमान रहता था उसके स्थान पर एक करुण, कोमल और स्निग्ध भाव की छाया सहज रूप से भासमान हो रही है। इतने वर्षों से ठाकुर साहब के प्रति अपने जिस अज्ञात खिंचाव के विरुद्ध वह भीतर-ही-भीतर लड़ाई लड़ती जाती थी, वह आज उसे पहली बार प्रीतिकर लगा और उसे उसने सहज स्वाभाविक रूप से ग्रहण किया। आज ठाकुर साहब को देखते ही उसे अपना वह व्यक्तित्व अत्यन्त उपेक्षणीय, तुच्छ और हास्यास्पद लगा जो पार्क में महीप के प्रति पूर्णतया आत्म-समर्पण करने के लिए प्रायः तैयार हो उठा था। सच तो यह है कि उसके सचेत मन में अपने व्यक्तित्व के उस स्वरूप की स्मृति ही नहीं जगी। अपने अनजान ही में जब उसने एक बार ठाकुर साहब के इस बार के व्यक्तित्व की तुलना महीप के व्यक्तित्व से की, तो उसको महीप का अकालपक्व शिशु-रूप अत्यन्त हास्यास्पद लगने लगा। पार्क में महीप ने हिमालय के जिस विजन देवदारु-वन की रूपकमयी कल्पना के जादू से नीलिमा के भीतर एक निराले रहस्य-लोक का द्वार उद्घाटित करके अपने व्यक्तित्व के गहन और व्यापक रूप का परिचय दिया था, ठाकुर साहब से भेंट होने पर उसकी स्मृति न उसके अन्तर्मन में जगी न सचेत मन में। पार्क में जो अगाध रहस्यमय क्षण उसने उस रात महीप के साथ बिताये थे उनमें किसी अनन्तव्यापी मोहमहिमायुक्त जगत् की प्रतिच्छवि भासमान हो उठी थी, सन्देह नहीं, पर वे क्षण अनन्त की उस सम्पूर्ण प्रतिच्छवि के साथ ही उसी रात पूर्ण रूप से न जाने कहां विलीन हो गये थे और नीलिमा अपने सचेत व्यक्तित्व में अपनी सुषुप्तावस्था या स्वप्नावस्था के उन क्षणों का कोई भी छायाभास, तनिक-सा भी दाग नहीं पा रही थी। उसके भीतर यह धारणा जग ही नहीं पाती थी कि उसके उस रात के असाधारण व्यवहार ने महीप के

अन्तर्मन में सम्भवत कोई ऐसा गहरा प्रभाव छोड दिया हो, जिसका चिह्न—सुखकर अथवा अप्रीतिकर जैसा भी हो—उसकी मृत्यु तक न मिटने पावे।

अपने मन की तत्कालीन अपेक्षाकृत स्वस्थ और स्थिर अवस्था में जव वह वर्तमान के धुमैले, पर्दे के पार किसी एक छिद्र से जीवन के नये, सुन्दर, सुखद और उज्ज्वल रूप की झाकी देख रही थी तव एक दिन अचानक उस सारे दृश्य को ज्वालामुखी के विस्फोट से उत्पन्न कालिख से भी गाढे, काले धुए के वादलों से ढकता हुआ एक गुमनाम पत्र—नागरी अक्षरो में टाइप किया हुआ—उसके पास पहुँचा। 'फुलस्केप साइज' के दो-तीन पन्नो में वह पत्र समाप्त हुआ था। वह पत्र न किसी को सम्बोधित करके लिखा गया था, न उसके नीचे किसी के हस्ताक्षर थे। उस पत्र को पढने पर नीलिमा को ऐसा लगा जैसे उसके सारे शरीर में सहस्रो छोटी-छोटी तीखी सुइया गड गई हो। अपने कमरे के किवाड भीतर से वन्द करके अपने पलग पर वैठ कर उसने एकान्त में कई वार हृदय को दहला देने वाला वह पत्र पढा। जितनी ही वार वह पढती थी उतनी ही उसकी बैचेनी भी वढती जाती थी, तथापि वह फिर-फिर उसे पढने का लोभ सवरण नही कर पाती थी। पढते-पढते जव वह थक गई तो पत्र को सिरहाने रखकर और सिर पर दाहिना हाथ रखकर चित लेट गई। "भगवान्! क्या यह सम्भव है? नही, नही! यह घोर अनर्थ—कभी नही!" और यह सोचते हुए, न चाहने पर भी, उसकी भीतरी आखो के आगे ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह की वह छवि अत्यन्त गाढे और उज्ज्वल रगो में परिस्फुट हो उठी जो पिछले कुछ वर्षों में उनकी सरल मुस्कान भरे मुखडे के भीतर अत्यन्त क्रूर व्यग की समूर्त अभिव्यक्ति के रूप में वीच-वीच से भासित हो उठती थी—जिसे भूलने के लिए नीलिमा वार-वार छटपटाती रहती थी। आज वह छया-छवि 'इनलार्ज्ड' किन्तु सुस्पष्ट फोटो की तरह उसकी कल्पना की आखो के आगे जैसे अत्यन्त निष्ठुर परिहास करती हुई नाचने लगी।

इस पत्र में भूमिका के तौर पर जो कुछ लिखा था उसका साराश

यह है—"ठाकुर लक्ष्मीनारायणसिंह से तुम्हारा विवाह तय हो चुका है, पर यदि तुम इस अत्यन्त वीभत्स और विषधर नाग की घातक लपेटो से अपने को छुडाना चाहो तो अब भी उसके लिए समय है। इस नाग की काली करतूतो से तुम तनिक भी परिचित नही हो। यदि उसकी एक भी करतूत से तुम अच्छी तरह परिचित हो जाओ तो तुम्हारा रक्त जमकर बर्फ बन जायगा; तुम्हारे रोगटे सुई की नोक की तरह खडे हो जायगे और इस बात का पता चल जायगा कि एक नृशस नारकीय आत्मा वर्षो से किस प्रकार के कूट और आतककारी उपायो से समाज के चुने हुए निरीह प्राणियो को अपनी सर्वशोषी अन्धगुहा के भीतर घसीटती चली जा रही है। उसकी पिछली करतूतो का पता तुम्हे बाद मे लग जायगा। अभी केवल इतना ही जान लो कि ठाकुर धीराजसिह की हत्या इसी नाग ने की है। शिकार-पार्टी मे जिस 'दुर्घटना' के कारण धीराजसिह की मृत्यु हुई वह इसी मानववेषधारी शैतान की पूर्व-निश्चित योजना के अनुसार घटी थी।"

इसके बाद पत्र मे विस्तार के साथ धीराजसिह की हत्या का वर्णन किया गया था। नीलिमा पत्र को पढते हुए बार-बार आतक से सिहर उठती थी। आधी रात में किसी एकान्त स्थान में भूत की कहानी सुननेवाले बच्चे की तरह मारे भय के उसके रोयें खडे हो उठते थे, तथापि उस कहानी में उसकी दिलचस्पी भी बेहद बढती जाती थी।

नीलिमा ने वह गुमनाम पत्र एक अत्यन्त गुप्त स्थान मे छिपाकर रख लिया और घर मे किसी से उसकी कोई चर्चा नही की। दूसरे दिन जब ठाकुर लक्ष्मीनारायणसिह उनके पास पहुँचे तब उसने खुफिया पुलिस के किसी चालाक और अनुभवी कर्मचारी की तरह ऐसी पैनी मर्मभेदी दृष्टि से उनके मुख के बाहरी पर्दे के भीतर से झाकनेवाले रूप का परीक्षण किया कि ठाकुर साहब विचलित हो उठे। अपनी मा और प्रतिमा के बीच में जब तक वह ठाकुर साहब के साथ बैठी रही तब तक एक शब्द भी न बोली। बाद मे दोनों

(श्रीमती खन्ना और प्रतिमा) उठकर चली गईं। इधर कुछ दिनो से दोनों ने—सम्भवत आपस में गुप्त परामर्श करके—यह नियम वना लिया था कि नीलिमा और ठाकुर साहव को अधिक से अधिक समय तक एकान्त में वार्ते करने के लिए छोड दिया जाय।

आज ठाकुर साहव को एकान्त में पाकर नीलिमा पहली बार एक विचित्र-सी वेचैनी और सकोच का अनुभव करने लगी थी। वह सकोच प्रेम-जनित निकटता के कारण सम्भवत उतना नहीं था, जितना उसके भीतर अवरुद्ध क्रोध और भय की सम्मिलित रासायनिक भावना के कारण, पर उस रासायनिक सम्मिश्रण में विस्फोट होते देर न लगी और नीलिमा की जो जीभ एकदम जड-सी बनी हुई थी वह सहसा बडे वेग से फूट पडी। उसने जो पहली वात कही वह यह थी—"आपकी शिकार-पार्टी के सारे भीतरी भेद मेरे आगे खुल गये है।"

यह वात आकस्मिक वम-विस्फोट की तरह ठाकुर साहव के कानो में गरज उठी। उनका चेहरा इस कदर सिकुडकर विकृत हो उठा, जैसे सब कुछ चाट जानेवाली जहरीली 'मस्टर्ड गैस' उन्हे लग गई हो। क्षण-भर के लिए उन्हें ऐसा लगा जैसे उनका दम घुटा जा रहा हो। उसके वाद प्राय रोनी-सी सूरत वनाते हुए उन्होने तनिक तीव्र स्वर में कहा—"शिकार-पार्टी का भेद! कैसा भेद?"

"आप चूकि अच्छी तरह जानते है कि वह भेद क्या है, इसलिए उसे खुलासा करने की कोई आवश्यकता मैं नही समझती।"

ठाकुर साहव अत्यन्त उत्तेजित हो उठे। वोले—"देखो नीलिमा, पहेली-भरे शब्दो में वातें करने की अपनी आदत छोडो और साफ-साफ समझाओ कि तुम्हारी वात का आशय क्या है।"

इस वार ठाकुर साहव की विस्मय-भरी उत्सुकता नीलिमा को ऐसी स्वाभाविक लगी कि अधिक घुमाव-फेर के चक्कर में पडना उसने उचित नही

समझा। वह एक बार चारो ओर सजग दृष्टि से देखकर धीरे से बोली—"ठाकुर धीराजसिंह की हत्या से सम्बन्धित घटना से मेरा मतलब है।"

"हत्या! यह किसने तुमसे कहा कि धीराजसिंह की हत्या की गई है?"

नीलिमा सहसा उठ खडी हुई और भीतर से कमरे के दरवाजे की सिटकनी लगाकर उसने एक आलमारी खोली और उसके भीतर से वही गुमनाम पत्र निकालकर उसने ठाकुर साहब के हाथ मे दे दिया, और बोली—"पढिए।"

ठाकुर साहब अपनी इन्द्रियो की सम्पूर्ण शक्तियो को बटोरकर पत्र पढने लगे। जब वह पत्र पढ रहे थे तब नीलिमा फासी की सजा देने के लिए तैयार बैठे हुए जज की दृष्टि से उनके प्रत्येक हाव-भाव पर बडी बारीकी से ग़ौर कर रही थी कि कौन रग आता है और कौन जाता है।

सैंतालीसवां परिच्छेद

वह विचित्र, अप्रत्याशित और गुमनाम पत्र पढते हुए ठाकुर साहब के मुख पर प्रारभ मे मुर्दनी-सी छाने लगी। नीलिमा अपनी सपूर्ण शक्तियो को अपनी आखो मे बटोरकर स्थिर दृष्टि से उनकी ओर देख रही थी। चिट्ठी मे वर्णित उस लोमहर्षक और भेदभरी बात की सचाई (या झुठाई) का पता लगाने का एक मात्र उपाय उसके लिये यही था कि ठाकुर साहब के मुख के बदलते हुए भावो पर गौर किया जाय। इसलिये जब उसने देखा कि ठाकुर साहब के मुख पर मुर्दनी छाने लगी है, तब उसका हृदय धक-से रह गया। उसे विश्वास होने लगा कि चिट्ठी मे जो दिल दहलाने वाला आरोप ठाकुर साहब पर लगाया गया है उसमे सचाई का बहुत कुछ अश है।

ठाकुर साहब उस पत्र के पढने मे ऐसे तल्लीन थे कि उन्हे उस समय के लिये नीलिमा के अस्तित्व का कोई भान ही नहीं रह गया था। मुर्दनी का प्रारभिक भाव धीरे-धीरे बदलने लगा और उसके स्थान पर एक सजीव और साथ ही मार्मिक वेदना की तीव्र अनुभूति के चिह्न उनके मुख पर

हाथ और भीतर डाला तो उनकी उँगलियों ने कपड़े के एक टुकड़े को स्पर्श किया, जिसे उन्होंने जेब को प्राय: फाड़कर पूरी ताकत से खींचते हुए बाहर निकाला। हाँ, वह वही रूमाल था! उनके जी-में-जी आया। उन्होंने चैन की सांस ली और फिर वही पहले की-सी मुसकान उनके चेहरे पर खिल उठी।

नीलिमा को वह तह किया हुआ कपड़े का रहस्यमय टुकड़ा अपने भाग्य के पट्टे की तरह लग रहा था। ठाकुर साहब जब उसे खोल रहे थे तब उसके हृदय में एक बार एक अनोखी अनजान पीड़ा के कारण सुरसुरी सी उत्पन्न होती थी, और दूसरे ही क्षण वह एक अज्ञात पुलक-भरी विकलता की गुदगुदी का-सा अनुभव करती थी।

रूमाल को खोलकर ठाकुर साहब ने नीलिमा के आगे मेज पर फैलाकर रख दिया। नीलिमा ने अवार दृष्टि से और धड़कते हुए कलेजे से उसमें रक्त से लिखे गए बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा हुआ पढ़ा —

"मैंने आत्म-हत्या की है—धीराज।"

नीलिमा की दृष्टि उन अक्षरों पर हिप्नोटाइज किये गये व्यक्ति की तरह अटकी रह गई। एक सजीव प्राणी के रक्त से लिखे गए वे अक्षर जैसे अपने साथ किसी रहस्यमय प्रेत-लोक की चेतना लाए हों। धीराज से वह परिचित थी। उसके सुन्दर, सुकुमार मुख की सरल अभिव्यक्ति, उसकी स्निग्ध और स्वप्नमयी आंखों की उदास व्यंजना ऐसी थी जिसकी उपेक्षा नीलिमा कभी नहीं कर पाई थी। आज उसी धीराज का रक्त उसकी आंखों के आगे प्रदर्श नाच रहा था, बोल रहा था और सौ-सौ भेद-भरी बातें उसके कानों में कहने के लिये उतावला हो रहा था। कुछ देर तक वह रूमाल को हाथ में लिये निश्चल होकर बैठी रही और स्थिर दृष्टि से उस पर अंकित अक्षरों को देखती हुई न जाने किन भ्रामक कल्पनाओं में निमग्न हो गई। उसके बाद क्षण-भर के लिये उसका मन इस चरम स्थिति को पहुँच गया कि उसे लगा जैसे रक्त के वे अक्षर सजीव होकर उसकी हथेली में कुलबुलाने लगे हों।

तत्काल मारे घबराहट के उसने रूमाल नीचे गिरा दिया। ठाकुर साहब ने पूर्ववत् मन्द-मधुर मुस्कराते हुए उसे उठाकर बड़ी सावधानी से तह किया और फिर कुर्ते के भीतर बड़ी की जेब में उसे सभाल कर रख दिया।

क्षणिक भ्रम के बाद नीलिमा शीघ्र ही सभल गई और उसके ध्यान में यह बात भली भांति आ गई कि ठाकुर साहब पर जो आरोप उस गुमनाम चिट्ठी में लगाया गया है वह सर्वथा मिथ्या है। इस बात की जानकारी से वह अत्यत प्रसन्न हो उठी और शीघ्र ही वह प्रसन्नता एक अप्रत्याशित पुलक में बदल गई। जब वह अच्छी तरह स्थिर हो गई तब बोली—"मैं अपनी बात के लिये क्षमा चाहती हूँ। पर आप निश्चय ही यह मानेंगे कि मेरा अपराध बहुत बड़ा नहीं था। इस नीचतापूर्ण पत्र के कारण मेरे मन की स्थिति अस्त-व्यस्त हो उठी थी।" यह कह कर नीलिमा उठी। ठाकुर साहब से दियासलाई माग कर दीवार पर की अँगीठी के पास गई और दियासलाई जलाकर उसने उस पत्र को जला दिया। उसके बाद जब वह फिर अपनी जगह पर आकर बैठी तब ठाकुर साहब ने देखा कि वह उनकी ओर अकपट प्रेम की स्निग्ध, सजल और सरस दृष्टि से देख रही है। आज पहली बार ठाकुर साहब ने नीलिमा की आंखों में अपने प्रति वह पूर्णतया निष्कपट, विशुद्ध स्नेह के भाव की झलक देखी। भीतर-ही-भीतर हर्ष-विभोर होकर वह सहसा अपनी जगह से उठ खड़े हुए और नीलिमा के एकदम पास आकर बैठ गए। नीलिमा जैसे पहले ही से इस बात की प्रत्याशा कर रही थी।

ठाकुर साहब बोले—"इस गुमनाम चिट्ठी ने मेरा बड़ा हित किया, नीलिमा, कि उसने मेरा निर्दोष रूप पूर्णतया तुम्हारे आगे रख दिया। आज मैं केवल धीराज से संबंधित आरोप से ही बरी नहीं हुआ हूँ, बल्कि मैं आशा करता हूँ कि उसके साथ ही बहुत से दूसरे आरोप भी तुम्हारे आगे झूठे सिद्ध हो जायंगे, जिनका कारण तुम्हारा मन (जानकर या अनजान में) इतने दिनों से मेरे खिलाफ़ करता चला जा रहा था।"

उस दुनिया के अदृश्य छायामय माया-जीवो ने बराबर मेरा साथ दिया है और मुझे धोखा नहीं दिया। उस दुनिया के जगलो, पर्वतो और नदी-नालो ने मुझे विचित्र रहस्यमय मौन सदेश सुनाए है, अपूर्व और अनिर्वचनीय नीरव सगीत-लहरियो से मेरे चिर-उच्छ्वसित हृदय को निराली लोरियो से थपकिया दे-देकर सुलाया है। टेनीसन की Brook मेरे जीवन की चिर-सगिनी रही है। उसकी

For men may come and men may go,
But I go on for ever

का राग अलापनेवाली कल-कल, उच्छलवाणी निरतर, प्रतिपल, क्या स्वप्न में और क्या जागरण मे, मेरे कानो में एक अवर्णनीय और अनाहत माया-मत्र फूकती रही है। 'But I go on for evei', वास्तव में वह अविनश्वर आत्म-विश्वास विश्वव्यापी भौतिक जडता के दलदल-गत अचल प्राणो में सजीव भावो का गतिशील आवेग भरनेवाला जादू का मत्र है। पर वह जादू कहा गया? वह आज निष्प्राण और निष्प्रभाव क्यो बन गया है? यह उस जादू का दोष है, या मेरे ही भीतर का लोहा इस कदर जग खा गया है कि किसी भी चुबक की शक्ति का कोई प्रभाव उस पर असर नहीं कर पाता, चाहे उस (चुबक) की सप्राणता कैसी ही तीव्र और तीक्ष्ण क्यो न हो?

* * *

"कालिदास के मेघदूत और टेनिसन के Lotos Eateis की दुनिया के मायाजाल ने भी मुझे बहुत दिनो तक लपेटा है। उसकी मादक मोहकता मेरे अलस प्राणो को अपने लालस-रसावेश से वर्षों तक विभोर करती रही है। अपने जीवन की कई सुनहरी शरत्-संध्याए मैंने उसी दुनिया मे झूम-झूमकर बिताई है। मेरी उस एकात झूम में विश्व की कोई भी विरोधी शक्ति बाधा नही पहुँचा पाई है। मन्दाक्राता गति में मेरे जीवन का वह स्वप्न-काल, निरुद्वेग भाव से बिना किसी व्यस्तता के बीता है।

*

"नव-यौवन का प्रारंभिक काल बीत जाने पर किसी दूरस्थित वास्तविक जीवन के संघर्ष की दो-चार चिनगारियां मेरे पास तक पहुँचने लगी थी, पर वे केवल चिनगारियां थी और उनसे मैं विशेष विचलित नही हुआ। उनसे केवल इतना ही अंतर मेरे जीवन में पड़ा कि मैं बायरन की निराशावादी—बल्कि कटुतावादी कविताओं की ओर झुक गया।

* * *

"पर चिनगारियां बढ़ती चली जाती थी, और जब मैंने पूर्ण यौवन के प्रांगण में प्रवेश किया तब वे चिनगारियां केवल तादाद में ही नहीं बढ़ी थी, बल्कि उनका तीखापन भी सुइयों की नोकों की समता करने लगा था। जब रूपा से मेरा परिचय हुआ था तब उन तप्त सुइयों ने मेरे हृदय से यत्र-तत्र रक्त की बूंदें बाहर निकालनी आरंभ कर दी थी। पर उतने रक्त के निकलने से मेरे हृदय की स्वस्थता में कोई विशेष अंतर नही आया था।

* * *

"रूपा में मैंने विक्टोरियन युग के कवियों और औपन्यासिकों की आदर्श-नारी का प्रतिरूप पाया। वही स्निग्ध-सौन्दर्य, वही करुण कोमलता वही शालीनता और वही अतीन्द्रिय काव्यात्मकता। उस अतीन्द्रियता ने लौंग-मुश्क जातीय फूल की अंत:स्पर्शी सुगन्धि की तरह तत्काल मेरे समस्त मन और प्राण को छा लिया। तब मुझे क्या पता था कि वह मादक सुगंधि केवल क्षणिक वसंतकालीन विकार है और लौंग-मुश्क का वह फूल दो-चार ही दिन बाद सड़-गलकर अत्यन्त करुण रूप में मुरझाने के लिए ही जन्म लेता है। उसकी वह नारी स्निग्ध, करुण कोमलता निपट शक्तिहीनता और घोर अन्ध-रूपता का द्योतक है। शेफाली का जीवन उससे कहीं स्वस्थ है, क्योंकि वह रात भी में खिलकर रात ही में पूर्ण स्वस्थ और सजीव अवस्था में झर जाती है। पर लौंग-मुश्क को रूप-सुलभ, दूसरों के हस्त-स्पर्श से सड़-गलकर मरना होता है।

* * *

"पर मैं किस बात से किस बात पर आ गया। मैं कह रहा था कि रूपा पहले ही दर्शन मे मुझे विक्टोरियन युग की नारी की तरह लगी। यदि मैं समय की उलटी गति के साथ विचर कर किसी उपाय से प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका चार्लोट ब्राटे या एमिली ब्राटे को उनकी नवयौवनावस्था में प्रथम बार देखता तो सभवत मेरे मन पर ठीक वही प्रभाव पडता जो देहात के प्राकृतिक वातावरण के बीच में स्थित उस रोमाटिक कवियो की कल्पना के अनुकूल जमीदार-भवन में रूपा को देखने पर पडा। रूपा के मन में, पहली बार मुझे देखने पर, ठीक क्या प्रभाव पडा होगा, इसका अनुमान उसी प्रकार असभव है जिस प्रकार पृथ्वी के गर्भ के भीतर आग मे पिघलते हुए धातुओ के भीतर होनेवाली रासायनिक प्रक्रिया का प्रत्यक्ष अनुभव कर सकना। पर उस आग के ऊपर पृथ्वी के बाहरी स्तर की जो मिट्टी है वह मुझे आश्रय देगी, यह मैं जान गया। वह मिट्टी रग-बिरगे फूलो को अपने ऊपर खिलाती हुई स्निग्ध, सरस भाव से मेरे प्रति मुस्करा रही थी। मैं पुलकित हो उठा।

* * *

"और आश्चर्य है कि यह विक्टोरयन युग की नारी वास्तव मे विक्टोरियन युग के औपन्यासिको की रचनाओ पर मुग्ध थी, और उसका अवकाश का समय उन्ही के पाठ मे बीतता था। ब्राटे बहनें, थैकरे, हार्डी आदि के औपन्यासिक जगत में प्रतिपल विचरण करने के कारण ही सभवत उसके मुख के भाव में भी उन्ही की नायिकाओ की प्रतिच्छाया पड गई थी।

"मैंने साहित्य की ओर उसकी रुचि देखी तो उन्नीसवी सदी के अँगरेज तथा फ्रेंच कवियो तथा छायावादी युग के प्रमुख हिन्दी कवियो की कविताओ के छायामय भावलोक से भी उसका परिचय कराना आरभ कर दिया। उन कविताओ की पुलक-वेदनामयी रसविभोरता और निगूढ तथा मार्मिक अनुभूति-पूर्ण रहस्यमयता ने उसे एक ऐसे समुन्नत भाव-स्तर पर पहुँचा दिया, जिसकी सतेज आभा से उसका मुख सब समय सदीप्त रहने लगा।

*

"हम दोनो के बीच एक विचित्र आध्यात्मिक सम्बन्ध चल रहा था। एक अपूर्व अज्ञात और मौन भाव का सूक्ष्म तार हम दोनों के हृदयो को टेलीफोन के तारो की तरह जोड़े हुए था। वह टेलीफोन भी ऐसा कि एक जगह से रिसीवर उठाते ही दूसरी जगह अपने-आप घंटी बज उठती थी—कोई नम्बर मिलाने की आवश्यकता नही रहती थी। उस निराले भाव मे तन्मय रहने के कारण मुझे यह सोचने का अवकाश ही नही था (और न मैं उसकी आवश्यकता ही महसूस करता था) कि उस तन्मयता की सार्थकता कहा पर है, उसकी परिणति किस रूप मे होनी चाहिए और उसमे कभी कोई बाधा पड सकने की संभावना है या नही।

* * *

उनचासवां परिच्छेद

"हम दोनो को निकट सम्पर्क में आए पूरे तीन वर्ष बीत गए। कभी मैं रूपा के यहा चला जाता और कभी रूपा अपने पिता जी के साथ मेरे यहां चली आती। पर इस निकट (बल्कि निकटतम) सम्पर्क मे आने पर भी कभी एक दिन—बल्कि एक क्षण—के लिये भी मेरे मन मे कोई विकार उसके सम्बन्ध मे उत्पन्न नही हुआ, और न यह कल्पना ही मेरे मन मे कभी जगी कि दो युवा प्राणियो की हार्दिक घनिष्ठता तब तक निरर्थक है जब तक उसकी परिणति विवाह-विहित शारीरिक मिलन में नही होती।

"स्वभाव से ही अत्यधिक सकोचशील रहने वाली रूपा के मन की भावना इस सम्बन्ध मे ठीक क्या थी, मैं नही जान पाता था। चूकि मैं एक अप्राकृतिक पुरुष था, इसलिए उसे भी एक अप्राकृतिक नारी के रूप मे ही मैं जानता था। पर आज जब मैं एकान्त में इस विषय पर गौर करता हूं तो सत्य का एक दूसरा ही पहलू मेरे सामने आने लगता है। खैर। मैंने अपने मन में कभी विवाह को कोई महत्त्व नही दिया और न कभी शारीरिक मिलन की ही कोई कल्पना मेरे भीतर उदित हुई। रूपा की अतीन्द्रियता दिन पर दिन

मेरे निकट सूक्ष्मतर रूप में व्यक्त होती जाती थी, और स्थूल पार्थिवता या शारीरिकता की कोई कल्पना ही उसके सम्बन्ध में मै कभी कर नही पाता था। तीन वर्ष का परिचय मुझे तीन युगो के परिचय से भी अधिक लगता था। पर आज यह सोच कर मुझे स्वय आश्चर्य होता है कि इस दीर्घकाल के भीतर कितनी कम मौखिक बाते हम दोनो के बीच हुई। अधिकाश समय हम दोनो मौन वार्तालाप में ही बिता देते थे। पर मै स्वीकार करता हूँ कि वह मौन वार्तालाप शाब्दिक वार्तालाप से अधिक महत्त्वपूर्ण होता था और हम दोनो के लिए एक-दूसरे को समझने में और अधिक सहायक सिद्ध होता था। हम दोनो की मौखिक बाते अधिकतर गहन साहित्यिक तत्वो की चर्चा के रूप में ही होती थी, और अपने निजी जीवन के सम्बन्ध में केवल मौन भाषा में ही हम बातें करते थे। रूपा के पिता जी ने कई बार सांकेतिक रूप से यह सुझाया कि रूपा के साथ मेरा वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हो जाना चाहिए। उनके उन सकेतो का ठीक अर्थ मै आज समझ रहा हूँ। उस समय तो इतना समझने की न तो मुझमें बुद्धि ही थी और न प्रवृत्ति ही। इसलिए तब उनके किसी भी सकेत को कभी कोई महत्त्व मैंने नही दिया। आज सोच रहा हूँ कि वह मेरी कितनी बडी जडता थी जिसने मुझे जीवन के इतने बड़े महत्त्वपूर्ण पहलू के सबध में इस कदर उदासीन बना दिया। यदि मैंने रूपा के पिता का सकेत समझकर उस समय उनकी बात मान ली होती तो आज क्या मै इस प्रकार छिन्न मेघ की तरह निरुद्देश्य और निराधार पर इस तरह की बातो से अब कोई लाभ नही है।

* * *

"एक दिन क्वार के महीने में दिन-भर एक अनोखी गरमी से बेचैन रहने के बाद सध्या को एकान्त में टहलने का अवसर हम दोनो को मिला था। टहलते-टहलते हम दोनो नदी के किनारे एक निर्जन स्थान में जा पहुँचे। थक गए थे, इसलिए एक स्थान पर चिकनी बालू के ऊपर ही बैठ गए। सामने पश्चिम में सूरज डूब रहा था जिससे सारी क्षितिज-रेखा स्वर्णमय हो उठी थी। नदी के जल पर उस सोने का जो प्रतिबिम्ब पड रहा था वह तरल लहरियो के रूप मे परिणत हो

कर अपनी झिलमिली अलकों से एक अपूर्व इंद्रजाल की सृष्टि कर रहा था। नीचे, ऊपर, सर्वत्र सोने का एक निराला मायालोक फैला हुआ था। दूर कहीं एक फाख्ता अविरल करुण गद्‌गद् स्वर-लहरियों में अपनी प्रिया को स्मरण कर रहा था। ऊपर बगुलों की त्रिकोणाकार पाँति न जाने किस अज्ञात लोक की चिर-यात्रा के लिए उड़ान भरती हुई चली जा रही थी। चारों ओर पुलकित निर्जनता का एक स्तब्ध वातावरण छाया हुआ था, जिसे केवल फाख्ता की करुण पुकार स्वर प्रदान कर रही थी और केवल बगुलों की वह पाँति ही गति दे रही थी।

'सहसा टेनिसन के 'लोटस-ईटर्स'—'कमल-भक्षकों'—का चिर-परिचित तथापि चिर-विस्मृत संसार प्रत्यक्ष रूप से मेरी आँखों के आगे झलक उठा। मैं अपने भीतर अत्यन्त अस्पष्ट रूप से बराबर यह अनुभव करता चला जाता था कि जन्म-जन्म से परिचित अपनी दुनिया से निर्वासित होकर मैं न जाने किसी अजनबी दुनिया में भटक रहा हूँ, जहाँ न मैं किसी को अपनी भाषा समझा पाता हूँ न किसी की भाषा समझ पाता हूँ। पर जिस दुनिया को मैं छोड़ आया हूँ वह ठीक कैसी थी, और कहाँ चली गई, इसकी कोई धारणा मेरे मन में नहीं रह गई थी। उस दिन जीवन में शायद पहली बार अपने उस खोए हुए संसार का स्पष्ट रूप प्रत्यक्ष सत्य के समान मेरे भीतरी अनुभूति-लोक में प्रतिबिंबित हो उठा।

"वह पुलकानुभूति मेरे भीतर समा नहीं पाती थी। मैंने रूपा से कहा—'जानती हो, मेरे मन में इस समय क्या भाव जग रहा है?'

"'क्या?' सहज सकोच-भरी स्निग्ध मुसकान मुख पर झलकाते हुए रूपा ने पूछा।

"'मैं सोच रहा हूँ कि जितना भी सोना इस समय मेरे आगे मुक्त रूप से बिखर पड़ा है उसे अपने भीतर बटोर कर रख लूँ। जब मृत्यु के बाद इस विदेश से विदा होकर मैं अपने घर को लौट चलूँगा तब इसे साथ लेता जाऊँगा।'

"'आप इस जन्म में अपने को विदेशी क्यों समझते हैं?' बिना किसी परिहास व्यंग या वक्रता के, सहज भाव से रूपा ने प्रश्न किया।

" 'न जाने क्यो', मैने कहा—'सब समय मेरे मन में यह धारणा —जान में या अनजान में—बनी रहती है कि मै विदेश में आ पहुँचा हूँ। यह केवल इस देश के लिए नही है—समस्त पृथ्वी का जीवन मुझे विदेशी जीवन लगता है।'

"रूपा कुछ देर तक बडे गौर से मेरी ओर देखती रही। उसके बाद बोली—'ससार के सभी देशो के छायावादी कवियो या उन्ही की तरह दूसरे तीव्र अनुभूतिशील व्यक्तियो में इस तरह की धारणा पाई गई है। पर वास्तविकतावादियो और मनोवैज्ञानिको ने इस प्रकार के मनोभाव को बराबर एक मानसिक विकार माना है। समस्त पृथ्वी का जीवन विदेशी जीवन जान पडे, वास्तव में यह एक अत्यन्त अस्वाभाविक और असामाजिक मनोवृत्ति है।'

"रूपा के मुख की चिर-सरल अभिव्यक्ति में आज सहसा एक अस्पष्ट वक्रता का आभास झलक उठा, जो मेरे लिए एकदम नयी बात थी। उसने अत्यन्त गम्भीरता से, शायद किसी अज्ञात पीडन से प्रेरित होकर इस तरह की बात कही थी।

"मै भी गम्भीर हो उठा, मैने कहा—'तुम ठीक कहती हो, रूपा। मै जानता हूँ कि इस प्रकार के मनोभाव के सम्बन्ध में मनोविज्ञान के पडितगण इसी तरह की बात कहा करते है। पर यह जानने पर भी उस ज्ञान का कोई प्रभाव मुझ पर नहीं पडता। कुछ विशेष क्षणो में एक ऐसी अज्ञात अनुभूति मुझे बरबस घर दबाती है जो मेरे सारे ज्ञान को छा देती है। केवल मेरे ज्ञान को ही नही, बल्कि मेरे आगे के सारे दृश्य ससार को ढक देती है। और तब रह जाता हूँ केवल मै और उस अदृश्य-ससार की स्मृति, जिसे मै किसी पिछले जन्म में अपने पीछे छोड आया था।'

" 'तब तो मै भी आपके आगे एक विदेशिनी के रूप में ही आती होऊँगी!' इस बार सकोच, व्यग और उत्सुकता का एक अनोखा सम्मिश्रण रूपा के मुख पर झलक उठा।

" 'बिलकुल यही बात है। और इसीलिए तुम्हारा आकर्षण मेरे लिए इतना

प्रबल है, रूपा !'—सहसा उत्साहित होकर मैंने कहा—'अपरिचित और अज्ञात के प्रति प्रेम-भाव जितना प्रबल होता है उतना परिचित और ज्ञात के प्रति नही। पर विदेशिनी नारी जितना ही अधिक आकर्षित करती है, विदेश उतने ही प्रबल धक्के से मुझ जैसे पुरुष को पीछे हटाता है। जब तक वह विदेशिनी को अपने घर—उसी अदृश्य और अज्ञात ससार मे—लाकर प्रतिष्ठित नही कर पाता तब तक उसके हृदय मे प्रतिपल अशाति और असतोष की ज्वालाए धधकती रहती है। पर उस अदृश्य और अज्ञात ससार मे किस उपाय से वह अपनी उस विदेशिनी को ले जायगा, यह वह स्वय नही जानता। मेरी बेचैनी का यही कारण है।'

"रूपा विस्मित, विभ्रान्त-सी मेरी ओर देखती रह गई। मै स्पष्ट देख रहा था कि उस विस्मय के अन्तराल मे किसी एक अज्ञात मार्मिक वेदना की ऐसी प्रगाढ छाया घिर आई थी जो उसके सारे व्यक्तित्व को और उसके बाद मुझको भी छा लेने की धमकी दिखा रही थी। उस मर्म-पीड़ा का रहस्य उस समय मै ठीक से कुछ समझ न पाया। पर अब उसका कारण स्पष्ट रूप से मेरे सामने आ रहा है।

"काफी देर तक वह मौन बैठी रही। उसके बाद सहसा बोल उठी—'आपके सम्बन्ध में मुझे बहुत बडा धोखा हुआ है!'

"'क्यो?' चौककर मैंने पूछा।

"'इस क्यो का उत्तर एक दिन आप स्वय पा जावेंगे।'

"इसके बाद उस दिन रूपा ने फिर कोई विशेष बात मुझसे नही की। एक अनोखी विरक्ति का भाव उसने हम दोनो के बीच व्यवधान के रूप में खडा कर दिया। जिस आनन्दमयी कल्पना के प्रकाश से उस सध्या को मेरी आत्मा सहसा जगमगा उठी थी वह सहसा ही पूर्णतया बुझ भी गया। रूपा के साथ मेरे सम्बन्ध में पहले पहल उसी दिन से परिवर्तन आरम्भ हुआ। उस समय मैंने उसकी उस विरक्ति को क्षणिक भावुकता का अस्थायी विकार समझा था। मैंने स्वप्न मे भी

घातकता का विश्वव्यापी चक्र चलाने के अतिरिक्त जर्मनी, जापान, इगलैंड, रूस और अमेरिका के 'वास्तविकतावादी' राजनीतिक जीवों ने किस महान् कल्याणकारी' आदर्श की स्थापना की? इस प्रकार के 'सामाजिक' जंतुओं की अपेक्षा वैदिक काल के एकांत चिंतनशील, ब्रह्मानन्दलीन 'असामाजिक' ऋषि-मुनि क्या बुरे थे?

* * *

"'जीवन-संघर्ष में आ कूदो!' 'आत्मलीन और पलायनशील मत बनो!' 'पौराणिकता को त्यागकर प्रगतिवादी बनो!' 'आदर्शवाद को ठुकराकर वस्तु-तन्त्रवाद को अपनाओ!' इस तरह के नारे वर्तमान युग के प्रत्यक्षवादी, अन्तर-राष्ट्रीय राजनीतिकता के भूत से ग्रस्त दाम्भिकों द्वारा चारों ओर से—संसार के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक—बुलन्द किये जा रहे हैं। मेरे एकांत क्षणों में इन नारों की प्रतिध्वनि न जाने किन गुफाओं या चट्टानों से टकराती हुई मेरे कानों में गूंजती रहती है। पर मेरे अन्तस्तल में उनका तिलमात्र भी प्रभाव नहीं पडने पाता।

"मेरे मन में बार बार यह प्रश्न उठता है कि क्या संघर्ष ही जीवन का चरम ध्येय है? संघर्ष केवल संघर्ष के लिए? कितनी बडी मूर्खता है यह वस्तु-तन्त्रवादियों, भौतिकतावादियों और प्रगतिवादियों की! इन लोगों का जीवन-दर्शन एकमात्र संघर्ष के आधार पर ही प्रतिष्ठित हुआ है। व्यक्ति-जीवन में संघर्ष सामाजिक जीवन में संघर्ष, राष्ट्रीय जीवन में संघर्ष और अंतर-राष्ट्रीय जीवन में संघर्ष! उनका प्रगतिवाद संघर्षवाद के सिवा और कुछ नहीं है। 'पृथ्वी के आज तक के इतिहास में जो कुछ भी विचार-धाराएं, जो कुछ भी आदर्श प्रतिष्ठित हुए हैं, वे सब, प्रगति के नियम के अनुसार, सड-गल चुके हैं। उन्हें ठुकरा कर निरंतर आगे—प्रगति के पथ पर—बढ़ते चलना होगा, पीछे की ओर मुडकर देखना पलायनवाद को प्रश्रय देना और कायरता को अपनाना है। इसलिए बढ़े चलो! वर्तमान में संघर्ष करते हुए भविष्य की ओर बढ़े

चलो !' यह है वर्तमान युग के राजनीतिक और वैज्ञानिक ज्वर के विष मे जर्जर-प्राण जडवादी दार्शनिको का उपदेश। पर वे यह नहीं बताते कि भविष्य के किसी विन्दु पर उनकी प्रगति-धारा ठहरती है या नहीं—उसका कोई चरम लक्ष्य है या नहीं—जिसके लिए निरतर गतिशील वर्तमान मानव-जाति को, अविरत रूप से सघर्ष करते रहना होगा। किसी भी सघर्ष की परिणति कहीं-न-कहीं किसी विराम-विन्दु पर होनी चाहिए। पर वर्तमान प्रगतिवाद चिर-वर्तमान को अपना 'वेस' वनाए हुए है—चिर-भविष्य के अनत शून्य मे स्थित गणित की 'इनफिनिटी' की तरह किसी कल्पित (कभी न प्राप्त हो सकने वाले) विंदु की प्राप्ति के लिए। वास्तव मे प्रगति के भीतर विराम का भाव निहित है ही नहीं। शून्य में एक सरल रेखा खीच दीजिए और उसे वढाते चले जाइए—इस उद्देश्य से कि किसी चरम विंदु में (जिसके परे उसे वढाया नहीं जा सकता) वह मिल जाय। गणितज्ञों का कहना है कि ऐसी रेखा केवल 'अनत' मे ही जाकर मिल सकेगी ! वही वात प्रगतिवाद के सम्बन्ध मे कही जा सकती है। चिर-वर्तमान मे चिर-गतिशीलता ही उसका ध्येय है। विराम-विंदु उसे केवल 'अनंत' मे ही प्राप्त हो सकता है। वास्तव मे प्रगति और विराम दो परस्पर-विरोधी शब्द है। इसलिए प्रगतिवादियो की दार्शनिकता चिर-सघर्ष के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। युग से युगातर तक केवल सघर्ष मे रत रहो और उसी में विश्वास किये चले जाओ—केवल अल्पकालीन वर्तमान मे नहीं, वल्कि चिर-वर्तमान में, क्योंकि प्रगतिवादियो के कोष मे 'भविष्य' नाम का कोई शब्द है ही नहीं।

"यदि चिर-वर्तमान मे चिर-सघर्ष ही जीवन है, तो उस जीवन को मै दूर ही से प्रणाम करता हूँ। यदि जीवन केवल एक सरल रेखा है—वृत्ताकार रेखा नहीं, तो इस मूर्खतापूर्ण सृष्टि-चक्र के विरुद्ध मै परिपूर्ण शक्ति से विद्रोह करने को उद्यत हूँ। पर यदि जीवन का चक्र वृत्ताकार है, जिसकी गति-शीलता एक निश्चित केन्द्र विंदु के नियम से परिचालित होती है, तो उस केन्द्र विंदु से भटक कर नाक की सीध पर चले जानेवाले प्रगतिवादियों को मै

नमस्कार करता हूँ। मैं या तो परिधि में चक्कर लगाते रहना चाहूँगा, या यदि परिधि से भटकूगा भी तो केन्द्रबिंदु की ओर ही मेरी गति रहेगी। उस परिधि के किसी एक विन्दु को छूकर अनत की ओर चले जानेवाले 'टेनजेन्ट' को अपना पथ मैं कभी नहीं बनाऊँगा।

* * *

"मेरा ध्रुव विश्वास है कि जीवन का चक्र वृत्ताकार है और वह एक निश्चित केन्द्रबिंदु के नियम से परिचालित होता है, पर वर्तमान युग के राष्ट्रीय और अन्तर-राष्ट्रीय संघर्षों को जीवन का एकमात्र सत्य समझने वाले राजनीतिज्ञ और प्रगतिवादी इस प्रकार के दार्शनिक सिद्धात को केवल पौराणिक पागलों का प्रलाप मानते हैं।

"मैंने कहीं सुना था कि एक बार किसी एक विद्वान् के विचित्र विचारों और रहन-सहन के निराले ढग से तग आकर उसके घरवालो और बिरादरी वालों ने उसे पागलखाने मे भरती करा दिया था। कुछ दिनों बाद उसके कुछ 'मित्र' उससे पागलखाने में ही मिले और उसकी दिमागी हालत के लिए उन्होंने सहानुभूति जताई। विद्वान् ने उनकी उस सहानुभूति को पूर्णतया अस्वीकृत करते हुए दृढ विश्वास भरे शब्दों में उत्तर दिया—'आप लोग, जो कि इस पागलखाने के बाहर हैं, इस समय हम लोगों को—जो कि इस पागलखाने के भीतर बन्द पडे हैं—पागल मानकर हमें सहानुभूति के पात्र समझ रहे हैं, इसका एकमात्र कारण यह है कि इस समय आप लोगों का बहुमत है, और हम लोग अति अल्पमतवाले हैं। पर ऐसा समय आ सकता है जब हम लोगों का बहुमत हो जायगा और तब हम लोग आप सबको पागल सिद्ध करने मे समर्थ होंगे, तब हमारे स्थान पर आप लोग इस पागलखाने मे बद रहेंगे। मै तथा मेरे दूसरे साथी पागल समझे गए हैं, यह दृष्टिकोण के अन्तर के सिवा और कुछ नहीं है।'

"मैं भी इस युग के राजनीतिक और वैज्ञानिक भेदों और उन भेदों के

महान् परिचालकों से यही कहना चाहता हूँ—'इस समय तुम लोगों का बहुमत है, इसलिए तुम लोग मुझे और मेरे ही जैसे दूसरे बहुत-से व्यक्तियों को पागल, निकम्मा, अनावश्यक और संघर्ष से भागनेवाले कायर मानकर अपनी स्वकल्पित उच्चता के गर्व से घृणा और व्यंग की हँसी हँस रहे हो। पर एक दिन आ सकता है जब बहुमत हम लोगों का होगा और तब तुम लोग निश्चित रूप से घोर मूर्ख और निपट पागल सिद्ध कर दिये जाओगे; और तब तुम्हें पृथ्वी के शान्तिपूर्ण जीवन के लिए घोर बाधक और खतरनाक समझकर तुम्हारा नामोनिशान इस धरातल पर नहीं रहने दिया जायगा।'

* * *

"हां दुनियावालो! मैं तुम्हारे शब्दों में 'पलायनवादी' हूँ! जिसका अर्थ मैं यह लगाता हूं कि मैं विद्रोही हूं। तुम लोगों की जीवनघाती और विश्वविनाशी राजनीतिक दार्शनिकता के प्रति मेरी आत्मा का एक एक कण विद्रोही हो उठा है। मैं वर्तमान जीवन को स्वीकार नहीं करता हूँ, इसका कारण यह है कि उसे तुम लोगों ने विकृत, अशुद्ध और संकीर्ण स्वार्थ-जनित कारणों से रक्त-रंजित कर दिया है।

* * *

इक्यावनवां परिच्छेद

"आज नदी के किनारे अकेले गया था। सूर्य डूब चुका था। नग्न नीलाकाश में केवल दो-एक रक्त मेघ-खंड प्रगल्भा नायिका की कृत्रिम लज्जा की आभा झलका रहे थे। मैं कलकल ध्वनि से छलकनेवाली पुलिन-नितंबा नदी के पुलक-मदन का शब्द एकांत मन से सुनता हुआ स्वयं भी पुलकित हो रहा था। झिल्लियों की झनकार ने चारों ओर एक अपार्थिव शान्ति का-सा जाल बुन दिया था।

"मैं तन्मय होकर बैठा था। सहसा न जाने किस दिव्य लोक से वंशी की एक अलौकिक स्वर-लहरी कितने ही पर्वतों और गुफाओं से होकर गूंजती हुई

मेरे कानो में आकर टकराई। तत्काल मेरी सारी शारीरिकता न जाने कहा विलीन हो गई। रह गई केवल मेरी आत्मा, और वह भी उस निराली तान मे घुल-मिलकर जैसे एकाकार होने लगी।

"वशी की ध्वनि एकात क्षणो में मै कई बार पहले भी सुन चुका हूँ, और सुनकर पुलकित भी हुआ हूँ। पर आज की तान उन सबसे निराली थी, और आज की अनुभूति भी अपूर्व थी। आज की स्वर-तरग में ही कोई विशेषता थी, या आज के वातावरण में कोई नयी बात थी, अथवा मेरे मन में ही आज पहले ही से कोई नयी जमीन तैयार हो गई थी, यह मै बता नही सकता। पर कारण जो भी हो, उसकी प्रतिक्रिया आश्चर्यजनक थी।

"जब तक वासुरी बजती रही, मेरी आत्मा वायु में गध की तरह उसमें विलीन रही। जब स्वर थम गया तब ऐसा लगा कि बडी तेज़ी से सूक्षतम बीज-रूप मेरी आत्मा फिर से शरीर धारण करने लगी। जब मै अपनी शारीरिकता को पूर्ण रूप से वापस पा गया तब मेरे मन में जो प्रतिक्रिया हुई वह इस प्रकार है —

"मुझे न जाने क्यो, सहसा यह अनुभव होने लगा कि इस जन्म में मै जो सघर्ष से दूर रहा हूँ, इसका कारण यह नही है कि मेरी आत्मा स्वभाव से ही सघर्ष से कतराती रही है। मै युग-युगातर से घोर सघर्षो में रत रहा हूँ। पूर्व युगो के उन सघर्षो के फलस्वरूप बीज-रूप में मैने ऐसे अनुभव-सिद्ध सत्य प्राप्त किए है, जिनकी अवज्ञा मै किसी भी हालत में—समस्त ससार के विरोध के बावजूद भी—नही कर पाता। उन्ही बहु-काल पूर्व के सघर्षो का यह फल है कि मै इस जन्म मे पूर्ण विश्राम की मनोवृत्ति लेकर आया था। पर इस जन्म में भी जब विश्व के चारो ओर से 'सघर्ष—केवल सघर्ष' का नारा सुनता हूँ, और कोई भी एकात स्थान मुझे वास्तविक, मानसिक और आध्यात्मिक विश्राम के लिए नही मिल पाता, तब मेरा अन्तर्विद्रोह अज्ञात मे प्रचड रूप धारण किये बैठा है, और आधुनिक राजनीतिक और वैज्ञानिक

जीवन की कृत्रिमताओ से प्रसूत किसी भी व्यस्तता में शरीक होने से मेरी आत्मा हठवश अस्वीकार कर देती है।

"बीच-बीच में कुछ क्षण अवश्य—अकस्मात् ही—ऐसे आ पडते है जब मेरी आत्मा पूर्ण विश्राम, पूर्ण शान्ति और पूर्ण आनद का अनुभव करती है। आज की अनुभूति ठीक उसी प्रकार की थी।

"पूर्वोक्त भावना को लिखकर समझाने में जितनी देर लगी है, वास्तव में उसकी अनुभूति मे उसका हजारवा हिस्सा समय भी नही लगा। उसके बाद ही तत्काल एक अनुभूति मेरे भीतर जग उठी। सहसा रूपा का दिव्य रूप—उसका सूक्ष्म शरीर—मेरी मानसिक आखो के आगे तीव्रतम प्रकाश मे, उज्ज्वलतम रगो के साथ विभासित हो उठा। एक अलौकिक पुलक के प्रकपन से मेरी सारी अतरात्मा सिहर उठी। 'पा लिया, रूपा! मैने तुम्हे पा लिया!'—मै मन-ही-मन कहने लगा—'आज पहली बार सच्चे अर्थो मे मैने तुम्हे पाया। अब तुम चाहे मुझसे कितनी ही दूर रहो, पार्थिव जगत् मे हम दोनो के बीच कैसा ही भीषण व्यवधान क्यो न खडा हो जाय, तुम्हारी प्रशात आत्मा की दिव्य ज्योति से मुझे अलग कर सके, ऐसी कोई शक्ति इस ससार में नही है। तुम अपनी इच्छा से या परिस्थितियो के दबाव से जहां जाना चाहती हो, जाओ। तुम्हारे प्रत्यक्ष विछोह से मुझे मानसिक पीडा—तीव्रतम मर्म-पीड़ा—होगी, यह मै जानता हूँ। पर उस पीडा से जिस अपूर्व आध्यात्मिक सुख के रस का मथन मेरे भीतर होगा उसे कोई शक्ति मुझे वचित नही कर सकेगी।'

"इस प्रकार जब मैं आध्यात्मिक अनुभूति के उच्चतम स्तर पर पहुँचा हुआ था, तब सहसा मेरे मानस-लोक में शेली, रवीन्द्रनाथ और हिन्दी के सभी प्रमुख छायावादी और रहस्यवादी कवियो के अत्यन्त गहन और उलझे हुए भाव अत्यन्त सुगम और सुलझे हुए मालूम होने लगे। इन सब कवियो की कविताओ के भीतर जो उनके प्राणो की अलक्ष और

अनिर्वचनीय, किन्तु मूल जीवन के स्पदन से फडकती हुई सूक्ष्म अनुभूतिया वर्तमान थी, वे जैसे स्थूल और समूर्त रूप धारण करके मुझे एक निराली गुदगुदी देने लगी। उस क्षण के लिए मुझे निश्चित रूप से विश्वास हो गया कि मेरा वह तत्कालीन अनुभव ही जीवन का चरम सत्य है, करोडो वर्षों से मानव-(तथा पूर्व-मानव-)जीवन का जो विकास धीरे-धीरे, किन्तु एक निश्चित नियम से, चला जा रहा है वह केवल इसी दिव्य अनुभूति की निश्चित प्राप्ति के लिए। जब तक मानव-जीवन की समस्त शारीरिकता और मानसिकता इसी सूक्ष्मतम और चिदानन्दमयी अनुभूति मे पूर्णतया परिणत नही हो जाती तब तक उसका सारा सघर्ष-विघर्ष-मय चक्र बिलकुल व्यर्थ है। जिस सघर्ष का प्रत्यक्ष या परोक्ष लक्ष्य विश्व के समस्त बिखरे हुए तत्त्वो को एक आनन्दमय रूप मे गूथनेवाली वह अनुभूति नही है उसकी कोई सार्थकता किसी भी रूप मे नही हो सकती। इस प्रकार की भावना में मै कुछ देर तक परिपूर्ण रूप से मग्न-सा रहा।

* * *

"पर यह अनुभूति अधिक समय तक स्थिर न रह पाई। सूरज के डूब जाने के बाद ज्यों-ज्यों अधकार धीरे-धीरे बढता चला गया, त्यो-त्यों उस अपार्थिव अनुभव की प्रतिक्रिया मेरे भीतर एक विचित्र भयावह रूप धारण करती चली गई। सहसा हवा का वेग भी बढ गया था। चारो ओर से एक अजीब-सा हाहाकारपूर्ण शब्द मेरे कानों में गूजने लगा। मै लाख चेष्टा करने पर भी फिर उस पूर्व अनुभूति के स्तर पर अपने को पहुचाने मे असमर्थ रहा। मुझे लगा कि उत्तरी ध्रुव से एकदम दक्षिणी ध्रुव में पहुँच गया हूँ। उत्तरी ध्रुव में प्रकाश-ही-प्रकाश था, पर दक्षिणी ध्रुव में उस समय निविड अमावस्या छायी हुई थी। मुझे अपने सघर्ष-विमुख जीवन की चरम व्यर्थता का परिपूर्ण अनुभव होने लगा। उस व्यापक अधकार मे यह निश्चित सत्य मेरे आगे प्रभासित हो उठा कि जीवन प्रत्यक्ष रूप से एक सघर्ष ही है, इसमें सदेह के लिए कोई गुजाइश नहीं है। इस जीवन-सघर्ष में मुझे कभी सफलता नहीं मिल सकती, क्योंकि स्वभाव से ही मै उसके लिए अयोग्य हूँ।

इसलिए जीवन की कठोर परिस्थितियों के अनुसार अपनी प्रवृत्तियों और शक्तियों को सयोजित करने मे असमर्थ जीव-जतुओं की तरह मेरा भी विनाश अवश्य-म्भावी है। रूपा, मैं सचमुच तुम्हारे योग्य नही हूँ। साथ ही जो पीडा तुमने अपने प्राणो के अश्रु-कोमल और स्नेह-सजल अस्त्रों से मेरे प्राणो मे जगाई है उससे छुटकारा पाने मे भी मै असमर्थ हूँ। जो उदात्त क्षण बीच-बीच मे कुछ क्षणो के लिए अकस्मात् मेरे सामने आ जाते हैं, उनमे तुम्हारी चिन्ता को भी मै उसी उदात्त स्तर पर पहुँचा पाता हूँ, सदेह नही, पर वह महासत्य क्षणिक बिजली मेरे अतर मे झलका जाने के बाद निबिड़तम अधकार अपने पीछे छोड जाता है। इसलिए अब से तुम अपनी नाव अपने-आप खेओ—सभव है, भाग्य के साथ देने पर तुम किनारे पर पहुँच जाओ। पर मै निरुद्देश्य बहने के लिए मझधार मे अपने को छोड़ देना चाहता हूँ—जिस अधकार मे मै इस समय हूँ उससे भी गहनतर अधकार मे अपने को सदा के लिए डुबा देने के लिए। कौन जाने मृत्युलोक के उस गहनतम अधकार के बीज से एक नया प्रकाश विभासित हो उठे, जिसकी खोज मे मैं ज्ञात मे या अज्ञात मे प्रतिपल भटकता रहा हूँ।

* * *

"मैंने निश्चय कर लिया है कि मै लडाई मे भरती होकर युद्ध-क्षत्र म जाऊँगा। मेरे जैसे सघर्ष-विमुख प्राणी के भीतर यह विचित्र प्रतिक्रिया जगी है। इतने दिनो तक सघर्ष से एकदम भागता फिरता था, अब सघर्ष के चरम रूप को अपनाऊँगा। मुझ जैसे चरमवादियो का यही हाल होता है। सभव है सामूहिक विनाश के बीच मे रह कर जीवन की रहस्यमयता का कोई गुप्त आभास पा जाऊँ।

[इसके बाद के कई पन्ने फटे हुए थे। एक स्थान पर एक पन्ने का एक टुकडा पूरा फटने से रह गया था, उसमे एक शब्द ने बिजली की-सी तेजी से नीलिमा की आँखों मे चकाचौंध लगा दिया। शब्द यद्यपि कटा हुआ था, तथापि गौर से देखने पर नीलिमा ने पढा। वह था 'महीप'। नीलिमा को समझने में देर न लगी कि महीप के सम्बन्ध मे बहुत सी बाते ठाकुर धीराजसिंह ने लिखी थीं। पर वे

किसी कारण से फाड डाली गयी है। अंत में जो पंक्तियां लिखी थीं, वे इस प्रकार है —]

"मैं शिकार के लिए आया हूँ। अपने मन की वर्तमान स्थिति में भी न जाने क्यों, मैं यहां चला आया। शिकार की प्रवृत्ति मेरे स्वभाव के विपरीत होनी चाहिए थी। पर न जाने कहां से यह अस्वाभाविक प्रवृत्ति मेरे भीतर एक साधारण-सी प्रेरणा से उकस उठती है। फिर भी इस बार रह-रह कर मेरी अंतरात्मा डोल रही है। लगता है कि कोई रहस्यमयी वाणी किसी अज्ञात रेडियो से आकर उसमें टकरा रही है—यद्यपि वह किसी प्रकार भी स्पष्ट नहीं हो पाती। वह वाणी मेरे कानों में यह फुसफुसा रही है कि मेरे जीवन का चरम क्षण आ पहुँचा है। मैं कह नहीं सकता कि मैं शिकार करने जा रहा हूँ या किसी जानवर का शिकार होने "

नीलिमा डायरी समाप्त करने पर भी बहुत देर तक अन्यमनस्क भाव से उसे अपने हाथ में ही लिए रही। उसके बाद डायरी बगलवाली मेज पर रखकर, दोनों हाथों से अपना मुंह छिपाकर लेट गई और विचित्र, अस्पष्ट, असंगत और भयावह कल्पनाओं में उसने अपने को डुबा दिया।

बावनवां परिच्छेद

महीप के भीतर जो आग बहुत दिनों से धीरे-धीरे सुलगती चली जा रही थी उसका चरम विस्फोट हो चुका था। जो गुमनाम पत्र उसने नीलिमा को भेजा था वह उसी विस्फोट का परिणाम था। पत्र को टाइप करने के बाद उसे डाक में डालने के पहले तरह-तरह के संकल्प-विकल्प उसके मन में उत्पन्न हो रहे थे। अन्त में अंतर की उसी आग की प्रबल प्रेरणा से उसने वह पत्र बम्बे में डाल ही दिया और उस समय से वह बड़े अधैर्य के साथ परिणाम की प्रतीक्षा करने लगा। पर जब पत्र को भेजे हुए चार दिन हो गए और विवाह की तैयारियों में कहीं किसी प्रकार का ढीलापन उसे नहीं दिखाई दिया, बल्कि और अधिक उत्साह के चिन्ह दिखाई देने लगे, तब उसे ऐसा बोध होने लगा जैसे किसी ने उसके मुंह पर जूता मार दिया। अपनी नीचता उसके आगे नग्न रूप में प्रकट होने लगी। इस बात की मार्मिक

ग्लानि से उसकी अन्तरात्मा विकल हो उठी कि वह नीलिमा का विवाह रोकने के लिए चोरों और लुच्चों का-सा हीन उपाय काम में लाने पर उतारू हो गया। इसके पहले वह कभी इस बात की कल्पना नहीं कर सकता था कि उसके स्वभाव में नीचता इस हद तक वर्तमान है। उसे स्वयं यह सोचकर आश्चर्य होने लगा कि उसे इस प्रकार का पत्र लिखने का साहस ही कैसे हुआ। इस बात का एक भी प्रमाण उसके पास नहीं था कि ठाकुर साहब ने धीराज की हत्या की है। शारदा देवी ने केवल अपने अनुमान से और सुनी-सुनाई बातों के आधार पर उससे जो बातें कही थीं उनको प्रत्यक्ष प्रमाण मानकर ठाकुर साहब के विरुद्ध लोमहर्षक और आतंककारी आरोप लगाने का क्या अधिकार उसे था? "धिक्कार है! धिक्कार है!" (वह मन-ही-मन अपने-आप को कोसने लगा।)

महीप की ग्लानि का सब से बड़ा कारण यह था कि उसने अपनी मरता-क्या-न-करता की-सी मानसिक स्थिति में जो ब्रह्मास्त्र गुमनाम पत्र के रूप में छोड़ा था वह स्पष्ट ही अपने लक्ष्य को बेधने में व्यर्थ सिद्ध हो गया था। उसने सोचा था कि ठाकुर साहब की हत्याकारी प्रवृत्तियों और हत्याकाण्डों से परिचित होने पर नीलिमा कभी इस विवाह के लिए राजी न होगी। पर पत्र पहुँचने के चार दिन बाद भी वह प्रत्यक्ष देख रहा था कि विवाह की तैयारियाँ पहले से भी अधिक उत्साह के साथ हो रही थीं। इससे स्पष्ट था कि नीलिमा ने उन आरोपों पर तनिक भी विश्वास नहीं किया था। "और मैं मूर्ख यह जानता हुआ भी कि नीलिमा ठाकुर साहब को जी-जान से चाहती है और उन्हें बहुत पहले ही अपना तन-मन अर्पित कर चुकी है, उन दोनों के बीच विरोध खड़ा करने के हीन उपाय में लगा हुआ था! धिक्कार है! धिक्कार है!" इस तरह सोचता हुआ वह बार-बार अपने को अत्यन्त निर्ममता से कोसता जाता था।

इधर कुछ दिनों से उसने ठाकुर साहब से मिलना एकदम बन्द कर दिया था और खाना भी वह अपने कमरे में अकेले ही खाता था। ठाकुर साहब भी उसकी इस एकांत-प्रियता में बाधा डालने के लिए विशेष उत्सुक नहीं जान पड़ते थे। बल्कि महीप के इस रुख से वह प्रसन्न ही हो रहे थे। शारदा देवी उसमें बीच-बीच में

मिलती रहती थीं, पर इधर कुछ दिनों से वह भी महीप की ही तरह उन्मन हो उठी थीं, और एक अजीब-सी उदासी उनके मुख पर सब समय छाई हुई दिखाई देती थी। शारदा देवी की इस उदासी का कारण क्या हो सकता है, इस बात का कुछ भी ठीक अनुमान महीप नहीं लगा पाता था। एक और परिवर्तन महीप ने उनमें पाया, वह यह कि अब वह बहुत कम बोलती थीं, और जितना-कुछ भी बोलती थीं, सब अनमने ढंग से—आधे और अस्पष्ट वाक्यों में। पर किसी अज्ञात संस्कारवश महीप के मन में यह धारणा जमने लगी थी कि शारदा देवी कोई अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात उससे कहना चाहती हैं, जिसके कहे बिना उन्हें एक पल के लिए भी रत्ती-भर चैन नहीं मिल रहा है, पर न जाने किस प्रतिरोधी शक्ति की विवशता के कारण वह कह नहीं पातीं। वह क्या कहना चाहती हैं यह जानने के लिए महीप भी अत्यन्त उत्सुक और अधीर हो उठा था। उसके मन की तत्कालीन घोर अंधकारपूर्ण विकट संकटावस्था में संभवतः शारदा देवी की उस अनकही बात से तिनके का सहारा मिल जाय, यह क्षीण आशा चारों ओर की निपट निराशा के महासागर के बीच में अपनी झिलमिली झलक दिखाती हुई उसे और अधिक विकल कर रही थी। वह यह महसूस कर रहा था कि शारदा देवी की सहायता की सब से बड़ी आवश्यकता उसे इस समय है, और केवल वही तत्कालीन दुर्गम परिस्थिति में उसे रास्ता सुझा सकती हैं। पर अपने दुर्भाग्य के इस षड्यंत्र को वह बार-बार कोसने लगा कि ऐन मौके पर शारदा देवी का रुख ही बदल गया और उन्होंने एक रहस्यमय मौन और भेद-भरी उदासी के सघन पर्दों से अपने-आप को ढक लिया है।

विवाह के ठीक एक दिन पहले महीप की बेचैनी चरम सीमा को पहुँच गई। उसे ऐसा बोध होने लगा कि उसके हृदय के सूक्ष्म तारों को किसी अदृश्य पेचकश द्वारा अत्यन्त निर्ममता से ऐंठा जा रहा है। मानव-हृदय के पीडन की अनुभूति किसी भी कारण से इस कदर तीव्र हो सकती है, इस बात की कल्पना इसके पहले उसने कभी नहीं की थी। वह अपने कमरे के भीतर बन्द होकर कभी अपने माथे को हाथ से इस तरह दबाए बैठा रहता जैसे असह्य पीडा से उसका सिर फटा जा रहा हो। हालांकि उसके सिर में दर्द का लेश भी नहीं था। कभी वह अचानक उठकर

कमरे में बड़ी तेजी से टहलने लगता और टहलता हुआ कभी दाँतों को पीसता और कभी दाहिने हाथ को झटकता रहता। कभी पलंग पर चित लेट जाता और छत पर से लटकते हुए बिजली के पंखे की तेज़ रफ्तार का निरीक्षण एकाग्र चित्त से करने लगता। तब तक वह उस पंखे की ओर देखता रहता जब तक स्वयं उसका मस्तिष्क भी उसी रफ्तार से चक्कर न खाने लगता। कभी अचानक उठकर अपनी मुट्ठी से कई बार अपना माथा ठोंकने लगता। बीच-बीच में वह मन-ही-मन चीख मारकर कराह उठता—"क्या उपाय है! आत्म-हत्या का क्या उपाय है! मुक्ति का कौन मार्ग है!" और फिर निपट बेबसी से मुट्ठी बाँध कर हाथ को झटकने लगता।

पिछले कुछ दिनों से निरंतर, प्रतिपल महीप आत्महत्या की बात सोच रहा था। वह आंतरिक मन से अपने अस्तित्व को मिटाने के लिए अधीर हो उठा था। उसकी मानसिक स्थिति ऐसे निम्न—अप-साधारण—स्तर को पहुँच गई थी कि वह अपने को एक संकीर्ण परिधि के चारों ओर चक्कर लगाता हुआ पा रहा था और उस परिधि के परे किसी प्रकार भी उसकी दृष्टि नहीं जाती थी। उसकी बेचैनी का सब से बड़ा कारण यह था। उस संकीर्ण मानसिक परिधि से मुक्त होने के लिए वह बुरी तरह छटपटा रहा था, पर उसके सब प्रयत्न निष्फल सिद्ध हो रहे थे। ऐसी दशा में आत्म-हत्या के सिवा अपने त्राण का और कोई उपाय उसे नहीं सूझ रहा था। पर आत्म-हत्या के लिए जिस मानसिक एकाग्रता और तन्मयता की आवश्यकता होती है, उसका निपट अभाव वह अपने में पा रहा है, जिससे उसकी बेचैनी दुगनी बढ़ रही थी। कहीं से पिस्तौल जुटाने या किसी घातक विष का प्रबन्ध करने की न तो उसमें फुर्ती ही थी, न योग्यता।

दिन-भर उसके मन की यही दशा रही। इस बात की बहुत बड़ी आशंका उसके मन में उत्पन्न हो गई थी कि रात होने तक वह निश्चय ही पागल हो जायगा—सचमुच का पागल—और ठाकुर साहब उसे आगरे के पागलखाने में भेजने के लिए बाध्य होंगे। इसलिए वह इच्छाशक्ति का पूरा प्रयोग करना चाहता था,

देखती रह गई। सभवत उसके मन के भीतर का असली भाव जानने की चेष्टा करने लगीं। महीप उनकी उस अतर को चीर डालने वाली दृष्टि से कतराकर, आखें प्राय चुराता हुआ तनिक हिचक के साथ बोला—"शारदा देवी, मै आपसे एक प्रार्थना—आपको एक बात के लिए कष्ट देना चाहता था "

"कहिए, कहिए, क्या बात है?" अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक शारदा देवी ने कहा।

"क्या आप मुझे कुछ रुपये उधार दे सकेंगी? पन्द्रह-बीस रुपयों से मेरा काम चल जायगा।"

"मै अभी आती हूँ।" कहकर शारदा देवी तत्काल तेज कदम रखती हुई चली गई।

महीप तनिक घबराहट के साथ उनके लौटने की प्रतीक्षा करने लगा। प्रायः दस मिनट बाद शारदा देवी वापस आई। महीप ने देखा, उनके विषाद-म्लान मुख पर ठीक वैसी ही गम्भीर और मौन महिमा छाई हुई है जैसी वह एक बार पहले देख चुका था—जिस दिन दोनों नाव पर सैर करने गए थे। वह सहम गया।

शारदा देवी ने कहा—"तो आप आज चले ही जावेंगे!"

"जी हा, और कोई चारा नहीं है।"

"अच्छी बात है, यह लीजिए।" कहकर शारदा देवी ने आचल के भीतर से हाथ निकाल कर कुछ नोट महीप के हाथ मे रख दिए। महीप ने खोलकर देखा तो सौ-सौ के पाच नोट थे। वह चौंक उठा।

बोला—"यह क्या! यह आप क्या दे रही है? मैने तो केवल पन्द्रह-बीस रुपये मागे थे।"

शारदा देवी ने अत्यन्त धीरता के साथ कहा—"मैने ठीक ही दिए है। मै आपको दान नही दे रही हूँ। यदि मै न देती तो आप को अवश्य ही कही-न-कही से ब्याज मे रुपया कर्ज लेना पडता। इसलिए मैने पहले ही आप को कर्ज दे दिया

है—पर बिना ब्याज के। पन्द्रह-बीस से आपका काम अधिक न चलता, यह आप भी अच्छी तरह जानते हैं और मैं भी। इसलिए आप चुपचाप बिना किसी आपत्ति के इन्हे रख लीजिए। जब भी सुविधा हो, लौटा दीजिएगा।"

इस दलील से और शारदा देवी की सहृदयता से महीप अत्यन्त प्रभावित हुआ। बोला—"मैं आपको किन शब्दो मे धन्यवाद दू, समझ नही पाता। आपने इस संकट की घड़ी मे मेरी लाज रख ली, इससे अधिक इस समय में और कुछ नही कहूँगा।"

महीप ने अस्पष्ट प्रकाश में देखा, शारदा देवी की आखे भर आई और कोयो में आसू के कण चमकने लगे। महीप हतबुद्धि होकर केवल देखता रहा, मुह से एक शब्द भी सान्त्वना के रूप मे बोलने का साहस उसे न हुआ। वास्तव में वह 'सान्त्वना' किस बात के लिए देता! शारदा देवी के रहस्यमय आसुओ का कोई कारण मालूम कर सकने में वह समर्थ नही था।

क्षण-भर के लिये दोनो उसी रहस्यमय परिस्थिति मे मौन भाव से खडे रहे। उसके बाद सहसा शारदा देवी बोल उठी—"तो आप ९ बजे की गाडी से जाने का इरादा कर रहे हैं?"

"मै अभी स्टेशन चल देना चाहता हूँ। कोई-न-कोई गाडी मिल जायगी।"

"अच्छी बात है, तो मैं एक तागे का प्रबन्ध किए देती हूँ।" यह कहकर शारदा देवी जाने लगी।

महीप ने कहा—"मैं ठाकुर साहब से बिना मिले ही जा रहा हूँ। किसी को पता न चले, कृपया इस बात को ध्यान मे रखिएगा।"

"आप निश्चित रहे," कहकर शारदा देवी चली गई।

महीप कमरे की बत्ती जलाकर अत्यन्त अस्त-व्यस्त मानसिक अवस्था में चहल-कदमी करने लगा। शारदा देवी ने एक विचित्र ही भेद-भरा वातावरण उत्पन्न कर दिया था, जिससे उसकी बुद्धि चकराने लगी थी।

"प्रिय महीप जी!

मैं आपसे एक अत्यन्त आवश्यक कार्य से एकांत में मिलना चाहती हूँ विश्वास रखिए, मैं आपका अधिक समय नहीं लूंगी। क्या आप यह सूचित करने की कृपा करेंगे कि कब, किस समय और कहां आपसे मिलना हो सकेगा?

प्रतिमा।"

पत्र पढ़कर महीप के मुंह का रंग ही एकदम बदल गया। पत्र पढ़ चुकने के बाद भी वह काफी देर तक उसी पर दृष्टि डाले रहा और तरह-तरह की कल्पनाएं करने लगा। शारदा देवी गौर से उसकी ओर देख रही थीं। वह घबराई हुई उसके पास आईं और बोलीं—"कुशल तो सब अच्छी है? किसका पत्र है?"

उनके प्रश्न से महीप की मोहनिद्रा जैसे भंग हुई। पत्र को लपेटकर जेब में डालकर कृत्रिम उदासीनता का भाव जताते हुए बोला—"कोई आवश्यक पत्र नहीं है।" यह कहकर उसने तांगेवाले से चलने को कहा। तांगा जब चलने लगा तब उसने फिर एकबार शारदा देवी की ओर हाथ जोड़े।

रास्ते भर वह यही सोचता रहा कि प्रतिमा का रहस्यपूर्ण पत्र उसे कैसे विचित्र समय पर मिला। यदि केवल एक घंटा पहले वह पत्र उसे मिला होता तो संभवतः उसे अपनी आज की यात्रा स्थगित कर देनी पड़ती, और तब, कौन जाने, कब तक के लिये वह यात्रा स्थगित रह जाती, और किन नये चक्करों में उलझना पड़ता। पर ऐसे समय वह पत्र मिला, जब उसके लिए रुकना असंभव है, क्योंकि यात्रा का विचार करने के बाद उसके अन्तर की सारी शक्तियां अग्रमुखी हो उठी थीं। और हर हालत में केवल आगे को बढ़े चलने के लिए अत्यन्त विकल और अधीर हो रही थीं—पीछे को हटना उसके लिए संभव नहीं रह गया था।

"पर प्रतिमा के इस पत्र का आशय क्या हो सकता है?"—वह सोचने लगा

"वह चाहती क्या है? निश्चय ही वह भी अपनी बहन की ही तरह मुझे किसी दूसरे भूलभुलैया के चक्कर मे भरमाना चाहती होगी। एक चक्कर के फेर मे पडकर मैंने अपने प्राणों को ही सकट मे डाल दिया था और बड़ी मुश्किल से उससे छुटकारा पाकर भाग निकला हूँ, तिस पर यदि अब दूसरा सकट मैं मोल लेता तो मेरी दुर्गति न जाने किस असीम की ओर, बाढ आई हुई नदी की तरह, बढी चली गई होती! यह अच्छा ही हुआ कि प्रतिमा का पत्र ऐसे मौके पर मुझे मिला जब मेरे चाहने पर भी मैं रुक नहीं सकता था। मैं अब इन सब मायावी फदो से भाग्यवश बच निकला हूँ। मुक्ति! मुक्ति! अब कोई भी झूठी मोहिनी मुझे बाघ नहीं सकती!"

अपनी मुक्ति की कल्पना से सहसा ऐसा उल्लास महीप के मन मे समा गया कि उसका जी चाहता था तागे पर ही खडा होकर खूब उछले, कूदे, नाचे और गावे। केवल एक घटा पहले वह अपने अन्तर के अतल-लोक में स्थित कुटिल नागों के पाश से अपनी आत्मा को इस कदर जकडा हुआ पा रहा था कि उसका दम ही घुटा जा रहा था। और अब सहसा अप्रत्याशित रूप से उसे ऐसी मुक्ति मिली कि सपूर्ण पृथ्वी और समस्त आकाश ने उसके अन्तर की तीव्र प्रगति के मार्ग से सभी रुकावटो को हटाकर साफ कर दिया था। तागे का तन्दुरुस्त घोडा बडी तेज रफ्तार से दौडा चला जा रहा था, पर अपनी मुक्त आत्मा के पागल प्रवेग के आगे वह चाल महीप को चीटो की चाल मालूम दे रही थी। जिस व्यक्ति ने इस मुक्ति मे उसकी बहुत बड़ी सहायता की थी उसके सबंध मे कुछ भी सोचने का—पीछे की ओर एक बार लौटकर देखने का—अवकाश उसे नही रह गया था। उसके विदा होने के समय शारदा देवी के म्लान मुख पर जो एक अत्यन्त सकरुण छवि छाई हुई थी उसका एक अत्यन्त क्षीण भास केवल एक बार उसकी मानसिक आखों के आगे झलक उठा था, पर वह तत्काल ही विलीन हो गया था।

स्टेशन पहुँचने पर उसे प्राय एक घटा गाड़ी के लिए इन्तजार करना पडा।

इस इन्तजारी में उसकी आत्मा की तूफानी उडान की गति कुछ धीमी पड़ गई। पर वह प्लेटफार्म पर चक्कर काटता हुआ उस गति को एकदम बन्द न होने देने का प्रयत्न करता रहा। चक्कर काटते हुए उसका ध्यान अपने गले में कुरते के भीतर लटकते हुए लाकेट की ओर गया। शारदा देवी ऐसी प्रगतिशील विचारों की नारी भी इस अन्धविश्वास से इस तरह जकडी हुई है यह सोच कर वह मन-ही-मन मुस्कराने लगा। पर सहसा किसी अज्ञात कारणों से उसकी वह मुस्कराहट अत्यन्त गम्भीर भावना में बदल गई। अन्त में गाडी आ पहुँची। इटर क्लास के एक भरे हुए डिब्बे मे किसी तरह अपने बैठने भर की जगह निकालकर वह अत्यन्त अधीरता से उसके चलने की प्रतीक्षा करने लगा। उसे ऐसा लगा कि उसकी बन्धन मुक्त आत्मा का तूफान मेल जैसे उस स्टेशन पर आकर ठहर गया है। अपनी तत्कालीन मनोदशा मे उसका एक सेकेन्ड के लिये भी ठहरना उसे बहुत नागवार मालूम हो रहा था।

अन्त में जब गाडी रवाना हुई, तब उसका अन्तर भी रेल के इजिन की तरह भक-भक शब्द करने लगा। स्टेशन को पार करने के बाद जब गाडी की रफ्तार तेज हुई, तब महीप की आत्मा फिर एक बार तरगित हो उठी। वह गाडी की चाल के साथ अपने भीतर उठे हुए भावो के तूफान की गति का साम्य स्थापित करने की चेष्टा करने लगा। पर उसके अन्तर का वह तूफ़ान गाडी को बहुत पीछे छोडता जाता था, यद्यपि महीप उसे बार-बार नियन्त्रित करने का प्रयत्न कर रहा था।

"अग्रे-अग्रे ! अग्रे-अग्रे !!" गाडी के पहियो की आवाज महीप के कानो में निरतर यही मत्र भरती चली जाती थी। वह भीतर-ही-भीतर यह कामना कर रहा था कि वह तूफानी यात्रा कभी समाप्त न हो और वह गाडी अनन्त काल तक कही न ठहरकर निरतर आगे को बढती चली जावे।

दूसरा भाग

पहला परिच्छेद

निर्बन्ध-आत्मा की उस तूफानी यात्रा के बाद महीप के भीतर सहसा भीषण रूप से मूलगत परिवर्तन के चिह्न प्रकट होने लगे। आरभ में वह ठीक से कुछ भी नहीं समझ पाया कि उसके भीतर क्या परिवर्तन हो रहा है। केवल इतना अनुभव करने लगा कि उसके अन्तर्प्रदेश मे विस्फोट पर विस्फोट और भूकम्प पर भूकम्प होने चले जा रहे है, जिनके कारण उसकी आत्मा के अतल मे छिपे और दबे हुए बड़े-बडे भारी चट्टान कभी एक-एक करके भीषण शब्द के साथ ढहते चले जा रहे है और कभी ज्वालामुखी के-से अट्टवेग के साथ टूटकर बाहर फूट निकल रहे है। कौन चट्टान ढहकर कहा गिर रहा है, कौन फूटकर बाहर कहा गिर रहा है, इसका कुछ भी अन्दाज लगाने मे वह अपने को असमर्थ मालूम कर रहा था। किस शक्ति की प्रेरणा से यह सब—बिना उसके अपने किसी प्रयत्न के—हो रहा है, यह भी वह नही जान पाता था। केवल उस भूकम्पी माया की भीषणता से वह बीच-बीच में हौलदिल हो उठता था।

कई महीनों तक यह विस्फोटक क्रिया उसके भीतर चलती रही। महीप को ऐसा लग रहा था कि उस क्रिया के फलस्वरूप उसके व्यक्तित्व का भीतरी रूप विराट से विराटतर बनता चला चला जा रहा है। अपने शरीर के छोटे कद के विरुद्ध उसके भीतर बहुत दिनों से विद्रोह चल रहा था। अपने 'बबुआ' रूप से वह अत्यन्त घृणा करने लगा था, और हर हालत मे उसका प्रतीकार—अन्य रूपों में अपने व्यक्तित्व का विस्तार—चाहता था। इतने समय तक अपने जीवन की असफलता का एकमात्र कारण वह अपने व्यक्तित्व के उस 'बबुआ'-रूप को ही मानता था। इसलिए अपने अन्तर्जगत् की विस्फोटक क्रिया के फलस्वरूप जब उसे (न जाने किस आधार पर) यह बोध होने लगा कि उसके भीतरी व्यक्तित्व में विशालता आ रही है, और उसके भीतर जो बहुत बडी शक्तिया इतने दिनों तक भीषण चट्टानों के नीचे दबी पडी थीं, वे उभर उठी हैं, तब उसके अदर प्रचड आत्म-विश्वास जग उठा।

इस अपूर्व अनुभूति के बाद सदा अपने अन्तर के सुकुमार भावना-लोक में निमग्न रहनेवाला वह नारी-सुलभ कोमल-शरीर और बालकोपम आकार-वाला नन्हा सा कवि कार्यक्षेत्र में कूद पडा। उसके कार्यक्षेत्र में कूदने का साहस कितना बडा था, और इस घटना का कितना बडा महत्त्व था, यह बात स्वय उससे अधिक कोई नहीं जानता था। कुछ ही समय पहले तक वह अपने भीतर इतने बड़े साहस की कल्पना कर ही नहीं सकता था। पर ऐसे गुप्त रूप से वह कार्यक्षेत्र में कूदा कि कुछ प्रारभिक वर्षों तक उसके पिछले जीवन के परिचित व्यक्तियों में से किसी को भी ठीक तरह से इस बात का पता नहीं चला कि वह वास्तव में किन गुप्त चक्करों में अपने को उलझाए हुए है। इस अर्से में उसने शारदा देवी को दो-तीन पत्र अवश्य लिखे थे, पर उन पत्रों से शारदा देवी ठीक अन्दाज न लगा पाई कि महीप वास्तव में किस उद्देश्य से प्रेरित होकर किस प्रकार के दल के सगठन में व्यस्त है और वह गुप्त दल किन उपायों को काम में लाकर किस ध्येय की ओर बढा

चला जा रहा है। महीप ने लिखा था कि वह उन्हीं को (शारदा देवी को) अपना गुरु मान कर कार्य कर रहा है। यह बात उन्हे और भी रहस्यमय लगी थी, पर उनके कौतूहल का निवारण महीप के किसी भी पत्र से नहीं हुआ।

* * *

ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह के बगले में जिस दिन महीप शारदा देवी से अन्तिम बार मिल कर विदा हुआ था तब से प्राय चार वर्ष बीत चुके थे।

एक दिन वह युक्तप्रान्त के एक छोटे शहर के किसी कोने में स्थित अपने छोटे-से दुमजिले मकान के ऊपरी खड मे अपने कमरे मे अनमने भाव से बैठा हुआ था। जाडे के दिन थे। वह पूर्व की ओर वाली खिडकी के पास एक कुर्सी पर बैठकर धूप खा रहा था। उसके मुख पर प्रगाढ चिन्ता के चिह्न स्पष्ट झलक रहे थे। उसके नौकर ने, जो प्राय १७–१८ वर्ष का एक हँसमुख छोकरा था, उसके आगे एक छोटा-सा पेग-टेबिल लगा दिया और उसके ऊपर धुआंती हुई चाय का प्याला रख दिया। महीप उसी अनमने भाव से प्याला उठाकर धीरे-धीरे चाय पीने लगा।

एक तांगा सामने सड़क पर से होकर आ रहा था। महीप निपट उदासीनता के साथ उसी की ओर देख रहा था। उस तांगे पर एक महिला बैठी हुई थी और उस पर बंधा हुआ बिस्तर भी रखा हुआ था। स्पष्ट ही वह तांगा स्टेशन से आ रहा था। महीप ने यह अनुमान लगाया था कि वह शहर की ओर जा रहा होगा। पर उसके आश्चर्य की सीमा नहीं रही जब उसने देखा कि तांगा उसी के मकान की ओर बढा चला आ रहा है।

थोड़ी देर बाद तांगा ठीक उसी के मकान के दरवाजे पर आकर ठहरा। प्रथम दृष्टि में महीप पहचान न पाया कि वह गोरी-उजली महिला कौन है। उसकी शक्ल उसे कुछ-कुछ पहचानी हुई-सी अवश्य लग रही थी, पर फिर भी उसकी स्मृति कुछ काम नहीं दे रही थी। महिला बिना किसी झिझक के जीने पर से होकर सीधे ऊपर, महीप के कमरे में, चली आई। महीप उनके

स्वागत के लिए उठ खड़ा हुआ, और तब उसे गौर से देखने का मौका मिला। सहसा उसकी स्मृति जग उठी और वह चौंक पड़ा। केवल चार ही वर्षों के अर्से में प्रतिमा के मुख के आकार-प्रकार में इतना परिवर्तन हो गया था कि महीप के लिए उसे पहचानना कठिन हो गया था। फिर भी उसे अपनी स्मृति के इस भ्रम पर परम आश्चर्य हुआ कि वह प्रतिमा को—नीलिमा की बहन को—पहली ही दृष्टि में नहीं पहचान पाया। उसकी आकृति-प्रकृति में चाहे कितना ही बड़ा परिवर्तन क्यों न हो गया हो, वह थी नीलिमा की ही बहन, यह बात उसकी आखो की एक विशेष व्यगमयी झलक, भौहों के तनाव और तीखी और लबी नाक से निर्विवाद रूप से प्रकट हो रही थी।

प्रतिमा ने एक दुष्टतापूर्ण मुसकान मुख पर झलकाते हुए, दोनो हाथ बड़े कायदे से जोड़कर कहा—"नमस्कार !"

"प्रतिमा तुम ! तुम यहा कैसे आ गई ?" प्रतिमा के नमस्कार का कोई प्रत्युत्तर न देते हुए अकृत्रिम आश्चर्य और तनिक घबराहट के साथ महीप ने प्रश्न किया।

प्रतिमा के मुख पर दुष्टतापूर्ण मुसकान अधिकाधिक तीखी होती चली जाती थी। उसने कहा—"पहले रेल पर सवार हुई, उसके बाद तागे पर बैठकर इस मकान के दरवाजे तक आई और फिर पैदल चलकर जीने पर से होकर आपके कमरे में आ पहुची।"

इस परिहास से एक कृत्रिम मुसकान की म्लान छाया महीप के मुख पर छा गई। पर उससे उसकी घबराहट और स्पष्ट हो उठी। उसने कहा—"नही, नहीं, मेरा यह आशय नही था। मै यह पूछना चाहता था कि तुम्हे मेरा पता किसने बता दिया ? मै आज प्राय तीन महीने से इस स्थान में गुप्त-वास कर रहा हूं। कुछ विशेष व्यक्तियो को छोडकर और किसी को भी मेरे यहा रहने का पता नही है। इसीलिये पूछता हूं कि तुमको कैसे—"

"मैं खुफिया विभाग में नौकरी कर रही हूँ, आपको इस बात का पता होना चाहिये।"

"परिहास रहने दो, प्रतिमा",—अत्यन्त गभीरता मे महीप ने कहा—"मेरे मन में सचमुच यह जानने के लिये बडा कौतूहल हो उठा है कि तुम्हे मेरा पता कैसे लग गया—किसने बताया?"

"अच्छा, पहले यह बताइए कि आप मुझे चाय पिलावेंगे या नही? सारी रात गाडी मे बिताने के बाद स्टेशन से थकी हुई आई हूँ। यह नहीं कि कुछ खिलावेंगे—पिलावेंगे, लगे दुनिया भर का हुलिया पूछने!"

"अरे, बैठो! बैठो! खडी क्यो हो? सीताराम, एक प्याला चाय और ले आना!" कहकर महीप ने बास की एक कुर्सी प्रतिमा की ओर बढाई और दूसरी मे स्वय बैठ गया।

सीताराम तागे पर प्रतिमा का सामान—एक बिस्तर एक बक्स और एक अगरेजी सवादपत्र—तागे पर से उठाकर ऊपर ले आया। प्रतिमा ने अपने बटुवे से एक रुपया निकाला और सीताराम से कहा कि तागेवाले को दे आवे।

थोडी देर बाद सीताराम एक प्याला चाय प्रतिमा के लिए ले आया। प्रतिमा जब चाय पी रही थी तब महीप अत्यत गभीर चिंता में मग्न हो गया था और बीच-बीच में एक विचित्र, मर्मभेदी दृष्टि मे प्रतिमा की ओर देखता था, जैसे उसका परीक्षण कर रहा हो।

महीप के मुख पर की गभीर छाया गाढ से-गाढ़तर होती जा रही थी। प्रतिमा ने जब इस बात पर गौर किया तब उसके मुख पर से व्यग और परिहास का भाव जाता रहा और धीरे-धीरे एक सघन गभीर और स्तब्ध वातावरण ने उसके भी हृदय को घर दबाया। वह भी पल्टे मे बडे गौर से महीप के मुख पर के बदलते हुए रगो का निरीक्षण करती हुई उसके मन के यथार्थ भाव का पता लगाने की चेष्टा करने लगी।

सहसा महीप ने पूछा—"तुम क्या सीधे घर से आ रही हो?"

"जी नही, मैं प्राय दो साल से घर नहीं गई हू।"

"दो साल से!"—अकृत्रिम आश्चर्य से महीप ने कहा—"तब इतने लबे अर्से तक तुम कहा रही? तुम्हारी ससुराल—तुम्हारा विवाह तो इस बीच निश्चय ही हो चुका होगा?"

एक घृणाभरी मुसकान की हलकी-सी व्यगपूर्ण रेखा प्रतिमा के ओठो के दोनो ओर खिच गई। उसने यथेष्ट गभीर स्वर में उत्तर दिया—"जी नही, इस उलझन से मै अभी कोसो दूर हूँ।"

"ओह, तब अभी तक तुम मा के ही साथ हो?"

"जी नही, मै आपको सूचित कर चुकी हू कि मै दो साल से घर नही गई। इसके अतिरिक्त, मा की मृत्यु हुए तीन साल हो चुके है।"

महीप फिर एक बार चौंक पड़ा—"सच? क्या सचमुच मा की मृत्यु हो चुकी है? तब तो तुम्हारे लिये बडी कठिनाई . पर तुम आज कहा से आई हो?"

"फतेहपुर से।"

"वहा किसके यहा ठहरी हुई थी?"

"मेरे एक युवक मित्र वहा रहते है, उन्ही के यहा।"

महीप ने देखा, प्रतिमा के मुख पर परिहास के भाव का लेश भी नही था। पर इस तरह की बात परिहास के सिवा और हो ही क्या सकती है?—महीप अपने मन मे तर्क करने लगा—"फिर भी यह परिहास नही है, बिलकुल सच है, और प्रतिमा ने एक सीधी-सी बात सीधे ढग से कही है। उसकी आखो में झलकता हुआ आत्म-विश्वास का भाव जता रहा है कि उसने सच कहा है।"

"दो साल से तुम क्या बराबर फतेहपुर ही में थी?" महीप ने फिर पूछा।

"नहीं, फतेहपुर में मुझे केवल तीन महीने हुए हैं।"

"उसके पहले ?"

"उसके पहले मैं ऐसे चक्रों में व्यस्त थी जिन्हें मैं अभी आपको नहीं बताना चाहती।"

चार वर्ष पूर्व प्रतिमा का जो पत्र महीप को मिला था—जब वह ठाकुर साहब के बगले से सदा के लिये विदाई ले रहा था—उसकी बात इस समय जैसे दोनो ही भूल गए हो। महीप के मन मे बहुत दिनो तक यह जानने का कौतूहल बना हुआ था कि प्रतिमा किस लिये उससे मिलना चाहती थी। साथ ही वह यह भी जानता था कि यह जानना उसके लिये असभव है। बाद में स्वयं ही वह उस पत्र की बात धीरे-धीरे भूल गया—कभी किसी विरले एकात क्षण मे उसकी धुंधली-सी याद भले ही आ जाती हो, पर इससे अधिक नहीं। आज प्रतिमा से आमना-सामना होने पर भी उस पत्र की याद उसे नहीं आई। इसका कारण सभवत यह था कि वह प्रतिमा के आकस्मिक आगमन से कुछ निराली ही चिंताओ से ग्रस्त हो गया था। प्रतिमा इस बात पर गौर कर चुकी थी और उसे अपनी परिस्थिति कुछ अशोभन-सी मालूम होने लगी थी। महीप चुप हो गया था और कमरे में एक अप्रिय मौन का वातावरण छा गया था।

दूसरा परिच्छेद

प्रतिमा चाय पी चुकी थी। सहसा उसी ने पहले मौन भग करते हुए कहा—"महीप जी, मुझे ऐसा लगता है कि मेरे आने से आप किसी कारण से घबरा उठे है। कृपया साफ कह दीजिए, यदि मेरे आने से आप तनिक भी असमजस की स्थिति मे पड गए हो तो मै अभी उठकर चल दूगी।"

उसकी आखो में इस समय उसी तेज और उसी दृढता की झलक महीप ने देखी, जो पाच वर्ष पहले एक बार उसने देखी थी—जब हिन्दी के

साहित्यिको का पक्ष लेती हुई वह ठाकुर साहब से उलझ पडी थी। वह घबराई हुई आवाज मे बोला—"नही प्रतिमा, तुम यह कैसी बात कर रही हो! तुम्हारे आने से मै असमजस में क्यो पड़ूगा। पर एक बात जरूर है, जिसे मै तुम्हारे आगे स्पष्ट कर देना चाहता हू। तुमसे छिपाने से कोई लाभ नही है। प्राय: चार साल से मै एक ऐसे गुप्त दल के सगठन के कार्य में जुटा हू जिसके सबध में कोई भी बात मै ऐसे व्यक्ति के सामने प्रकट नही होने देना चाहता जो उस दल में दीक्षित न हो। मै जानता हू कि तुम्हारे आगे भेद खुल जाने पर भी मेरे दल का भडाफोड नही होगा पर मै जिस शपथ के बधन में बधा हुआ हू, उसे तोड नही सकता। कल ही दल की विभिन्न शाखाओ के प्रतिनिधियों की एक सभा मेरे यहा होगी। सभा के अलावा बहुत से प्रतिनिधि परामर्श के लिये मेरे पास आते-जाते रहेंगे। ऐसी परिस्थिति में तुम्हें स्वय अपनी स्थिति असमंजस से भरी मालूम पडने लगेगी।"

प्रतिमा ध्यानपूर्वक सुनती रही। जब वह अपनी बात समाप्त कर चुका तब प्रतिमा ने अपने गरम कोट की भीतरी जेब से कपडे का एक गोलाकार 'बिल्ला' निकाला और महीप को दिखाते हुए कहा—"इसी दल की बात आप कह रहे है न? या और कोई दूसरा गुप्त दल है?"

महीप चौंक कर कुर्सी पर से उछल पडा। उसे याद आया कि प्रतिमा ने अभी कुछ ही समय पहले कहा था—"मै खुफिया विभाग मे नौकरी करती हूँ।" तब क्या यह बात सच है? नहीं, असभव है। इससे बडी मूर्खता की कल्पना और कोई हो ही नहीं सकती। तब उसके हाथ वह बिल्ला कैसे लग गया। स्पष्ट ही वह उसके गुप्त दल के सब भेद पहले ही से जानती है। पर यह सभव कैसे हुआ?

भ्रान्त दृष्टि से प्रतिमा की ओर देखते हुए उसने कहा—"यह तुमने कहा पाया?"

'इस सबध मे केवल दो बाते सभव हो सकती है—या तो मै सचमुच

खुफिया विभाग मे नौकर हूँ, या आपके गुप्त दल की सदस्या हूँ। आप इन दो में से जिस पर भी विश्वास करना चाहे शौक से कर सकते हैं।"

प्रतिमा के इस रहस्यपूर्ण उत्तर से महीप की समस्या का समाधान तो नहीं हुआ, पर अंधेरे भूलभुलैया चक्कर मे प्रकाश की एक क्षीण रेखा उसे दिखाई देने लगी। उसने कहा—"तुम्हारे सदस्या होने की बात पर मैं विश्वास कर सकता हूँ। पर मुझे बड़ा आश्चर्य है कि तुम इस चक्कर में कहा से और कैसे पड़ गई!"

इसमे आश्चर्य की कोई बात नहीं है। मै इतनी जड नहीं हूँ कि युग-भावना का कोई असर मुझ पर न हो सके। मुझे तो आपके आश्चर्य पर तरस आ रहा है। आपने देश मे एक नयी क्रान्ति उत्पन्न करके, एक नया आदर्श और नयी राजनीतिक व्यवस्था स्थापित करने के उद्देश्य इस गुप्त दल का सगठन और उसका नेतृत्व ग्रहण किया है, फिर भी आपकी अन्तरात्मा अभी तक इस अप्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी कुसंस्कार मे जकडी हुई है कि कोई नारी किसी राजनीतिक क्रान्ति मे भाग लेने की समर्थता नहीं रख सकती! आप आरम्भ ही से मुझे अविश्वास की दृष्टि से देखते आए हैं और जब आपको पता चला है कि मैं किसी ज़रिये से आपके गुप्तदल की सदस्या बन गई हूँ, आप उचक उठे है . " प्रतिमा की तेजोद्दीप्त आखों से चिनगारियां निकल रही थीं, जो सीधे महीप के मस्तिष्क के भीतर प्रवेश करके उसकी बुद्धि को दग्ध कर रही थी।

प्रतिमा उसी उद्दीप्त भाव से जलते हुए शब्दो मे कहती चली गई—"दूसरे महायुद्ध का अन्त हो चुका है, जो अपने प्रलय-पथ पर अपने पीछे न जाने कितनी पुरानी इमारतो को ढा चुका है, गलनशील सभ्यता की वासना मिट्टी पर टेंकाकार यन्त्रों से हल चलाकर, अगणित मानवों के रक्त मे उसे सींचकर न जाने किन नयी-नयी सृष्टियों के बीज बो चुका है; कितने विराट—महाक्रान्तिकारी—परिवर्तन का चक्र पृथ्वी के एक सिरे से दूसरे

सिरे तक चल चुका है, फिर भी आपके मूलगत रूढिवादी संस्कारों की नींव अभी तक तनिक भी नहीं डिगने पाई है—किमाश्चर्यमत परम् ? आपने अपनी मूल प्रकृति के ऊपर प्रगतिशीलता का मुलम्मा अवश्य चढा लिया है, पर उस मुलम्मे के नीचे सब ज्यों-का-त्यों सुरक्षित है। मैंने जब कहा कि मैं एक युवक मित्र के यहा ठहरी थी, तब आप चौंक उठे—आपके मुह के भाव से यह बात स्पष्ट झलक उठी थी, मै अकेली, अरक्षित अवस्था में जहा-तहां फिर रही हूँ यह बात भी निश्चय ही आपको प्रिय नहीं लग रही होगी, और आपके गुप्त दल की मैं सदस्या बनी हूँ, यह तो आपको किसी तरह भी गवारा नहीं हो रहा है। आप नारी को उसी चिरबधन से जकडी हुई देखना चाहते है जो इतनी सदियों तक उसे जड बनाकर उसकी आत्मा के रक्त को सोखता रहा है, आप . ”

महीप को ऐसा लग रहा था जैसे प्रतिमा आग के फव्वारे बरसाती चली जा रही है। उसकी उस अप्रतिहत अग्निधारा को बीच में रोकने का साहस उसे नहीं हो रहा था। पर प्रतिमा ने जब अन्तिम, मार्मिक आरोप करके घोर घृणासूचक दृष्टि से उसकी ओर देखा, तब वह तिलमिला उठा।

उसने पूरा साहस बटोरकर प्रतिमा को टोकते हुए कहा—“देखो प्रतिमा, तुम बिना पूरी जाच के मुझ पर जो इलजाम-पर-इलजाम लगाती चली जा रही हो, वे एकदम अ.धारहीन और मिथ्या हैं, ऐसा कहने का साहस तो मै नहीं कर सकता, क्योंकि मै मानता हूँ कि मनुष्य में जो संस्कार बचपन से पडे होते है, या जो वश-परम्परागत होते है, उनमे मूलगत सुधार करना—उन्हें जड से उखाड फेंकना—असभव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य है। इसलिए प्रगतिशील संस्कारों को पूरे तौर से अपनाने की चेष्टा करने पर भी, बहुत सभव है, मेरे भीतर मेरे अज्ञात मे तुम्हारे ही शब्दों मे गलनशील सभ्यता के संस्कार बहुत कुछ शेष रह गए है। पर यह सब होने पर भी मै तुम्हे बता देना चाहता हूँ कि जिस नवीन क्रान्ति

को लक्ष्य बनाकर मैंने अपने गुप्त दल का संगठन किया था (मैं उसे भूतकाल की बात मानता हूँ—क्यों, यह पीछे बताऊँगा) उसकी प्रेरणा मुझे एक नारी ही से मिली थी। निम्न मध्यवर्ग की भावी महाक्रान्ति का स्वप्न पहले-पहल उसी तेजस्विनी नारी ने ही देखा है। उसकी पारदर्शी आँखों के लिए वह क्रान्ति स्वप्न नहीं बल्कि प्रत्यक्ष की तरह ज्वलन्त सत्य है। वह स्वयं क्रान्तिकारिणी है, और अपने जीवनव्यापी निर्यातनों से सबक सीख कर सक्रिय रूप से क्रान्ति की मशाल जलाने के अवसर की प्रतीक्षा मे बैठी है। इसी एक बात से तुम अनुमान लगा सकती हो कि मैं क्रान्ति के पथ पर अग्रसर होने वाली नारी को कितना महत्त्व देता हूँ। फिर भी मैं तुम्हारी बात की ताईद करता हूँ और उसकी मनोवैज्ञानिक सचाई स्वीकार करता हूँ।"

महीप को स्वयं इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि प्रतिमा के उग्र आक्षेप का उत्तर वह इस कदर शान्त भाव से देने में कैसे समर्थ हुआ। प्रतिमा को देखकर वह आरम्भ ही से जिस बेचैनी का अनुभव कर रहा था वह भी अकस्मात् अपने-आप शांत हो गई थी और अब वह ऐसा अनुभव करने लगा था जैसे उसके मन पर से एक बड़ा भारी भार उतर गया हो।

प्रतिमा महीप का उत्तर सुनने के बाद स्तब्ध रह गई। उसके भीतर की आग की धारा का वेग जैसे सहसा किसी बड़े भारी चट्टान के अवरोध से रुक गया। मन में बड़ी भारी उत्सुकता रहने पर भी उस क्रान्तिकारिणी नारी के सम्बन्ध में कोई प्रश्न उसने नहीं पूछा, जिससे प्रेरणा पाने की बात महीप ने कही थी।

कुछ देर तक दोनों विचार-मग्न अवस्था में चुप रहे, उसके बाद महीप को संसार की प्रतिदिन की यथार्थता के सम्बन्ध में चैतन्य हुआ। उसने कहा—"तुम सीधी स्टेशन से चली आ रही हो, जाओ भीतर जाकर कपड़े बदल लो और नहा-धो लो।"

प्रतिमा एक बार बड़े गौर से, गंभीर किन्तु अत्यन्त रहस्यपूर्ण दृष्टि से महीप

सिरे तक चल चुका है, फिर भी आपके मूलगत रूढ़िवादी सस्कारों की नींव अभी तक तनिक भी नहीं डिगने पाई है—किमाश्चर्यमत परम् ? आपने अपनी मूल प्रकृति के ऊपर प्रगतिशीलता का मुलम्मा अवश्य चढा लिया है, पर उस मुलम्मे के नीचे सब ज्यों-का-त्यों सुरक्षित है। मैंने जब कहा कि मैं एक युवक मित्र के यहा ठहरी थी, तब आप चौंक उठे—आपके मुह के भाव से यह बात स्पष्ट झलक उठी थी, मैं अकेली, अरक्षित अवस्था में जहा-तहां फिर रही हूँ यह बात भी निश्चय ही आपको प्रिय नहीं लग रही होगी, और आपके गुप्त दल की मैं सदस्या बनी हूँ, यह तो आपको किसी तरह भी गवारा नहीं हो रहा है। आप नारी को उसी चिरबधन से जकडी हुई देखना चाहते हैं जो इतनी सदियो तक उसे जड बनाकर उसकी आत्मा के रक्त को सोखता रहा है, आप . "

महीप को ऐसा लग रहा था जैसे प्रतिमा आग के फव्वारे बरसाती चली जा रही है। उसको उस अप्रतिहत अग्निधारा को बीच में रोकने का साहस उसे नहीं हो रहा था। पर प्रतिमा ने जब अन्तिम, मार्मिक आरोप करके घोर घृणासूचक दृष्टि से उसकी ओर देखा, तब वह तिलमिला उठा।

उसने पूरा साहस बटोरकर प्रतिमा को टोकते हुए कहा—"देखो प्रतिमा, तुम बिना पूरी जाच के मुझ पर जो इलजाम-पर-इलजाम लगाती चली जा रही हो, वे एकदम अ.धारहीन और मिथ्या हैं, ऐसा कहने का साहस तो मैं नहीं कर सकता, क्योकि मैं मानता हूँ कि मनुष्य में जो सस्कार बचपन से पडे होते हैं, या जो वश-परम्परागत होते हैं, उनमे मूलगत सुधार करना—उन्हे जड से उखाड फेंकना—असभव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य है। इसलिए प्रगतिशील सस्कारों को पूरे तौर से अपनाने की चेष्टा करने पर भी, बहुत सभव है, मेरे भीतर मेरे अज्ञात में तुम्हारे ही शब्दों मे गलनशील सभ्यता के सस्कार बहुत कुछ शेष रह गए हैं। पर यह सब होने पर भी मैं तुम्हे बता देना चाहता हूँ कि जिस नवीन क्रान्ति

कहां से पा गई ? उसके जिस तेज का परिचय मैं पहले ही पा चुका था, उसमें तनिक भी कमी नही आई है, बल्कि वह अब जीवन के विविध अनुभवो के बाद इस्पात की तरह दृढ बन गया है। जिस निम्नमध्यवर्गीय क्रान्तिकारी दल का गुप्त सगठन मैंने किया है उसकी सदस्या भी वह पहले ही बन चुकी है ! कैसे उसने इस गुप्त दल का पता लगा लिया और किन कारणो से उसके आदर्श पर पूरा विश्वास स्थापित कर लिया ? आश्चर्य है ! ...."

इतने में प्रतिमा कपडे बदलने के बाद यह पूछने आई कि गुसलखाना कहा पर है और नहाने को गरम पानी मिल सकेगा या नही। इस समय वह कोट उतार कर आई थी। वह एक बादामी (प्राय गेरुआ) रग की साडी पहने थी और नहाने के इरादे से उसने अपने सब बाल खोल दिए थे। उसकी सतेज आखो की दृष्टि मे वही स्वाभाविकता वर्तमान थी। क्षण-भर के लिये—आधे सेकेण्ड से भी कम अर्से के लिये—महीप को यह भ्रम हुआ कि कोई भैरवी उसे आशीर्वाद देने और उसके हाथ में कोई दिव्य अस्त्र प्रदान करने के उद्देश्य से आई है। दूसरे ही क्षण वह सभल गया। पर सभलने पर भी उसकी मुग्ध दृष्टि से भ्रात भाव एकदम तिरोहित नही हुआ। उसने सीताराम को पुकारा और उससे कहा कि प्रतिमा को नीचे ग़ुसलखाना दिखाकर उसके नहाने का सब प्रबन्ध ठीक कर दे।

तीसरा परिच्छेद

खा-पी चुकने के बाद दोनो छत पर धूप खाने के लिये चले गए। प्रतिमा इस समय शात और प्रसन्न दिखाई देती थी। महीप के मुख पर—शायद बहुत दिनो बाद पहली बार—एक हलकी-सी मुसकान छाई हुई थी। कुछ देर तक इधर-उधर की बाते करने के बाद प्रतिमा ने कहा—" आपने अभी कहा था कि जिस गुप्त दल का सगठन आपने किया है वह भूतकाल की बात हो चुकी है। क्या मैं जान सकती हूँ कि आप ऐसा क्यो समझने लगे हैं ?"

इस प्रश्न से सहसा महीप के मुख पर फिर एक बार उदास गाम्भीर्य का

की ओर देखती हुई उठ खडी हुई। उस अनोखी दृष्टि में क्या विशेषता भरी थी, यह कुछ न जानते हुए भी महीप भीतर-ही-भीतर चौंक उठा। साथ ही उसका ध्यान पहली वार इस बात की ओर गया कि आरम्भ ही से प्रतिमा की आकृति में वह जिस परिवर्तन का अस्पष्ट अनुभव कर रहा था उसका वास्तविक स्वरूप क्या है। उसने देखा कि प्रतिमा के चेहरे पर जो सुकुमारता पाच साल पहले वर्तमान थी उसका लेश भी अव नही रह गया है, वल्कि एक कडापन, एक कठोरता उसके मुख की आकृति में और मुख के भाव में आ गई है। जो मक्खन की-सी कोमलता और तपाए हुए सोन का-सा पीलपान उसके मुख पर बरावर वर्तमान रहा करता था उसका लेश भी अव नही रह गया था। एक रूखी-सी सुर्खी उसके चेहरे में आ गई थी। गालो की हड्डिया उभर आई थी, पर साथ ही मास में भी वृद्धि हो गई थी। एक पुरुषोचित स्वस्थ, सबल और कठोर भाव उसके चेहरे पर चारो ओर से छा गया था, जिससे दृढ निश्चय और आत्म-विश्वास का आभास स्पष्ट झलकता था।

प्रतिमा जव भीतर चली गई तव महीप उसके व्यक्तित्व के उस आश्चर्य-जनक परिवर्तन पर विचार करने लगा, जो उसे अचानक ही अत्यन्त प्रभावोत्पादक लगने लगा था। साथ ही वह सोचने लगा कि प्रतिमा भीतर जाने के पहले जिस रहस्य-भरी, अन्तर्भेदी दृष्टि से उसे घूर रही थी उसका क्या तात्पर्य हो सकता है। वह दृष्टि उसके हृदय का वाहरी आवरण चीरकर उसके भीतर वहुत दूर तक पैठ गई थी, और उसके अन्तस्तल में सजीव और समूर्त रूप धारण करके, भीतर से वाहर की ओर झाक कर, उसे हौलदिल कर रही थी।

"आश्चर्य! आश्चर्य! मा की मृत्यु के वाद इतना वडा परिवर्तन!"—महीप मन-ही-मन सोचने लगा—"स्पष्ट ही तीन साल से वह आवारा जीवन विता रही है। मा के मरने और नीलिमा का विवाह हो जाने के वाद उसके लिये किसी दूसरे प्रकार का जीवन सभव भी नही था। पर अपने इस आवारा जीवन के वीच में वह स्वभाव की ऐसी दृढता, विचारो की स्थिरता और आत्म-विश्वास

कहां से पा गई ? उसके जिस तेज का परिचय मैं पहले ही पा चुका था, उसमें तनिक भी कमी नहीं आई है, बल्कि वह अब जीवन के विविध अनुभवों के बाद इस्पात की तरह दृढ बन गया है। जिस निम्नमध्यवर्गीय क्रान्तिकारी दल का गुप्त सगठन मैंने किया है उसकी सदस्या भी वह पहले ही बन चुकी है ! कैसे उसने इस गुप्त दल का पता लगा लिया और किन कारणों से उसके आदर्श पर पूरा विश्वास स्थापित कर लिया ? आश्चर्य है ! ...."

इतने में प्रतिमा कपडे बदलने के बाद यह पूछने आई कि गुसलखाना कहा पर है और नहाने को गरम पानी मिल सकेगा या नहीं। इस समय वह कोट उतार कर आई थी। वह एक बादामी (प्राय गेरुआ) रग की साडी पहने थी और नहाने के इरादे से उसने अपने सब बाल खोल दिए थे। उसकी सतेज आखों की दृष्टि में वही स्वाभाविकता वर्तमान थी। क्षण-भर के लिये—आधे सेकेण्ड से भी कम अर्से के लिये—महीप को यह भ्रम हुआ कि कोई भैरवी उसे आशीर्वाद देने और उसके हाथ में कोई दिव्य अस्त्र प्रदान करने के उद्देश्य से आई है। दूसरे ही क्षण वह सभल गया। पर सभलने पर भी उसकी मुग्ध दृष्टि से भ्रात भाव एकदम तिरोहित नहीं हुआ। उसने सीताराम को पुकारा और उससे कहा कि प्रतिमा को नीचे गुसलखाना दिखाकर उसके नहाने का सब प्रबन्ध ठीक कर दे।

तीसरा परिच्छेद

खा-पी चुकने के बाद दोनों छत पर धूप खाने के लिये चले गए। प्रतिमा इस समय शात और प्रसन्न दिखाई देती थी। महीप के मुख पर—शायद बहुत दिनों बाद पहली बार—एक हल्की-सी मुसकान छाई हुई थी। कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करने के बाद प्रतिमा ने कहा—"आपने अभी कहा था कि जिस गुप्त दल का सगठन आपने किया है वह भूतकाल की बात हो चुकी है। क्या मैं जान सकती हूँ कि आप ऐसा क्यों समझने लगे हैं ?"

इस प्रश्न से सहसा महीप के मुख पर फिर एक बार उदास गाम्भीर्य का

गाढा रग चढ गया। उसने एक बार इधर-उधर झाका—शायद अनजान ही में—विना किसी ज्ञात उद्देश्य के। प्रतिमा को ऐसा लगा कि महीप जैसे घबराया हुआ है कि जो बात वह कहने जा रहा है उसे कही कोई तीसरा आदमी सुन न ले, हालाकि छत पर किसी तीसरे आदमी के लुकने-छिपने की कोई सभावना नही थी।

उसके वाद कुछ स्थिर होकर महीप बोला—"देखो प्रतिमा, जो बात मै तुम्हारे आगे प्रकट करने जा रहा हूँ वह मैने अभी तक किसी के आगे स्वीकार नही की है। तुम्हे पता है कि हमारे गुप्त दल का सारा आदर्श हिसा की नीति पर आधारित है। सब से पहले मैने ही हिंसक नीति को दल का मूल मत्र बनाने पर जोर दिया था। आज मुझे यह सोचकर स्वय आश्चर्य होता है कि मैने क्यो हिसा को अपनाने के लिये दुराग्रह किया था और क्यो हिसा की विजयिनी शक्ति पर मेरी अवस्था हद दर्जे तक बढ गयी थी। अपनी मनोभावनाओ का विश्लेषण करने पर केवल एक कारण मेरे आगे स्पष्ट होता है। अपने इस छोटे मे जीवन मे मुझे अपनी महत्वाकाक्षाओ के पथ पर कैसी-कैसी विचित्र रुकावटो का सामना करना पडा है, पग-पग पर कैसी अवमाननाए सहन करनी पडी है, तुम इसका ठीक-ठीक अनुमान नही कर सकोगी। सव से वडी रुकावट स्वय अपने शारीरिक व्यक्तित्व के कारण मेरे जीवन में आई है। मेरे शरीर का लघु आकार मुझे वरावर कोचता रहा है, और उसके कारण एक तीव्र आत्मग्लानि की अनुभूति निरतर, प्रतिदिन, प्रतिपल मुझे पीडित करती रही है। यह बात ऊपरी दृष्टि से विचार करने पर अत्यन्त हास्यास्पद है, सन्देह नही, पर मेरे लिये वह जीवन-मरण की समस्या वनी रही है। अपनी हीनता की इस अनुभूति के कारण मै घोर आत्मकामी और आत्मलीन वन गया था, जिसका आभास मेरी अधिकाश पिछली कविताओ में स्पष्ट झलकता है। मेरी वुद्धि सव समय आत्म-तल्लीनता के उस घोर दलदल से मुक्त होने के लिये छटपटाती रहती थी, पर प्रति वार मुक्ति का प्रयत्न करने पर मै थक जाता था और दुगनी तीव्रता से फिर अपने भीतरी अहम् के गढे में डूबकर चैन की साम लेता था। अपने भीतर के उस अधकूप के वाहर मै अपने को एक-

दम अरक्षित समझता था। अपनी लघुता की इस अनुभूति न ही संभवत मेरे भीतर ऐसी प्रतिक्रिया उत्पन्न कर दी कि मैं हिंसा—सगठित हिंसा—दुर्जय और विकराल हिंसा—को ही अपने त्राण का एक मात्र उपाय समझने लगा। अपने लघु व्यक्तित्व को विराट रूप देने का यही रास्ता मुझे सब से उपयुक्त जँचा। जिस क्रान्तिकारिणी महिला का उल्लेख मैं तुमसे पहले कर चुका हू उन्होंने निम्न मध्यवर्ग के महत्त्व का जो पाठ मुझे पढाया वह मुझे जँच गया; और निम्न मध्यवर्ग की जिस भावी महाक्रान्ति की भविष्यवाणी उन्होंने की उसने भी मुझे अत्यन्त प्रभावित किया। मैंने निश्चय कर लिया कि मैं अपने आत्मगत जीवन की सभी पिछली असफलताओ को भुलाकर एक नये सगठित जीवन को अपनाऊगा, और निम्न मध्यवर्ग की भावी क्रान्ति को अपना लक्ष्य बनाकर एक ऐसे गुप्त दल का सगठन करूँगा जो देश के भावी युग के निम्नमध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करता हो। भविष्य की महाक्रान्ति के नायको को तैयार करना मेरा उद्देश्य था। इसी उद्देश्य को सामने रखकर मैंने बहुत ही गुप्त और अलक्षित उपायो से कुछ चुनिन्दा नवयुवकों को अपने वश में कर लिया और अपने ध्येय के प्रति उन लोगो के मन मे श्रद्धा उत्पन्न कराने मे मुझे सफलता मिल गयी। उन लोगो ने प्रतिज्ञा की कि अपना सारा जीवन उसी ध्येय की पूर्ति के लिये पूर्णत अर्पित कर देगे और गुप्त उपायों से दल को व्यापक रूप से सगठित और सुदृढ बनाने के कार्य मे जुटे रहेंगे। हिंसा को हम लोगों ने इस विश्वास के आधार पर अपना मूलमत्र बनाया था कि केवल हिंसक उपायों द्वारा ही भावी महाक्रान्ति सफल हो सकेगी। रूस की ओर उन सभी देशों का उदाहरण हमारे सामने था जिन्होंने सशस्त्र क्रान्ति द्वारा ही अपने को स्वतन्त्र किया था। इस कारण हम लोग इधर-उधर से अत्यन्त गुप्त उपायों से—चोरी करके—हथियारों को जुटाने लगे। उसके बाद रात-रात मे घने जगलो मे जाकर रिवाल्वर, बंदूक, खजर, गुप्ती आदि बहुत से हथियारो को चलाना सीखने लगे। मेरा विश्वास था कि यदि हम लोग प्रारम्भ मे इन साधारण से हथियारो को चलाने के आदी हो जावें,

तो बाद में बडे-बडे हथियारों से घबरावेगे नहीं, और अवसर आने पर उन्हें भी आसानी से चलाना सीख लेंगे। इस विश्वास से प्रेरित होकर हम लोग आगे बढते चले गये और अपना सगठन दिन-पर-दिन दृढ-से-दृढतर करते चले गये। धीरे-धीरे प्रात भर में—बल्कि दूसरे प्रान्तो में भी—हमारी गुप्त शाखाए फैल गई। केवल विश्वासी और सुदृढ चारित्रिक और नैतिक बलवाले व्यक्तियों को ही अपने दल में सम्मिलित करने का नियम हम लोगो ने बना लिया था—ताकि दल के अस्तित्व की कोई भनक किसी भी बाहरी आदमी के कान में न पडने पावे। मैंने अपने ही दल के भीतर कुछ जासूसो को भी नियुक्त कर रखा था, जिनका काम इस बात का पता लगाते रहने का था कि कहीं कोई सदस्य किसी तरह की दगा तो करने नहीं जा रहा है। यदि किसी की दगाबाजी का तनिक भी प्रमाण मिल जाता तो उसे कडी सजा दी जाती थी। मेरे न चाहने पर भी मेरे दल के कुछ व्यक्तियो ने एक बार एक दगाबाज को जगल में ले जाकर गोली से मार दिया। यह जासूसी दल—बल्कि गेस्टापो—अभी तक कायम है और नियमित रीति से अपना कार्य करता चला जा रहा है। उसकी पैनी दृष्टि के आगे दल के किसी भी सदस्य की कोई बात छिपी नहीं रहती। प्रत्येक के छींकने, थूकने, खासने तक का हाल उसे मालूम रहता है। पर अभी तक वह एक बात का पता लगाने में असमर्थ रहा है। दल का प्रधान नेता 'डेजर्टर' बनने को सोच रहा है, इस बात की कोई खबर उसे नहीं है तुमसे यह छिपाने की आवश्यकता नहीं है, प्रतिमा, कि मेरी हिंसकता की सारी जडें ही अचानक एक साथ सूख गई है—बल्कि मृत हो गई है, और अब उन्हे कितना ही क्यों न सीचा जाय वे पनप नही सकतीं ''

प्रतिमा प्राय स्थिर दृष्टि से एकात चित्त से महीप की बातें सुन रही थी। प्रारम्भ में उसके मुख के भाव से ऐसा प्रकट हो रहा था कि उसे महीप की किसी भी बात पर कोई आश्चर्य नहीं हो रहा है, जैसे उसे सब बाते पहले ही से मालूम हो। पर महीप की अन्तिम बात से वह उचक पडी। कुछ

देर तक वह बड़े गौर से महीप की ओर देखती रही, जैसे उसके मुख के भाव से उसके भीतर की असली बात का पता लगाना चाहती हो। उसके बाद बोली—'क्या मैं जान सकती हूँ कि आप 'डेजर्टर' होने की क्यों सोच रहे हैं और हिंसा से इस कदर क्यों घबरा रहे हैं?'

"बताऊँ? तो सुनो—मेरे भीतर के इस मूलगत परिवर्तन का एकमात्र है अणु-बम का आविष्कार। इस बम ने बाहरी जगत में जो उथल-पुथल मचाई है वह उस क्रान्ति की तुलना में कुछ भी नहीं है जो उसके कारण मेरे भीतर फफक उठी है। इस सर्वध्वंसी बम के बाद अब किसी भी हिंसक क्रान्ति की कोई सार्थकता नहीं रह गई है, यह दृढ़ विश्वास मेरे भीतर बन गया है।"

प्रतिमा कुछ देर तक अत्यन्त आश्चर्य से महीप की ओर अपनी भ्रान्त दृष्टि गड़ाये रही—जैसे उसे इस बात पर विश्वास ही न हो रहा हो कि महीप अपने मन की यथार्थ बात कह रहा है। पर महीप की आँखों में एक ऐसी गहन गम्भीर निविड़ स्वप्नमयी छाया घिर उठी थी कि उसकी बात की वास्तविकता पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं दिखाई देता था।

सहसा वह ठठाकर हँस पड़ी और उसके बाद एक अत्यन्त विचित्र भाव—प्रायः घृणासूचक—मुख पर झलकाती हुई बोली—"कायर!" इतने में नौकर ने ऊपर आकर सूचित किया कि नीचे तीन आदमी आये हुए हैं। दोनों प्रायः एक साथ उठकर नीचे चले गए।

चौथा परिच्छेद

दूसरे दिन महीप के ही मकान में गुप्तदल की विभिन्न शाखाओं के प्रतिनिधियों की एक सभा होने वाली थी। दोपहर से ही लोग आने लगे थे। दो बजे तक प्रायः पचास व्यक्ति—जिनमें अधिकांश नवयुवक थे—जमा हो गए। ठीक सवा दो बजे सबने अपने-अपने कोट या सदरी के ऊपर कपड़े

का एक बिल्ला चिपका लिया—ठीक वैसा ही जैसा पिछले दिन प्रतिमा ने महीप को दिखाया था। बिल्ले में हरे रग के सूत से दो तलवारे क्रास के रूप में एक दूसरे को काटती हुई अकित की गई थीं और उनके ऊपर लाल सूत से एक तारा अकित किया गया था, जिसकी रक्तिम ज्वाला के छींटे दोनों तलवारों के ठीक सगमस्थल पर पड रहे थे। प्रतिमा ने भी अपनी साडी के ऊपर पहने हुए काले रग के रोएदार ऊनी कोट के ऊपर वही 'वैज' चिपका लिया था। पाच-सात प्रतिनिधि उसे घेरे हुए थे और वह कभी मुक्त भाव से मुस्कराती हुई उन लोगो से बातें करती थी और कभी अत्यन्त गम्भीर होकर उनके प्रश्नो का उत्तर देती थी। नवयुवक प्रतिनिधि उसकी बातें सुनते हुए, उसकी ओर देखते हुए कभी श्रद्धा से अवनत हो जाते थे, कभी सभ्रम से स्तब्ध रह जाते थे, और कभी उल्लास से उद्दीप्त हो उठते थे। एक भी नवयुवक उसे अनादर की दृष्टि से देखने अथवा ओछेपन के साथ बोलने का साहस नहीं कर पाता था। उनमें से अधिकाश नवयुवक उम्र में प्रतिमा से छोटे थे या अधिक-से-अधिक उसके समवयस्क थे। प्रतिमा एक प्रकार से उन लोगों की नेत्री या पथ-सचालिका का स्थान अधिकृत किये हुए थी।

ढाई बजे महीप ने सब लोगों से नीचे तहखाने में चलने के लिए कहा। तहखाने मे काफी सर्दी मालूम हो रही थी, पर इस बात से किसी भी नवयुवक के उत्साह की गर्मी में तनिक भी कमी नहीं आई। नीचे फर्श पर एक दरी बिछी हुई थी। उसी पर सब लोग बैठ गए। दो-दो तीन-तीन आदमी आपस में मिलकर बाते कर रहे थे, जिसके कारण कुछ देर तक एक अस्पष्ट कोलाहल सारे तहखाने को मृदु-मद गुजाता था।

अन्त में एक नवयुवक ने प्रस्ताव किया कि "कुमारी प्रतिमा खन्ना सभाध्यक्षा का पद सुशोभित करें।" महीप ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। प्रतिमा सामनेवाले तख्त पर बैठ गई। उसके बाद उसने महीप को बोलने के

लिये आमन्त्रित किया। जब महीप तख्त पर बैठा तो प्रायः आधे प्रतिनिधियों ने हर्षध्वनि की। पर जिन शेष आधे प्रतिनिधियों को—न जाने कैसे—इस बात का पूर्वाभास मिल गया था कि महीप दल के सिद्धान्तों में या तो मूलगत परिवर्तन करना चाहता है या हट जाना चाहता है, वे चुप बैठे रहे।

महीप ने गला साफ करके कहना शुरू किया—"सभानेत्री जी और प्यारे भाइयो! आज मैं आप लोगों के आगे एक ऐसी स्वीकारोक्ति करना चाहता हूँ जो संभवतः आप लोगों को अत्यन्त अप्रत्याशित, अनुपयुक्त और अवसर के प्रतिकूल लगेगी। स्वयं मेरी बुद्धि ऐसा ही महसूस कर रही है। पर यह सब जानते और समझते हुए भी मैं उस परिवर्तन से आप लोगों को परिचित कराये बिना नहीं रह सकता जो इधर कुछ दिनों से मेरे भीतर एक विचित्र क्रांति—या विक्रांति—मचाये हुए है। मैं आशा करता हूँ कि आप लोग मेरी बात पूरी सुन लेने के बाद अपना निर्णय देंगे—मेरे ख़िलाफ या पक्ष में।

"आप लोगों को मालूम है कि हिंसा की नीति को अपनाने के लिये मैंने ही आप लोगों को उकसाया था। इधर कुछ वर्षों से मेरे मन में यह विश्वास निश्चित रूप से जम गया था कि इस गुलाम देश के निवासियों को अहिंसा के रंग में रँगना उन्हें अधिक नपुंसक और निर्जीव बनाना है और यदि उनमें सदियों से खोये हुए आत्म-सम्मान का भाव फिर से भरना है तो उनमें हिंसा के महायज्ञ से संबंधित मंत्रों का प्रचार करना चाहिए और भावी सशस्त्र क्रान्ति के लिये उन्हें तैयार करना चाहिए। इस विश्वास से प्रेरित होकर मैंने सच्ची लगन के साथ इस दल का संगठन किया था। पर अणु-बम के आविष्कार के बाद जब जापानी नगर हिरोशिमा केवल एक ही बम से पूर्णतः विध्वस्त कर दिया गया और उसके बाद नागासाकी नामक नगर का भी वही हाल हुआ तो सहसा मुझे चेत हुआ और मेरी भीतरी चेतना डगमगाई। मैं समझ गया कि हिंसा का सारा महत्त्व इस चरम हिंसक बम के आविष्कार

द्वारा सदा के लिए मिट गया। हिंसा की कोई सार्थकता किसी भी रूप में अब शेष नहीं रह गई है। यदि सारा राष्ट्र एक रूप में परिणत होकर मूर्तिमान हिंसा का रूप धारण कर ले तो भी उसका सारा हुंकार अब हिंसा के इस चरम अस्त्र के आविष्कार के बाद एक नपुंसक की निस्सार गर्जना में परिणत होकर रह जायगा। प्रारंभिक काल से मानवीय सभ्यता प्रकृति पर विजय पाने और पशुओं पर बाहुबल का राज्य स्थापित करने के उद्देश्य से हिंसा के जिन जिन उपायों को काम में लाती आई है उनकी चरम परिणति अणु-बम के रूप में हो चुकी है। हिंसा के जितने भी निठुर-से-निठुर और जटिल-से-जटिल रूपों का आविष्कार वैज्ञानिक सभ्यता के इतिहास में आज तक हुआ है वे सब इस विकराल अस्त्र के आगे बच्चों के खिलौने बन गए है। जिस नये युग का आरम्भ अणु-बम के आविष्कार से हुआ हो उसकी परिणति महानाश के किस रुद्र रूप में होगी इसकी कल्पना सहज में की जा सकती है। जिस अणु-बम ने हिरोशिमा का ध्वंस किया था वह बच्चा था और वह जब २५–३० वर्ष बाद पूर्ण यौवनावस्था को प्राप्त होगा तब वह कैसा प्रलयंकर रूप धारण करेगा यह सामान्य अनुमान की बात है। यह बात मृत्यु की तरह निश्चित है २५-३० वर्ष बाद का अणु-बम पल में न्यूयार्क और लन्दन जैसे महानगरों को राख के ढेर में परिणत कर सकेगा और तारीफ की बात यह है कि कोई भी उत्तरदायित्वहीन युवक वैज्ञानिक, जो साथ ही हमारे दल के नवयुवकों की तरह क्रान्तिकारी भी हो, इस रुद्र बम को गुप्त रूप से तैयार कर सकता है और जब चाहे अपनी एक साधारण सी सनक को चरितार्थ करने के लिए पल में लाखों मनुष्यों का संहार कर सकता है। यह अल्फ लैला का कोई किस्सा नहीं है कोई खयाली बात मैं नहीं कह रहा हूँ। यह एक ऐसी अनुमान-सिद्ध बात मैं आप लोगों से कह रहा हूँ जो प्रत्यक्ष से भी अधिक सत्य है। पिछले युगों के सभी आदर्शों, सभी मानों को अणु-बम ने उलट दिया है, और वर्तमान युग के समस्त राजनीतिक सिद्धान्तों और युद्धोत्तरकालीन सारे शान्ति-सम्बन्धी प्रयत्नों को बच्चों के हास्यास्पद

रोग में परिणत कर दिया है। सारी पृथ्वी बारूद की एक कोठरी बन गई है, जिसमें निकट भविष्य में अत्यधिक विकसित अणु-बम की दियासलाई जलाने भर की देर है। मैं आप लोगों से आन्तरिक प्रार्थना करता हूँ कि इस विषय पर आप लोग अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक विचार करें—अखबारी और किताबी दुनिया के ज्ञान के आधार पर नहीं, बल्कि मानवात्मा की अन्तरंग अनुभूति के आधार पर। सामूहिक मानव-जीवन की जिस प्रगति का नारा हम लोग प्रथम विश्वयुद्ध के समय से—बल्कि उससे भी पहले से—सुनते चले आ रहे हैं, उसकी परिणति मानव की चिर चरम दुर्गति में होने जा रही है! इसका कारण केवल यह है कि पिछली शताब्दी में पाश्चात्य जगत का सभ्य मानव सदा, अन्तरंग प्रगति को नहीं, बल्कि भौतिक वैज्ञानिक प्रगति को ही पूरी ताकत से अपनाने का प्रयत्न करता आया है। और इस वैज्ञानिक प्रगति का क्रम क्या रहा है?—दलितों का शोषण, शक्तिशाली राष्ट्रों की परस्पर प्रतिस्पर्धा, हिंसा, प्रतिहिंसा, प्रति-प्रतिहिंसा और अन्त में सामूहिक हिंसा। इस प्रकार वैज्ञानिक मानव की बाह्य प्रगतिशीलता हिंसा को भी निरन्तर प्रगति का आगे बढ़ाती चली जा रही है—यहाँ तक कि हिंसा केवल एक साधन न रहकर अन्त में साध्य ही बन गई है। आप लोग क्या यह समझे बैठे हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय जगत् के महान् नेता इस समय—जब कि महायुद्ध समाप्त हो गया है—संसार में शान्ति स्थापना के सच्चे प्रयासों में जुटे हुए हैं? नहीं, युद्ध समाप्त होते ही इन महानेताओं ने संसार-भर के वैज्ञानिकों को पकड़कर इस काम पर जुटाया है कि सामूहिक संहार के लिये अधिक-से-अधिक शक्तिशाली अणु-बमों को तैयार करने की तरकीब खोज निकालें। कौन अधिक-से-अधिक परिमाण में अधिक-से-अधिक मारक शक्तिवाले अणु-बम तैयार कर सकता है, युद्ध का अन्त होते न होते इस बात की होड़ तीन महाराष्ट्रों—रूस, अमेरिका और ब्रिटेन,—में शुरू हो गई है। समस्त संसार के राजनीतिक भाग्य का निपटारा करने की शक्ति इन तीन राष्ट्रों के हाथ आ गई है और वे आपस में इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि आगामी महा—अति महान्तम—युद्ध के

लिये अभी से पूरी ताकत से तैयारिया की जाय, ताकि ससार के पूर्ण सहार में कोई कसर न रह जाय। वैज्ञानिक सभ्यता ने, द्वद्वात्मक भौतिकवाद ने, अन्तर्जगत् की प्रगति के प्रति उदासीनता और बाह्य जगत् की प्रगतिशीलता के प्रचार ने, मानव को इस क़दर दानव बना दिया है कि द्वितीय महायुद्ध के महानाश-चक्र से भी उसकी आखें नहीं खुली हैं। साम्राज्य-लोलुपता-जनित जिन कारणों से पिछले महायुद्धों की सृष्टि हुई थी वे ही कारण बदले हुए—किन्तु अधिक खतरनाक—रूपों में फिर घनीभूत हो उठे हैं। एक ओर विश्व-शान्ति की हास्यास्पद योजनाए चल रही है, दूसरी ओर आकाश से लटकता हुआ अणु-बम मार्मिक व्यग से मुस्करा रहा है।

"इन सब कारणों को देखते हुए हिंसा की नीति के विरुद्ध एक भयकर आतक मेरे भीतर छा गया है। मेरे प्यारे नवयुवक भाइयो! हिंसा जहा एक बार वास्तविक सभ्यता के बन्धनो से मुक्त होकर मैदान में खेलने लगती है कि उसकी निरन्तर आगे बढ़नेवाली गति को रोकना असम्भव हो उठता है, और उसकी प्रगति चरम विनाश के लक्ष्य तक पहुँच कर ही रुकती है। इसलिए अणु-बम के आविष्कार से हम लोगो की आखें खुल जानी चाहिए। 'अहिंसा परमो धर्म'—विश्व के सच्चे कल्याण से प्रेरित होकर यह महावाणी एक बार भारतीय आकाश में गूज उठी थी, आज के महानाशी युग में उसी को फिर से अपनाने की परम आवश्यकता आ पडी है। महात्मा गाधी ने अहिंसात्मक युद्ध की जो आश्चर्यजनक पद्धति खोज निकाली है उसे पूर्णतया अपनाना ही सच्ची वीरता का परिचायक है। (यहा पर 'शेम! शेम!' की आवाज से तहखाना गूज उठा।) मै जानता हूँ कि आप लोगो के उबलते हुए खून में अहिंसा का ठडा मत्र जल्दी से कोई असर पैदा नहीं कर सकेगा, पर आशा करता हूँ कि एक दिन निश्चय ही ऐसा आवेगा जब आप लोग—और ससार भर के लोग—यह महसूस करेंगे कि महात्मा गाधी की अहिंसात्मक नीति ही ससार भर की राजनीतिक तथा आर्थिक बुराइयो में लडने के लिए एकमात्र उपयुक्त साधन है।"

फिर एक बार "शेम ! शेम !" के रव से वातावरण गूंज उठा, और कुछ लोगों ने यहां तक कहना शुरू कर दिया कि "हम इस तरह की बातें सुनने के लिए यहां इकट्ठा नहीं हुए हैं।"

महीप बोला—"मुझे दुःख है कि मैंने आप लोगों का समय नष्ट किया। पर मैं आप लोगों को जता देना आवश्यक समझता हूँ कि भविष्य में मैं आप लोगों का साथ देने में असमर्थ रहूँगा। अपनी अन्तरात्मा की आवाज की उपेक्षा मैं नहीं कर सकता, इसलिए दल से अलग होकर, आप लोगों से क्षमा मांगकर, विदा होता हूँ।"

इतना कहकर महीप ने सब लोगों को नम्रतापूर्वक हाथ जोड़े और फिर सभानेत्री के पास उठकर दूसरी जगह—एक कोने में—चला गया। फिर एक बार चारों ओर से "शेम ! शेम !" की आवाज उठी। पर महीप चुपचाप शान्त भाव से बैठा रहा। वह प्रतिमा की ओर देख रहा था। प्रतिमा का मुख एक अस्वाभाविक दीप्ति से रक्तवर्ण हो उठा था और उसकी आंखों में एक विचित्र—प्राय भयावनी—ज्वाला-सी निकल रही थी। सहसा उसने भाषण देना शुरू कर दिया.—

"भाइयो ! आप लोगों ने महीप जी का भाषण सुन लिया। उनके दल से अलग हो जाने से हम सबको दुःख अवश्य होगा, पर इस बात से हम लोग अपने कर्तव्य-पथ से नहीं हटेंगे, यह निश्चित है। महीप जी का कहना है कि चूंकि अणु-बम का आविष्कार हो चुका है, इसलिए हिंसा की नीति की कोई सार्थकता अब नहीं रह गई है। भाइयो, यह कायरता है, विशुद्ध कायरता—महीप जी मुझे क्षमा करें—इस प्रकार की भगोड़ी मनोवृत्ति के कारण ही भारत सदियों से दासता की जंजीरों से जकड़ा रहा है, और यदि आज—द्वितीय महायुद्ध के युग में भी—यही नपुंसक मनोवृत्ति हम लोगों को परिचालित करती रहे तो हम सबको सौ-सौ बार धिक्कार है। मैं मानती हूँ कि अणु-बम के रूप में सामूहिक हिंसा का चरम अस्त्र तैयार हो चुका है। पर

इनसे क्या हुआ? इस कारण क्या हम लोगों को निपट कायरतावश पीछे हट जाना चाहिए? अहिंसा की नीति का अवलंबन ग्रहण करके देश को अनंत काल तक गुलामी की बेड़ियों में जकड़े रहने देना चाहिये? गांधी जी की अहिंसा की नीति का पालन देश कम-से-कम २५ वर्षों से करता चला आ रहा है। इन २५ वर्षों के भीतर देश क्या एक इंच भी स्वाधीन हो पाया है? अभी तक इस गुलाम देश के निहत्थे अहिंसकों को साधारण जुलूस निकालने पर मक्खियों की तरह गोलियों से मारा जा रहा है, अभी तक विदेशी सैनिकों और स्वदेशी पुलिस कर्मचारियों द्वारा उनके घर-द्वार लूटे जा रहे हैं, उनकी स्त्रियों की इज्जत मिट्टी में मिलाई जा रही है और उन्हें कौवों और कुत्तों की मौत मरने के लिए जेलों की काल-कोठरियों में ठूंसा जा रहा है। विश्वव्यापी स्वतन्त्रता के नारों के इस युग में ये सब कांड हुए हैं और हो रहे हैं। इन सब अमानवीय अत्याचारों का क्या प्रतीकार अहिंसात्मक सत्याग्रह कर पाया है? जिस राष्ट्र के युवकों में हिंसात्मक अत्याचारों के विरुद्ध प्रतिहिंसा की भावना नहीं जगती वह नपुंसकों और निकम्मों, शूकरों और श्वानों का राष्ट्र है। ऐसे निकम्मे पुत्रों की माताओं को चाहिए कि छाती फाड़कर मर जायं, ऐसे नपुंसक पतियों की पत्नियों को चाहिए कि विष खाकर या पानी में डूबकर अपना खातमा कर डालें।

"महर्षि जी का आशय जहां तक मैं समझ पाई हूँ यह है कि हिंसा हिंसा को जन्म देती है—एक हिंसा दूसरी विकटतर हिंसा की जननी है, और इसी क्रम से हिंसा की प्रगति—उसका विकास—होता चला जाता है, और यह तब तक नहीं रुकता जब तक वह पूर्ण विनाश का रूप धारण नहीं कर लेता। इस बात का ज्ञान महर्षि जी को स्पष्ट ही अणु-बम के आविष्कार से हुआ है। यदि मान लिया जाय कि हिंसा की प्रगति का यही क्रम है तो भी मैं इस बात के लिये कोई कारण नहीं देखती हूं कि हमें प्रतिहिंसा से मुंह मोड़ लेना चाहिए। हिंसा और प्रतिहिंसा का क्रम जब प्रकृति में ही चला आता है

तब उनके विपरीत क्रम को ग्रहण करने की चेष्टा महान् मूर्खता है। मानवीय मनोवृत्तियों के विकास का सबसे उन्नत रूप है मनुष्य का स्वाभिमान, जिसका सामूहिक रूप है राष्ट्रीय गौरव। किसी राष्ट्र का गौरव जब कोई दूसरा प्रबल राष्ट्र हिंसात्मक उपायों से कुचलता है तब उसका बदला प्रतिहिंसात्मक उपायों से चुकाना किसी भी स्वाभिमानी राष्ट्र के लिए अनिवार्य हो जाता है। केवल राष्ट्रीय क्षेत्र में ही नहीं, सामाजिक क्षेत्र में भी यही सिद्धान्त लागू होना चाहिए। किसी समाज में यदि ऐसे अत्याचारी पैदा हो जायँ, जो मर्यादाओं का उल्लंघन न करके निर्बलों और असहायों, दलितों और शोषितों की छाती पर अपने अन्यायपूर्ण प्रभुत्व का 'स्टीम-रोलर' चलाने में आनंद का अनुभव करते हों तो अहिंसात्मक दासता से उनके अत्याचार के प्रतीकार का प्रयत्न अत्यन्त दयनीय और लज्जास्पद है। जिस युग में, जिस संसार में अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय तथा सामाजिक सभी क्षेत्रों में सर्वत्र अन्याय और अत्याचार का ही बोलबाला हो उस युग में हिंसा से कतराने की कल्पना से बढ़कर कायरता दूसरी नहीं हो सकती। यदि अणु-बम का आविष्कार हो गया है और वह समस्त संसार के विनाश का बीड़ा उठाकर आया है तो इससे घबराने की कौन-सी बात है? दलित राष्ट्रों और शोषित जातियों की जो दशा इस समय हो रही है वह विनाश से किस अंश में कम है? ऐसे राष्ट्रों के लिए ऐसी हीन दशा में घुट-घुटकर विनष्ट होने से तो यह लाख दर्जे बेहतर है कि एक बार सिर उठाकर हिंसा का बदला प्रतिहिंसा से लेकर, आत्म-सम्मान के साथ विनाश के अतल गर्भ में विलीन हो जायँ। चींटी भी कुचले जाने पर कुचलने वाले को काटकर तब मरती है। आज भारत की नारी सती जनता के लिये मरण-धर्मी बनने के सिवा दूसरा रास्ता नहीं रह गया है। इसलिए यदि अनिवार्य रूप से मरण-धर्म को अपनाना ही है तो आत्म-गौरव के साथ क्यों न अपनाया जाय? यदि पुरुष-जाति हिंसात्मक संग्राम में भाग लेने से भागेगी तो नारी-जाति अपने हाथों से अस्त्र धारण करके राष्ट्रीय लज्जा की रक्षा करेगी। आज भारतीय अबलाएँ देख चुकी हैं कि सबलता की डींग मारनेवाली पुरुष-जाति का

वास्तविक बल कितना है। बंगाल के अकाल ने प्रमाणित कर दिया है कि निपट असहाय अवस्था में नारी की लाज बचाने की कितनी समर्थता हमारे पुरुषों में है। पुरुषों की क्षमता पर से उसका विश्वास धीरे-धीरे घटता चला जा रहा है। आज की भारतीय नारी अपना सब कुछ गँवाकर जोगिन बन गई है। बंगाल के अकाल ने, युद्धजनित कारणों ने डंडों की चोट से उसे घर से बाहर निकाल दिया है। उसके पास पेट भरने को दाना नहीं है, मृतप्राय सन्तान को पिलाने के लिए दूध नहीं है, तन ढकने को कपड़ा नहीं है और लाज बचाने के साधन नहीं हैं। पर यह जोगिन अब भैरवी बनने जा रही है। इतने दिनों से उसके भीतर बंद पड़ी आग का स्रोत फूट पड़ा है। इसलिए पुरुषों की नपुंसकता की परवा न कर वह भैरवी निकट भविष्य में अपने हाथ में खड्ग धारण करेगी ”

प्रतिमा की गीली आँखों से आँसू निकल रहे थे या चिनगारियाँ यह जानना कठिन था। आँसुओं के रूप में चिनगारियों की झड़ी लग रही थी, जिसका तार टूटता ही नहीं था। श्रोतागण पाषाण मूर्तियों की तरह स्तब्ध होकर सुन रहे थे, यद्यपि सबके भीतर भावों का गद्गद प्रवाह रह-रहकर उछल रहा था और नाड़ियों के भीतर एक अजीब सी बिजली तरंगित हो रही थी। ज्योंही प्रतिमा ने अपना वक्तव्य कुछ क्षणों के लिए समाप्त किया त्योंही सहसा उस स्तंभित सागर से एक अद्भुत नाद सम्मिलित रूप से गूंज उठा—“नारी की भैरवी शक्ति की जय हो! हिंसा! हिंसा! हम लोग हिंसा चाहते हैं! हम रक्त का बदला रक्त से लेंगे।” एक नवयुवक ने अपने हाथ में पिन गोदकर उसमें से खून निकालकर उससे प्रतिमा के माथे पर टीका लगा दिया और फिर उसे प्रणाम करता हुआ बोला—“जय हो!”

स्तब्ध महीप विमूढ़ दृष्टि से प्रतिमा की ओर देख रहा था। उसने देखा, प्रतिमा का मुख एक अस्वाभाविक उल्लास की दीप्ति से तमतमा रहा है। प्रतिमा के भाषण से स्वयं उसके भी रोंगटे खड़े हो उठे—दूसरे श्रोताओं

की तरह उत्साह और हर्ष के अतिरेक से नहीं, बल्कि एक विचित्र अनुभूतिपूर्ण आतंक से। वह सोच रहा था कि द्वितीय महायुद्ध ने केवल अणु-बम का ही आविष्कार नहीं किया है, बल्कि विश्व-मानव के भावालोक में भी अणु-शक्ति को छितराकर एक अपूर्व-कल्पित क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। ऐसी प्रचंड हिंसात्मकता किसी भारतीय नारी की रग-रग में कभी समा सकती है, इस बात की कल्पना वह कभी कर नहीं सकता था। उसे छोड़कर सारा उपस्थित समाज उस हिंसात्मक भावुकता में मानो एकप्राण होकर तल्लीन हो गया था। यह सब क्या होने जा रहा है, इस प्रकार की भीषण सामूहिक मनोवृत्ति चारों ओर से जड़ें पकड़ती हुई किस व्यापक विनाश की सृष्टि करना चाहती है, रुद्र की प्रलयकरी शक्ति के बादल किस उद्देश्य से सभी दिशाओं से घुमड़ रहे हैं, यह सोचकर-सोचकर महीप अपनी भ्रान्ति का अन्त नहीं पा रहा था। वह भूलने जा रहा था, पर सहसा उसे याद आ गया कि उपस्थित नवयुवकों को हिंसा की ओर प्रेरित करने का बीड़ा पहले-पहल उसी ने उठाया था। द्वितीय महायुद्ध की विश्वव्यापी हिंसात्मकता के छुतहा प्रभाव से वह भी नहीं बच पाया था। "पर तब अणु-बम का आविष्कार नहीं हुआ था,"—अपनी सफाई में वह मन-ही-मन कहने लगा—"और हिंसा की प्रगति अणु-बम से भी बहुत आगे बढ़ सकती है, यह प्रचंड सत्य मेरे आगे तब प्रत्यक्ष नहीं हुआ था। पर अब? अब भी जब दुनिया की आँखें नहीं खुल रही हैं, तब इसका यही अर्थ समझना चाहिए कि प्रकृति किसी दूरवर्ती निष्ठुर उद्देश्य से प्रेरित होकर यही चाहती है कि निकट भविष्य में ही मानव-जाति का सामूहिक विनाश हो।"

प्रतिमा ने अपना भाषण कुछ देर तक और जारी रखा। उसके बाद, चार-पाँच प्रतिनिधियों ने उसके समर्थन में छोटे-छोटे भाषण दिये। अन्त में एक प्रस्ताव हिंसात्मक नीति को जारी रखने के पक्ष में पेश किया गया। महीप को छोड़कर शेष सबने एकमत से उसका समर्थन किया।

सभा विसर्जित होने के प्राय एक घटे बाद एक-एक दो-दो करके सभी आगत प्रतिनिधि चले गए। केवल प्रतिमा और महीप रह गए। दो नवयुवक प्रतिमा को घेरे हुए थे, और परोक्ष रूप से उन्होंने अत्यन्त विनम्रता से यह सुझाव पेश किया कि जिस व्यक्ति ने दल से अपना सबध तोड डाला है उसके यहा रहना खतरे से खाली नहीं है और अनुरोध किया कि वह उन लोगो के साथ चले। पर प्रतिमा ने उन्हे समझा-बुझाकर विदा कर दिया।

पांचवा परिच्छेद

प्रतिनिधियो के चले जाने पर प्रतिमा अपने स्वाभाविक रूप मे आ गई थी, और वह सहज भाव मे महीप से बाते करने लगी। महीप आज पहली बार प्रतिमा की एकान्त निकटता मे सकोच का अनुभव करने लगा था। पर प्रतिमा जब सहज भाव से, अपनी स्वाभाविक व्यग-भगी स्निग्ध मुसकान से बाते करने लगी, तब वह कुछ स्थिर हुआ। पर आज न प्रतिमा के व्यगपूर्ण भाव मे उसे धोखा हुआ न स्निग्ध मुसकान से। इन दोनो के पीछे उसका जो प्रचड प्रतिहिसक रूप छिपा हुआ था वह आज महीप की आखो मे छिपा न रहा। उसका वह रूप यद्यपि महीप को किसी विराट अग्निकाड की अन्तिम ज्वाला की तरह आकर्षक लग रहा था, तथापि उसकी भयकरता के प्रति वह चाहने पर भी उदासीन नही रह पाता था।

दोनो चाय की प्रतीक्षा मे पश्चिम की ओर के बरामदे के पास बैठे हुए थे। अस्तोन्मुख सूर्य की अतिम सुनहरी किरणे आज की घटना के बाद महीप को बीते हुए युगो की विश्वव्यापी चिता की निर्वाणोन्मुख ज्वालाओ के प्रकाश की तरह लग रही थी। हिरोशिमा नगर पर अणु-बम द्वारा ध्वस्त होने के बाद वहा के शेष मुट्ठी भर निवासियो के मन म जो महामृत्युमयी उदासी छा गई होगी, वही आज महीप के मन मे भी छा गई थी। और किसी अवसर पर प्रतिमा के मुख की सतेज अभिव्यक्ति उसमे सभवत एक नया चैतन्य, एक नयी स्फूर्ति सचारित करने मे समर्थ होती, पर आज उसके लिये सब-कुछ श्मशानचारी भैरव द्वारा उजाड़ी हुई चिता की राख की तरह जड बन गया था।

वह साहस बटोरकर बोला—"प्रतिभा, तुम्हारे भाषण ने आज मुझे आतंकित कर दिया है। मैं समझ गया हूँ कि तुम जीवन के धुरे के जिस सिरे पर पहुँची हो मैं उसके बिल्कुल उलटे सिरे पर जा गिरा हूँ। इसलिये इस समय हम दोनों के लिये एक-दूसरे के दृष्टिकोण का महत्त्व समझ सकना असंभव हो गया है। पर मैं तुम से प्रार्थना करता हूँ कि तुम भविष्य की परीक्षा के लिये मेरी एक बात गाँठ बाँध लो। वह यह कि तुमने अपने चरम विश्वास के बल पर आज जो रास्ता पकड़ा है उसके लिये एक दिन तुम्हें विकट पश्चात्ताप करना पड़ेगा। यह इसलिये नहीं कि तुम फाँसी पर चढ़ने से या और दूसरी तरह मरने से कभी डरोगी—नहीं, तुम सचमुच भैरवी बन गई हो और मृत्यु का लेशमात्र भी भय तुम्हारे लिये नहीं रह गया है और न कभी रहेगा यह ध्रुव निश्चित है। मैं यह भी जानता हूँ कि अपनी जाति और अपने राष्ट्र के लिये कैसी मार्मिक और तीव्र पीड़ा की अनुभूति ने तुम्हें इस पथ की ओर प्रेरित किया है। पर जब तुम देखोगी, कि तुम्हारा हिंसा-धर्म, रक्त का बदला रक्त से लेने का सिद्धान्त केवल विश्वव्यापी अकाल मृत्यु और विराट जीवन-चक्र के निरुद्देश्य विनाश के अन्तर्राष्ट्रीय प्रयत्नों के लिये सहायक सिद्ध हुआ है, तब तुम्हें अपने जीवन के पिछले पथों की स्मृति अत्यन्त भयावह मालूम होने लगेगी और लोमहर्षक भौतिक दुःस्वप्न तुम्हारे भावी जीवन के पथ को घेर लेंगे। मैं फिर दुहराता हूँ कि तुम महान् हो, तुम्हारी प्रदीप्त प्रतिभा आश्चर्यजनक है। पर Time is out of joint और तुम्हारे और मेरे लिये वह आजीवन out of joint ही रहेगा। मेरे लिये इस कारण कि सदियों की दासता से बचे हुए देशों को द्वितीय महायुद्ध के अनुभवों के बाद रक्त का जो स्वाद मिल गया है उसे छोड़ने के लिये अब वे सहज में तैयार नहीं होना चाहेंगे और अहिंसा के जिस भीतरी तत्त्व को इतने दिनों बाद मेरे हृदय ने आज आन्तरिकता से अपनाया है उसे नास्तिकों और भोगियों की मनोवृत्ति के सिवा युवक-समाज और कुछ मानने को तैयार न होगा। तुम्हारे लिये समय out of joint इसलिये रहेगा कि तुम्हारा हिंसात्मक सिद्धान्त अणु-बम के इस युग में बहुत पीछे पड़ गया है और उसकी घोर असफलता एक दिन निश्चित है।"

प्रतिमा चुपचाप उसकी बातें सुन रही थी। पर उसके मुख के सहज व्यंगात्मक भाव से यह स्पष्ट था कि महीप की किसी भी बात का तनिक भी प्रभाव उसके भीतर नही पड रहा था। कोई अति-आधुनिक प्रगतिशील लडकी जिस प्रकार किसी घोर मूर्ख वृद्ध की बात सुनकर केवल शिष्टाचारवश चुप रह जाय, उसी प्रकार प्रतिमा भी इस बार उपेक्षापूर्वक चुप रह गई। न वह क्रोध से तमतमाई न उसने कोई विरोध ही किया। अत्यन्त उदासीनता से सारी बात को एकदम टाल कर सहसा उसन बातचीत का सिलसिला ही एकदम बदल दिया। उसने कहा—"ठाकुर साहब का कोई समाचार तुम्हे मिला है ?"

उत्तर देन के पहले महीप का ध्यान इस बात की ओर गया कि प्रतिमा ने आज पहली बार उसे 'तुम' कहकर सबोधित किया है। इसका कारण भी सहसा बिजली के-से प्रकाश में उसके आगे स्पष्ट झलक गया। वह समझ गया कि आज भावी युग-निर्माता युवको की श्रद्धाजलि पाकर प्रतिमा का आत्म-विश्वास पूर्ण रूप से जग गया है। उसकी (महीप की) प्रतिभा की जो महत्ता इतने दिनो तक एक विराट चट्टान के रूप में उसके आग खडी थी, जिसके आगे इतने दिनो तक वह श्रद्धा और सभ्रम से नत-मस्तक-सी रहती थी, वह ढह गई है, और उसके भग्नावशेष के ऊपर स्वय उसकी (प्रतिमा की) अपनी महत्ता की मीनार सिर ऊँचा किये खडी हो गई है। इसलिये अब महीप को 'आप' कहकर महत्त्व देने की कोई आवश्यकता वह महसूस नही करती। आज प्रतिमा 'जायन्ट' है और महीप 'पिगमी' की तरह एक अगुष्ठाकार लघु प्राणी। इस अनुभूति से एक ठडी-सी टीस की लहर महीप के भीतर दौड गई।

उसने चौंककर पूछा—"कौन ठाकुर साहब ?"

"ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिह।"

"ओह, समझ गया।" महीप को अत्यत आश्चर्य हुआ कि 'ठाकुर साहब' कहते ही वह तत्काल ही क्यो न समझ गया कि प्रतिमा ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिह की बात कह रही है! केवल चार ही वर्षो के भीतर वह एक ऐसे व्यक्ति

को कैसे भूल गया, जिसकी निकटता मे रहने से उसके जीवन में एक आंधी आ गई थी! हा हा, ठाकुर साहब! ठीक है!—वह मन-ही-मन कहने लगा—वही ठाकुर साहब न, जिन्होंने नीलिमा को अपने जाल में फंसाने के लिये सैकडो प्रपच रचे थे, हालाकि उन प्रपचो की कोई आवश्यकता नही थी, क्योंकि नीलिमा अपने आप ही, जानबूझकर उनके जाल में फंसने के लिये तैयार बैठी थी। ठीक है। वही ठाकुर साहब, जिन्होंने शारदा देवी को दुत—! हिंसा और अहिंसा, विश्व की रक्षा और विश्व-विनाश की समस्याओ ने जब उसकी आत्मा को ऐसी प्रबलता से जकड रखा था, तब बीच मे यह ठाकुर साहब कहा से कूद पडे! और कूदते ही उन्होने उसके भीतर इस कदर उथल-पुथल क्यो मचा दी? जो कीचड़ चार वर्षो से उसके मन की सब से निचली सतह मे जाकर शात और स्थिर रूप धारण करके जम गया था, उसे फिर प्रतिमा ने उकेल दिया।

"ठाकुर साहब से मेरी इतनी घनिष्ठता ही कब रही कि वह अपना समाचार मुझे दें या मै उनका हाल जानने के लिये उत्सुक रहूँ।" महीप ने दबी हुई खीझ के स्वर मे कहा।

"तुम काफी लबे अर्से तक उनका आतिथ्य स्वीकार कर चुके हो, इसलिये उनका हाल जानना तुम्हारा फर्ज है," सहज व्यग से प्रतिमा ने कहा।

"तो तुम्ही बताओ, उनका क्या हाल है? तुम्हे अवश्य कुछ खबर होगी।" महीप के भीतर बहुत दिनो से दबी पडी एक उत्सुकता मुरसुराने लगी थी। वह आशा कर रहा था कि प्रतिमा इस सिलसिले में निश्चय ही नीलिमा का कुछ हाल बतायेगी।

पर प्रतिमा ने उस बात को टाल दिया। उसने कहा—"शारदा देवी का हाल तो तुम्हे मालूम होगा?"

"आज प्रायः एक साल से उनका भी कोई पत्र मुझे नहीं मिला।

वार वह अपने व्यक्तिगत जीवन से सवधित चिताओ को पूर्णत दवा देने में सफल हो गया था, और सामूहिक जीवन की जटिलताओ में अपने को अधिकाधिक उलझाने में उसे सुख प्राप्त होने लगा था। समष्टिगत जीवन की चेतना ने उसके मन और प्राण को इस कदर छा लिया था कि अपने पिछले जीवन की सारी व्यक्तिगत पीडाए उसे हास्यास्पद लगने लगी थी। अचानक एक दिन उसे अणु-वम के आविष्कार की बात मालूम हुई और उसने सवाद-पत्रो में पढा कि केवल एक अणु-वम ने सारे नगर को ध्वस्त कर दिया और हजारो नगरवासियो को मक्खियो की तरह नेस्त-नावूद कर दिया। इस सवाद से उसके भीतर भी जैसे अणु का विस्फोट हो गया। मानवीय प्रगति के सवध मे उसके सारे विश्वास एकदम ढह गए और उनके स्थान पर इस विश्वास ने जड़ पकड लिया कि समग्र मानवता की प्रगति केवल सामूहिक ध्वस और आत्म-विनाश की ओर हो रही है। उसके वाद—युद्ध की समाप्ति के वाद—जव उसे यह ज्ञात हुआ कि तीन विजयी राष्ट्र 'शाति' स्थापना के नाम पर दलित राष्ट्रो का कफन खसोटने के लिये श्मशान के चाडालो की तरह आपस में झगड रहे है और भावी युद्ध को एक निश्चित तथ्य मानकर अणु-वम को विकट-से-विकटतर रूप देने की खोज में जुट गए है तव तो उसे अपने जीवन का सारा ध्येय ही एक परिहास मालूम होने लगा। निम्न मध्यवर्ग की भावी सशस्त्र क्राति का जो स्वप्न उसने देखा था वह उसके कानो में विकट व्यग का अट्टहास करने लगा। उसकी वह पलटी हुई विचार-धारा जव चरम सीमा को पहुचने जा रही थी तव सहसा प्रतिमा न जाने कहा से आ धमकी। और जो भाषण उसने आज अपने भीतर की सारी सचाई से, अपने प्रत्येक रक्तकण में समाये हुए विश्वास के प्रचड वल से, परिपूर्ण भावमग्नता की अवस्था में दिया था और उस अग्निमय भाषण की जो प्रतिक्रिया उपस्थित युवक-समाज मे हुई थी उससे वह आतकित हो उठा। सारे समाज में एक भी व्यक्ति ने उसकी (महीप की) अहिसात्मक नीति का समर्थन नही किया, और सव उसे अत्यन क्रोध और घृणा की दृष्टि से देखने लगे थे। महीप मन-ही-मन कह रहा था

कि हिंसा पर जिस समाज के भीतर ऐसा वज्र विश्वास समा गया हो, उसके आगे अहिंसा की किसी भी दलील का कोई महत्त्व नही हो सकता। जिन राष्ट्रो ने अणु बम का आविष्कार किया है या आविष्कार मे सहायता पहुचाई है उन्ही के हिंसात्मक प्रयोगो का भूत छूत की बीमारी की तरह दलित राष्ट्रो की जनता मे दुगनी तीव्रता से फैलता जा रहा है। साम्राज्यवादी शक्तिशाली राष्ट्रो ने शैतान की बधी हुई विध्वंसक शक्तियो को उच्छृखल और उन्मुक्त कर दिया है। इसका फल निश्चय यह होगा कि जिन दलित राष्ट्रो को और अधिक दबाने के लिये वे विघाती शक्तिया काम में लाई गई है भावी युद्ध में वही सदियो से पराजित राष्ट्र उन्ही शक्तियो को पूर्ण प्रवेग मे, कई गुना अधिक प्रचडता के साथ, आज के विजेता राष्ट्रो के विरुद्ध काम में लावेंगे, और इस प्रकार हिंसा और प्रतिहिंसा का प्रचड प्रलय-काड निकट भविष्य में अनिवार्य रूप से मचने के लक्षण दिखा रहा है। जो अन्तराष्ट्रीय महानेता सब कुछ देखते हुए भी कुछ नही देखना चाहते, जो अपनी विजय मे मत्त होकर अपनी साम्राज्यवादी जडो को और अधिक पुष्ट करने की चेष्टाओं में रत है—यह जानते हुए भी कि अणु-बम उनके सिरो के ऊपर किसी भी समय फट पडने के लिये लटक रहा है—उनकी महान मूर्खता इस समय सिद्ध नही की जा सकेगी, क्योकि इस समय उन्होने सामूहिक शस्त्र-बल से विश्वव्यापी अधिकार प्राप्त कर लिए है। पर यदि भावी युद्ध में अणु-बम के सामूहिक विनाश-काड के बाद भी मानव-जीवन किसी रूप मे शेष रहा, तो उस प्रलयोत्तर युग का मानव इस बात का ठीक-ठीक विचार करने में समर्थ होगा कि बीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्धकाल मे सारा विश्व-जीवन अन्तरराष्ट्रीय जगत के कुछ ऐसे गिने-चुने महामूर्ख नायको के हाथो में घोर अरक्षित अवस्था मे सौंप दिया गया था, जो उन लेखको और विचारको को कृमि-कीटो से भी तुच्छ समझते थे, जिन्होने उनकी मूर्खता से भली भाति परिचित होकर उसे जनता के आगे उद्घाटित करना चाहा था।

"इसलिये अब समष्टिगत जीवन में सच्ची शान्ति और सच्चे कल्याण की

स्थापना के उद्देश्य से अहिंसात्मक विचारो के प्रचार के प्रयत्न व्यर्थ हैं ,"—अपने कमरे में टहलता हुआ महीप मन-ही-मन कहने लगा—"इसके अलावा, अकेले मेरे या मेरे ही जैसे कुछ छिटपुट व्यक्तियो के असगठित प्रयत्नो से किस फल की आशा की जा सकती है जब इस ओर महात्मा गाधी के समान महापुरुष के सगठित प्रयत्न निष्फल सिद्ध होने के लक्षण प्रकट हो रहे हैं। इसलिये लौट चलो अपने पिछले कवि-जीवन के स्वप्नो की ओर! सभवत कवि के अन्तर्जीवन के वे स्वप्न विश्वव्यापी अधकार और अशाति के इस युग में प्रकाश की कुछ क्षीण किरणें प्रस्फुटित करने में समर्थ हो। व्यक्तिगत जीवन क्या वास्तव में उतना उपेक्षणीय है जितना विश्व-विनाश के लिये मत्रणा करने वाले महानेता और उनके महादलवता रहे हैं? विश्व-शाति का मूल उद्देश्य ही यह है कि मानव का व्यक्तिगत जीवन सुखी और व्यवस्थित हो, सच्ची लोकसत्ता का ध्येय ही यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्यो, विचारो और स्वप्नो के क्षेत्र में स्वतत्र हो। तब अणु-बम से विश्व का पूरा विनाश होने के पहले जितना भी थोडा अवकाश मिलता है, उसमें क्यो न व्यक्तिगत जीवन की रास ढीली कर दी जाय? क्यो न दमित अतर्जगत् के स्वप्नो की पिटारी का ताला तोड कर उन्हे पागल विश्व के आगे निपट नग्न रूप मे बिखेर दिया जाय? ठीक है! ठीक है! मुझे यही करना होगा। इसी में त्राण है, नही तो धीराज की तरह आत्म-विनाश ही एक मात्र उपाय है। मै जानता हू कि दुनिया मुझे भगोडा कहेगी, पर भगोडे क्या सचमुच उतने ही हेय हैं जितना कि उन्हे दुनिया समझती है? सभी क्रातिकारियो को अपने अतिम ध्येय की सफलता के उद्देश्य से जीवन-भर एक स्थान से दूसरे स्थान में भागते रहना पडा है, मार्क्स और लेनिन से लेकर सुभाष बोस तक का यही हाल रहा है। मेरे और उन लोगो के भगोडेपन मे केवल इतना ही अतर है कि उन लोगो का ध्येय इसी प्रत्यक्ष जीवन में किसी-न-किसी प्रकार की राजनीतिक सफलता प्राप्त करने का रहा है, और मेरा ध्येय इस प्रत्यक्ष जीवन से परे एक वास्तविक किंतु अप्रत्यक्ष जीवन में व्यक्तिगत तथा समष्टिगत आध्यात्मिक सफलता प्राप्त करने का है।"

इस तरह के अंतर्विवाद द्वारा वह अपनी ग्लानि-भार से पीडित आत्मा की तरफ से वकालत करने लगा। बहुत देर तक वह अपने-आप मे इसी प्रकार तर्क-वितर्क करता हुआ टहलता रहा। जब उसका शरीर और मन दोनो थकित हो गए, तब वह लेटने का इरादा करने लगा। प्रतिमा के कमरे मे अभी तक प्रकाश जल रहा था। कमरे के किवाड आधे खुले थे। कौतूहलवश भीतर झाक-कर महीप ने देखा, हाथ मे पुस्तक लिये हुए प्रतिमा सो गई है। स्पष्ट ही पढते-पढते उसे नीद आ गई थी, और लालटेन बुझाने की सुधि उसे नहीं रही थी। उसने पूरी तरह से कबल भी नही ओढा था। जो कपडे दिन में पहने थी उन्हीं को पहने सो गई थी। सिर के बाल बिखरे हुए थे। गोरे मुख पर एक रूखा किंतु तेजोद्दीप्त और साथ ही अतर की एक आश्चर्यजनक सचाई मे तन-तमाता हुआ भाव झलक रहा था। कपाल पर रक्त का टीका अभी तक नही मिटा था। एक बादामी रग की साडी, जो कुछ मैली होने के कारण लालटेन के प्रकाश में प्राय गेरुआ रग की-सी जान पडती थी, कबल के भीतर से दिखाई दे रही थी। महीप को याद आया कि दिन मे अपने भाषण मे प्रतिमा ने कहा था कि भारत की नारी सब कुछ खोकर जोगिनी हो गई है। प्रतिमा का वह रूप सचमुच जोगिनी का रूप था—अन्तर्जीवन की साधना, योग और तपस्या द्वारा एक आश्चर्यजनक अन्तर्बल और अन्तर्योग प्राप्त की हुई भैरवी का तेजोमय रूप। वह दरवाजे पर से मोहाविष्ट आखो से बहुत देर तक उस दिव्य तापसी मूर्ति की ओर देखता रहा। यह सोचकर कि उस अनुभवहीन तरुण योगिनी ने परिणाम की वास्तविकता पर विचार किये बिना ही कैसा सकट-सकुल पथ पकडा है, और कैसा विकट व्रत ग्रहण किया है, महीप के मन में इस बार आतक की भावना नहीं जगी, बल्कि उसके भीतर से विह्वल रुदन का एक उच्छ्व-सित रोल हिम-विगलित पहाडी नदी की पागल-धारा की तरह व्याकुल वेग से उथल उठा। वह मन-ही-मन हाथ जोडता हुआ कहने लगा—"हे नारी, तुम महान हो और तुम्हारा लक्ष्य भी महान है। पर जो साधन तुमने अपने अतर की सचाई से किंतु भ्रमवश पकड़ा है वह तुम्हारे इस दिव्य त्यागमय

जीवन को भविष्य में किस कदर छिन्न-भिन्न कर देगा, इस बात का कोई भान तुम्हे अभी नही हो रहा है, किंतु मेरी आखो के आगे चूकि वह भविष्य प्रत्यक्ष सत्यवत् नाच रहा है, इसलिये मेरा हृदय रोए बिना नही मानता। फिर भी मै तुम्हें आतरिक श्रद्धा से प्रणाम करता हूँ। तुम इस रक्त-रजित युग की प्रज्वलित अग्नि मे अपने प्राणो की आहुति डालकर स्वय प्रलय की होमशिखा सी जलने वाली स्वाहा हो। एक दिन अणु-बमो की ज्वालाओ के साथ तुम्हारी ज्वाला भी मिलकर एकाकार हो जायेगी और विश्व की चिता पर तुम दोनो की लास-लीला एक अद्भुत ताडव-नर्तन के दृश्य दिखावेगी।"

महीप एकटक दृष्टि से—बल्कि ललकती हुई आखो से—प्रतिमा का वह अपरूप रूप देख रहा था, और वहा से हटना नही चाहता था। पर वहा अधिक देर तक खडे रहने का साहस उसे नही हो रहा था—इस खयाल से कि यदि प्रतिमा जगने पर उसे उस अवस्था मे खडा देखेगी तो न जाने मन मे क्या सोचेगी। अत में अनिश्चित पगो से उसे लौटना ही पडा। उसने बत्ती नही बुझाई और किवाड बाहर से फेर दिए।

सातवा परिच्छेद

अपने कमरे मे जाकर पलग पर लेटकर महीप आश्चर्य के साथ सोचने लगा कि इतने दिनो तक वह प्रतिमा को एक प्रकार की उपेक्षा की दृष्टि से क्यो देखता आया। उसे शारदा देवी की बात याद आई। उन्होने एक बार कहा था कि "प्रतिमा से बढकर तुम्हारा भक्त दूसरा कोई नही है।" भक्त न सही, पर प्रतिमा बराबर उसका आदर करती आई है, यह बात महीप से छिपी नही थी। वह एक-एक करके पिछले जीवन की छोटी-से-छोटी घटनाओ को याद करने लगा—विशेष कर उन घटनाओ को जो प्रतिमा से सबधित थी। उसे याद आया कि वह ठाकुर साहब से उसका पक्ष लेकर कितना लडी थी। जब-जब वह खन्ना परिवार मे मिलने जाता था वह कैसी स्नेहपूर्ण

आखो से उसका स्वागत किया करती थीं। खन्ना-परिवार की सभी लडकियो को उसकी कविता से प्रेम था, पर प्रतिमा उन सब से अधिक उन कविताओ की प्रशसक थी, यह बात महीप से छिपी नही थी। और इन सब बातो के बावजूद वह उसके प्रति बराबर उदासीन ही बना रहा! जो लडकी बराबर उसका आदर करती रही उसका उसने निरादर किया, और जो उसे ठुकराती रही उसका वह बराबर आदर करता रहा! ऐसा वैपरीत्य उसके स्वभाव मे किस रहस्यमय शक्ति के अभिशाप से बना हुआ है?—हा, यह उल्टवामी उसके जीवन मे अभी तक बनी हुई है, क्योकि यदि ऐसा न होता तो आजीवन अहिंसा के सिद्धात पर विश्वास रहने पर भी वह बीच मे एक हिंसात्मक दल का सगठन न कर बैठता। प्रतिमा के माथे पर आज जो रक्त का टीका लगा हुआ है, उसका मत्र पहले उसी ने पढा था—उसी ने टीका लगाने वाले दल को अपने भैरव चक्र मे दीक्षित किया था। पर सभवत उसके स्वभाव का यह विरोधाभास परिणाम मे अच्छे ही के लिये हो, क्योकि यदि प्रारभ मे ही वह प्रतिमा के प्रति उदासीन न रहता, और उससे जीवन सबध जोड लेता, तो आज, जब कि दोनो के जीवन की गति मूलत परस्पर-विरोधी होने जा रही है, दोनो के बीच तलवार एक दीवार खडी कर देती। उस असिधार-व्रत को अत तक निबाहे ले जाना निश्चय ही दोनो के लिये टेढी खीर सिद्ध होती।

"पर यह भी तो सभव है कि यदि प्रतिमा को मैने जीवन मे पहले ही अपना लिया होता तो दोनो के जीवन का सामजस्य दोनो मे से किसी को भी इस वाम-पथ की ओर प्रेरित ही न करता।"—वह मन-ही-मन कहने लगा—"क्या यह सभव नही है कि जीवन के विरोधी क्रम ने, बहुत दिनों से पाली हुई अतराकाक्षा की व्यर्थता ने, जीवन-सघर्ष की उलटी-सीधी गति ने मेरी ही तरह प्रतिमा को भी वाममार्ग को अपनाने के लिये बाध्य किया है?"

और यह सोचते ही उसे फिर याद आया कि प्रतिमा ने भारतीय नारी को मात्र कुछ गँवाई हुई जोगिनी बताया है। जोगिनी की यह कल्पना उसने निश्चय ही

आत्म-अनुभूति से की है, क्योंकि सभवत वह भी जीवन मे सब-कुछ गवाए बैठी है।

रात भर महीप इसी तरह के उलटे-सीधे विचारो के फेर में रहा, और एक पल के लिये भी उसकी आखें नही लगी।

प्रतिमा बहुत तडके सोकर उठ गई। महीप पहले ही पलग पर से उठकर बाहर वाले कमरे में चक्कर काट रहा था। प्रतिमा जब अपने कमरे का किवाड खोल कर बाहर आई तब महीप ने देखा, उसकी अलसाई हुई आखो में एक अपूर्व मोहकता—एक स्निग्ध मादकता—समाई हुई है। जो रूखापन पिछले दिन महीप ने उसके चेहरे पर देखा था उसका लेश भी इस समय वर्तमान नही था, बल्कि एक करुण-कोमल स्निग्धता उसके उदास मुखमडल पर छाई हुई थी। उस उदास-भाव को देखकर इस बात की कल्पना करना कठिन था कि पिछले दिन यही छायारूपिणी तरुणी अपने भाषण में आग उगल रही थी। उसकी सुन्दर आखो में उस मोह-मधुर उदासी का आवेश देखकर महीप का जी चाहता था कि जोगिया रागिनी में कोई करुण विराग भरा गीत गावे।

वह बोला—"तुम बहुत जल्दी जग गई हो। रात मे क्या नीद नही आई ?"

"ऐसी नीद आई कि अभी तक बत्ती जलती रही और मैं जान न पाई।" कहकर प्रतिमा मद मधुर मुस्कराने लगी। उस स्निग्ध-मुसकान मे इस समय व्यग का लेश भी नही था।

"पर उठने की बडी जल्दी तुमने की। सर्दी काफी पड रही है, कही ठढ न लग जाय।"

"नही। मुझे आज ही सुबह की गाडी मे रायबरेली जाना है।"

महीप को एक धक्का सा पहुचा। "क्या आज ही जाना जरूरी है ? दो-चार दिन ठहर कर मुन्नाओगी नही !"

"नही, मुझे आज ही जाना है—अभी।"

प्रतिमा के इस उत्तर से महीप की उनींदी आखो मे एक ऐसी करुणा—बल्कि मार्मिक—उदासी छा गई जो प्रतिमा की दृष्टि से छिपी न रही। पर उसे इस बात से कोई आश्चर्य नही हुआ। उसे जैसे पहले ही से इस बात का अनुमान था।

एक अव्यक्त-सी आह महीप के मुह से निकल पडी। मरी हुई आवाज मे उसने कहा—"अच्छी बात है। तब तुम नहा-धोकर तैयार हो जाओ। मै तब तक तुम्हारा सामान बधवाता हू।"

प्रतिमा नीचे चली गई और इधर महीप भग्न-हृदय से उसका सामान बटोरने लगा। महीप ने स्वय इस बात की कल्पना नही की थी कि प्रतिमा की आकस्मिक विदाई से उसके हृदय मे इस हद तक बेकली समा जावेगी। उसे सब से बडी चोट इस बात से पहुची कि उसके आग्रह का तनिक भी खयाल करना प्रतिमा ने आवश्यक नही समझा।

'पर मेरे जीवन-पथ पर न जाने कितनी प्रतिमाए आती-जाती रह है, इसलिये इस एक प्रतिमा के चले जाने मे चित्त का इस कदर चचल हो उठना मेरे अतर की निपट दुर्बलता का परिचायक है, जो इधर कुछ समय से सभवत मेरे अनजान मे मुझे दबाती चली आई है,"—अपने मन का विश्लेपण करते हुए वह अपने-आप से कहने लगा। "पर क्या यह प्रतिमा सभी प्रतिमाओ की तरह है? यह तो नव-युग के उन पुजारियो की आदर्श प्रतिमा है, जिसकी पूजा वे चदन के स्थान पर अपने शरीर के रक्त से करते है। यह वह अपराजिता है, अतिम पराजय को अपनाने मे ही जिसके ध्वसोन्मुख जीवन की सार्थकता है।"

"पर इससे तुम्हे क्या?"—वह फिर अपने-आप से प्रश्न करने लगा—"वह जब तुम्हारे पथ से एकदम नाता तोड चुकी है, तब तुम क्यो उसके लिये चितित हो रहे हो? कौन-सी पीडा तुम्हे इस मरण-मार्ग को अपनाने

वाली चिर-पथिक-प्राण नारी के अंचल का सिरा पीछे से खीचने के लिये व्याकुल कर रही है ? अब भी क्या तुम यह आशाहीन आशा अपने भीतर छिपाए हो कि वह किसी उपाय से फिर तुम्हारी निष्क्रिय अहिंसा के अकर्मण्य त्याग-पथ का अनुसरण कर सकती है ? यह मूर्खतापूर्ण कल्पना है। उसका मार्ग छोड दो—तुम उसे रोक नही सकते। वह उस हवा की मुक्त सहचरी है जो किन्ही रहस्यमय प्राकृतिक नियमो की प्रेरणा से विश्व के अनिवार्य विनाश की ओर बह चली है। तुम्हारे अहिंसात्मक आदर्श की दीप-शिखा कैसी ही उज्ज्वल क्यो न हो, यह हवा—जो विश्व के कोने कोने में बह रही है—उसे कभी स्थिर रूप में जलने नही देगी। इसलिये—तुम यदि चाहते हो कि तुम्हारे दीपक की वह लौ न बुझने पावे, तो अपने को उसके पथ से एकदम दूर रखो।"

नौकर की सहायता से प्रतिमा का बिस्तर बाधकर महीप ने एक तागा मगवाया। प्रतिमा जब—नहा-धोकर आई तब उसके बाद पाच मिनट में तैयार हो गई। सजाव-शृगार में तनिक भी समय उसने नही लगाया।

महीप स्टेशन तक उसे पहुचाने गया। रास्ते में कोई बात दोनो के बीच नही हुई। एक क्षीणतम आशा अत तक महीप के मन में वर्तमान थी कि जो एक अतिम बात उन दोनो के बीच कहने-सुनने को शेष रह गई है, उसकी चर्चा रास्ते में चल पडेगी—यद्यपि वह स्वय नही जानता था कि वह 'अतिम बात' क्या है और किस रूप में उसकी चर्चा चल सकती है। पर जब कोई भी बात न वह चला पाया और न प्रतिमा ने ही चलाई, तब वह निश्चित रूप से समझ गया कि प्रतिमा ने उसके खिलाफ अपने अतर के द्वार पर सदा के लिये ताला लगा दिया है। इस ज्ञान से हथौडे की एक ऐसी चोट उसके हृदय पर पडी कि वह मन्न रह गया।

स्टेशन पहुचने पर एक ड्योढे दर्जे का और एक प्लेटफार्म टिकट खरीदने के बाद दोनो जब प्लेटफार्म पर पहुचे तो कुली ने अनुमान से उस स्थान पर सामान

रख दिया जहा ड्यौढे दर्जे के डिब्बे लगने की सभावना थी। उसके बाद दोनो यात्रियो की भीड के बीच मे चक्कर लगाने लगे। प्राय दस मिनट बाद गाडी आ पहुची। भीड के बावजूद प्रतिमा ने डिब्बे के भीतर अपने बैठने के लिये जगह बना ली। महीप भी गाडी छूटने तक प्रतिमा से कुछ दूर एक कोने मे बैठा रहा। जब गाडी के छूटने की तैयारी हुई तब महीप नीचे उतर गया और बाहर खिडकी से उसने प्रतिमा को लक्ष्य करके हाथ जोडे। इजिन की सीटी खतरे की घटी की तरह बज उठी। प्रतिमा ने अपनी जेब से एक लिफाफा निकाल कर महीप के हाथ मे दिया और कहा—"नमस्ते! घर जाकर पढना।" यह कहकर वह फिर अपनी जगह बैठ गई। महीप एक बार लिफाफे की ओर और एक बार प्रतिमा की ओर देखता रह गया। गाडी भक्-भक् करती हुई चल पडी।

आठवां परिच्छेद

महीप को सब्र नही हुआ और उसने मकान को वापस जाते हुए रास्ते मे तागे पर ही लिफाफा खोल कर पढा। प्रतिमा ने लिखा था —

"मै जा रही हूँ। इसके बाद फिर जीवन मे कब तुमसे भेट होगी, कह नही सकती। सभव है, फिर कभी भेट ही न हो। इसलिए आज जी खोलकर अपने भीतर की सारी बाते कह डालना चाहती हूँ।

"छुटपन मे—अपने जीवन की किशोरावस्था मे—मैने तुम्हे अपने भावी-जीवन का ध्रुवतारा समझा था, और मेरे भीतर यह विश्वास अडिग रूप से वर्तमान था कि उस ध्रुवतारे का अनुसरण करते हुए मै घोर-से-घोर सकट की स्थिति मे भी एक सुनिश्चित पथ से भटक नही सकती। तुम्हारी कविताओ ने मेरे भीतर एक ऐसे रहस्यमय जादू का-सा मत्र फूक दिया था कि मुझे लगता था जैसे मै कुछ-की-कुछ हो गई हूँ, और मेरी आत्मा जिस धातु की बनी है वह किसी के पारस-पत्थर के-से स्पर्श से खालिस सोना बन गया है। तुम्हारी कविताओं ने

"फिर मैंने सोचा कि जो देश स्वतत्र है और शक्तिशाली है, वहा की जनता यदि अपनी सरकार के खिलाफ खडी हो जाय और राष्ट्र को किसी दूसरी—अधिक योग्य—सरकार के हाथो में सौंपने को कटिबद्ध होकर आन्दोलन खडा करे, तो क्या उन पर गोलिया चलाने या दूसरे अत्याचार करने का साहस वहा के अधिकारी कर सकते है ? यह स्पष्ट है कि परतत्र देशो की जनता को साम्राज्य-वादी राष्ट्र मनुष्य नही समझते, उन्हें वे कृमि-कीटो से भी तुच्छ समझते है, और स्वभावत उनके प्राणो का कोई मूल्य उनके लिए नही है। इसलिए यदि मनुष्यत्व का—मनुष्योचित आत्म-सम्मान का—तनिक भी बीज हम में है तो हमें मानव-भक्षी साम्राज्यवाद की जडो में घुन लगा देना होगा। यदि प्राणो की वलि देनी होगी तो आत्मसम्मान के साथ देंगे, घृणित कीटो या मक्खियो की तरह मरकर नही। इस तरह के विचार मेरे क्षुद्र किन्तु भावपूर्ण हृदय पर हिलकोरे मारने लगे।

"इसके वाद आया वगाल का मनुष्यभक्षी अकाल। यह दैवी दुर्भिक्ष नही था। युद्ध-जनित कारणो से उसकी उत्पत्ति हुई थी, और मनुष्य-मासलोभी अर्थ-पिशाचो द्वारा उसका पोषण हुआ था। मै कलकत्ते गई थी, और जो दृश्य वहा की सडको पर मैंने देखा था उसका वर्णन तुम अखवारो में पढ चुके हो। पर विश्वास मानो, अखवारो का वर्णन उन प्रत्यक्ष लोमहर्षक दृश्यो की तुलना मे मनोरजक और नाटकीय लगते थे। मेरा निश्चित विश्वास है कि कोई भी अनु-भूतिशील मानव प्राणी ऐसा नही होगा जो उन दृश्यो को देखकर मानवत्व के महत्त्व पर अपनी आस्था कायम रख सके। मनुष्यो की अपेक्षा कुत्तो और सियारो की श्रेष्ठता पर विश्वास होने लगता था। क्योकि जो प्राणी अपने वाल-वच्चो सहित इस प्रकार निराधार और नि सहाय अवस्था में भूख से विवश होकर वाहर सडको में मृत्यु की प्रतीक्षा में पडे रहने को वाध्य हो, वह उन जतुओ से किस वात में श्रेष्ठ माना जा सकता है, जो अपनी वुद्धि और अपने पराक्रम को काम में लाकर उसपर झपट कर अपना खाद्य जुटाने में समर्थ होता है। मै सोचने लगी कि जिन प्राणियो में न तो आत्म-सम्मान का

भाव वर्तमान है, न आत्मरक्षा की शक्ति है, जिनमे निपट हीनावस्था को प्राप्त होने पर अत्याचारियो के खिलाफ विद्रोह की आग नही भडक पाती, जिनमे इतना पराक्रम नही है कि उन अर्थ-पिशाचो की सपत्ति पर दलबल से टूट पडे जो उनका रक्त चूसकर विकटाकार दानवो की तरह तोद फुलाए मोटे बने पडे है, जिनके लिए खाद्य के अभाव मे केवल दीन-हीन, दलित और गलित भाव मे नि शक्त और निर्जीव अवस्था मे मुह बाये मृत्यु की मौन प्रतीक्षा में पडे रहने के सिवा और कोई चारा नही है, वे यदि मनुष्य है तो निश्चय ही मानव प्राणी ससार के इतर जीवो से हीन है। तब से मेरे मनमे केवल एक ही बात की धुन सवार हो गई—कैसे इस देश के मनुष्य नामधारी निर्जीव प्राणियो मे अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध विद्रोह की आग फूकी जा सकेगी! मैने अपने दृष्टिकोण से देश के समग्र समाज को मोटे तौर पर पाच वर्गो मे विभाजित किया—पहला है साम्राज्यवादी अधिकारी वर्ग, जिसके लिए इस देश की जनता का कोई अस्तित्व ही नही है और जो व्यापक रूप से सुसगठित सामूहिक उपायो से, देश का मूल सत्त्व हरण करके अपने साम्राज्य की जडो को पुष्ट करना ही अपना एकमात्र ध्येय समझता है, दूसरा है पूजीपति जमीदार वर्ग, जो देश के उस रक्त और मासपिड के सचय मे व्यस्त रहता है जो साम्राज्य-वादी शोषण के बाद शेष रहता है, तीसरा है उच्च मध्यवर्ग, जो पिछले दोनो वर्गो से इतने टुकडे पा लेता है जितने से वह अपने 'कौलिक सम्मान' की रक्षा कर सके और साथ ही 'फैशनेबुल' दुनिया की चहारदीवारी मे बन्द रहकर एक ऐसी सामाजिकता का रगीन पर्दा अपने चारो ओर डाल सके जो समाज की निपट वास्तविकता से उसे अधा बनाने में समर्थ हो। 'बूर्जवा' शब्द की ध्वनि से जो बदबू—जो नडायद—निकलती है वह सब इस तीसरे वर्ग में कूट-कूट कर भरी हुई है। चौथा है निम्न-मध्यवर्ग। वास्तव में यही वर्ग है समग्र समाज का अतर्केन्द्र—'न्यूक्लस'। शारदा देवी ने जो बात इस वर्ग की विशेषता के सम्बन्ध में मुझे सुनाई थी (और शायद तुम्हे भी उन्होने सुनाया होगा) उस पर मै जितना ही विचार करती हूँ उतना ही अधिक वह मेरे मर्म मे घर करती जाती है। वास्तव में

आत्महत्या की थी। यह बात भी प्रमाणित हो चुकी है कि धीराजसिंह जब आत्म-हत्या करने की तैयारी कर रहे थे, तब इस पिशाच ने उन्हें देख लिया था और वह उनके इतने निकट छिपा था कि यदि वह चाहता तो उनके हाथ से बन्दूक छीन कर या उनका ध्यान भग करके उन्हें आत्महत्या से बचा सकता था। पर यह राक्षस सब कुछ जानते और समझते हुए भी चुपचाप अपनी नृशस मनोवृत्ति को तुष्ट करता हुआ छिपकर देखता रहा। जब वह अपनी छाती पर गोली चलाकर चित लेट गए तो तत्काल उनकी मृत्यु नहीं हुई, और वह एक रूमाल पर अपने खून से इतना लिखने तक जीवित रहे कि उन्होंने आत्महत्या की है।

"इधर जो समाचार प्राप्त हुए हैं उनसे पता चलता है कि यह नारकीय जीव अपनी प्रजा पर अमानुषिक अत्याचार करता चला जाता है। सन् ४२ के आन्दोलन में इसने न जाने कितने गुप्त काग्रेसी कार्य-कर्ताओं का पता सरकार को दिया और अपनी विद्रोही प्रजा पर पुलिस की सहायता से जो जुल्म तब उसने किए उनका वर्णन नहीं हो सकता। तुर्रा यह है कि ऊपर से यह देशघाती काग्रेसियों के साथ मिला हुआ था! पाचवें दल में भी इतने बड़े धूर्त देखने को नहीं मिलते। इस पत्र में अधिक लिखने का स्थान नहीं है। इस समय केवल इतना ही जान लो कि दीदी अत्यन्त अपमानित होकर उसके पास से लौटी है। वह इस समय लखनऊ में है—प्रतिमा।"

नवां परिच्छेद

महीप ने जब पत्र पढ़कर समाप्त किया, तब वह मकान के पास पहुँच चुका था। तागेवाले को विदाकर भीतर जाकर वह खटिया पर चारो खाने चित लेट गया। प्रतिमा के लबे पत्र की बातें तरह-तरह की अस्पष्ट भौतिक आकृतिया धारण करके उसके थकित मस्तिष्क के चारो ओर चक्कर काटने लगीं। प्रतिमा ने क्या-क्या बातें किस उद्देश्य से लिखी थीं, पत्र पढ़ते समय

वह भले ही समझता चला गया हो, पर अब उनमें से किसी भी एक बात का कोई निश्चित और स्पष्ट अर्थ उसके सामने नहीं आ रहा था। वह केवल इतना ही अनुभव कर रहा था कि उन सब बातों ने उसके जीवन के समस्त क्रिया-चक्रों, सभी स्वप्नों, विचार-धाराओं और आदर्शों के ऊपर युद्ध में काम आनेवाले बैलूनों के विस्तृत स्तूपों की तरह एक विराट् अवरोध-सा खड़ा कर दिया है। प्रतिमा के विराट् व्यक्तित्व की विस्तृत छाया उसके मानसिक क्षेत्र के चारों ओर एक सघन औदास्य और अवसाद का वातावरण उत्पन्न कर रही थी। बहुत देर तक वह उसी अवस्था में अव्यवस्थित चित्त और भाराक्रांत हृदय से लेटा ही रहा।

धीरे-धीरे उसका मन जब कुछ स्थिर हुआ तब सारी अस्पष्टता और अव्यवस्था के भीतर से एक बात कुछ स्पष्ट और व्यवस्थित रूप में उसके आगे आने लगी। प्रतिमा ने लिखा था कि नीलिमा ठाकुर साहब से सदा के लिए सम्बन्ध छिन्न करके अत्यन्त अपमानित अवस्था में लौट गई है। एक बार महीप को लगा कि इस संवाद से उसे प्रसन्न होना चाहिए। वह सोचने लगा कि उसके आज तक का जीवन जिन दो मूलत: पृथक् भागों में बटा है उनमें से पहले के आधे भाग को नीलिमा ने ही विषमय बनाया था और शेष आधा भाग प्रतिमा के दुर्धर्ष व्यक्तित्व की दुर्निवार झंझा के कारण छिन्न-भिन्न होने के लक्षण प्रकट कर रहा है। यदि नीलिमा ने समय रहते उसका साथ दिया होता तो संभवत: उसका जीवन आज इस हद तक उजाड़ न हुआ होता; और जिस निराशावादी मनोवृत्ति की विकराल काली छायाएं आज चारों ओर से उसके काव्य-जगत् के सारे स्वप्नों को, उसके समस्त आदर्शों को, सारी महत्वाकांक्षाओं को लीलने पर तुली हुई हैं वह संभवत: इस हद तक अपना सर्वग्रासी, कुटिल, कठोर रूप उसके आगे प्रकट न करती। जो निरादर, जो अपमान नीलिमा ने उसके प्रारंभिक यौवन-काल में उभरते हुए जीवन की अनलव्यापी और अनंतगामी एकांत आकांक्षा का किया है उसके लिए कोई क्षमा उसके पास नहीं हो सकती। नीलिमा ने केवल उसका निरादर ही नहीं

किया है, बल्कि ऐसे व्यक्ति से सम्बन्ध स्थापित करके जान-बूझकर उसे मार्मिक चोट पहुचाई है, जिसकी निपट हीनता से वह सभवत पहले ही से बहुत-कुछ परिचित थी। "जैसे मुझे मुह चिढाने के लिए ही जान-बूझकर उसने उस मनुष्य-घाती पातकी को अपनाया हो!"—महीप मन-ही-मन कहने लगा—"उसने प्रतिमा के अप्रत्यक्ष विरोध की परवा नहीं की और जो गुमनाम पत्र मैंने उसे भेजा था उसकी एकदम उपेक्षा की। इसलिए यदि आज उसकी वह दुर्गति हुई है जो अनिवार्य थी, तो उसे उचित ही शिक्षा मिली है!"

वह इस ढग से सोच तो रहा था, पर उसके भीतर से, हृदय की निचली सतह से, निसीम करुणा की एक हिलोर व्याकुल वेग से उथल-पुथल कर उसकी सपूर्ण आत्मा को परिप्लावित कर रही थी। रह-रहकर यह भावना उसे विकल कर रही थी कि नीलिमा अपनी अज्ञानता और अपने स्वभाव की विषमता के कारण जिस घोर अपमानित और परिपूर्ण रूप से परास्त अवस्था को पहुच गई होगी उसकी कामना अपने परम शत्रु के लिए भी कोई भला आदमी नहीं कर सकता। नीलिमा कैसी अभिमानिनी है, यह महीप से अधिक कोई नहीं जानता था। इसलिए उसकी क्या मनोदशा इस समय हो रही होगी, चरम ग्लानि के तीव्र विष का मथन किस रूप में उसके भीतर हो रहा होगा, इसकी कल्पना करते हुए वह अत्यन्त अशात हो उठा। इस बात की बहुत बडी सभावना उसे जान पडने लगी कि नीलिमा या तो आत्म-हत्या कर चुकी होगी (जिसकी खबर प्रतिमा को स्पष्ट ही अभी तक नहीं है), या शीघ्र ही कर लेगी। और यह कल्पना महीप को घोर घातक, मर्मातक और आतकोत्पादक मालूम होने लगी। वह अचानक हडबडाता हुआ खटिया पर से उठ बैठा, जैसे प्रत्यक्ष में नीलिमा को आत्महत्या करते देखकर घबरा उठा हो।

उसी दम उठकर वह रेलवे टाइम टेबिल देखने लगा। ग्यारह बजे एक गाडी कानपुर को जाती थी, जिसका सम्बन्ध लखनऊ की गाड़ी से था। उसने

उसी गाड़ी से रवाना होने का निश्चय कर लिया। वह इस कदर उतावला हो उठा था कि सोचने लगा—यदि इसी क्षण कोई राकेट सुलभ हो सकता तो वह उसी पर सवार होकर दूसरे क्षण लखनऊ पहुचकर नीलिमा से मिल पाता। नीलिमा किसी भी क्षण आत्महत्या कर सकती है, यह आशका उसके मन मे भूत की तरह सवार हो गई थी, और वह भरसक किसी भी उपाय से इस चरम दुर्घटना का निवारण करना चाहता था।

शेष समय उसने बड़ी बेचैनी से काटा। मन भारी होने के कारण उसे अपना पेट भी भारी मालूम होने लगा। नौकर जब खाना लाया, तो किसी तरह उसने दो कौर मुह मे डाले। उसके बाद सामान बधवा कर उसने एक तागा मगवाया और स्टेशन को चल पडा। आधे घटे तक इतजार करने के बाद गाडी आई। गाडी में बडी भीड थी। उसने पैसो की कमी के कारण तीसरे दर्जे का टिकट खरीदकर किफायत से काम लेना चाहा था। पर स्थिति की असभवता के कारण उसे ड्योढा कराना पडा। ड्योढे में भी भीड़ थी, पर बैठने का स्थान किसी तरह मिल गया। रास्ते भर वह तरह-तरह की सभव और असभव कल्पनाएं करता रहा। किसी भी स्टेशन पर गाडी का ठहरना उसे बहुत खल रहा था। वह चाह रहा था कि गाडी की गति एक सेकेन्ड के लिए भी कहीं न रुके।

जब कानपुर स्टेशन पर गाडी ठहरी और महीप को लखनऊ के लिए गाडी बदलने को उतरना पडा, तब उसका सारा जोश, न जाने क्यो, ठंडा पड गया। वह सोचने लगा कि नीलिमा की वर्तमान मानसिक अवस्था मे उसका उसके पास जाना खतरे मे खाली नहीं है। उसे देखते ही नीलिमा की आत्महत्या की प्रवृत्ति प्रचड वेग से उमड़ उठेगी और वह यदि कल आत्महत्या करनेवाली होगी तो आज ही कर डालेगी। इस विचार ने महीप को दुविधा में डाल दिया और वह अत्यन्त उद्विग्न और अशान्त मानसिक अवस्था में प्लेटफार्म पर चहलकदमी करने लगा। एक बार उसने सोचा कि कानपुर ही में ठहर जावे और लखनऊ

भली भाति परिचित थी। प्रारंभ म महीप के रुखे और अस्त-व्यस्त वाल, रूखा ही चेहरा और अत्यन्त गभीर मुद्रा देखकर वह भ्रम मे पड गई थी। पर अव उसे आश्चर्य होने लगा कि किसी भी हालत मे महीप को पहचानने मे उसे भ्रम कैसे हो गया। वह भीतर ड्राइग-रूम में महीप को ले गई। जव दोनो वैठ गए तव सुषमा ने कहा—"तुमने अभी नही वताया कि तुम आज कहा से आ रहे हो और इतने दिनो तक क्या करते रहे ?"

महीप ने देखा कि सुषमा के हासोज्ज्वल मुख पर हर्षातिरेक न समा कर जैसे चू पडता है। अपने पिछले जीवन के अकलुष रोमाटिक स्वप्नो की पुलक-विकल स्मृतिया न जाने कहा से उमड-उमडकर उसे आकुल करने लगी। यदि कोई दूसरा अवसर होता तो यह आकुलता उसे वहुत प्रिय लगती, पर आज वह उसे वडी मार्मिक पीड़ा पहुचा रही थी।

महीप ने कहा—"मै कहा रहा, क्या करता रहा, यह सव वडा लम्वा किस्सा है, जिसे वाद में कभी फुर्सत से वताऊगा। केवल इतना ही जान लो कि मै पहले जैसा आवारा था, अव भी वैसा ही हूँ।"

"वह तो तुम्हारे चेहरे से ही पता चलता है",—अपने मुख का भाव कुछ गम्भीर वनाने की चेष्टा करते हुए सुषमा ने कहा—"पर कव तक आवारा रहोगे ? अव तो तुम्हारे जीवन में स्थिरता आ जानी चाहिए ! कही जमकर गिरस्ती जोड़ क्यो नही लेते ?"

सुषमा की आकस्मिक गभीरता यद्यपि कृत्रिम और कुछ व्यगात्मक मालूम होती थी, तथापि महीप ने अनुभव किया कि उसके कठस्वर में वहुत कुछ सहृदयता वर्तमान है। खन्ना-परिवार की लडकियो के स्वभाव की इस विशेषता से—व्यग और सहृदयता के आश्चर्यजनक सम्मिश्रण से—वह भली भाति परिचित था। पर वह सहृदयता भी उसे आज कतई प्रिय नही लग रही थी। उसका जी एकदम उखडा हुआ था और कोई भी इस तरह की वात उसे पसन्द नही आ सकती थी जो उसके पिछले जीवन की असफल

जाकर नीलिमा से मिलने का विचार सदा के लिए त्याग दे, पर जी किसी प्रकार भी नहीं मानता था। अन्त में लखनऊ जाने का ही निश्चय किया। लखनऊ की गाडी पहले ही से लगी हुई थी, कुली से सामान उठवाकर विह उसी गाडी में जाकर बैठ गया।

दसवां परिच्छेद

जव गाडी लखनऊ पहुची तब शाम हो चुकी थी। सुषमा का पता उसे मालूम था। सुषमा के पति विजयमोहन वर्मा कैसरवाग के पास एक बगले में रहते थे। महीप सीधे वही पहुचा। एक नौकर ने बताया कि 'साहब' शहर से बाहर गए हुए हे और 'बीवी जी' घर ही पर है। नीलिमा के सबध में कोई प्रश्न महीप ने नौकर से नही किया। नौकर महीप को नही पहचानता था। महीप ने उससे कहा कि 'बीवी जी' को बाहर वरामदे में बुला लावे। नौकर भीतर गया और कुछ ही देर वाद सुषमा बाहर चली आई। आज कई वर्ष वाद सुषमा से महीप की मुलाकात हुई थी, पर महीप ने गौर किया कि उसकी मुखाकृति में इतने वर्षो के वाद भी अभी तक विशेष अतर नही आया है—केवल इसके सिवा कि उसका स्वास्थ्य पहले से वहुत अच्छा हो गया है। पर सुषमा प्रथम दृष्टि में महीप को नही पहचान पाई। महीप के अभिवादन का उत्तर हाथ जोडकर मौन भाव से देती हुई वह क्षण-भर के लिए 'अपरिचित', गभीर-प्रकृति व्यक्ति के आगे ठिठकी-सी खडी रही—हालाकि उसे लग रहा था कि उसे कही देखा है। पर दूसरे ही क्षण महीप की आखो के एक अव्यक्त भाव से वह पहचान गई और अत्यन्त विस्मित और प्रसन्न होकर वह आगे वढती हुई वोली—"अरे महीप, तुम! आज कैसे इधर भटक पडे? सामान भीतर क्यो नही रखवाते? चदू, जाओ, सामान उठा कर रखो।" चदू उसी नौकर का नाम था, जिसने सुषमा को खबर दी थी।

महीप तागे पर से उतरकर सकोच-भरी म्लान मुसकान मुख पर झलकाता हुआ सुषमा के पास आकर खडा हो गया। सुषमा उस मुसकान से

भली भांति परिचित थी। प्रारंभ में महीप के रूखे और अस्त-व्यस्त बाल, रूखा ही चेहरा और अत्यन्त गभीर मुद्रा देखकर वह भ्रम मे पड गई थी। पर अब उसे आश्चर्य होने लगा कि किसी भी हालत मे महीप को पहचानने मे उसे भ्रम कैसे हो गया। वह भीतर ड्राइंग-रूम में महीप को ले गई। जब दोनो बैठ गए तब सुषमा ने कहा—"तुमने अभी नहीं बताया कि तुम आज कहा से आ रहे हो और इतने दिनो तक क्या करते रहे?"

महीप ने देखा कि सुषमा के हासोज्ज्वल मुख पर हर्षातिरेक न समा कर जैसे चू पडता है। अपने पिछले जीवन के अकलुष रोमांटिक स्वप्नो की पुलक-विकल स्मृतिया न जाने कहा से उमड-उमडकर उसे आकुल करने लगी। यदि कोई दूसरा अवसर होता तो यह आकुलता उसे बहुत प्रिय लगती, पर आज वह उसे बडी मार्मिक पीडा पहुचा रही थी।

महीप ने कहा—"मै कहा रहा, क्या करता रहा, यह सब बडा लम्बा किस्सा है, जिसे बाद मे कभी फुर्सत से बताऊगा। केवल इतना ही जान लो कि मै पहले जैसा आवारा था, अब भी वैसा ही हूँ।"

"यह तो तुम्हारे चेहरे से ही पता चलता है",—अपने मुख का भाव कुछ गम्भीर बनाने की चेष्टा करते हुए सुषमा ने कहा—"पर कब तक आवारा रहोगे? अब तो तुम्हारे जीवन मे स्थिरता आ जानी चाहिए! कहीं जमकर गिरस्ती जोड़ क्यो नहीं लेते?"

सुषमा की आकस्मिक गभीरता यद्यपि कृत्रिम और कुछ व्यंगात्मक मालूम होती थी, तथापि महीप ने अनुभव किया कि उसके कंठस्वर में बहुत कुछ सहृदयता वर्तमान है। खन्ना-परिवार की लडकियों के स्वभाव की इस विशेषता से—व्यग और सहृदयता के आश्चर्यजनक सम्मिश्रण से—वह भली भांति परिचित था। पर वह सहृदयता भी उसे आज कतई प्रिय नही लग रही थी। उसका जी एकदम उखडा हुआ था और कोई भी इस तरह की बात उसे पसन्द नही आ सकती थी जो उसके पिछले जीवन की असफल

आकाक्षाओ की याद दिलाती हो। उसने वात को टालने के उद्देश्य से कहा—"प्रतिमा से भेंट हुई थी।"

सुषमा के चेहरे से व्यग और परिहास का भाव पल में तिरोहित हो गया। एक अकृत्रिम और सघन गभीरता उसके मुख पर छा गई। अत्यन्त उत्सुक और चिंतित भाव से उसने पूछा—"कव भेंट हुई थी ? कहा ?"

उसी क्षण महीप ने चौंककर देखा कि एक साक्षात् प्रेतात्मा ने ड्राइग-रूम में प्रवेश किया। वह अपने लवे कद के दुबले-पतले शरीर को एक मटमैली साडी से ढके थी। उसके सिर के रूखे वाल अस्त-व्यस्त रूप से विखरे हुए थे। कुछ वाल उसकी बाई आख के ऊपर तक पहुच गए थे और बाई भौंह को उन्होने पूरी तरह ढक दिया था। चेहरा एकदम मुरझाया हुआ था और उसमें यत्र-तत्र झुरिया पडी हुई थीं। धसी हुई आखो के भीतर से एक ऐसी अस्वाभाविक चमक निकल रही थी, जो वास्तव में भयावनी मालूम होती थी। महीप क्षण-भर के लिए विस्मित और भयभीत दृष्टि से उसकी ओर देखता रह गया। पर तत्काल उसकी पूर्व जन्म की-सी स्मृति जगी और न जाने किस अव्यक्त लक्षण से उसने पहचान लिया कि वह प्रेतात्मा स्वय नीलिमा है। किसी भी मनुष्य की आकृति में केवल चार वर्षों के भीतर किसी भी कारण से ऐसा मूलगत परिवर्तन हो सकता है, इस वात की कल्पना इसके पहले वह कभी कर नही सकता था। उसका हृदय दहल उठा।

नीलिमा इस समय तक या तो सोई हुई थी, या कही गई हुई थी। उसे महीप के आने की कोई खवर नही थी। पर जव उसके कानो में प्रतिमा की चर्चा की भनक पडी, तव वह उत्सुकतावश उस कमरे में चली आई थी। महीप को देखते ही वह भी चौंक पडी थी, और एक वार उलटे पाव लौट चलने की वात सोचने लगी थी। पर वाद में वह सुषमा के पीछे चुपचाप खडी हो गई।

सुषमा के प्रश्न का उत्तर देते हुए महीप ने कहा—'प्रतिमा से कहा

और किस सिलसिले में भेंट हुई थी, यह वताने का कोई अधिकार मुझे नही है। केवल इतना ही जान लो कि वह सकुशल है।"

प्रतिमा की चर्चा से सुषमा का प्रसन्न मुख एकदम म्लान हो गया था, और ऐसा लगता था कि वह रो पडेगी। महीप जानता था कि प्रतिमा सदा सभी वहनो की लाडिली रही है और उसका 'जोगिनी' वनकर घर से निकल जाना स्वभावत. सुषमा को मार्मिक पीडा पहुचाने वाला विषय है। उसने उस चर्चा को वही समाप्त कर देना उचित समझा।

"वर्मा जी से वर्षों से भेंट नही हुई। कहा गए है?" यह प्रश्न करते हुए महीप ने एक वार भूल से नीलिमा की ओर देखा, पर तत्काल ही दृष्टि फिराकर सुषमा की ओर देखने लगा।

"दौरे पर गए हुए हैं। कल ही गए है।" सुषमा ने उत्तर दिया।

इतने में एक-एक करके तीन लडकियो ने—जिनकी अवस्था चार से लेकर आठ वर्ष के वीच तक की होगी—कमरे में प्रवेश किया और वे सुषमा को चारो तरफ से घेर कर खडी हो गई। वे चुपचाप वडे गौर से महीप की ओर देखने लगी। सब से वडी लडकी को महीप ने तव देखा था जब वह एक साल की थी। शेष दो लडकियो को उसने इसके पहले कभी देखा ही न था। वह विना किसी उद्देश्य के सहसा वोल उठा—"सव लडकिया ही है? लडका एक भी नही?"

सुषमा सलज्ज भाव से मुस्कराने लगी। उत्तर में केवल वोली—"वडी दुष्ट लडकिया है, दिन-भर झगड़ती रहती है।"

महीप भी मुस्कराता हुआ वोला—"इस समय तो पुतलियो की तरह शात खडी है। वडी लडकी का नाम तो मुझे मालूम है—रजना। उसकी दोनो वहनो के क्या नाम है?" प्रश्न करते हुए उसने फिर एक वार नीलिमा की ओर देखा—जैसे उसी से प्रश्न कर रहा हो। पर तत्काल अपनी भयंकर भूल के लिए अपने को कोसते हुए सुषमा की ओर देखने लगा।

"इसका नाम अंजना है और इस छोटी-सी दुष्टा का नाम खंजना",—दोनों लड़कियों के कंधों पर बारी-बारी से स्नेहपूर्वक हाथ रखते हुए सुषमा ने कहा।

महीप तत्काल बोल उठा—"वाह! यह तो बड़ा अच्छा मेल तुमने बिठाया है—रंजना—अंजना—खंजना! अबकी यदि लड़का हुआ तो उसका नाम रख देना 'झुनझुना'!" कहकर वह ठठा कर हँस पड़ा। सुषमा भी मुक्त भाव से खिलखिला उठी और दोनों बड़ी लड़कियां भी। महीप ने फिर एक बार नीलिमा की ओर देखा। उसके मुख पर भी—शायद बरबस—मुसकान की एक हलकी-सी रेखा खिंच गई थी, जिसे तत्काल ही उसने मिटा दिया।

एक नौकर एक 'ट्रे' में चाय और दो तश्तरियों में नमकीन और मिठाइयां लेकर आया। उसके आते ही नीलिमा कमरे से चली गई। सुषमा ने एक प्याले में चाय बनाकर प्याला महीप के आगे रख दिया और साथ ही नमकीन और मिठाइयों की तश्तरियां भी उसकी ओर बढ़ा दीं।

महीप ने कहा—"यह सब क्या अकेले मुझे ही खाना पड़ेगा? यह कैसे हो सकता है!"

सुषमा बोली—"हम लोग पहले ही चाय पी चुके हैं। पर तुम चाहो तो तुम्हारा भी साथ दे दिया जायगा।"

"नीलिमा क्या नहीं पीएगी?"—दबी जबान से महीप ने पूछा।

"क्यों नहीं। उसे बुलाती हूँ।" यह कहकर सुषमा ने नौकर को पुकारा, और उससे नीलिमा को चाय के लिए बुलाने को कहा।

नौकर थोड़ी देर में लौट आया और उसने सूचित किया—"नीलिमा 'बीबी' चाय नहीं पीएगी। कहती है—अभी पी चुकी हूँ।"

नीलिमा के स्वभाव को जानकर सुषमा ने दुबारा कहना उचित नहीं

समझा। वह तीनो लडकियो के लिए चाय बनाकर स्वयं भी महीप का साथ देने के लिए पीने लगी।

महीप बोला—"लडकियो को अभी से चाय की आदी बनाना क्या तुम उचित समझती हो?"

उसकी आवाज से स्पष्ट ही यह बोध होता था कि वह किसी कारण से खीझा हुआ है। सुषमा समझ गई कि नीलिमा के न आने से उसे दुःख हुआ है। पर उसने सहज भाव से उत्तर दिया—"जब तक हम लोग स्वयं चाय पीना न छोड दें तब तक लडकियो को उससे वंचित रखना असभव है।"

"हूँ!" कहकर महीप अनमने भाव से एक टुकड़ा मिठाई का मुह में डालकर खाने लगा।

बहुत देर से जो बात उसके पेट में उमड रही थी उसे कैसे छेड़े, यह एक बडी विकट समस्या उसके सामने थी। अभी तक नीलिमा के संबंध मे एक भी प्रश्न वह नही कर पाया था। उसके लिए उसे साहस ही नहीं होता था। वह सोच रहा था कि सुषमा अपने-आप चर्चा चलावेगी। पर सुषमा इस सम्बन्ध मे मौन थी और महीप जानता था कि वह जान-बूझकर ही मौन धारण किए हुए है। यदि वह स्वय चर्चा चलावे तो सुषमा न जाने किस रूप में उसे ग्रहण करेगी, इस भय से वह कुछ पूछ नहीं पाता था।

जब सब लोग चाय पी चुके तब सुषमा ने कहा—"जब तक मैं बच्चों को एक बार बाहर घुमा न लाऊगी तब तक वे मुझे चैन न लेने देगे। तुम्हारी इच्छा हो तो तुम भी चल सकते हो, मोटर तैयार है।"

महीप की इच्छा घूमने की कतई नहीं थी। पर अकेले बैठ कर वह करेगा भी क्या, यह सोचकर वह चलने को राजी हो गया। सुषमा ने भीतर जा कर नीलिमा से पूछा कि वह चलना चाहती है या नहीं। नीलिमा को जब मालूम हुआ कि महीप भी चल रहा है तब उसने बहाना बताते हुए

उसे प्राप्त हो रहा है, वह अभी तक उसकी प्राण-रक्षा में सहायक सिद्ध हुआ है। पर यदि किसी भी दिन, किसी भी समय अपनी आत्मग्लानि और आत्म-पीडन की अनुभूति से मुक्त होकर वह तनिक अवकाश पा जायगी, तो निश्चय ही आत्महत्या कर लेगी। यह चिन्ता मेरे मन में काटे की तरह सब समय लगी रहती है। पर अब भी इस बात के लिए समय है कि उसकी विचार-धारा मूलत पलट दी जाय। पर यह केवल तुम्हारे द्वारा ही समव हो सकता है, क्योकि तुम्हारी सहृदयता और विचार और बुद्धि की गहराई पर उसका पहले से ही विश्वास रहा है। जो गलती उससे हो चुकी है, उसे तुम क्षमा कर दोगे और भूल जाओगे, यह मै जानती हूँ, क्योकि मै तुम्हारे स्वभाव की उदारता से भली भाति परिचित हूँ। मा मर चुकी, प्रतिमा देश के लिए पागल होकर घर-द्वार त्याग चुकी, नीलिमा इस तरह घुली जा रही है और दीदी बीमार है। न जाने मेरे मायकेवालो पर किसका क्रूर अभिशाप फल रहा है !" सुषमा रह न सकी और फफक-फफक कर रोने लगी।

महीप के पास जैसे एक शब्द भी उसे सात्वना देने के लिए नही था। वह अत्यन्त खिन्न मन से चुपचाप वाहर को मुख किए बैठा रहा।

हजरतगज में कुछ खरीद करने के वाद वे लोग लौट आए। महीप शरीर से और मन से वहुत थकित था और चुपचाप किसी एकान्त कमरे में लेट जाना चाहता था। उसे कुछ खाने की भी इच्छा नही रह गई थी, पर सुषमा से जव उसने विना खाए सो जाने की अनुमति मागी तव वह वहुत दुखी हुई और हठपूर्वक वोली कि वह किसी प्रकार भी उसे भूखा नही सोने देगी। लाचार महीप को वैठना पडा। सिवा नीलिमा के और सव ने साथ ही एक ही मेज पर खाना खाया। नीलिमा महीप को कही दिखाई नही दी। नौकर से मालूम हुआ कि वह पहले ही खा चुकी है और अपने कमरे में वद होकर शायद कोई किताव पढ रही है।

ग्यारहवां परिच्छेद

खा-पी चुकने के बाद महीप जब एक एकात कमरे में जाकर लेट गया, तब लेटे-लेटे उसने यह निश्चय किया कि कल सुबह ही किसी भी गाडी से कही चल देगा। नीलिमा का रुख देखकर उससे एकात में मिलकर दो बातें करने की कोई आशा उसे नही रह गई थी। उसे यह सोचकर आश्चर्य हो रहा था कि सुषमा यह क्यो सोचती है कि वह नीलिमा की विचार-धारा को 'मूलत.' पलट सकता है। "जो गलती उससे हो चुकी है, उसे तुम क्षमा कर दोगे और भूल जाओगे !" सुषमा के इस कथन की याद आने पर वह सोचने लगा—"मान लिया जाय, मै क्षमा कर दूगा और भूल जाऊगा, पर इससे सुषमा का—अर्थात् नीलिमा का—क्या बनता बिगडता है ? सुषमा ने क्या सोचकर यह बात कही ? इसके अलावा, नीलिमा अब कोई बात करने का मौका ही उसे क्यो देगी ? जब वह स्वय अपनी सगी बहन से कतरा रही है तब . .नही, अब असभव है। उसके मन में जो गाठे पड चुकी है उन्हे खोल सकना अब ब्रह्मा के लिए ही सभव हो तो हो !"

इसी तरह की बाते सोचते-सोचते वह जान भी न पाया कि कब उसे नीद ने घर दबाया, कब आखे लगी और कब सो गया। तरह-तरह के ऊट-पटाग स्वप्न देखते रहने के बाद जब आखे खुली तब रात प्राय. बीत चुकी थी, हालाकि अभी अधेरा शेष था। वह फिर एक बार अच्छी तरह कम्बल लपेट कर सो जाने की चेष्टा करने लगा। पर अब नीद नही आती थी, और एक-दूसरे से असबधित सैकडो चिताए मच्छरो की तरह उसके मन का खून चूसने की चेष्टा करती हुई परेशान करने लगी। वह उन सब असबद्ध चिताओ को एक निश्चित—व्यवस्थित—रूप देने की चेष्टा करने लगा, पर कोई फल नही होता था। वह जानना चाहता था कि उन सब के मूल मे स्थित प्रधान चिता कौन है, जो अपने साथ सैकड़ो आकार-प्रकारहीन

उसे प्राप्त हो रहा है, वह अभी तक उसकी प्राण-रक्षा में सहायक सिद्ध हुआ है। पर यदि किसी भी दिन, किसी भी समय अपनी आत्मग्लानि और आत्म-पीडन की अनुभूति से मुक्त होकर वह तनिक अवकाश पा जायगी, तो निश्चय ही आत्महत्या कर लेगी। यह चिन्ता मेरे मन में काटे की तरह सब समय लगी रहती है। पर अब भी इस बात के लिए समय है कि उसकी विचार-धारा मूलत पलट दी जाय। पर यह केवल तुम्हारे द्वारा ही सभव हो सकता है, क्योकि तुम्हारी सहृदयता और विचार और बुद्धि की गहराई पर उसका पहले से ही विश्वास रहा है। जो गलती उससे हो चुकी है, उसे तुम क्षमा कर दोगे और भूल जाओगे, यह मै जानती हूँ, क्योकि मै तुम्हारे स्वभाव की उदारता से भली भाति परिचित हूँ। मा मर चुकी, प्रतिमा देश के लिए पागल होकर घर-द्वार त्याग चुकी, नीलिमा इस तरह घुली जा रही है और दीदी बीमार है। न जाने मेरे मायकेवालो पर किसका क्रूर अभिशाप फल रहा है।" सुषमा रह न सकी और फफक-फफक कर रोने लगी।

महीप के पास जैसे एक शब्द भी उसे सात्वना देने के लिए नही था। वह अत्यन्त खिन्न मन से चुपचाप बाहर को मुख किए बैठा रहा।

हजरतगज में कुछ खरीद करने के बाद वे लोग लौट आए। महीप शरीर से और मन से बहुत थकित था और चुपचाप किसी एकान्त कमरे में लेट जाना चाहता था। उसे कुछ खाने की भी इच्छा नही रह गई थी, पर सुषमा से जब उसने बिना खाए सो जाने की अनुमति मागी तब वह बहुत दुखी हुई और हठपूर्वक बोली कि वह किसी प्रकार भी उसे भूखा नही सोने देगी। लाचार महीप को बैठना पडा। सिवा नीलिमा के और सब ने साथ ही एक ही मेज पर खाना खाया। नीलिमा महीप को कही दिखाई नही दी। नौकर से मालूम हुआ कि वह पहले ही खा चुकी है और अपने कमरे में बद होकर शायद कोई किताब पढ रही है।

ग्यारहवां परिच्छेद

खा-पी चुकने के बाद महीप जब एक एकांत कमरे में जाकर लेट गया, तब लेटे-लेटे उसने यह निश्चय किया कि कल सुबह ही किसी भी गाड़ी से कहीं चल देगा। नीलिमा का रुख देखकर उससे एकांत में मिलकर दो बातें करने की कोई आशा उसे नहीं रह गई थी। उसे यह सोचकर आश्चर्य हो रहा था कि सुषमा यह क्यों सोचती है कि वह नीलिमा की विचार-धारा को 'मूलत.' पलट सकता है। "जो गलती उससे हो चुकी है, उसे तुम क्षमा कर दोगे और भूल जाओगे!" सुषमा के इस कथन की याद आने पर वह सोचने लगा—"मान लिया जाय, मैं क्षमा कर दूंगा और भूल जाऊंगा, पर इससे सुषमा का—अर्थात् नीलिमा का—क्या बनता बिगड़ता है? सुषमा ने क्या सोचकर यह बात कही? इसके अलावा, नीलिमा अब कोई बात करने का मौका ही उसे क्यों देगी? जब वह स्वयं अपनी सगी बहन से कतरा रही है तब ...नहीं, अब असंभव है। उसके मन में जो गांठें पड़ चुकी हैं उन्हें खोल सकना अब ब्रह्मा के लिए ही संभव हो तो हो!"

इसी तरह की बातें सोचते-सोचते वह जान भी न पाया कि कब उसे नींद ने घर दबाया, कब आंखें लगीं और कब सो गया। तरह-तरह के ऊट-पटांग स्वप्न देखते रहने के बाद जब आंखें खुलीं तब रात प्रायः बीत चुकी थी, हालांकि अभी अंधेरा शेष था। वह फिर एक बार अच्छी तरह कम्बल लपेट कर सो जाने की चेष्टा करने लगा। पर अब नींद नहीं आती थी, और एक-दूसरे से असंबंधित सैकड़ों चिंताएं मच्छरों की तरह उसके मन का खून चूसने की चेष्टा करती हुई परेशान करने लगीं। वह उन सब असंबद्ध चिंताओं को एक निश्चित—व्यवस्थित—रूप देने की चेष्टा करने लगा, पर कोई फल नहीं होता था। वह जानना चाहता था कि उन सब के मूल में स्थित प्रधान चिंता कौन है, जो अपने साथ सैकड़ों आकार-प्रकारहीन

चिंताओ को बादल-दल की तरह तूफानी वेग से उभाड लाया है। पर कोई भी बात स्पष्ट रूप से उसके सामने नही आती थी।

कुछ देर बाद उसकी आखें फिर झपने लगीं और उस योगनिद्रा की-सी अवस्था में सहसा उसके नाडी-चक्र की कुंडलिनी जैसे खुल गई और जो प्रकाश इतनी देर तक—बल्कि इतने दिनो तक—चारों ओर से सघन अधकारमय पर्दो से ढका था वह सहसा विद्युत्-वेग से फूट पडा। उसे लगा कि अपने ऊपर अकारण अविश्वास और अकारण भय की जो भावना उसे इतने दिनों से घेरे हुए थी वह विराट् आकार धारण करने पर भी मकडी के जाले की तरह एकदम पोपली और निस्सार थी। वह जाला आज अपने-आप फट गया है और उसके भीतर का पोपलापन स्पष्ट हो गया है। अब भय की कोई बात नहीं है और उसके भविष्य का मार्ग चाहे कैसा ही ककटपूर्ण क्यों न हो, वह सुस्पष्ट है। आत्म-विश्वास के जिस अभाव के कारण वह सिकुडता और सिमटता हुआ मृत्यु की जड़ता की ओर लुढकता चला जा रहा था, वह एक दु स्वप्न-मात्र था। नीलिमा से मिलने से वह जो कतरा रहा था उसका कारण यही आत्मविश्वास का अभाव था। पर आज अचानक उसका खोया हुआ आत्मविश्वास पूर्ण रूप से लौट आया था। देश और काल के जिस स्तर पर वह इधर कुछ समय से भटक रहा था, आज जैसे वह सहसा किसी रहस्यमयी शक्ति के धक्के से वहा से हटकर एक दूसरे ही स्तर पर आ पहुँचा था। इस नये स्तर से सारी स्थिति एक नए ही रूप में उसके सामने आने लगी, अपने जीवन के भूत-वर्तमान और भविष्य की सारी घटित या सभावित घटनाए एक नये ही आलोक में व्यक्त हो उठीं।

वह सोचने लगा—"मै नीलिमा से एक बार अवश्य मिलूगा, चाहे वह कितना ही प्रतिरोध क्यो न करे। सुषमा ने अपनी सहज प्रेरणा से जो सुझाव सकेत के रूप में मेरे आगे रखा है उसकी पूरी परख किए बिना मै यहा से नहीं जाऊगा। नीलिमा ने इस समय चारों ओर से जिस वज्र-अवरोध से अपने को ढक रखा है उसे वास्तव में केवल मै ही तोड सकता हू, और उसे तोडना मेरा

कर्तव्य भी है; केवल कर्तव्य ही नहीं है, बल्कि मेरे जीवन की भावी प्रगति केवल इसी एक बात पर निर्भर करती है।"

इसी तरह से वह बहुत देर तक सोचता रहा। उसके बाद उसे फिर नींद नहीं आई।

दोपहर में जब सब लोग भोजन कर चुके, तब सुषमा ने महीप को सूचित किया कि वह लड़कियों को लेकर किसी एक परिचित महिला से मिलने जा रही है और शाम तक वहीं रहेगी। उसने महीप से अनुरोध किया कि वह उसके लौटने तक कहीं न जावे, घर ही पर रहे।

महीप के जी मे फिर एक बार आया कि सुषमा से विदा होकर स्टेशन का रास्ता पकड़े। तड़के सवेरे योगनिद्रा की अवस्था मे उसका जो आत्मविश्वास लौट आया था, वह फिर एक बार डगमगाने लगा था। पर वह दुविधावश रह गया और सुषमा की बात का मौन उत्तर—जो स्पष्ट ही सकारात्मक था—देकर भीतर अपने कमरे मे चला गया।

अपने कमरे में एक कुर्सी पर बैठा हुआ वह बहुत देर तक सोचता रहा कि उसे क्या करना चाहिए—नीलिमा से मिलना चाहिए या नहीं और मिलने पर किस तरह की बाते करनी चाहिए। सुषमा चली गई थी। सहसा महीप का ध्यान इस बात की सभावना की ओर गया कि सुषमा आज जो दोपहर ही को बाहर निकल गई है वह किसी निजी आवश्यक कार्य से नहीं, बल्कि इसलिए कि महीप को एकात मे नीलिमा से खुलकर बाते करने का मौका मिल जाय। पर सुषमा के चले जाने से ही क्या यह मौका आसानी से मिल जायगा?"—वह मन-ही-मन कहने लगा—"क्या नीलिमा सहज में मुझसे बाते करने को राजी हो जायगी? जिस समय से मैं आया हूँ तब से वह इस प्रकार मुझसे कतरा रही है जैसे मै कोई विसखोपड़ा या उससे भी भयावना और साथ ही घिनौना जीव होऊँ। ऐसी हालत मे कैसे मैं उससे मिलने का साहस कर सकता हूँ? पर नहीं .. मुझे हर हालत मे एक बार उससे मिलना है, और

यदि मिलना है तो अभी मिलना होगा—इससे अधिक उपयुक्त अवसर फिर दूसरा नहीं मिल सकता।"

यह सोचने के बाद भी वह मन की अनिश्चित अवस्था में बैठा ही रहा। सुषमा चली गई थी—मोटर के भोंपू की आवाज से कमरे मे बैठे-बैठे महीप को यह बात मालूम हो चुकी थी।

सहसा वह कुर्सी पर से उठा। तीन मिनट तक वह हौलदिली की-सी अवस्था में कमरे में टहलता रहा। वह फिर एक बार अपने भीतर पूर्ण साहस और आत्मविश्वास का बल बटोरने की चेष्टा करता रहा। जब उसके भीतर स्थिरता आ गई तब वह वायु-वेग से कमरे से बाहर निकला और सीधे नीलिमा के कमरे की ओर चला गया। कमरा भीतर से बन्द था। और कोई समय होता तो महीप सभवत लौट जाता। पर इस समय उसके मन की हताश अवस्था ने आवश्यकता से भी अधिक साहस उसमें दे दिया था। उसने दरवाजा खटखटाना शुरू किया। भीतर से क्लात किन्तु साथ ही तीखे स्वर में आवाज़ आई—"कौन?" उस आवाज से महीप का मर्म अत्यन्त विकल और मन अत्यन्त विचलित होने पर भी वह चुप रहा। उसे यह जानकर स्वय आश्चर्य हुआ कि उसकी भावुकता तीव्रता से जगने पर भी उसकी बुद्धि शान्त और स्थिर हो गई है। यह बात वह समझ गया कि यदि वह उत्तर में कुछ बोलेगा तो नीलिमा कभी दरवाजा नहीं खोलेगी। वह केवल किवाड खटखटाता चला गया। नीलिमा ने दो बार फिर पूछा कि कौन है। पर महीप एकदम मौन साधे रहा। अन्त में तग आकर नीलिमा को दरवाजा खोलना ही पडा।

दरवाजा खोलते ही ज्योंही उसने महीप को अपने आमने-सामने खडा पाया त्योंही वह ठिठककर बरबस दो क़दम पीछे हट गई, और अत्यन्त भयभीत और भ्रान्त दृष्टि से इस तरह उसकी ओर देखती रह गई जैसे वह अप्रत्याशित रूप से परलोक की किसी आत्मा के आगे खडी हो गई हो, जैसे उस पारलौकिक छाया को उसने अपने किसी स्वप्न या दु स्वप्न मे किसी काल में

कही देखा हो और तव से जीवन मे वार-वार उससे कतराते रहने पर भी किसी रहस्यमय आकर्षण से वार-वार उसके सपर्क मे आने को वाध्य होती रही हो। पर कव तक रहेगी यह वाध्यता ? कव वह इस छाया के सम्पर्क से पूर्णतया मुक्त होगी ? क्या वह मृत्यु-पर्यन्त राहु की तरह उसके पीछे-पीछे लगी रहेगी ?

नीलिमा की आखो के उस भ्रान्त और भीत भाव ने महीप के मन मे क्षण-काल के लिए दहशत पैदा कर दी। पर तत्काल वह सभल गया और अत्यन्त शात और स्निग्ध स्वर मे बोला—"नीलिमा, शात होकर वैठ जाओ। घवराओ नही। मै कोई ऐसी वात कहने नही आया हूँ जो—जो अनुचित हो—जिससे तुम्हे चोट पहुँचने की सभावना हो।" यह कहकर वह स्वयं एक कुर्सी पर वैठ गया। नीलिमा पीछे की ओर कदम रखती हुई और महीप की ओर उसी भीत दृष्टि से देखती हुई पलग के पास जाकर खडी हो गई। वह पीछे की ओर मुडी नही—इस भय से कि यदि सामने वैठी हुई उस भौतिक छाया की ओर देखना एक सेकेन्ड के लिए भी वन्द कर देगी तो कही वह छाया उसे पूर्णतया ग्रस न ले।

महीप फिर एक वार शात और आत्मविश्वास के स्वर मे वोला—"नीलिमा, मै तुमसे हृदय से प्रार्थना करता हू कि शात होकर वैठ जाओ, और मुझसे न कतराओ। मै कोई ऐसी वात कहने नही आया हूँ जिससे तुम्हारे हृदय पर चोट पहुँचने की तनिक भी सभावना हो। मै केवल तुमसे क्षमा चाहने के लिए आया हूँ।"

नीलिमा धीरे—बहुत ही धीरे—पलंग पर वैठ गई, पर आधे क्षण के लिए भी उसने महीप की ओर से अपनी भ्रान्त दृष्टि नही फिराई। किन्तु इस वार भय के स्थान पर एक दूसरा ही भाव धीरे-धीरे उसकी आखो मे छाने लगा, जो अत्यन्त करुण वेदना से पूर्ण था।

महीप ने कहा—"नीलिमा, मुझे सब मालूम है। पर विश्वास मानो,

इन सब बातो से तुम्हारे लिए आत्मग्लानि का कारण तनिक भी उत्पन्न न हो कर आत्म-प्रतिष्ठा का ही कारण उपस्थित हुआ है। तुम्हारे आत्म-गौरव ने मुझे आज जितना प्रभावित किया है उतना उसने कभी पहले नही किया। मै अपने अतर के सच्चे विश्वास की बात तुमसे कह रहा हूँ। यह न सोचना कि मै बन रहा हू। और सच पूछो तो तुम्हारे प्रति कोई निन्दात्मक भावना कभी एक क्षण के लिए भी मेरे मन में उत्पन्न नही हुई। हा, ऐसे अवसर अवश्य आए है जब अपने प्रति तुम्हारे व्यवहार से मुझे मार्मिक पीडा पहुची है। कभी-कभी तो उस व्यवहार की स्मृति से उत्पन्न पीडा लगातार कई महीनो तक मुझे परेशान करती रही है। पर मैने बार-बार उसके लिए स्वय अपनी ही निन्दा की है—अपनी अयोग्यता की और अक्षमता की निन्दा। मै यह कहकर झूठ बोलना और बडप्पन प्रकट करना नही चाहता कि प्रतिहिंसा की भावना मेरे मन में कभी जगी नही। उसका जगना स्वाभाविक था, पर वह भावना या उसकी प्रतिक्रिया कभी कोई स्थायी प्रभाव मेरे मन में छोडने में समर्थ नही हुई ”

नीलिमा ने अपना सिर नीचा कर लिया था। निदारुण सकोच ने उसे चारो ओर से इस तरह जकड लिया था कि उसे लगता था जैसे जीवन में अब कभी वह अपने उप झुके हुए सिर को ऊचा उठाने में समर्थ न हो सकेगी।

बारहवां परिच्छेद

महीप समझ नही पाता था कि नीलिमा के मन की उस चरम जडता को किस मत्र से झाड-फूककर सदा के लिए साफ करे। वह अत्यन्त अधीर होकर मन-ही-मन अपने दोनो हाथो को झटकने की कल्पना करने लगा, और झटकने की क्रिया द्वारा ऐसा आत्म-बल प्राप्त करने की बात सोचने लगा जो उसकी अपनी बेबसी और नीलिमा की आत्मग्लानि-जनित जडिमा को एक बिलकुल नये और एकदम ताजे जीवन की स्फूर्ति में परिणत कर सके। पर

कहा से प्राप्त करे वह इस प्रकार का आत्मबल ? अपने छिन्न-भिन्न और क्षयीभूत-जीवन के तारो को वह कैसे जुडावे, जिससे एक अपूर्व सयोजित शक्ति प्राप्त करके वह दूसरो के जीवन मे भी एक जादू-भरी नयी चेतना का सचार करने मे समर्थ होगा ? "नीलिमा ! नीलिमा .... ! वास्तव मे कितनी बडी भूल हो गई तुमसे !"—वह परेशान होकर मन-ही-मन कहने लगा—"यदि तुमने भूल न की होती, मेरे आग्रह पर तनिक भी ध्यान दिया होता, तो आज न तो मै इस तरह वेपर के पक्षी की तरह विवशता से छटपटाता और जीवन के घोर सघर्षमय पथ पर मुक्त उडान भरने में असमर्थ हुआ होता, और न तुम अपना सतेज व्यक्तित्व पूर्णतया खोकर केवल उस पूर्व व्यक्तित्व की दीन, म्लान और विकृत ककाल-छाया की तरह अपने आस-पास के सप्राण और स्फुरणशील जीवन के चारो ओर मडराते रहने को बाध्य हुई होती !"

ऐसा सोचते ही उसे याद आया, कि उसने अभी नीलिमा से कहा है कि "तुम्हारे प्रति कोई निन्दात्मक भावना मेरे मन मे कभी एक क्षण के लिए भी उत्पन्न नही हुई।" इतनी बडी झूठ बात कहने की क्या आवश्यकता थी ? पर वास्तव मे यह बात यदि सच भी है तो भी उसे झूठ ही मानना चाहिए, क्योकि .. .

किन्तु अधिक समय तक उस सघन मर्म-वेदना के सूक्ष्म अणु-पुंजो के भार से आक्रात कमरे में मौन बैठे रहना अत्यन्त अशोभन जानकर महीप ने फिर कहना शुरू किया—"नीलिमा, मै तुम्हे विश्वास दिलाता हूँ कि सब-कुछ घटने के बावजूद तुम मेरे लिए अभी तक प्रभात के तरल तुहिन की तरह निर्मल और शुद्ध हो। हिमालय के ऊपरी स्तर पर पुजित शुभ्र हिमानी की तरह निष्कलक हो। मै अपने मन की बात कैसे तुम्हे समझाऊं ! अपनी भावना को मै कविता के सिवा दूसरे शब्दो मे व्यक्त कर ही नही पाता हूँ।" यह कहते हुए वह सहसा अपने ही शब्दो के जादू से भावावेश मे आकर उठ खडा हुआ और नीलिमा के एकदम सन्निकट जाकर न जाने क्या सोचकर चुप खडा रहा। ऊपर के उस

गम्भीर मौन वातावरण के अतराल में, दोनो के भीतर न जाने कितने युगो से संचित उलटी-सीधी, परस्पर-विरोधी, सम-विषम भावनाए एक-दूसरे के सघर्ष में आती हुई एक विचित्र कोलाहल मचा रही थी। वह कोलाहल कभी अपने हाहाकारमय क्रन्दन से सारे विश्व को छा देने के लिए छटपटा रहा था, कभी अपने रणान्मत्त चीत्कार से समस्त आकाश को चीरने जा रहा था और कभी अनुभवातीत आनन्द के गुजन से अप्रत्यक्ष जगत् के समस्त अदृश्य औरस्तब्ध तारो को झकृत करता हुआ न जाने किस मायालोक की मरीचिका में भटकने जा रहा था।

सहसा चकित होकर महीप ने देखा, नीलिमा पूर्ववत् सिर नीचा किए जमीन पर टपाटप मौन आसू गिरा रही है। वह घबराकर नीचे फर्श पर बैठ गया और अत्यन्त दीन स्वर में, विनयभरी वाणी में कहने लगा--"नीलिमा, तुमने मेरी आज की धृष्टता को क्या अभी तक क्षमा नही किया है। मै जानता हूँ कि आज अचानक तुम्हारे स्वेच्छित कारावास का दरवाजा तोड कर, तुम्हारे अतर की एकान्त शाति में—फिर चाहे वह कैसी ही भयावह क्यो न हो—विघ्न डालने का कोई अधिकार मुझे नही था। फिर भी मैं तुमसे हृदय से प्रार्थना करता हूँ कि मेरी आज की इस ज्यादती को क्षमा कर दो और पिछली सभी अप्रिय वातो को भी भूल जाओ। सिर ऊचा करो नीलिमा, ससार मे कोई भी कारण ऐसा नही है जो तुम्हे इस तरह सिर झुकाए रहने के लिए वाध्य कर रहा हो। तव क्यो तुम इस तरह "

नीलिमा ने अचानक मुह फेरा और उसके वाद ही वह पलग पर पछाड खाकर, तकिये पर मुह छिपाकर अत्यन्त व्याकुल भाव से विलख-विलख कर फफक-फफक कर, सिसक-सिसक कर रोने लगी। महीप से न कुछ कहते वना, न कुछ सोचते-समझते। वह क्षण-भर के लिए वेवकूफो की तरह वैठा रहा। उसके वाद जव वह सहसा खडा हुआ तो दिलासे के तौर पर केवल इतना ही कह कर रह गया—"यह क्या करती हो, नीलिमा? यह क्या करती हो, नीलिमा?"

पर नीलिमा के कानो तक उसका एक भी शब्द जैसे पहुच ही नही रहा था। वह उसी हालत में पडी हुई, केवल बेअख्तियार फफकती चली जाती थी। महीप ने अपने मन की तत्कालीन अशात और अधीर अवस्था मे भी यह अनुभव किया कि नीलिमा के मन का बाध आज सभवत बहुत दिनो बाद पहली बार टूटा है, और इतने दिनो से अपने ही भीतर के वज्र-अवरोधो से बधन मे पडी हुई जो धारा आज पूरी ताकत से फूट पडी है वह मुक्ति का एक अपूर्व स्वाद उसे चखा रही है। इसलिए हृदय को फाडकर बाहर निकलते हुए उस क्रदन के मुक्ति-मार्ग मे किसी प्रकार की रुकावट डालना अवाछनीय समझ कर महीप उसके बाद एक भी शब्द न बोला और तूफान के अपने-आप शात होने का प्रतीक्षा में मौनभाव से खडा रहा।

प्रतीक्षा करते-करते बहुत देर हो गई और नीलिमा का फफकना शात न हुआ। लाचार होकर महीप कमरे से बाहर चला आया। बाहर से किवाड फेर कर अपने कमरे मे चला गया और वहा चहलकदमी करने लगा। उसके सिर के भीतर चारो ओर एक अजीब-सा दर्द हो रहा था। ऐसा मालूम हो रहा था जैसे सिर की सब नसो का रक्त विषमय हो उठा हो। उस विष की गरमी से उसका मस्तिष्क अत्यन्त तप्त हो उठा था।

तीसरे पहर सुषमा लौट आई। आते ही वह सीधे महीप के कमरे में गई। महीप उस समय पलग पर लेटा हुआ था। सुषमा को देखते ही उठ बैठा। सुषमा एक परीक्षक की-सी दृष्टि से उसे देख रही थी। सभवत महीप के मुह के भाव से वह कोई विशेष बात जानना चाहती थी। पर बाहर से अपने मन की बात का कोई आभास न देकर उसने सहज भाव से पूछा—"चाय पी चुके?"

"नही," महीप ने मुरझाए हुए स्वर में सक्षेप मे उत्तर दिया।

सुषमा को अधिक बातें करने का साहस न हुआ। वह भीतर चली गई। महीप ने सोचा कि वह चाय के लिए आर्डर देने गई है। पर प्राय आधे घटे बाद वह लौटी। "तब क्या नीलिमा अभी तक उसी अवस्था मे फफक रही है?

सुषमा ने भी देख लिया है?"—अपने-आप से महीप ने प्रश्न किया। उसे लगा जैसे सुषमा ने उसे अपराध करते हुए पकड लिया है, क्योकि नीलिमा के आज के उस विदीर्ण क्रदन के लिए वही अपराधी है। वास्तव में सुषमा के मुख पर एक अत्यन्त सघन-गभीर छाया घिरी हुई थी। पर उसने मुह से कोई बात प्रकट नही की और शात भाव से महीप को चाय के लिए टेबिल पर बुलाया।

पिछले दिन की तरह आज भी तीनो लडकियो ने टेबिल को घेर लिया, पर नीलिमा के आने की न कोई आशा थी और न वह आई। आज सुषमा ने बहुत बातें नही की और न महीप ही अपने-आप कुछ बोलने की मानसिक स्थिति में था। दोनो ने लडकियो से बातें करते हुए सारा समय बिता दिया।

चाय पी चुकने पर महीप अकेले बाहर घूमने के लिए निकल गया। रास्ते म एक एक्का पकडकर वह बिना कुछ सोचे अमीनाबाद पार्क चला गया और वहा एक बेंच पर बैठ कर अनमने भाव से चारो ओर का कोलाहलपूर्ण दृश्य देखने लगा। उसे अपने ऊपर आश्चर्य और साथ ही अफसोस हो रहा था कि इतनी सब बाते होने पर भी वह तत्काल लखनऊ छोडकर चले जाने की बात ही अब सोच नही पाता। नीलिमा का जो रुख उसने देखा है उसके बाद अब उसका क्या काम लखनऊ में हो सकता है, यह वह स्वय नही जानता था। धीरे-धीरे आत्म-निन्दा की एक तीव्र भावना उसके भीतर घर करने लगी। अपने को व्यक्तिगत और सामाजिक सभी दृष्टियो से लक्ष्यभ्रष्ट समझता हुआ वह अपने-आपको कोसने लगा। रह-रहकर यह विश्वास प्रबलता से उसे धर दबाने लगा कि उसके स्वभाव मे कोई एक ऐसी मूलगत त्रुटि है जो जीवन के किसी भी क्षेत्र में उसे सफलता प्राप्त नही करने देती। महत्वाकाक्षाओ की ओर कोई अज्ञात शक्ति उसे निरतर प्रेरित करती रहती है, पर उसकी स्वभाव की वही अज्ञात त्रुटि उसे उन महत्वाकाक्षाओ के पथ पर केवल भटकाती और भरमाती फिरती है और लक्ष्य तक कभी पहुचने नही देती।

इसी तरह सोचता हुआ और अपने को एक अत्यन्त हीन, अशक्त,

अनध्यवसायी, विषम और अनिश्चित विचारो वाला दुर्बल प्राणी मानता हुआ वह बार-बार मन-ही-मन अपनी निन्दा करता चला गया। इस परिपूर्ण आत्म-निन्दा में उसे एक प्रकार का विकृत दु ख प्राप्त हो रहा था।

सामने से होकर एक जुलूस 'इनकिलाव जिन्दावाद' और 'जय हिन्द' के नारे लगाता हुआ चला जा रहा था। चारो ओर की जनता अत्यन्त उत्साहित होकर उस जुलूस का गुजरना देख रही थी। महीप यह अनुभव करके अत्यन्त आतकित हो उठा कि वे नारे उसके जड प्राणो मे तनिक भी स्फूर्ति का सचार करने मे समर्थ न हुए। इनकिलाव की दुनिया मे वह इस कदर पीछे हट चुका है, यह बात उसने आज पहली बार महसूस की। वह निरुद्वेग और निरुत्साह भाव से अपने ही स्थान पर बैठा रहा और अपने पतन पर विचार करने की चेष्टा करने लगा। दुनिया मे जब चारो ओर राष्ट्रो के उत्थान और पतन का सामूहिक चक्र चल रहा है, मानवता की मूलगत स्वतत्रता की रक्षा के लिए शहीदो के प्राणो का बलिदान हो रहा है, तब वह अपने व्यक्तिगत जीवन की थोथी और काल्पनिक समस्याओ के पीछे परेशान है, और उनके सिवा और किसी दूसरे विषय मे दिलचस्पी ले ही नही पाता! यह सोचकर वह फिर एक बार पूरे जोरो से अपने को तिरस्कृत करने लगा। आत्मग्लानि की भावना जब धीरे-धीरे उसके गले तक भर गई तब वह वहा से उठ खडा हुआ।

तेरहवां परिच्छेद

दूसरे दिन सुबह सुषमा ने महीप को चाय के लिए जगाया। रात में देर तक उसे नींद नही आई थी, इसलिए सुबह वह बेखबर सोया हुआ था। सुषमा ने और उसकी लडकियो ने जब कई आवाजे लगाई तब वह जागा।

आखो में पानी लगा कर और कुल्ला कर के जब वह 'ड्राइग-रूम' मे चाय पीने के लिए आकर बैठा, तब उसने आश्चर्य से देखा कि नीलिमा भी चुपचाप आकर सुषमा की बगल में बैठ गई। जब से वह सुषमा के यहा आया था तब से

आज पहली बार नीलिमा उन लोगो के साथ चाय पीने बैठी थी। महीप इस बात पर गौर कर रहा था कि नीलिमा की सकोच-भरी आखो के नीचे आज एक अव्यक्त-सी मुसकान की क्षीण रेखा झलक रही है। उस क्षीण रेखा में न जाने कौन-से जादू की प्रचड शक्ति छिपी थी जिसने महीप के समस्त प्राणो में एक अजीब-सी उथल-पुथल मचानी शुरू कर दी।

नीलिमा ने स्वय प्यालो में चाय ढाली और स्वय दूध और चीनी मिलाकर सब के आगे एक-एक प्याला रख दिया। महीप ने देखा कि सुषमा के मुख पर भी आज एक निराला उल्लास छाया हुआ है। वह बात-बात पर इस कदर मुक्त-भाव से हँस उठती थी कि उसकी आखें बार-बार हर्ष के आसुओ से जगमगा उठती थी। उसकी आज की प्रसन्नता का कारण महीप से छिपा न रहा। नीलिमा ने आज बहुत दिन बाद स्वय अपने बधनो को तोडकर उन लोगो का साथ दिया था, यह कोई साधारण बात सुषमा के लिए नही थी।

और महीप ? उसे आज की चाय जैसी मीठी लग रही थी वैसी जीवन में शायद ही पहले कभी लगी हो, पर साथ ही ऐसी कडवी चाय भी उसने पहले कभी नही पी थी। नीलिमा के रग-ढग में आज जो स्पष्ट परिवर्तन वह देख रहा था उसका भेद उसकी समझ में कुछ भी नही आ पाता था। पर एक सभावना की बात वह सोच रहा था। कल नीलिमा के भीतर का बाध बहुत दिनो बाद टूटकर उसकी आखो की मुक्त धारा के रूप मे बह चला था, यह महीप ने देखा था। सभवत अतर के उसी मुक्त प्रवाह ने उसके भीतर के समस्त दूसरे अवरोधो को भी ढा दिया था। इसीलिए उसके म्लान मुख पर आज एक हलका-सा रग चढा हुआ था, जो उसके मुक्त प्राणो का बाहरी आभास था। चाय पीते समय नीलिमा न महीप मे कुछ बोली न सुषमा से। केवल बच्चो मे उसने कुछ बातें की। पर इस बात मे महीप के उत्साह में तनिक भी कमी नही आई। क्योंकि उसे निश्चित विश्वास हो गया था कि नीलिमा के अतर्द्वार के निकट तक पहुचने के लिए आज एक नयी सीढी तैयार हो गयी है।

उसके बाद तीन दिन तक नीलिमा नियमित रूप से सवेरे और साझ चाय पीने में उन लोगो का साथ देती रही। उसकी आंखो के नीचे अव्यक्त मुसकान की रेखा प्रति दिन स्पष्ट से स्पष्टतर होती चली गई। जिस सकोच का पर्दा उसने इतने दिनो तक स्वेच्छा से अपने आगे तान रखा था वह भी फटने लगा था। चौथे दिन सवेरे यहा तक बात पहुची कि नीलिमा ने नाश्ते के समय एक समोसा और खाने के लिए महीप से आग्रह किया।

* * * *

उस दिन भी सुषमा दोपहर को छोटी लडकी को साथ लेकर कही चली गई। बडी लडकिया स्कूल चली गई थी। घर पर नौकरो के सिवा रह गए थे केवल नीलिमा और महीप। इधर जब से महीप ने नीलिमा के रुख मे कुछ परिवर्तन पाया था, तभी से वह फिर एक बार उसके पास जाकर एकात मे अपने मन की सब बाते खोलकर कहने के लिए छटपटा रहा था और साथ ही उसके मन की बातो का भी ठीक-ठीक पता लगाने के लिए उत्सुक हो रहा था।

आज सुषमा के चले जाने के बाद वह साहस कर के नीलिमा के कमरे की तरफ गया। आज भी भीतर से किवाड बन्द थे। महीप ने खटखटाना शुरू किया। "कौन ?"—फिर उसी दिन की तरह आवाज आई। आज महीप ने अपने को छिपाना उचित नही समझा। उसने कहा—"मै हू, महीप।"

प्राय. एक मिनट तक कोई प्रत्युत्तर नही मिला और न दरवाजा ही खुला। उसके बाद धीरे—बहुत ही धीरे—बिना किसी शब्द के दरवाजा खुला। महीप ने भीतर प्रवेश करके देखा—नीलिमा का चेहरा आज फिर गम्भीर रूप धारण किए हुए था। उस गभीरता मे भय की मात्रा अवश्य वर्तमान थी, पर उतनी नही जितनी पिछली बार थी।

"मुझे क्षमा करना नीलिमा, मैने आज फिर तुम्हारे एकात-वास मे विघ्न डाला है।"—एक कुर्सी पर बैठ कर कुछ दबी हुई-सी आवाज मे महीप ने कहा।

नीलिमा अपने पलग पर बैठ गई थी। महीप की ओर आधी दृष्टि से देखती हुई बोली—"मुझे पहले ही से भय था कि तुम फिर आओगे।"

"पर इसमें भय की क्या बात थी? क्या अब मेरा इतना भी अधिकार नहीं रह गया कि मैं तुमसे एकात में दो-एक बातें कर सकू?"

"किसी के अधिकार या अनधिकार के सम्बन्ध में मैं क्या जानू! आज स्वय अपने अधिकारो के सम्बन्ध में कोई ज्ञान मुझे नही रह गया है।"

महीप को लगा कि नीलिमा के एक-एक शब्द में कुनैन से भी तीखी तलखी घुली हुई है। कुछ क्षणो तक वह चुप रहा। उसके बाद आखें मूदकर उस तलखी को पीता हुआ बोला—"मैं जानता हूँ, और तुम्हारी स्थिति की जटिलता का अनुभव बहुत कुछ कर सकता हू। इसीलिए तो मैं तुम्हारे पास आया हूँ, नीलिमा! जरा सोचो तो सही, तुम्हारे समान स्वतत्र-प्रकृति और विचारशील नारी के लिए क्या यह उचित है कि वह अपने मन को भावुकता के कारण उत्पन्न हुई अप्रिय कल्पनाओं और कडवी स्मृतियों के भार से इस तरह दबाए रहे? जरा-सा सिर ऊँचा करने की देर है। ऐसा करते ही तुम तत्काल समझ जाओगी कि तुम जहा पहले थी अब भी वही हो, और तुम्हारे बाहरी जीवन में चाहे कैसी ही घोर अप्रिय घटनाए क्यो न घट गई हो, उनका रचमात्र भी दाग तुम्हारी चिर-मुक्त और चिर-पवित्र आत्मा पर नही पडने पाया है, और तुम्हारे स्वतत्र अधिकारो में तनिक भी दबाव डाल सकने वाला एक भी व्यक्ति समग्र ससार में कही नही है।"

इस बार नीलिमा ने पूरी दृष्टि से, बडे गौर से, महीप की ओर देखा। उसकी गभीर चिंता में मग्न सुन्दर आखे जैसे महीप का मर्म चीरकर उसका असली आशय जानने का पूरा प्रयत्न कर रही थी। पर बार-बार भटक कर उसकी वह दृष्टि बाहर को लौट आती थी।

"मैं समझी नही कि तुम्हारा ठीक आशय क्या है।"

"मैं ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिह की बात सोच रहा था। उन्होने तुम्हे—"

सहसा बीच ही में बात काटती हुई नीलिमा कुछ तमकी हुई-सी बोल उठी—"उस नीच व्यक्ति का नाम इस कमरे में न लेने की प्रार्थना मैं तुमसे करती हूँ।"

"पर नीलिमा, उसे भूलने के लिए उसका नाम लेना बहुत आवश्यक है।"

"नही, नही!" कह कर नीलिमा ने अपने दोनो हाथो से अपनी आखे ढक ली। जैसे कोई भयकर दु स्वप्न समूर्त रूप धारण करके उसकी आखो के आगे वीभत्स नृत्य करने लगा हो।

महीप तत्काल उठ खडा हुआ और नीलिमा के एकदम निकट जाकर अनुनयपूर्ण स्वर में बोला—"नीलिमा, क्या तुम मुझे इस कदर बेगाना समझने लगी हो कि मुझे सच-सच हाल बताने योग्य नही समझती? क्या मैं तुम्हारे अपमानित हृदय की पीडा का साझी किसी हद तक भी नही हो सकता?"

"नही", उसी तरह दोनो हाथो से आखे बन्द किए हुए नीलिमा बोली —"चूकि यह अविश्वसनीय रूप से वीभत्स अपमान मैंने स्वय अपनी मूर्खता और हठ से मोल लिया है, इसलिए किसी दूसरे को उसका साझी मैं नही बनने दूगी। इसके अलावा उसमे कोई लाभ न दूसरे का हो सकता है न मेरा।"

"पर—पर—जरा सोचो तो सही, नीलिमा", बच्चो की तरह पुचकारते हुए महीप ने कहा—"जिसे तुम अपनी मूर्खता और हठ कहती हो, उसके लिए तुम पूर्ण रूप से उत्तरदायी नही थी। तुम्हारे ऊपर कुछ बाहरी शक्तियो का जो दबाव निरंतर पड़ रहा था उसकी उपेक्षा करना तुम्हारी परिस्थिति की किसी भी नारी के लिए शायद आसान न था।"

सहसा नीलिमा जैसे चौक उठी। आखो पर से हाथो को हटाकर स्थिर दृष्टि से महीप की ओर देखती हुई बोली—"तुम क्या अपने हृदय से यह बात कहते हो महीप?"

"यदि मै हृदय से इस बात पर विश्वास न करता होता, तो कभी इतने दिनो बाद तुम्हारे पास लौटकर न आता।

"पर मैं उन सब बातो को कैसे भूल जाऊ, महीप, जिन्होने मेरे जीवन को राख से भी अधिक जड, जले हुए तिनको से भी अधिक निर्जीव बना दिया है ? वे कटु स्मृतिया मेरी रग-रग में समा गई हैं, मेरे प्रत्येक रक्तकण के साथ घुलमिल गई है। इसलिए लाख चेष्टा करने पर भी मै उन्हे भूल नही पाती, और प्रतिपल उनके सिवा और किसी दूसरी बात के सम्बन्ध मे एकाग्र-चित्त से सोच नही पाती। वे स्मृतिया साकार भूतो की तरह सब समय मेरा गला दबाए रहती हैं। विश्व में कौन ऐसी शक्ति है जो उनसे मेरा पिंड छुडा सकेगी, और निकट भविष्य में पागल होने से मुझे बचावेगी ?" कहकर वह अत्यन्त हताश दृष्टि से, वेदना-व्याकुल आखो से महीप की ओर देखने लगी।

महीप कुछ समय तक निश्चल भाव से खडा रहा। सात्वना का एक शब्द भी वह खोज नही पाता था। उसके बाद बोला—"इतना अनुमान मै अवश्य लगा सकता हूँ कि तुम्हारे साथ ज्यादती हुई है। पर वास्तव में क्या हुआ है, और ठाकुर साहब ठीक किस रूप में तुम्हारे साथ पेश आये है, इस सम्बन्ध में कोई भी जानकारी मुझे नही है। इसलिए जब तक मै जान न लू—"

"तब तुम जानना चाहते हो ?"—सहसा उत्तेजित स्वर में नीलिमा बोल उठी—"अच्छा तब सुनो। एक कुर्सी लेकर नजदीक बैठ जाओ। मै सारा क़िस्सा तुम्हे कह सुनाती हूँ। तुम्हे सुनाए बिना मेरा निस्तार नही है।"

चौदहवां परिच्छेद

महीप एक कुर्सी लेकर नीलिमा के सामने बैठ गया। नीलिमा कहने लगी—"विवाह होने के दो ही महीने बाद मै उनके साथ उनकी ताल्लुकेदारी में (जो काफी बडी है, और जिसे एक छोटी-सी रियासत ही कहना चाहिए) गई। आरम्भ में उन्होने मेरे साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया और उनके

स्वभाव और चरित्र के सम्बन्ध मे जो कल्पना मैंने कर रखी थी उसमे तनिक भी अतर नही आने दिया। पर बाद मे धीरे-धीरे मेरे प्रति उनके व्यवहार में बदलाव आता चला गया। बहुत दिनो तक मुझे पता ही नही चलने पाया कि वह पहले से बहुत बदल गए है। इसका कारण शायद यह था कि परिवर्तित परिस्थितियो के साथ ही मेरे मन की भावनाओं मे भी मेरे अनजान मे बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था। जिस विषैली विलासिता से पूर्ण सामन्तवादी वातावरण के बीच मे मेरा नया जीवन बीतने लगा था उसके अज्ञात प्रभाव ने शायद मेरी आत्मा को भी बहुत कुछ विषमय बना दिया था। इसलिए मेरे प्रति उनके व्यवहार मे जो घृणा, उपेक्षा और तुच्छता का भाव मेरे (और शायद उनके भी) अनजान मे आ गया था और दिन-पर-दिन बढता चला जाता था, न तो उसकी ओर ही बहुत दिनो तक मेरा ध्यान गया, और न इस बात से ही मेरे मन मे आतक की भावना उत्पन्न हुई कि रियासत की गरीब प्रजा के साथ उनकी ज्यादतिया दिन-पर-दिन कैसा अमानवीय रूप धारण करती चली जाती है।

"मेरे मन की यह जड़ परिस्थिति प्राय डेढ वर्ष तक रही। मुझे पता चल गया था कि वह शराब पीने लगे है। वह पहले भी शराब पीते रहे होगे, पर विवाह के पहले जब वह शहर मे थे तब मैंने कभी न उन्हे कही शराब पीते देखा था न सुना था कि वह पीते है। मै बराबर उन्हे शुद्ध आचरणवाला और साधु-चरित्र व्यक्ति ही समझती थी—कम-से-कम जहा तक बाहरी आचार का प्रश्न है वहा तक। पर मेरी यह धारणा विवाह के कुछ ही महीनो बाद भ्रान्त सिद्ध हो गई थी। मुझे पता चल गया कि वह शराब पीने लगे है। फिर भी आरम्भ मे इस बात से उनके प्रति कोई विरोधी भावना मेरे मन मे उत्पन्न नही हुई। इसका कारण वही है जो मै बतला चुकी हूँ। तब नये वातावरण मे मेरे मन मे भी मेरे अनजान मे एक विकृति आ गई थी। इसके अलावा तब तक जितनी मात्रा मे वह शराब पीते थे वह इतनी अधिक नही थी कि उसकी प्रतिक्रिया के रूप मे मेरे साथ वह कोई उत्कट ढग की ज्यादती करते—दूसरो के साथ भले ही उनका व्यवहार तभी से विकट रूप धारण करने लगा हो।

"पर डेढ वर्ष बाद मेरा ध्यान पहली बार इस बात की ओर गया कि उनका मतवालापन बहुत बढ गया है और दिन-पर-दिन बढता चला जा रहा है। उन्होने पहली बार प्रकट रूप में मेरे साथ जो ज्यादती की उसकी स्मृति सब से अधिक तीखे काटो के साथ मेरे मर्म में गडी हुई है—हालाकि बाद में उससे भी कई गुना अधिक विकट ज्यादतिया उन्होने की थी। उस दिन वह पहले ही से काफी शराब पीकर रात में मेरे पास आए थे। आते ही उन्होंने फिर एक बोतल मगाई और दो गिलास भी। उसके बाद भीतर से किवाड बद करके मुझसे कहने लगे—"आज तुम्हे भी पीना होगा।"

"मैने कहा—'यह कैसी मूर्खता की बात करते हो ? बहुत पीकर आए हो, इसलिए होश में नही हो। हटाओ इस बोतल को, और चुपचाप सो जाओ।' यह कहकर मै बोतल को मेज पर से उठाने के लिए आगे बढी। पर मेरे एक कदम आगे बढते ही उन्होने ऐसी क्रूर और हिंसक दृष्टि से मुझे देखा कि मै ठिठक गई और उसके बाद दो कदम पीछे हट गई। एक तो शराबी की आखें तिसपर हिंसकता लिए हुए। वास्तव मे मै आतकित हो उठी। उन्होने गरज कर कहा—'खबरदार! बोतल को छूना मत!'

"मै भय, दुःख और ग्लानि से मर्माहत होकर मौन दृष्टि से उनकी ओर देखती रह गई। क्षण-भर के लिए कमरे में मृत्यु का-सा सन्नाटा छाया रहा। उसके बाद वह फिर क्रूर और कुटिल स्वर में बोले—'तुम पीने में आपत्ति क्यो करती हो ? मै जानता हूँ कि खत्रियो के यहा पीने की प्रथा है, और उनके यहा क। औरतें भी पीती है। केवल इतना ही नही, उनके यहा की औरते 'मै उसी दम पूरी ताक़त से चीख उठी—'खबरदार! आगे एक शब्द भी इस सबंब में मुह से निकालोगे तो परिणाम अच्छा नही होगा!'

"अचानक मेरे इस तरह चिल्लाने से वह कुछ सिटपिटा गए। पर फिर अपनी बेहयाई से बाज न आए और कुछ ही देर बाद बोले—'तुम क्या कर लोगी ? मुझे सब बातें मालूम है। तुम्हारी बहनो को भी मै अच्छी तरह जानता

हूँ। प्रतिमा किस तरह के लोगों के बीच में रहकर वेश्याओं का-सा जीवन बिता रही है इस बात का पता मुझे अच्छी तरह है। और तुम भी—' उनकी उस तरह की बातों से मेरे आगे अंधेरा छा गया। पास ही एक छोटी-सी मेज पर चीनी मिट्टी का एक खाली 'ऐश-ट्रे' पड़ा था। मैंने आव देखा न ताव, उसे उठा कर आंखें मूंदकर उस टेबिल की ओर दे मारा जहां वह बैठे थे। मैंने केवल 'ऐश-ट्रे' के चकनाचूर होने की आवाज सुनी, पर देखा कुछ भी नहीं। क्योंकि उसी क्षण मैं पछाड़ खाकर फ़र्श पर गिर पड़ी और बेअख्तियार रोने लगी।

"उनका नशा इस घटना से हिरन हो गया। वह शान्त भाव से मेरे पास आकर मेरा हाथ पकड़कर मुझे उठाने की चेष्टा करने लगे और दिलासे की बातें कहने लगे। पर एक बार भी उन्होंने यह नहीं कहा कि 'मुझसे गलती हुई, मुझे क्षमा कर दो।' मैं अत्यन्त क्रोध और घृणा से अपना हाथ छुड़ाकर पूर्ण प्रतिरोध करने लगी। उन्होंने फिर हठ नहीं किया और मुझे उसी अवस्था में फर्श पर छोड़कर चले गए। बहुत देर तक मैं फर्श पर पड़ी रोती रही। उसके बाद एक अलग कमरे में जाकर भीतर से किवाड़ बन्द करके एक कोच पर लेट गई। रातभर उसी कोच पर पड़ी रही।

"उस दिन पहली बार मेरे सचेत मन के आगे विवाह के बाद की मेरी स्थिति की वास्तविकता स्पष्ट हो उठी, और मैं आतंक से सिहर उठी। सच बात यह थी कि मैं रियासत में आने के बाद से एक प्रकार से अन्तःपुर की रानी बन गई थी। मेरी व्यक्तिगत स्वतंत्रता पूर्णरूप से छीन ली गई थी और बाहर की दुनिया से भी मेरा संपर्क नहीं के बराबर रह गया था। कोठी के बाहर मेरा आना-जाना एक प्रकार से बन्द हो गया था। वह जहां भी जाते थे मुझे अपने साथ नहीं ले जाते थे और केवल 'अन्तःपुर' में ही उनसे मेरा मिलना हो पाता था। आरम्भ में मुझे अपनी इस स्थिति में न तो विशेष अस्वाभाविकता ही महसूस हुई और न कोई असंतोष ही मेरे मन में जगा। उसका कारण यह था कि कोठी के भीतर की दुनिया चाहे कैसी ही संकीर्ण क्यों न रही हो, वहां

का जीवन इतना अधिक व्यस्त था कि वहा के प्रबन्ध में ही मेरा सारा समय बीत जाता था और बाहर की किसी बात के लिए असतोष करने का अवकाश ही नहीं रह जाता था।

"पर उस दिन की घटना ने मुझे जता दिया कि मैं कहा से कहा खदेड दी गई हूं। मैंने देखा कि अपने अनजान में भटकती हुई मैं एक ऐसी अरक्षित स्थिति मे आ पहुची हूँ जहा चारो ओर लोहे की अटूट दीवारो के बाहर भाग निकलने का कोई रास्ता नहीं रह गया है, और जहा मेरे पैरों के नीचे एक सघन अधकारमय अतल गह्वर मुह बाये हुए है।

"तब से मै सब विषयों में अत्यन्त सचेत और चौकस रहने लगी। पर अब सारी स्थिति उस सीमा को पहुच गई थी जब सतर्कता का कोई मूल्य नहीं रह जाता। उनका स्वभाव दिन-पर-दिन उग्र-से-उग्रतर होता चला जाता था और मेरे प्रति उनके कटु विद्वेष की भावना दिन-पर-दिन बेहद बढती चली जाती थी। उनके उस अकारण (कम-से-कम जिसका कारण मै नहीं समझ पाई थी) विद्वेष की प्रतिक्रिया मेरे भीतर भी प्रबलता से होने लगी। पर अपने विद्रोह को सक्रिय रूप देने का साहस मैं नहीं बटोर पाती थी। वह प्राय सब समय नशे में चूर रहते थे। कम-से-कम इतना तो निश्चित ही है कि मेरे सामने जब भी वह आते थे तब चढाए हुए आते थे। मेरे पास आते ही झगडे की कोई-न-कोई बात वह अवश्य छेड देते थे। मैं टल जाना

करने लगे थे वह उसके लिए असह्य हो उठा और एक दिन उसने गले में फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली।

"मैं रूपा के सम्बन्ध में बराबर उदासीन रहा करती थी। उसके अस्तित्व का कोई भी महत्त्व कभी मुझे नहीं जान पड़ा। इसका कारण यह था कि मैं उससे संबंधित भीतरी रहस्य से अपरिचित थी। पर जिस दिन मैंने ठाकुर धीराजसिंह की डायरी पढ़ी उस दिन पहली बार उसका जीवन एक विशेष प्रकाश से उज्ज्वल होकर मेरे सामने आया। फिर भी मैं यह नहीं जान पाई कि तुम्हारे ठाकुर साहब के जीवन में उसका जीवन कहां तक संबंधित है। धीराजसिंह ने अपने संस्मरणों में निश्चय ही इस बात का उल्लेख किया होगा कि रूपा और तुम्हारे ठाकुर साहब के बीच ठीक क्या सम्बन्ध है और दोनों की भावनाएं एक-दूसरे के प्रति क्या हैं। पर संभवतः डायरी से वे पन्ने फाड़ डाले गए थे जिनमें इन सब बातों का उल्लेख रहा होगा। इस सम्बन्ध में केवल इंगित मात्र ही मुझे पढ़ने को मिला।

"कुछ भी हो, अपने विवाह के बाद भी बहुत दिनों तक मैं यह न जान पाई कि जिस घर में मैं आई हूं वहां रूपा का ठीक क्या स्थान है। रूपा अलग एक कमरे में रहती थी और मेरे पास बहुत कम आती थी, और जब कभी मुझसे उसका मिलना होता भी था तब वह कभी कोई बात मुझसे नहीं करती थी। मैंने शायद ही कभी उसे बोलते या हँसते देखा हो। इतना विश्वास मेरे मन में जमा हुआ था (और अब भी जमा हुआ है) कि तुम्हारे ठाकुर साहब से उसका किसी प्रकार का अनुचित सम्बन्ध नहीं रहा। एक दिन उन्हीं ने मुझे बताया था कि रूपा यह आशा रखती थी कि उसका विवाह उन्हीं से—तुम्हारे ठाकुर साहब से—होगा। पर जब विवाह उससे न होकर मुझसे हुआ तब स्वभावतः उसकी निराशा चरम अवसाद में परिणत हो गई। उनकी संचित विकृतियों का विस्फोट जब सामूहिक रूप में होने लगा तब उन्होंने रूपा को भी अपनी कुचेष्टाओं का शिकार बनाने से नहीं छोड़ा—उस रूपा को, जिसे

अपने घोर पापाचारमय जीवन मे वह शायद एकमात्र अपवाद मानते चले आ रहे थे, और जिसे विवाह के सम्बन्ध में धोखा देने के कारण वह वास्तव में कुछ समय तक अपने को अपराधी मानते रहे ।

"रूपा की आत्महत्या ने मुझे अत्यन्त आतंकित कर दिया । उसके घोर दयनीय जीवन की सारी ट्रेजेडी मेरी आखो के आगे मूर्तिमान हो उठी । तब से मुझे ऐसा लगने लगा कि सारा जमींदार-भवन उसकी तडपती हुई मृतात्मा के अभिशाप से ग्रस्त हो उठा है। दिन-दहाडे मैं भयभीत हो उठती ।

"उधर नौकर-चाकरो से उनकी बाहर की कार्रवाइयों के सम्बन्ध में जो समाचार मुझे मिलते थे वे ऐसे भयावह और बीभत्स थे कि उनपर सहज में विश्वास ही नहीं होना चाहता था—हालाकि एक ऐसे सहृदय और विश्वसनीय नौकर के मुह से मैंने वे सब बातें सुनी थीं जिसकी कोई भी बात कभी असत्य प्रमाणित नहीं हुई। मालूम हुआ कि अपने कुछ चुने हुए असामियों की लडकियो के साथ अनुचित सम्बन्ध स्थापित करने की लालसा से उन्होने गुडो का एक ऐसा दल नियुक्त कर रखा है जो अनेक प्रकार के उपायो को काम में लाकर, तरह-तरह के छल, बल और कौशल से उन लडकियो को भगा लाता है । यह भी मालूम हुआ कि एक भले घर के आदमी ने, जिसकी लडकी पर तुम्हारे ठाकुर साहब की नजर थी, जब गाव वालो का एक दल सगठित कर के उन गुडो को पीटा, तब दूसरे दिन उस आदमी को पकडकर बुलाया गया । तुम्हारे ठाकुर साहब की आज्ञा से सभी मुसाहिबो के सामने उस आदमी के सब कपडे उतार डाले गए और फिर कोडो की ऐसी मार उस पर पडी कि वह अचेत हो गया। उसकी लडकी भी पकड कर लायी गयी और बलपूर्वक उसका धर्म नष्ट कर दिया गया। दूसरे ही दिन उस आदमी ने विष खाकर आत्म-हत्या कर ली ।

"इस प्रकार के अत्याचारो से उनके कर्मचारियो को भी शह मिल गई, और वे भी गरीब प्रजा के साथ अकथनीय जुल्म करने लगे । ज़रा-ज़रा से

अपराधों पर किसानों के घर लूट लिए जाते थे और खलिहान जला दिये जाते थे। इस प्रकार की कार्रवाइयां तब हो रही थीं जब देश में चारों ओर अन्न का हाहाकार मचा हुआ था।

"मुझे ऐसा लगने लगा कि मैं किसी वास्तविक जगत् में नहीं हूँ, बल्कि भयंकर स्वप्नों के किसी लोक में पहुंच गई हूँ। रात-दिन मैं अपने कमरे में बन्द पड़ी रहती और स्वयं अपनी छाया से भी कतराती। हर घड़ी मैं मन-ही-मन कभी मां को कोसती और कभी अपने-आप को। इतनी भीषण भूल मैंने क्यों की, प्रतिपल यही एक प्रश्न मेरे मन में उठता और कभी न बुझनेवाले अंगारे की तरह मेरा हृदय निर्ममता से जलता रहता।

"एक दिन रात में असावधानी के कारण मैं कमरे के भीतर की सिटकनी लगाना भूल गई। वह दरवाजा खोलकर भीतर चले आए और उसके बाद उन्होंने भीतर से दरवाजा बन्द कर दिया। मैं घबरा कर पलंग पर से उठ बैठी। सारे कमरे में शराब की तीव्र गंध फैल गई और मेरा सिर चकराने लगा। वह सीधे पलंग पर आकर मेरी बगल में बैठ गए। मैं मुंह फेरकर बैठ गई। पलंग पर से कूदने की इच्छा थी, पर कूदी नहीं—न मालूम क्यों। उस दिन वह बहुत शांत दिखाई दिये और मीठी-मीठी बातों से मुझे मनाने का प्रयत्न करने लगे। मैं थर-थर कांप रही थी—कह नहीं सकती कि भय से, घृणा से या और किसी भावना से।

"सहसा उन्होंने अपने दोनों हाथों से मेरा मुंह अपनी ओर करने की चेष्टा की। मैंने पूरा प्रतिरोध किया। पर मेरे प्रतिरोध से उनकी ज़िद जैसे और बढ़ गई और वह भी पूरी ताकत काम में लाने लगे। कुछ देर तक हम दोनों के बीच छीना-झपटी चलती रही। अंत में जब वह अपनी कुचेष्टा में सफल होने ही को थे कि सहसा मेरे भीतर जैसे रणचंडी जग उठी। मैंने अपने पहुँचे के एक जबर्दस्त धक्के से उन्हें पीछे हटा दिया और अपने को छुड़ाकर पलंग से नीचे उतर आई। उनके भीतर इस बात की ऐसी भयंकर प्रतिक्रिया हुई कि उनकी चढ़ी

ने उसके किशोरी कुमारी होने की बात कही, तब उसकी अवमानित और लज्जित आत्मा की सारी ग्लानि उमड़-उमड़ कर उसके प्रति रक्तकण को तिरस्कृत करने लगी।

महीप कहने लगा—"तुम्हारा चरित्र केवल प्रभात के तुहिन-बिंदुओं की तरह निर्मल और उज्ज्वल ही नहीं है, बल्कि उसके भीतर ऐसी आश्चर्यजनक शक्तियों के बीज निहित हैं, जो यदि कभी पनप कर प्रकाश में आ जावें तो स्वयं तुम देखकर चकित रह जाओगी! . "

"नहीं, नहीं, महीप, इस तरह की बात न कहो। इस तरह की बातों से मुझे कैसा कष्ट होता है, तुम नहीं जानते!" उसी तरह सिर झुकाये और आखें बन्द किये नीलिमा ने कहा।

"नीलिमा, आज फिर एक बार तुम्हारे आगे अपने अंतर की उस व्याकुलता को प्रकट किये बिना मेरा मन नहीं मान रहा है, जिसने इतने वर्षों से एक पल के लिए भी मुझे चैन से नहीं रहने दिया है, हालांकि बीच में मैं अपने-आपको ठगता हुआ यह सोचने लगा था कि मैं अपने हृदय की उस स्थिति के परे पहुंच चुका हूँ। आज स्पष्ट देख रहा हूँ कि अपनी मानसिकता के सम्बन्ध में मेरी वह धारणा एकदम ग़लत थी ....."

नीलिमा ने अपनी आखों पर से अपने हाथों को हटाकर प्रश्न-भरी भ्रान्त दृष्टि से महीप की ओर देखा। एक नयी आशंका का भाव उसकी उस जिज्ञासु दृष्टि में झलक उठा। उसने देखा, महीप की दृष्टि में भी किसी एक मार्मिक वेदना की निरतिशय करुण छाया घिर आई है। नीलिमा का भीत हृदय बरबस धड़कने लगा।

महीप कहता चला गया—"मैं जो प्रार्थना करने जा रहा हूँ, उसे केवल एक बार धैर्यपूर्वक सुन लो, उसके बाद मुझे चाहे तिरस्कृत करो, चाहे पुरस्कृत, यह तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है। मैं विश्वास करता हूँ कि मेरी प्रार्थना चाहे

कैसी ही असंगत क्यों न हो, उसमें तुम अपने हृदय की स्वाभाविक उदारता को कभी संकुचित न होने दोगी।

"तुम्हारे प्रति मेरे मन की क्या भावना रही है, यह तुम जानती हो। सब-कुछ घटने के बावजूद उस भावना में न भी एक तिल भी कमी नहीं आई है, बल्कि समय उसे और अधिक तीव्र, और अधिक गहन करता चला गया है। उस भावना ने मेरे भीतर जो आग सुलगाई है कभी वह हवा के तेज झोंकों से दहक उठी है और कभी उसके ऊपर सफेद राख छा गई है। पर किसी भी हालत में उसकी आंच में तनिक भी कमी नहीं आई है, और उस आंच में मेरे जीवन की बड़ी बड़ी उच्चाकांक्षाएं झुलस कर रह गई हैं। लाख चेष्टा करने पर भी मुझे जीवन में किसी भी कार्य में कोई बल प्राप्त नहीं हो सका है।

"पर अपनी इस भावना के लिए कभी किसी प्रकार की लज्जा या ग्लानि का अनुभव मैंने नहीं किया। यही कारण है कि तुम्हारी आज की स्थिति से भली भांति परिचित होने पर भी मैं उसकी चर्चा चलाने का साहस कर रहा हूँ। नीलिमा, क्या यह संभव नहीं है कि आज तक की सब बातों को भूलकर तुम एकदम नये जीवन में प्रवेश करने के लिए तैयार हो जाओ, और—और—आजीवन मेरा साथ देने के ...."

"महीप, तुम यह सब क्या कह रहे हो ?"—अत्यन्त भीत दृष्टि से देखते हुए कांपती हुई आवाज़ में नीलिमा ने कहा—"सब-कुछ जानने-सुनने पर भी इस तरह की बात तुम कैसे मुंह से निकाल पाते हो ?"

महीप की आंखों में एक सजलता-सी छा गई थी और एक प्रकार के भावोन्माद से वे चमक रही थीं। एक विचित्र अनमने ढंग से वह बोला—"मैं कुछ भी अनुचित नहीं कह रहा हूँ, नीलिमा। तुम्हारे साहचर्य की लालसा मेरे मन में बराबर वर्तमान रही है और अब भी है। न जाने क्यों, मैं बराबर अपने को उसका अधिकारी समझता रहा हूँ और आज भी समझता हूँ। पर एक बात तुम अच्छी तरह जान लो। उस साहचर्य की भावना के साथ किसी प्रकार की

शारीरिक लिप्सा का कोई भाव कभी मेरे मन में वर्तमान नहीं रहा। और शायद यही कारण है कि आज भी तुमको चिर-कुमारी मानने में रचमात्र भी झिझक मुझे नहीं हो रही है। तुम्हारी समस्त शारीरिकता के परे जो एक अकलुष अतीन्द्रिय सत्ता मेरे मन के भी मन में अपनी प्रतिच्छाया डाल चुकी है उसे मिटाने में न तुम समर्थ हो, न जीवन और मृत्यु की कोई शक्ति। स्थूल जीवन की समस्याओं के प्रति बराबर सजग और सचेत रहने पर भी मेरी अन्तरात्मा बराबर अतीन्द्रिय की उपासना करती चली आई है, यह बात आज तक स्वय मेरे आगे स्पष्ट नहीं थी। पर आज जब मैंने तुम्हारा मार्मिक पीडा से पीडित और अकथनीय अत्याचारों की मार से निर्यातित रूप देखा, तब न जाने कैसे मेरी अन्तश्चेतना की इतने दिनों से बन्द आख सहसा खुल पडी। मैं आज भली भाति समझ गया हूँ कि मै शारीरिक क्षुधावाला प्राणी नहीं हूँ, और शायद मेरे जीवन की घोर असफलता का सब से बडा कारण यही है। यदि शारीरिक क्षुधा मुझमें सहज रूप में वर्तमान होती तो मै भी आज के भौतिकतावादी ससार के पार्थिव सघर्षमय जीवन में सफलता पानेवाले व्यक्तियों की तरह किसी-न-किसी क्षेत्र में अपने दातों को गडाने में समर्थ होता। क्योकि किसी भी व्यक्ति की शारीरिक या मानसिक क्षुधा की तीव्रता या मदता इस बात का आभास दे देती है कि जीवन के सम्बन्ध में उसका दृष्टिकोण क्या है। जिस व्यक्ति में मानसिक क्षुधा की तीव्रता होगी वह कभी स्थूल जगत् के सघर्ष में विजय नहीं पा सकता। अपने जीवन के अनुभव से मैं यह बात कह रहा हूँ। साथ ही आज मेरी जगी हुई अन्तर्दृष्टि एक और भेद मेरे आगे खोलने में समर्थ हो रही है। मै आज स्पष्ट समझ पा रहा हूँ कि मेरे प्रति आकर्षित होते हुए भी तुमने विवाह के पूर्व अपना अतिम निर्णय ठाकुर साहब के पक्ष में क्यो किया। इसका कारण मै यही समझता हू कि तुम्हारी अन्तरात्मा ने मेरे सम्बन्ध में सभवत तुम्हे सचेत कर दिया था और यह जता दिया था कि मेरी शारीरिक क्षुधा तीव्र न होने से मै स्थूल जीवन के सघर्ष में अत तक तुम्हारा साथ देने और तुम्हारी रक्षा करने में असमर्थ सिद्ध होऊगा। चूकि ठाकुर साहब

की प्रकृति स्पष्ट ही मेरे विपरीत थी, इसलिए तुम्हारी आत्मरक्षा की सहज बुद्धि ने स्वभावत उनका आश्रय पकडने के लिए तुम्हे प्रेरित किया। पर उसने तुम्हें इस सत्य के लिए सचेत नही किया कि एकात स्वार्थ की जो मनोवृत्ति पार्थिव जीवन को सब समय पूरी ताकत से जकडे रहना चाहती है और उसे अपने पंजे से मुक्त नही होने देती वह अपना भी विनाश करती है और दूसरों को भी विनाश के गढे की ओर ढकेलने के लिए सचेष्ट रहती है।

"मेरी मानसिक क्षुधा ने मुझे जीवन-सघर्ष मे भले ही असफल बनाया हो, पर उसने एक ऐसी सूक्ष्म अनुभूति का आभास मुझे दिया है कि जीवन के सत्य का गहन रूप उसी के भीतर छिपा है। यह मेरी भ्रान्ति हो सकती है, पर उस भ्रान्ति के प्रति कोई असतोष मुझे नहीं है। जब मन की उस क्षुधामात्र ने मेरे प्राणों में एक अपूर्व अनुभूति का सचार किया है तब उसकी तृप्ति से कितना बडा, विश्वविजयी बल मुझे प्राप्त हो सकता है, इसकी कल्पना सहज मे की जा सकती है। इसीलिए मैं तुमसे एकात प्रार्थना करता हूँ नीलिमा, कि मुझे अपना नैतिक साहचर्य प्रदान कर के मेरी आत्मा को एक अभिनव बल देने की कृपा करो, जिससे मैं इस युग की झूठी राजनीति और सर्वघाती विज्ञान से जकडे हुए सामूहिक जीवन के समस्त स्थूल द्वारों को तोड़कर उसके भीतर छिपे हुए युगो से संचित सत्य को बाहर निकालने की क्षमता प्राप्त कर सकू। तुमसे मैं अधिक कुछ नहीं चाहता, केवल तुम्हारी आत्मा का परिपूर्ण योग चाहता हूँ। पर तुम्हारी आत्मा का सच्चा योग मुझे तभी प्राप्त हो सकता है जब तुम प्रतिपल मेरे निकट सपर्क मे रहो। तुम्हे याद होगा, एक दिन तुम क्षणिक आवेश मे आकर स्थूल सामाजिक जगत् के समस्त अवरोधो का उल्लघन करके मेरा साथ देने को तैयार हो गई थीं। क्या उसी मनोभाव को तुम एक बार फिर नये सिरे से नहीं जगा सकती हो? बोलो नीलिमा, क्या तुम पिछली समस्त भूलों और भ्रान्तियों, मानापमान की सभी मीठी और कड़वी स्मृतियों को ठुकराकर एकदम नये सिरे से नया जीवन बिताने को तैयार नहीं हो सकती? यदि तुम इसी क्षण मेरा साथ देने के लिए तैयार हो जाओ तो मुझे पूरा विश्वास

है कि हम दोनों की दुनिया ही एकदम बदल जाय, दोनों के जड़ जीवन में एक नयी चेतना का संचार हो जाय, जीवन की सारी झुठाई मिट जाय और जीवन का एक नया और सच्चा अर्थ सामने आ जावे। बोलो नीलिमा, क्या तुम राजी हो? यदि राजी हो, तो आज ही शाम की गाड़ी से हम दोनों चले चलें। बोलो!"

ऐसा लगता था जैसे एक सांस में महीप इतनी बातें कह गया हो और स्वयं न जानता हो कि वह क्या कह रहा है। नीलिमा सिर झुकाये, एकांत चित्त से, परिपूर्ण आत्मा से सुन रही थी और एक-एक शब्द को जैसे पी जाने की चेष्टा कर रही थी। उसके भीतर एक ऐसी उथल-पुथल मच रही थी, जिसके भीषण वेग को काबू में लाने की कोई क्षमता वह अपने में नहीं पा रही थी। एक ऐसी अप्रत्याशित ज्वार उसके मनोसागर में उमड़ आई थी जो कूल लांघ कर अपने साथ समस्त झूठे और सच्चे बंधनों को बहा ले जाने पर तुली हुई थी। पर ज्योंही महीप अंतिम प्रश्न करने के बाद सहसा रुक गया त्योंही भाटे का क्रम आरम्भ हो गया। नीलिमा को लगा कि सब व्यर्थ है। जीवन की जिस अस्वाभाविक स्थिति में वह इस समय है उसे छोड़कर किसी भी दूसरी स्थिति को अपनाना उसके लिए संभव नहीं हो सकता। अपने मन के और बाहरी जगत् के सैकड़ों बंधन दुर्लंघ्य दीवारों की तरह उसके चारों ओर स्तर-स्तर पर खड़े हैं। महीप का सारा भाषण निरर्थक है, सारा आग्रह बेकार है! अपने प्रति, महीप के प्रति, समाज के प्रति और संसार के प्रति एक ऐसी उत्कट खीझ की भावना उसके मन में जगी कि वह भीतर-ही-भीतर बुरी तरह बौखला उठी। उसका जी चाहता था कि या तो अपनी छाती फाड़कर अपने भीतर की वेदना को नग्न रूप में संसार के आगे रख दे, या विश्व के विराट् अवरोध को चीर कर अपने चारों ओर के दम घोटनेवाले वातावरण से मुक्त हो ले और अपने लिए एक विस्तृत वातावरण तैयार करे। पर वह जानती थी कि उसके टीसे हुए मन को ये दोनों कल्पनाएं असंभव और अवास्तविक हैं।

वह सहसा उचक उठी और फिर एक बार उसने अपने दोनों हाथों से

अपना मुह ढक लिया, जैसे किसी भयंकर आक्रामक जीव से अपनी रक्षा कर रही हो। "नहीं महीप, नहीं!" हिस्टीरिया के-से आवेश के साथ वह बोली—"यह संभव नहीं है। इस तरह की बातें मेरे आगे अब से कभी न करना। इस जन्म में मेरे उद्धार का कोई उपाय शेष नहीं रह गया है। मुझे इस अंधकूप में, इस रौरव में ही पड़े रहने दो। मैं जानती हूँ कि इस नरक का निर्माण स्वयं मैंने किया है, और मेरी विकृत कल्पना के सिवा उसका अस्तित्व बाहर कहीं नहीं है। फिर भी वह मेरे लिए इतना बड़ा सत्य है कि उससे मुझे उबारने की शक्ति तुममें क्या—किसी में भी नहीं है। इसलिए तुमसे मेरी अंतिम और आंतरिक प्रार्थना है कि मुझे अब इस सम्बन्ध में न छेड़ा करो। तुम्हें याद होगा, एक बार मैं तुमसे अपने हृदय से क्षमा मांग चुकी हूँ। आज भी मेरे लिए तुमसे क्षमा मांगने के सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं है। इस जन्म में मुझे क्षमा कर दो महीप—क्षमा! यदि यह सच है कि मृत्यु के बाद कोई दूसरा जीवन है, और उस दूसरे जीवन में तुम्हारा मेरा मिलना किसी दैवी संयोग से संभव हुआ, तो मैं अपने सारे पिछले पापों का प्रायश्चित्त कर चुकने के बाद तुम्हारा साथ संभवतः दे सकूंगी। उसके पहले किसी हालत में भी इस तरह की कोई बात संभव नहीं है। मैं अन्तिम बार तुमसे प्रार्थना करती हूँ, महीप, कि मुझे सदा के लिए क्षमा कर दो, और—और—यहां से चले जाओ—आज ही—और फिर इस जीवन में मेरे पास कभी न आना!" यह कहकर नीलिमा अपने तल्पदेश से उमड़ते हुए आंसुओं को बरबस पीने की चेष्टा करती हुई, अपने मुह के भीतर अपनी साड़ी का पल्ला ठूसकर तकिये पर अपना मुह छिपाकर औंधी लेट गई। रुद्ध-रोदन का आवेग भीतर-ही-भीतर फूटने के कारण उसकी सारी देह हिल रही थी।

अत्यन्त व्याकुल और विवश होकर महीप केवल कहता चला गया—"नीलिमा, नीलिमा, मुझे इस तरह निरुपाय क्यों बनाती हो? उठो, एक बार सारी स्थिति को सोचो और समझो!"

पर उसकी बात नीलिमा के कानों तक जैसे पहुँच ही नहीं पा रही थी। महीप बहुत देर तक उसी निरुपाय अवस्था में खड़ा रहा। पर नीलिमा टस-से-मस न हुई। महीप के पाँव जब बहुत थक गए तब वह एक कुर्सी खींचकर बैठ गया। बैठे-बैठे वह उकता गया, पर फिर भी उठने की प्रवृत्ति उसे नहीं हुई। उसे लगता था जैसे उसके पावों में खड़े होने का बल नहीं रह गया है। नीलिमा उसी हालत में औंधी लेटी हुई, स्पष्ट ही फफक रही थी, यद्यपि मुह के भीतर साड़ी ठुसी हुई होने के कारण फफकने का शब्द नहीं सुनाई देता था। पन्द्रह-बीस मिनट महीप को उतने ही युगों के समान लगे, और जब नीलिमा सहसा करवट बदलने को उठी, तब महीप की अध चेतना को लगा कि मृत्यु के बाद के जिस दूसरे जीवन की बात नीलिमा ने कही थी उसका समय शायद आ पहुचा है।

नीलिमा ज्योंही करवट बदलने को उठी त्योंही महीप को वहां बैठा देख कर वह अस्वाभाविक रूप से उत्तेजित हो उठी। अत्यन्त तीव्र स्वर में बोली —"तुम अभी नहीं गए? जाओ—जाओ! मैं तुम्हारे पावों पड़ती हूँ, तुम इसी क्षण यहा से—इस मकान से चले जाओ! तुम नहीं समझते कि तुम मेरे साथ कैसा अन्याय कर रहे हो! जाओ—अभी!"

महीप के सामने पल में अपनी स्थिति की सारी असमवता स्पष्ट हो उठी वह तत्काल उठ खड़ा हुआ और जाने लगा। दरवाजे के पास पहुचा होगा कि पीछे से नीलिमा ने भारी आवाज़ में कहा—"क्षमा! "

महीप भ्रमवश एक बार फिर लौटने को था, पर नीलिमा ने हाथ के इशारे उसे जाने के लिए कहा। महीप इस बार निश्चित पगों से चला गया।

सुषमा अभी तक नहीं लौटी थी। महीप ने एक तांगा बुलाया। जब तांगा आया तब अपना नाममात्र का सामान अपने हाथ में उठाकर, नौकर के हाथ में एक रुपया रखकर वह उस पर बैठ गया। सुषमा के लिए कोई भी सदेश वह न लिखकर छोड़ गया और न नौकर से कुछ कहा। तांगेवाले से उसने चारबाग़

स्टेशन चलने के लिए कहा । तागा रवाना हुआ और महीप ने एक लम्बी सास ली ।

सोलहवां परिच्छेद

महीप उसी शहर को वापस चला गया जहा से वह लखनऊ आया था। जब मकान मे पहुचा तब नौकर ने बिना खुली हुई चिट्ठियो का एक बडा पुलिंदा लाकर उसके आगे रख दिया। विभिन्न केन्द्रो के गुप्त समाचार गुप्त ही भाषा में लिखे हुए थे। उसके दल मे अलग हो जाने की खबर स्पष्ट ही अभी तक कुछ केंद्रो को मालूम नही हुई थी। महीप ने अत्यन्त उदासीनता के साथ उन पत्रो को खोला, उदासीनता के ही साथ पढा और उसी तरह रख भी दिया। सहसा उसकी दृष्टि एक विशेष पत्र पर पडी, जिसकी हस्तलिपि से वह यद्यपि भली भाति परिचित था, तथापि इस समय वह एकदम नयी, भेदभरी और सम्मोहक-सी लग रही थी। उसने अत्यन्त उत्सुकता से वह पत्र खोला। शारदा देवी ने लिखा था। पत्र उसी स्थान से आया था जहा ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिह की जमीदारी थी। प्राय बारह दिन पहले की तारीख पडी हुई थी। शारदा देवी ने एक अत्यन्त आवश्यक काम से महीप को बुलाया था। उन्होने लिखा था कि वह पत्र पहुचते ही रवाना हो जावें, क्योंकि देर करने से सारी बात बिगड़ सकती है। क्यो और किस लिए उन्होने बुलाया था, इसका तनिक भी आभास पत्र मे नही दिया गया था।

महीप सोचने लगा कि चूकि अब काफी देर हो चुकी है, और पत्र कई दिन बाद उसे मिला है, इसलिए अब जाना एकदम व्यर्थ है। "पर जिस 'अत्यन्त आवश्यक' कार्य के लिए शारदा देवी ने मुझे बुलाया है वह क्या हो सकता है?"—वह मन-ही-मन कहने लगा—"क्या वह भी नीलिमा की ही तरह किसी विषम सकट में फस गई हैं? पर वह तो नीलिमा से अधिक भयानक सकटो मे गुजरने के बाद भी जानबूझकर ठाकुर साहब के यहां धरना दिए बैठी है—यह बात स्वय उन्होंने मुझसे कही थी। इसलिए इस तरह के किसी

से घबराकर सहाययता के लिए उन्होने मुझे पत्र लिखा हो, इस बात की कोई विशेष सभावना नही जान पडती। फिर भी कौन जाने ! जिस वातावरण में वह रहती है वहा किसी भी समय कोई भी विपत्ति ऐसी आ सकती है जो उनके समान इस्पात की तरह सुदृढ और सुकठिन-चित्त नारी के लिए भी असहनीय सिद्ध हो सकती है। पर मुझे उन्होने क्यो बुलाया है ? मै किस रूप में उन्हें किसी भी विपत्ति से बचाने की समर्थता रखता हूँ। ठीक है, वह जानती है कि मै हिसात्मक क्रान्ति के पोषक एक गुप्त दल का नेतृत्व करता रहा हूँ, और 'मेरे' गुप्त दल के सदस्यो से सभवत उन्होने बहुत-कुछ आशा की है। पर वे लोग भी क्या कर सकते है जब कि वह स्वेच्छा से ठाकुर साहब का पल्ला पकडे बैठी है ? जो भी हो, बात है बडी भेदभरी।"

नहा-धोकर, खाना खाकर वह लेट गया और लेटे-लेटे दुनिया भर की बातें सोचता रहा। नीलिमा ने जिस प्रकार का नाटकीय रूप दिखाकर अत मे उसे खदेड दिया था, उस अप्रिय घटना की स्मृति को एकदम भूल जाने की चेष्टा करने पर भी वह भूल नही पाता था, और इधर शारदा देवी के रहस्यात्मक पत्र ने उसके मस्तिष्क को अलग अशात कर दिया था। बार-बार यह सोचने पर भी कि जो घटना घटनेवाली थी वह घट चुकी होगी, उसके चित्त को किसी तरह चैन नही मिल रहा था। बहुत सकल्प-विकल्प के बाद अन्त में उसने शारदा देवी के पास जाने का ही निश्चय किया। उसी दिन रात की गाडी से वह रवाना हो गया।

दूसरे दिन वह सुबह दस बजे के करीब निर्दिष्ट स्टेशन पर पहुचा। गाडी पर से उतरकर वह कुछ अनमना-सा होकर इधर-उधर ताकने लगा जैसे किसी को खोज रहा हो। हालाकि किसी को खोजने की कोई बात नही थी। न किसी को उसने अपने आने की सूचना भेजी थी, न उस स्थान के किसी व्यक्ति से उसका परिचय ही था। फिर भी वह कुछ समय तक प्लेटफार्म पर चक्कर लगाता रहा। चिन्ता की एक गहरी रेखा उसके कपाल पर खिंची हुई

थी। इतने बड़े असमंजस में वह जीवन में इसके पहले शायद कभी नहीं पड़ा था। क्यों उसने वहां आने की मूर्खता की, यह सोचकर स्वयं अपने-आपको कोसने लगा। स्टेशन ही से लौट चलना उचित है, यह सोचकर वह वापसी गाड़ी के आने का समय पूछने के लिए टिकट-घर की ओर बढ़ा। दो कदम आगे बढ़ा होगा कि एक नवयुवक उसके सामने खड़ा हो गया। नवयुवक ने अत्यन्त शिष्टतापूर्वक कहा—"क्षमा कीजिएगा, आप क्या किसी को खोज रहे हैं?"

"जी नहीं।" महीप ने संक्षेप में उत्तर दिया।

"पर स्पष्ट ही आप अजनबी मालूम पड़ते हैं। आप किस गांव में, किसके यहां जाना चाहते हैं?"

"कहीं नहीं, मैं योंही चला आया हूं। आप क्या इसी स्थान के निवासी हैं?"

"जी हां। पर आप निश्चय ही किसी उद्देश्य से—किसी से मिलने आए होंगे?"

नवयुवक का जिज्ञासा-भाव अत्यन्त प्रबल देखकर महीप अकारण ही सिटपिटाने-सा लगा था। वह बड़े गौर से नवयुवक की ओर देख रहा था, जैसे उसके मुख के भाव के अध्ययन से यह जानना चाहता हो कि वह ठीक किस तरह का आदमी है। साथ ही वह यह भी समझ रहा था कि जब वह किसी गुप्त उद्देश्य से नहीं आया है तब किसी से कोई बात छिपाने का कोई कारण उसके पास नहीं होना चाहिए। फिर भी आज न जाने उसके अन्तर का कौन गुप्त पशु-संस्कार उस स्टेशन पर पांव रखते ही उसे अत्यधिक सावधान और सचेत रहने के लिए प्रेरित कर रहा था।

उसने उत्तर दिया—"जी हां,—नहीं—किसी खास काम से—किसी विशेष व्यक्ति से मिलने के लिए मैं नहीं आया हूं।"

उसकी घबराहट और असमंजस देखकर नवयुवक मुस्कराने लगा। उसने कहा—"तो आप क्या स्टेशन से सीधे वापस चले जाएंगे?"

"जी नही। अच्छा, एक बात बताइए। आप तो इस तरफ के सभी लोगों को जानते होगे ?"

"बहुतो को जानता हूँ। पहले आप बताइये, आप किसे खोज रहे है ?"

"ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह को तो आप अवश्य ही जानते होगे ?"

"जी हा, खूब अच्छी तरह। आप क्या उनके पास जाना चाहते है ?"

"जी नहीं। पर—हा—" कहकर महीप रुक गया। आठ-दस आदमियो की एक टोली बगल से चली जा रही थी। दोनो टहलते हुए बातें कर रहे थे। महीप चाहता था कि एक ऐसे एकांत स्थान में बातें करे जहा एक भी आदमी न हो। प्लेटफार्म पर काफी भीड थी। जब दोनों टहलते हुए प्लेटफार्म के उत्तरी सिरे पर पहुँच गए, तो वहां एकात पाकर महीप ने धीरे से कहा—"आप शारदा देवी को जानते है ?"

"जी हा, क्या वह आपकी कोई रिश्तेदार लगती हैं ?"

"जी नहीं—पर आप बता सकते है, वह कहा रहती है ?"

"पहले वह ठाकुर साहब के साथ रहती थीं, पर इधर कुछ महीनो से वह अलग रहती है। ठाकुर साहब के यहा से वह यहा से प्राय छ मील दूर एक गाव में रहने लगी थीं। पर प्राय. पन्द्रह दिन से अब वहा नहीं रहतीं। कहा रहती है, यह कोई नहीं जानता—मेरा कहने का आशय यह है कि कुछ लोग अवश्य जानते होगे, पर जो जानते है वे बताना नहीं चाहते। फिर भी मेरा अनुमान है कि वह आस-पास ही किसी गाव में रहती है।"

महीप ने देखा कि नवयुवक बडा बातूनी और साथ ही चलता-पुर्जा भी है, और उससे बहुत-सी बातें मालूम हो सकती है। उसने कहा—"अच्छा, यह बात है! खैर, तो ठाकुर साहब को आप अच्छी तरह जानते है?"

"जी हा।"

"आजकल उनके रग-ढग कैसे है? उनकी दिनचर्या क्या रहती है ?"

नवयुवक ने एक बार बड़े गौर से महीप की ओर देखा, जैसे उसका यथार्थ मनोभाव जानना चाहता हो। उसके बाद बोला—"आपने मुझे बताया नहीं कि ठाकुर साहब से आप किस तरह संबंधित हैं।"

"मैं किसी तरह भी संबंधित नहीं हूँ। पर उन्हें जानता हूँ। इलाहाबाद में उनसे एक बार मेरा परिचय कराया गया था।"

नवयुवक कुछ कहते-कहते क्षण भर के लिए रुक गया। उसके बाद बोला—"बात असल में यह है कि गाँववाले—केवल गाँववाले ही नहीं, बल्कि जहाँ-जहाँ भी उनकी ज़मींदारी है वहाँ के सब लोग—आजकल उनसे बहुत नाराज़ हैं। बल्कि बहुत उत्तेजित हो उठे हैं। किसी भी दिन उन पर हमला हो सकता है, इस बात की आशंका की जा रही है . ."

अत्यन्त आश्चर्य का भाव जताकर महीप ने कहा—"पर क्यों? बात क्या हो गई?"

"बात यह है कि उनके अत्याचार गाँववालों और अपने असामियों पर दिन-पर-दिन बढ़ते चले जा रहे हैं। पहले भी उनके अत्याचार कुछ कम नहीं थे, पर तब जनता में चेतना नहीं जगी थी। इधर जनता जग उठी है। इसका एक कारण तो स्पष्ट ही है—देश में सर्वत्र जागरण की लहर उठी है। पर दूसरा और मुख्य कारण यह है कि इधर कुछ गुप्त कार्यकर्ताओं ने गुप्त ही रूप से किसानों के नायकों को ठाकुर साहब के खिलाफ़ बहुत भड़का दिया है। और—और—सच पूछिए तो शारदा देवी का नाम भी इसी सिलसिले में लिया जा रहा है। केवल शारदा देवी ही नहीं, एक और महिला का नाम भी इस सम्बन्ध में लिया जा रहा है..."

"कौन?"—अत्यन्त उत्सुक भाव से महीप ने पूछा।

"प्रतिमा देवी नाम की कोई महिला है। सुनते हैं, वह बड़ी क्रान्तिकारिणी है और बड़े उग्र विचार रखती है। पर मुख्य में शारदा देवी ने ही ज़मीन तैयार की है। सुना गया है कि वह कुछ व्यक्तिगत कारणों से भी ० ·

साहव से नाराज है। उन्होंने किसानो का एक जबर्दस्त सगठन कर रखा है।"

प्रतिमा के नाम से महीप चौंका। इस क्षेत्र में भी प्रतिमा के प्रवेश की वात उसकी कल्पना से परे थी। उसका माथा चकराने लगा था और वह ठीक से कुछ सोच ही नही पा रहा था। केवल एक वात वह निश्चित रूप से समझ गया था कि यहा आकर उसने बडी भूल की है। पर उलटे पाव लौट चलना भी उसे ठीक नहीं मालूम हो रहा था।

कुछ देर तक वह भ्रान्त अवस्था में मौन खड़ा रहा। उसकी अन्यमनस्कता—वल्कि उसका सारा रग-ढग—नवयुवक को भेद-भरा मालूम हो रहा था। महीप भी उसके मन की यह वात समझ रहा था। तथापि महीप को इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि वह (नवयुवक) पहले ही परिचय में सारे इलाके की अन्दरूनी राजनीति का रहस्य उसके आगे खोलने के लिए उत्सुक क्यों हो रहा है। कुछ देर वाद उसने नवयुवक से कहा—"इतनी देर तक आपसे बातें हुई, पर अभी तक मैं न तो आपका नाम जान पाया न धाम, और न यह कि आप करते क्या है।"

"मेरा नाम श्यामस्वरूप है। मै पास ही . नामक गाव में रहता हूँ, जो ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह की ताल्लुक़ेदारी के ही अन्तर्गत है। मैं इलाहावाद युनिर्वासिटी में वी० ए० फर्स्ट ईयर में पढ़ता था, पर स्वास्थ्य खराव हो जाने के कारण मुझे पढाई छोड देनी पडी है। डाक्टरो ने मुझे टी० वी० वता दिया था। अव तो मै अच्छा हूँ, पर वीच में मेरी तवीअत वहुत खराव हो गई थी और आपका शुभनाम ?"

महीप अपना नाम वताने के वाद वोला—"तो आप शारदा देवी को जानते है ?"

"जी हा, ख़ूब अच्छी तरह।"

"देखिए, सच वात यह है कि मुझे उन्हीं से एक आवश्यक काम से मिलना

था। पर आप कहते हैं कि उनका पता किसी को भी नहीं है। मेरी समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूं। जी चाहता है कि वापसी गाडी से लौट चलूं।"

"आप एक काम कर सकते हैं",—सहसा उत्साहित-सा हो कर श्यामस्वरूप बोला—"अभी आप मेरे साथ चलिए और मेरे ही यहां ठहरिए। एक-दो दिन के भीतर मैं शारदा देवी का पता लगाकर छोड़ूंगा।"

क्षणिक झिझक के बाद महीप ने कहा—"अच्छी बात है। यदि आपको कोई असुविधा न हो तो आपके साथ चलने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

"मुझे कोई भी असुविधा न होगी। चलिए।"

सत्रहवां परिच्छेद

श्यामस्वरूप ने एक एक्का किया, उस पर सामान रख कर दोनों बैठ गए। एक्का कुछ दूर तक पक्की सड़क पर चलता रहा। उसके बाद उसने एक कच्ची सड़क पकड़ ली, और हिचकोले खाता हुआ चलने लगा। महीप की खिन्नता कई कारणों से बहुत बढ़ गई थी, इसलिए वह उत्साही नवयुवक की बातों का केवल संक्षिप्त उत्तर दे देता था और फिर चुप हो जाता था।

गांव की सीमा के बाहर ही एक्का ठहर गया। उसके आगे एक्के के जाने के लिए रास्ता नहीं था। दोनों उतर गए। एक्केवाला सामान पहुंचाने के लिए उन लोगों के साथ गया। पगडंडी से होकर काफी दूर तक उन लोगों को पैदल चलना पड़ा। गांव के भीतर पहुंचकर एक गलियारे से होते हुए वे लोग चले। महीप की ओर गांववाले अत्यन्त कौतूहली दृष्टि से देख रहे थे। गलियारा जहां पर खतम होता था वहीं एक कच्चे मकान के पास श्यामस्वरूप ठहर गया और बोला—"यही मेरा मकान है। एक अधेड़ ग्रामीण महिला मकान से बाहर निकल आई। श्यामस्वरूप ने महिला की ओर संकेत करते हुए महीप से कहा—"यह मेरी मां है।" महीप ने उन्हें प्रणाम किया। श्यामस्वरूप ने अपनी मां को लक्ष्य करके कहा—"मां, यह मेरे मित्र हैं। इनका नाम महीपकुमार है। किसी काम

साहब से नाराज हैं। उन्होने किसानो का एक जबर्दस्त सगठन कर रखा है।"

प्रतिमा के नाम से महीप चौका। इस क्षेत्र में भी प्रतिमा के प्रवेश की बात उसकी कल्पना से परे थी। उसका माथा चकराने लगा था और वह ठीक से कुछ सोच ही नहीं पा रहा था। केवल एक बात वह निश्चित रूप से समझ गया था कि यहा आकर उसने बडी भूल की है। पर उलटे पाव लौट चलना भी उसे ठीक नहीं मालूम हो रहा था।

कुछ देर तक वह भ्रान्त अवस्था में मौन खडा रहा। उसकी अन्यमनस्कता—बल्कि उसका सारा रग-ढग—नवयुवक को भेद-भरा मालूम हो रहा था। महीप भी उसके मन की यह बात समझ रहा था। तथापि महीप को इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि वह (नवयुवक) पहले ही परिचय में सारे इलाक़े की अन्दरूनी राजनीति का रहस्य उसके आगे खोलने के लिए उत्सुक क्यो हो रहा है। कुछ देर बाद उसने नवयुवक से कहा—"इतनी देर तक आपसे बातें हुई, पर अभी तक मैं न तो आपका नाम जान पाया न धाम, और न यह कि आप करते क्या है।"

"मेरा नाम श्यामस्वरूप है। मै पास ही . . नामक गाव में रहता हूँ, जो ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिह की ताल्लुक़ेदारी के ही अन्तर्गत है। मैं इलाहाबाद युनिवर्सिटी में बी० ए० फर्स्ट ईयर में पढता था, पर स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण मुझे पढाई छोड देनी पडी है। डाक्टरो ने मुझे टी० बी० बता दिया था। अब तो मै अच्छा हूँ, पर बीच मे मेरी तबीअत बहुत खराब हो गई थी और आपका शुभनाम ?"

महीप अपना नाम बताने के बाद बोला—"तो आप शारदा देवी को जानते है ?"

"जी हा, ख़ूब अच्छी तरह।"

"देखिए, सच बात यह है कि मुझे उन्हीं से एक आवश्यक काम से मिलना

था। पर आप कहते हैं कि उनका पता किसी को भी नहीं है। मेरी समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूं। जी चाहता है कि वापसी गाडी से लौट चलूं।"

"आप एक काम कर सकते हैं",—सहसा उत्साहित-सा हो कर श्यामस्वरूप बोला—"अभी आप मेरे साथ चलिए और मेरे ही यहां ठहरिए। एक-दो दिन के भीतर में शारदा देवी का पता लगाकर छोडूंगा।"

क्षणिक झिझक के बाद महीप ने कहा—"अच्छी बात है। यदि आपको कोई असुविधा न हो तो आपके साथ चलने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

"मुझे कोई भी असुविधा न होगी। चलिए।"

सत्रहवां परिच्छेद

श्यामस्वरूप ने एक एक्का किया, उस पर सामान रख कर दोनों बैठ गए। एक्का कुछ दूर तक पक्की सड़क पर चलता रहा। उसके बाद उसने एक कच्ची सड़क पकड़ ली, और हिचकोले खाता हुआ चलने लगा। महीप की खिन्नता कई कारणों से बहुत बढ़ गई थी, इसलिए वह उत्साही नवयुवक की बातों का केवल संक्षिप्त उत्तर दे देता था और फिर चुप हो जाता था।

गांव की सीमा के बाहर ही एक्का ठहर गया। उसके आगे एक्के के जाने के लिए रास्ता नहीं था। दोनों उतर गए। एक्केवाला सामान पहुंचाने के लिए उन लोगों के साथ गया। पगडंडी से होकर काफी दूर तक उन लोगों को पैदल चलना पड़ा। गांव के भीतर पहुंचकर एक गलियारे से होते हुए वे लोग चले। महीप की ओर गांववाले अत्यन्त कौतूहली दृष्टि से देख रहे थे। गलियारा जहां पर खतम होता था वहीं एक कच्चे मकान के पास श्यामस्वरूप ठहर गया और बोला—"यही मेरा मकान है। एक अधेड़ ग्रामीण महिला मकान से बाहर निकल आई। श्यामस्वरूप ने महिला की ओर संकेत करते हुए महीप से कहा—"यह मेरी मां है।" महीप ने उन्हें प्रणाम किया। श्यामस्वरूप ने अपनी मां को लक्ष्य करके कहा—"मां, यह मेरे मित्र हैं। इनका नाम महीपकुमार है। किसी काम

अठारहवां परिच्छेद

सध्या को श्यामस्वरूप जव लौट कर आया तो उसने वताया कि शारदा देवी का पता लगाने में वह असमर्थ रहा, पर यह आश्वासन दिया कि दो-एक दिन के भीतर ही वह पता लगा लेगा।

दो दिन और वीत गए, पर असफलता ज्यो-की-त्यो वनी रही। महीप ने निश्चित रूप से यह इरादा कर लिया कि दूसरे दिन वह वापस चला जायगा। दूसरे दिन पूछ-ताछ करने पर मालूम हुआ कि केवल एक ही गाडी ऐसी है जो उसके लिए ठीक पडेगी, और वह वारह वजे रात जाती है। लाचार होकर महीप वारह वजे रात की प्रतीक्षा में दिन भर वैठा रहा।

महीप ने सोचा था कि वह जल्दी ही स्टेशन के लिए रवाना हो जायगा—वहा दो-एक घटा प्रतीक्षा करना वेहतर है, वनिस्वत इसके कि बीच में कोई वाधा पड जाय और वह उस दिन की भी गाडी न पकड सके। रात में प्राय: साढे ९ वजे के करीव वह स्टेशन तक पैदल चले चलने की तैयारी करने लगा। श्यामस्वरूप ने कहा कि कुछ देर और ठहर जाने में कोई हानि नही है, सभवत: तव तक वह एक्केवाला अपने-आप पहुच जाय, जिससे वह दिन ही में जल्दी चले आने की वात तय कर आया था। फलत महीप वैठ गया।

ठीक दस वजे महीप के कानो में एक विचित्र-सी आवाज आई—चारो ओर के सन्नाटे को भेद कर कही दूर से एक कोलाहल की-सी अत्यन्त अस्पष्ट और अत्यन्त क्षीण मर्मर-ध्वनि झीगुरो की झनकार के साथ मिलकर। 'शटिंग' के वाद रेल का इजिन जव स्थिर हो जाता है तव उसमें से निकलने वाला एकरसता-पूर्ण शव्द दूर से जैसा लगता है ठीक वैसी ही आवाज कुछ देर तक महीप के कानो में वजती रही। सहसा उस एकरसता में परिवर्तन हुआ और एक अस्पष्ट हाहाकार की-सी दवी हुई आवाज उसके कानो में आने लगी। ऐसा मालूम होता था जैसे वह आवाज पाताल-लोक से, पृथ्वी की मिट्टी की असख्य

परतों को बरबस भेदती हुई ऊपर को उठ रही है, और क्षीण निःश्वास के समान फुसफुसाहट के रूप में परिणत होकर उसके सजग कानों के पर्दों को आंदोलित कर रही है। एक अज्ञात-सी आशंका से उसका हृदय हहर उठा। उसने श्यामस्वरूप से कहा—"आपको भी कुछ सुनाई दे रहा है?"

श्यामस्वरूप अपने कानों की शक्ति को केन्द्रित करके सुनने लगा। कुछ ही देर तक गौर से सुनने के बाद सहसा वह अत्यन्त चिंतित होकर बोल उठा—"मालूम होता है कि कहीं आग लग गई है। गांव के उस पार से आवाज आ रही है।" यह कहकर वह बाहर गया और पूरब की ओर, जहां से आवाज आ रही थी, बड़े गौर से देखने लगा। महीप भी उसके पीछे आकर खड़ा हो गया और उसी ओर देखने लगा। वास्तव में क्षितिज के पार के पेड़ों की सघनता के ऊपर, अस्वाभाविक प्रकाश का एक गुंबद-सा बन गया था। ग्रीष्मकाल के धूमिल-धूसर क्षितिज में जब पूर्णिमा के बाद की द्वितीया का चंद्रमा पूर्व क्षितिज में उदित होने लगता है तब जिस प्रकार का रक्तिम प्रकाश पृथ्वी और आकाश की सीमा-रेखा के बीच फैलता हुआ दिखाई देता है, ठीक वैसी ही आभा से इस समय भी पूर्व दिशा आलोकित हो उठी थी। और साथ ही 'हो—हा' रव धीरे-धीरे स्पष्ट-से-स्पष्टतर होता चला जाता था।

श्यामस्वरूप घबराकर बोल उठा—"ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह के मकान में आग लग गई है—बल्कि आग लगा दी गई है। यह आवाज उनके विद्रोही असामियों की जान पड़ती है। मालूम होता है, जिस बलवे की तैयारी इतने दिनों से गुप्त रूप से हो रही थी वह आज हो गया है।"

महीप भी घबरा गया था। उसने अत्यन्त उत्कंठित होकर पूछा—"आप कैसे अनुमान लगा रहे हैं कि यह आग ठाकुर साहब के यहां लगी है? गांव में कहीं और भी तो लग सकती है?"

"जी नहीं, यह ठाकुर साहब के मकान के सिवा और कहीं नहीं है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ। आसपास के सारे नक्शे से मैं भली भांति परिचित हूँ।"

"यदि ऐसा है, तब तो तुरन्त चलना चाहिए। ऐसी हालत में घर की औरतों, बाल-बच्चों और बूढ़ों को बचाने का कर्तव्य प्रत्येक व्यक्ति का होना चाहिए—जिस-किसी को भी आग लगने का पता लग गया हो। चलिए देर न कीजिए।"

"पर उतने विद्रोहियों के बीच हम कर क्या सकेंगे ? जिन लोगों ने आग लगाई है, निश्चय ही उनका दल बहुत संगठित है और वे यह कभी नहीं चाहेंगे कि कोई व्यक्ति आग बुझावे।"

"पर अपने कर्तव्य से तो हम लोगों को नहीं चूकना चाहिए", अत्यन्त दृढ स्वर में महीप ने कहा। "हमारे सामने आग लगी हो, और हम लोग केवल तमाशा देखते रह जाय, यह कहा की मानवता है।"

"यदि आप चलना ही उचित समझते हैं, तो चलिए।" अनिच्छा से श्यामस्वरूप ने कहा।

दोनों तेज कदम रखते हुए, आगे बढे। चादनी मे खेतों को पार करते हुए, कहीं पगडंडी से और कहीं बीच खेत से होकर चलने लगे। ज्यों-ज्यों आग का दृश्य निकट-से-निकटतर आने लगा त्यों-त्यों, कोलाहल का शब्द भीषण-से-भीषणतर रूप धारण करता गया और महीप के मन का व्यस्त भाव भी बढता चला गया। प्राय २० मिनट बाद वे लोग घटनास्थल पर पहुँच गए।

जमींदार की कोठी के उत्तर की तरफ वाले हिस्से को आग ने प्राय पूरा घेर लिया था। दक्षिण की तरफ वाले हिस्से में अभी केवल नीचे के कमरों में ही आग लगी हुई थी। उस प्रलय-प्रकाश में महीप ने देखा, प्राय चार-पांच सौ आदमियों का एक उन्मत्त दल प्रचड कोलाहल मचा रहा है। सब के चेहरे एक अस्वाभाविक उत्तेजना से चमक रहे थे और विकराल हिंसकता का रोमाचकर हर्ष सबके चेहरों पर रह-रहकर उथल रहा था। "फूक डालो!" "जिन्दा जला डालो!" "एक भी आदमी बचकर न निकलने पावे!" की आवाजें तूफ़ानी सागर की अट्टहास करने वाली लहरों की तरह एक-दूसरे से

टकरा रही थीं। कोठी के दरवाज़ों पर चारों ओर कड़ा पहरा बिठा दिया गया, ताकि भीतर से कोई भी आदमी बाहर न निकल सके। जलती हुई कोठी के भीतर से हाहाकार का स्वर कभी सम्मिलित रूप से और कभी बिखरे हुए रूप में चारों ओर के सांय-सांय रव के साथ मिल कर एक अनोखी भौतिक भीति का सचार कर रहा था। प्राय सभी विद्रोहियों के हाथों में हरे रग के झडे थे, जिनमें एक-दूसरे को 'क्रास' करने वाली तलवारो का ठीक वही चिन्ह अकित था, जिससे महीप भली भाति परिचित था—क्योंकि स्वय उसी ने अपने असतुष्ट जीवन के किसी घोर महत्वाकाक्षी क्षण मे उस चिन्ह की कल्पना की थी और बाद में अपने गुप्त दल के बिल्लो में अकित करने का आदेश जारी किया था। दोनो तलवारो के बीच रक्त की बड़ी-बड़ी बूदो की तरह लाल निशान पड़े हुए थे।

कुछ समय तक महीप अत्यन्त भ्रमित अवस्था में श्यामस्वरूप के साथ एक कोने में खडा रहा और उस भीषण ज्वाला के दृश्य से अपने अनजान मे बरबस एक पतिगे की तरह मोहमुग्ध-सा भीतर-ही-भीतर फडफडाता रहा। सहसा श्यामस्वरूप ने उसका ध्यान भग करते हुए कहा—"वह देखिये, शारदा देवी और प्रतिमा देवी अपने झडो को हिला रही है!"

महीप इस तरह चौंक उठा जैसे उसे बिजली का धक्का लगा हो। "कहां?"—अत्यन्त उत्सुकता से उसने कहा।

"वह देखिये, सामने कुए के पास दोनों खडी है!"

महीप ने देखा, सचमुच दोनों महिलाए झडों को बार-बार ऊपर उठाती हुई ऊंची आवाज में निरतर न जाने क्या चिल्ला रही थी। दोनों को अपने तन-बदन की सुध नहीं थी—सभवत. अपने अस्तित्व की भी नहीं। दोनो उन्माद-ग्रस्त सी होकर अपने भैरव-रूप के प्रदर्शन से बाहर की आग की तरह विद्रोही जनता के भीतर लगी हुई आग को भी निरतर अधिकाधिक भड़काती चली जा रही थीं। महीप मोहमग्न-सा उन्हीं की ओर देखता रह गया, और जिस कर्तव्य

की प्रेरणा से वह गाव के उस पार से प्राय दौडा चला आया था उसे भूल गया। उसके भीतर एक पशु-प्रेरणा जगी कि दौडकर उन दोनो के पास जा पहुचे। वह बिना कुछ सोचे हुए दौडने ही को था कि सहसा चारो ओर के भैरव हुकार के बीच उसके कानों में एक असभावित पुकार की भनक आई। उसे लगा कि कोई गला फाड-फाडकर चिल्ला रहा है—"महीप जी! महीप जी!" वह भ्रान्त भाव से इधर-उधर देखने लगा। फिर यह सोचकर कि उसे भ्रम हुआ है, वह उसी ओर देखने लगा जिधर शारदा देवी और प्रतिमा खडी थी। पर दूसरे ही क्षण उसने फिर सुना—"महीप जी! महीप जी!" वह फिर इधर-उधर देखने लगा। श्यामस्वरूप ने भी वह आवाज सुनी थी, और वह भी मालूम करने की चेष्टा कर रहा था कि आवाज कहा से आ रही है। सहसा वह कोठी की ओर उगली लगाता हुआ बोल उठा—"वह देखिये, ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह आपकी ओर इशारा करते हुए चिल्ला रहे हैं।"

महीप ने देखा दक्षिण की ओर दुमजिले के एक कोनेवाले कमरे से ठाकुर साहब पूरी ताकत से चिल्लाते हुए उसे पुकार रहे है और हाथ के सकेत से उसे बुला रहे हैं। उनकी बगल में तीन स्त्रिया खडी थीं। दो युवतिया थीं, जिनमें एक का आश्चर्यजनक सौन्दर्य अग्नि की ज्वालाओ के प्रकाश मे अत्यन्त तीव्रता से चमक रहा था। एक वृद्धा बहुत घबराई हुई खडी थी और धाडें मारती हुई "बचाओ! बचाओ!" चिल्ला रही थी। आश्चर्य की बात यह थी कि बच्चा एक भी नहीं था।

महीप ने आव देखा न ताव, वह पागलो की तरह सीधे दक्षिण के दरवाजे की ओर दौडा। पीछे से उसने श्यामस्वरूप को भी पुकारा। पर श्यामस्वरूप टस-से-मस न हुआ। चारो ओर से "पकडो! पकडो!" "ठहरो! ठहरो!" की आवाजें आने लगीं जिन्हे महीप ने सुना या नहीं, इसमे सन्देह है। ज्योंही महीप दरवाजे से भीतर घुसने लगा, त्योंही पीछे से किसी ने एक ऐसा लट्ठ उसके सिर पर जमाया कि वह वहीं पर अचेत होकर गिर पडा। उसका सिर खुल गया था और रक्त की धारा बहने लगी थी।

उन्नीसवां परिच्छेद

जब महीप को चेत हुआ तब वह पहले समझ ही नहीं पाया कि वह कहा है। थोडी देर बाद उसे अनुभव हुआ कि उसके सिर पर पट्टी बधी हुई है। लालटेन के प्रकाश मे उसने देखा, श्यामस्वरूप उसके सिरहाने बैठा हुआ है। पूर्व जन्म की-सी एक धुधली स्मृति धीरे-धीरे उसके आहत मस्तिष्क में स्पष्ट-से स्पष्टतर होने लगी। कुछ देर तक वह चुपचाप लेटा रहा। उसके बाद धीरे से बोला—"पानी!" श्यामस्वरूप तत्काल उठा और पासवाले घडे से एक गिलास में पानी भरकर उसने महीप को दिया। पानी पीकर महीप ने करवट बदलने की कोशिश की। श्यामस्वरूप ने उसे धीरे से करवट बदलने मे सहायता दी। रात प्राय. बीत चुकी थी। श्यामस्वरूप रात-भर एक क्षण के लिए भी नहीं सोया था। महीप एक शब्द भी न बोला। केवल एक बार "उफ!" कहकर वह फिर चुप हो गया। श्यामस्वरूप ने पूछा—"दर्द कैसा है?" "ठीक है", कहकर महीप फिर मौन हो रहा।

श्यामस्वरूप अपने दो असामियो की सहायता से महीप को किसी तरह उन्मत्त, विद्रोही वातावरण के बीच से छुडाकर अपने घर ले आया था। उसका परिचित एक कम्पौंडर उसे मिल गया था, जो कसबे के अस्पताल मे काम करता था और आजकल छुट्टियों में घर आया हुआ था। उसी ने महीप को मरहम-पट्टी की थी।

घाव विशेष गहरा या खतरनाक नहीं था। पाच ही दिन के भीतर महीप की हालत बहुत-कुछ ठीक हो गई। वह उस स्थान से लौट चलने की बात सोच रहा था। पर इसी बीच एक घटना और घट गई। पूर्वोक्त घटना के सातवें दिन पुलिस के दो आदमी वारट लेकर श्यामस्वरूप के घर पहुच गए और उन्होंने महीप को गिरफ्तार कर लिया। श्यामस्वरूप को अत्यन्त आश्चर्य हुआ और क्रोध आया। उसने आपत्ति जताते हुए कहा—"आप इन्हे किस बिना पर गिरफ्तार कर रहे है? आप लोग पुलिस के आदमी है, आप लोगो का फर्ज है

की प्रेरणा से वह गाव के उस पार से प्राय दौडा चला आया था उसे भूल गया। उसके भीतर एक पशु-प्रेरणा जगी कि दौडकर उन दोनों के पास जा पहुचे। वह विना कुछ सोचे हुए दौडने ही को था कि सहसा चारो ओर के भैरव हुकार के वीच उसके कानो मे एक असभावित पुकार की भनक आई। उसे लगा कि कोई गला फाड-फाडकर चिल्ला रहा है—"महीप जी! महीप जी!" वह भ्रान्त भाव से इधर-उधर देखने लगा। फिर यह सोचकर कि उसे भ्रम हुआ है, वह उसी ओर देखने लगा जिधर शारदा देवी और प्रतिमा खडी थी। पर दूसरे ही क्षण उसने फिर सुना—"महीप जी! महीप जी!" वह फिर इधर-उधर देखने लगा। श्यामस्वरूप ने भी वह आवाज सुनी थी, और वह भी मालूम करने की चेष्टा कर रहा था कि आवाज कहा से आ रही है। सहसा वह कोठी की ओर उगली लगाता हुआ बोल उठा—"वह देखिये, ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिह आपकी ओर इशारा करते हुए चिल्ला रहे है।"

महीप ने देखा दक्षिण की ओर दुमजिले के एक कोनेवाले कमरे से ठाकुर साहव पूरी ताकत से चिल्लाते हुए उसे पुकार रहे हैं और हाथ के सकेत से उसे वुला रहे हैं। उनकी वगल में तीन स्त्रिया खडी थीं। दो युवतिया थीं, जिनमें एक का आश्चर्यजनक सौन्दर्य अग्नि की ज्वालाओ के प्रकाश में अत्यन्त तीव्रता से चमक रहा था। एक वृद्धा वहुत घवराई हुई खडी थी और धाडें मारती हुई "वचाओ! वचाओ!" चिल्ला रही थी। आश्चर्य की वात यह थी कि वच्चा एक भी नहीं था।

महीप ने आव देखा न ताव, वह पागलो की तरह सीधे दक्षिण के दरवाजे की ओर दौडा। पीछे से उसने श्यामस्वरूप को भी पुकारा। पर श्यामस्वरूप टस-से-मस न हुआ। चारो ओर से "पकडो! पकडो!" "ठहरो! ठहरो!" की आवाजे आने लगीं जिन्हे महीप ने सुना या नहीं, इसमें सन्देह है। ज्योंही महीप दरवाजे से भीतर घुसने लगा, त्योंही पीछे से किसी ने एक ऐसा लट्ठ उसके सिर पर जमाया कि वह वहीं पर अचेत होकर गिर पडा। उसका सिर खुल गया था और रक्त की धारा वहने लगी थी।

उन्नीसवां परिच्छेद

जब महीप को चेत हुआ तब वह पहले समझ ही नहीं पाया कि वह कहा है। थोडी देर बाद उसे अनुभव हुआ कि उसके सिर पर पट्टी बंधी हुई है। लालटेन के प्रकाश मे उसने देखा, श्यामस्वरूप उसके सिरहाने बैठा हुआ है। पूर्व जन्म की-सी एक धुधली स्मृति धीरे-धीरे उसके आहत मस्तिष्क मे स्पष्ट-से स्पष्टतर होने लगी। कुछ देर तक वह चुपचाप लेटा रहा। उसके बाद धीरे से बोला—"पानी!" श्यामस्वरूप तत्काल उठा और पासवाले घडे से एक गिलास में पानी भरकर उसने महीप को दिया। पानी पीकर महीप ने करवट बदलने की कोशिश की। श्यामस्वरूप ने उसे धीरे से करवट बदलने मे सहायता दी। रात प्राय. बीत चुकी थी। श्यामस्वरूप रात-भर एक क्षण के लिए भी नहीं सोया था। महीप एक शब्द भी न बोला। केवल एक बार "उफ!" कहकर वह फिर चुप हो गया। श्यामस्वरूप ने पूछा—"दर्द कैसा है?" "ठीक है", कहकर महीप फिर मौन हो रहा।

श्यामस्वरूप अपने दो असामियो की सहायता मे महीप को किसी तरह उन्मत्त, विद्रोही वातावरण के बीच से छुडाकर अपने घर ले आया था। उसका परिचित एक कम्पौंडर उसे मिल गया था, जो कसबे के अस्पताल मे काम करता था और आजकल छुट्टियो मे घर आया हुआ था। उसी ने महीप की मरहम-पट्टी की थी।

घाव विशेष गहरा या खतरनाक नहीं था। पाच ही दिन के भीतर महीप की हालत बहुत-कुछ ठीक हो गई। वह उस स्थान से लौट चलने की बात सोच रहा था। पर इसी बीच एक घटना और घट गई। पूर्वोक्त घटना के सातवें दिन पुलिस के दो आदमी वारट लेकर श्यामस्वरूप के घर पहुंच गए और उन्होंने महीप को गिरफ्तार कर लिया। श्यामस्वरूप को अत्यन्त आश्चर्य हुआ और क्रोध आया। उसने आपत्ति जताते हुए कहा—"आप इन्हें किस बिना पर गिरफ्तार कर रहे है? आप लोग पुलिस के आदमी है, आप लोगों का फर्ज है

कि सब बातों का ठीक-ठीक पता रखें। केवल कही-सुनी बातों पर विश्वास करके आप लोग किसी निरपराध व्यक्ति पर अत्याचार करने से नहीं हिचकते, यह बड़े दु ख की बात है। आप लोगो को मालूम होना चाहिए कि महीप जी इस विद्रोह में शरीक नहीं थे, बल्कि उन्होंने विद्रोहियों का एक प्रकार से विरोध ही किया है। विद्रोही लोग कोठी के सब लोगों को जिन्दा जला देना चाहते थे—और उन्होंने किया भी यही है—पर महीप जी उन्हें बचाने के लिए, अपनी जान को खतरे में डालकर आगे बढे और उन्होंने भीतर घुसने की चेष्टा की। इसी के फलस्वरूप उन्हें सख्त चोट आई है और वह मरने से बाल-बाल बच गए है।"

पुलिस वालो ने श्यामस्वरूप का वक्तव्य ध्यानपूर्वक सुना। उसके बाद उनमें से एक बोला—"इस तरह का बयान अदालत में दिया जा सकता है। हम लोग अपना फर्ज अदा करने आए है।"

इसके बाद वे लोग महीप को पकडकर ले गये। महीप पहले ही सुन चुका था कि शारदा देवी, प्रतिमा और उनके दल के प्राय सभी व्यक्ति पहले ही लापता हो चुके थे। पुलिस अभी तक उन लोगों का पता नहीं लगा पाई थी। केवल गाव के दस-बीस किसान गिरफ्तार किये गये थे, जिनमें से अधिकाश निर्दोष थे। ऐसा श्यामस्वरूप ने उसे बताया था। श्यामस्वरूप ने उसे यह भी बताया था कि ठाकुर साहब और उनके साथ की दो युवतियों को अधजली अवस्था में किसी अज्ञात व्यक्ति ने बाहर निकाल दिया था। वृद्धा जलकर मर चुकी थी, पर ठाकुर साहब और युवतिया शहर के अस्पताल में इलाज होने के बाद अब कुछ अच्छे है—सभवत उन्हे मृत्यु से बचाया जा सके। पर तीनों का रूप अत्यन्त विकृत हो गया था। महीप को यह भी बताया गया कि दोनों युवतिया ठाकुर साहब की वेश्या-प्रेमिकाए थीं—जिनकी निर्लज्जता और निर्दयता से ठाकुर साहब के नौकर-चाकर तग आ गए थ। वृद्धा उन वेश्याओं की मा और नायका दोनों थी। शेष सब व्यक्तियो को पहले ही मकान से बाहर निकलने दिया गया था।

पुलिस के आदमियों के साथ एक्के पर सवार होकर महीप सोच रहा था कि उसे गिरफ़्तार करने का कारण क्या हो सकता है ? एक कारण उसे जच रहा था। जब वह ठाकुर साहब और उनके घरवालों को बचाने के उद्देश्य से सहसा कोठी के दक्षिण वाले भाग की ओर दौड़ा था तब पुलिस की सर्वदर्शी अदृश्य आंखों ने—अर्थात् उनके किसी गुप्त एजेंट ने (जो संभवतः आग लगाने वालों के दल के साथ मिला होगा)—यह अनुमान लगाया होगा कि वह (महीप) किसी को बचाने नहीं, बल्कि आग की लपटों से बचे हुए भाग में भी आग लगाने के लिए दौड़ा चला गया था और ठाकुर साहब के पक्ष के किसी आदमी ने उसके सिर पर लाठी से प्रहार किया होगा। हालांकि सत्य इसके ठीक विपरीत था। पर पुलिस के आदमियों अथवा उनके एजेंटों के लिए इस तरह की ग़लत कल्पना करना संपूर्ण संभव था। इसके अतिरिक्त एक और संभावना पर महीप का ध्यान जा रहा था। पुलिस को निश्चय ही सी० आई० डी० विभाग द्वारा यह ख़बर लग गई थी कि वह एक हिंसात्मक क्रांतिकारी गुप्त दल का नेता रह चुका है। पर उस दल से वह अपना सम्बन्ध पूर्णतया तोड़ चुका है और अपने उस दल की हिंसात्मक नीति से उसका मूलगत विरोध हो गया है, यह महत्त्वपूर्ण सूचना स्पष्ट ही सी० आई० डी० वालों को अभी तक प्राप्त नहीं हो पाई थी। सी० आई० डी० विभाग के सम्बन्ध में जो जानकारी उसे थी, उसके आधार पर उसके मन में यह विश्वास जम चुका था कि उनकी अधिकांश कार्रवाइयां अधूरे ज्ञान के बल पर चलती हैं और अपने अधूरे ज्ञान की कमी को वे कल्पना और अनुमान द्वारा वैज्ञानिक पूरा कर लेते हैं।

कुछ भी हो, महीप को अपनी गिरफ्तारी से तनिक भी क्षोभ नहीं हो रहा था, बल्कि अपनी तत्कालीन अस्वाभाविक परिस्थिति में वह इसी बात को पूर्ण स्वाभाविक समझ रहा था।

पर एक बात के लिये वह तैयार नहीं था। उसने सोचा था कि उसे सीधे जेल में ले जाकर नज़रबन्द कर दिया जायगा या अदालत में मामला

चलाकर कुछ वर्षो की कडी कैद की सजा सुनाई जायगी। यह उसने नहीं सोचा था कि उसे नजरबन्द या अदालत के सिपुर्द होने के पहले पुलिस के आतकपूर्ण राज का शिकार बनना पडेगा। पुलिस ने उसे हिरासत में रखकर पहले ही दिन से उसे इस कदर अमानुषिक रूप से पीडित करना आरम्भ कर दिया, जिसकी बर्बरता और निष्ठुरता की कल्पना उसके पहले उसके मस्तिष्क में आ ही नहीं सकती थी। इसमें सन्देह नहीं कि सवादपत्रों में वह अक्सर इस तरह की खबरें पढा करता था कि अमुक-अमुक अभियुक्त को पुलिस ने पीडित और निर्यातित किया। पर वह निर्यातन इस सीमा को पहुच सकता है—पीडन के समस्त मानवीय उपायों की सीमा को लाघकर इस हद तक नग्न पाशविकता की पराकाष्ठा को पहुच सकता है, यह उसने कभी नहीं सोचा था। और ये सब जुल्म एक 'सभ्य' सरकार की जानकारी में हो रहे थे। यह स्पष्ट था कि सरकार पुलिसवालो के उद्दड नग्नाचार को जायज़ मानती थी।

बचपन में महीप को अपने एक निकट सबधी की मृत्यु के सिलसिले में गरुड-पुराण सुनना पडा था। उस पुराण में इस बात का वर्णन किया गया था कि मरने के बाद पापियो को किन-किन नरकों का भोग किन-किन रूपो में करना पडता है। नरकों के जो लोमहर्षक वर्णन तब उसने सुने थे वे ऐसे आतकोत्पादक थे कि उसका अनुभूतिशील सुकुमार हृदय वर्षों तक भय की उस भीषण भावना से अपने को मुक्त करने में असमर्थ रहा। बल्कि इस रहस्यमय भीति का अज्ञात घातक प्रभाव उसकी अन्तश्चेतना में किसी-न-किसी रूप में बराबर बना रहा। पर यह उसने कभी नहीं सोचा था कि वह पौराणिक नारकीयता बीसवीं शताब्दी का युग प्राय आधा बीत चुकने के बाद भी एक दिन उसके जीवन में प्रत्यक्ष सत्य के रूप मे परिणत होगी। उसने सुना था कि नरक में तलवारो की धारो के ऊपर चलने, ज्वलत अग्नि के भीतर डाल दिए जाने, शूली पर लटकाए जाने, अग-अग छिन्न कर दिए जाने पर भी दडभोगी की मृत्यु नहीं होती, और वह कराल से कराल, कठोर से कठोर दडों को नये-नये पघातक रूपों में भुगतने के लिए मरते-मरते जी उठता है।

वही दशा उसकी हो रही थी। पुलिस के प्राणांतक पीडनों के मर्मघाती अनुभवो के बावजूद उसकी मृत्यु नहीं हो पाती थी। मृत्यु का कोई भय उसके लिये नहीं रह गया था। वह प्रतिपल आतरिक हृदय से सर्वशातिकारी महामाता मृत्यु का आवाहन किया करता था, उसकी शीतल क्रोड में विश्राम करके वह जीवन के घोर विषम ज्वर—बल्कि सन्निपात—से मुक्त होने के लिए एकात उत्सुक रहने लगा था। पर उसके उस आवाहन के प्रति महामाता जैसे वज्र-उदासीन थीं। भय उसे केवल एक बात के लिए था—कहीं वह पागल होकर अनत काल तक छिन्न मेघ की तरह महाशून्य में निरुद्देश्य भटकता न रह जाय। पागल होने से अधिक भयकर स्थिति की कल्पना वह अपने लिए दूसरी कर ही नहीं सकता था। पुलिस के पीडन जिन ढगों से और जिस क्रम से चल रहे थे वे निश्चित रूप से उसे उस सीमा तक ढकेलने पर तुले हुए थे जहा जीवन की सहज अनुभूतिया और स्वाभाविक ज्ञान पता नोड पलायन करते हैं। उस दुनिया में उनका कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता। महीप को हर घडी केवल उसी एक बात का डर लगा रहता, इसलिए वह सब समय अपनी सारी इच्छाशक्ति को केवल इसी एक उद्देश्य के लिए केन्द्रित किये रहता कि पीडन चाहे कैसा ही भयकर क्यों न हो, पर उनके फलस्वरूप वह पागल न बने।

मुश्किल तो यह थी कि दिन-रात उसे जो दारुण यातनाएं सहनी पडती थीं, उन्हें एक क्षण के लिए भूलने का अवसर उसे नहीं दिया जाता था। रात में कुछ ही समय के लिए उसे शारीरिक निर्यातनों से छुट्टी दी जाती थी। पर वह 'छुट्टी' का समय उन निर्यातनों से अधिक कष्टप्रद होता था, क्योंकि जो कवल उसे ओढने और नीर से तर फ़र्श पर बिछाने के लिए दिये गये थे उनमें स्थित सैकडों खटमल उसके खिन्न शरीर को सहस्रों बिच्छुओं की तरह डसने लगते थे। लगातार कई दिनों से उनींदी आखें बार-बार झपती थीं, पर बार-बार वे खटमल-रूपी बिच्छू उसे काटते रहते और एक पल भी सोने न देते। उस समय उसकी इच्छा होती कि किसी उपाय से आत्महत्या करके सारा

खेल खतम कर डाले। यदि 'ब्लेड' का कोई टुकडा भी ऐसे समय उसे मिल जाता तो वह निश्चय ही उससे अपना गला रेत डालता।

ऐसे नृशस और अमानुषिक पीडनो के बावजूद, न जाने अपने भीतर स्थित किस अदम्य इच्छाशक्ति के फलस्वरूप, महीप अपने को विकट पागलपन की अवस्था से बचाने में सफल रहा। पुलिस ने हजार उपाय इस बात के लिये किये कि वह अपने गुप्तदल के सब भेद उसे बता दे, और उसके प्रधान सदस्यों के नाम गिना दे, पर वह बराबर इनकार करता रहा, और अन्त तक अपने हठ पर अटल रहा। न तो पुलिस का कठोर से कठोर पीडन, न बडा-से-बडा प्रलोभन उसे डिगाने मे समर्थ हुआ। अत में तग आकर पुलिस ने उसका पिड छोड दिया। सिवाय खाने, पीने और रहने की असुविधा के और किसी प्रकार का शारीरिक कष्ट उसे नहीं दिया जाने लगा। पर उसका मानसिक कष्ट प्रतिपल बढता ही चला जाता था।

पुलिस के बर्बर, बल्कि पैशाचिक, अत्याचार अन्त तक उसे अपने कर्तव्य पथ से डिगाने मे समर्थ न हुए, और साथ ही वह छिन्न-मस्तिष्क पागल की स्थिति को भी नही पहुँचा, इतनी बडी बात कैसे सभव हो गई, यह सोच कर महीप को स्वय आश्चर्य होने लगा। गहराई से सोचने पर अपनी इस सफलता के कई सभव कारण उसके आगे स्पष्ट होने लगे। पर एक कारण की ओर उसका ध्यान विशेष रूप से गया। जिस दिन शारदा देवी से उसने अन्तिम विदा ली थी उस दिन उन्होने महीप को सोने का एक 'क्रास' अर्पित किया था। उन्होने कहा था कि उस 'क्रास' ने अनेक सकटो के अवसर पर उनकी रक्षा की है, और यह आशा प्रकट की थी कि वह महीप की भी रक्षा करता रहेगा। उस 'क्रास' को अभी तक महीप अपने गले में लटकाये हुए था। पुलिस की लोभी दृष्टि भी उसका हरण करने मे समर्थ नही हुई थी। उस 'क्रास' ने निस्सदेह उसके जीवन के चरम सकट के क्षण में उसे एक अत्यन्त रहस्यात्मक आध्यात्मिक बल प्रदान किया था। जब-जब वह कठोर-से-कठोर निर्यातन

की स्थिति में गुज़रता था तब-तब वह उस 'क्रास' को अपनी आखो से लगा लेता था, और तब शूली पर चढे, काटो का ताज पहने, जनता के निर्मम उपहास का पात्र बने हुए उस रक्त-रंजित महात्मा का चित्र उसकी मानसिक आखो के आगे प्रत्यक्ष हो उठता था जिसके मुह से उस चरम पीडन की अवस्था मे भी ये शब्द निकले थे—"प्रभो! इन लोगो को क्षमा करना, क्योकि वे नही जानते है कि वे क्या कर रहे हैं!" और एक अतीन्द्रिय, आध्यात्मिक ज्योति का दर्शन करते हुए हँसते-हँसते जिसने प्राण त्यागे थे। उस कल्पना से एक आश्चर्यजनक, अलौकिक शक्ति महीप की अन्तरात्मा मे जग उठती थी, जो उसे निर्मम-से-निर्मम, कठोर-से-कठोर शारीरिक पीडन को सहन करने योग्य बना देती थी।

पुलिस का पीडन-चक्र समाप्त होने के बाद जब महीप ने इन सब बातो पर तनिक अवकाश से विचार किया तब उसी सिलसिले मे एक और बात की ओर उसका ध्यान गया, जिस पर इतने दिनो तक उसने विचार नही किया था। उसकी मानसिक आखो के आगे शारदा देवी का उस समय का रूप स्पष्ट हो आया जब उन्होने मातृस्नेह की-सी अत्यन्त मृदुल और सकरुण भावना से प्रेरित होकर वह 'क्रास' उसके गले में डाल दिया था। जो भाव उस समय उनकी बातो से और उनके मुह की अभिव्यक्ति से प्रकट होता था उससे स्पष्ट था कि उस 'क्रास' की रहस्यात्मक शक्ति पर उनका पूरा विश्वास है। और उनका वह विश्वास वास्तव मे महीप के लिये आश्चर्यजनक रूप मे सत्य सिद्ध हुआ।

पर—महीप सोचने लगा—जो नारी 'क्रास' की उस महत्ता पर वैसा सुदृढ विश्वास स्थापित करती आई है, जो अपनी करुणा-विगलित अविरल स्नेहधारा का मार्मिक परिचय उसे दे चुकी है, वही अपने विकराल, चंडी रूप से हुकारती और गरजती हुई ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह को ज़िंदा जला डालने के लिए दौड़ पडी थी, उन दो तथ्यो मे सामजस्य का सूत्र कहा पर

संभव हो सकता है? तब क्या अणु-बम के इस युग ने नारी की अंतरात्मा को भी द्विधा विभक्त कर डाला है? उसके एक भाग का उसके दूसरे भाग से कोई संबंध नहीं रह गया है? दिन और रात की तरह एक दूसरे से जुड़े रहने पर भी वे एक दूसरे के विरोधी हैं? इस कल्पना से आतंक की एक ठंडी लहर महीप के सारे शरीर में दौड़ जाती थी। पर उसके बाद ही, न जाने कहां से, एक गरम लहर उठकर एक नयी शक्ति के जागरण का परिचय उसे दे जाती थी।

बीसवां परिच्छेद

भारत रक्षा कानून के अनुसार महीप को किसी एक अज्ञात 'गुप्त' स्थान में नजरबन्द करने का आदेश पुलिस को मिल चुका था। उसे आगरा जेल में ले जाया गया। वहां कुछ दिनों तक उसे दूसरे राजनीतिक बंदियों के साथ ही रखा गया। पर उसकी हठकारिता और बात-बात में जेल के अनुशासन का उल्लंघन करने के कारण जेल का सुपरिन्टेन्डेन्ट उससे बहुत नाराज हो उठा और उसने उसे एक कालकोठरी में बन्द करवा दिया। प्रारम्भ में उस कालकोठरी को महीप ने किसी हद तक वरदान समझा, क्योंकि वह परिपूर्ण एकान्त स्थान में निपट अकेलेपन के लिये कुछ समय से अत्यन्त उत्सुक हो उठा था—चाहे वह एकान्तवास किसी घोर नारकीय अवकूप में ही क्यों न हो। जिस अंधेरी 'गुफा' में उसे रखा गया उसके भीतर युगों से संचित दुर्गन्ध इस कदर तीव्र थी कि अन्य किसी भी स्थिति में पांच ही मिनट के अन्दर उसके भीतर उसका दम घुट गया होता। पर उसकी ज्ञानेन्द्रियों में इधर कुछ समय से जैसे कायापलट हो गया था। वह भयंकर बदबू उसे एक अत्यन्त साधारण-सी गंध मालूम होने लगी। कमरा एक तो धूप और प्रकाश से रहित था, तिस पर जमीन की निचली सतह से मिला होने के कारण सील से तर था। प्राकृतिक क्रियाओं के लिये उसी रुद्ध कमरे के भीतर ही प्रबन्ध किया गया था। बाहर की तरफ से एक कोने में केवल एक छोटा-सा

छिद्र खुला हुआ था, जिस पर से अधेड़ उम्र का संतरी बार-बार भीतर को झांका करता था—यह जानने के लिये कि भीतर कैदी क्या-क्या उपद्रव कर रहा है। भीतर घोर रौरव के अगम अंधकारमय वातावरण में जब उस छिद्र से बाहर की ओर देखने पर बीच-बीच में सन्तरी की दो आंखें चमकती हुई दिखाई देती थीं, तब वे किसी भौतिक माया की भयंकर रहस्यमयता का आभास महीप को दे जातीं।

वह कभी चीलरों से गुथे हुए कम्बल के ऊपर लेटा रहता, कभी उस अंधकूप के भीतर किसी अभिशप्त बैताल की तरह चक्कर काटता रहता। प्रारम्भ ही से उसे अखाद्य भोजन मिला करता था और जब से उसे काल-कोठरी में बन्द किया गया तब से तो वह अखाद्यता चरम सीमा को पहुंच गई थी। वह कभी उस 'भोजन' को स्पर्श-भर कर लेता और कभी स्पर्श भी न करता। एक तो अनशन, उस पर चीलरों द्वारा रक्त-शोषण और उस पर भी वायु और प्रकाश से रहित कालकोठरी की गन्दगी और दुर्गंध। इन सब कारणों से उसकी अवशिष्ट शारीरिक और मानसिक शक्तियां दिन-पर-दिन निम्न से निम्नतर स्तर को पहुंचती चली जाती थीं। कमजोरी इस कदर बढ़ गई थी कि दो ही चक्करों के बाद उसके पांव लड़खड़ाने लगते। पर चक्कर लगाये बिना वह रह नहीं पाता। एक तो चीलर चिकोटी काटते, तिस पर असह्य दुश्चिन्ताएं उसे शरीर को आन्दोलित करने के लिये बाध्य करतीं।

उसकी उन चिन्ताओं को ठीक 'दुश्चिन्ताएं' भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि कभी-कभी उसके मन में उत्पन्न होने वाली कुछ अस्पष्ट चिन्ताएं ऐसी विचित्र कल्पनाओं का रूप धारण कर लेतीं जो उसके समस्त शरीर और मन को उस घोर नारकीय स्थिति में भी हाइड्रोजन-भरे बैलून की तरह हल्का कर देतीं और एक उन्मुक्त उड़ान की अनुभूति से उसके प्राण पुलकित हो उठते। पर अधिकतर जब ऐसे क्षण आते थे तब उसका कल्पना-जात समस्त विश्व या एक बीभत्स विभीषिकामय विराट् रूप उसके सामने खड़ा कर

देता और उसे विश्व के किसी क्षुद्रतम कोने मे भी त्राण की आशा का क्षीणतम चिन्ह भी कहीं दिखाई न देता। कभी-कभी उसके मन की तत्कालीन अस्वाभाविक स्थिति और शरीर की असाधारण दुर्बलता उसकी युगयुगान्तर से सोई हुई कुडलिनी को जगाकर उसके भीतर एक अभूतपूर्व आध्यात्मिक चैतन्य का उद्बोधन करने में समर्थ होती थी। उस अवस्था में देश और काल का कोई बन्धन जैसे उसकी अतंदृष्टि के लिये नहीं रह जाता था, और भूत, वर्तमान और भविष्य की एक अटूट चित्ररेखा उसकी भीतरी आखों के आगे स्पष्ट रूप से भासमान हो उठती थी। उसे ऐसा बोध होने लगता कि सभ्यता की सृष्टि, स्थिति और विनाश के तीनों दृश्य एक-साथ उसके सामने से होकर गुजर रहे हैं। स्थिति बीच में स्थिर है, यद्यपि बीच में कभी-कभी उसके ऊपर ग्रहण-सा छा जा रहा है, तथापि वह ग्रहण स्थायी न रहकर फिर उप-ग्रहण में परिणत हो जा रहा है। स्थिति के उस स्थिर दृश्य के चारों ओर सृष्टि और विनाश दौड लगा रहे हैं—कभी विनाश सृष्टि को पीछे छोडकर आगे बढा जा रहा है और कभी सृष्टि आगे बढकर विनाश को पीछे छोड देती है। कौन चित्र सृष्टि का है और क्यों, कौन विनाश का है और क्यो, इस सम्बन्ध में उसे तनिक भी भ्रम नहीं हो रहा था। पर विनाश अपनी विश्वग्रासी लपलपाती हुई रक्त जिन्हाओं को बाहर निकालकर इस तेजी से क्यों आगे बढा जा रहा है? तब क्या इस लम्बी दौड मे अत मे उसी की विजय होगी? सुदूर भविष्य में भी क्या सृष्टि के विजयी होने की सभावना नहीं है? न हो! पर स्थिति तो बीच मे अडिग अवस्था में स्थिर है। उसे विनाश कुछ समय के लिये भले ही अपनी धूम्र-छाया से ढक ले, पर उसे वह कभी, किसी भी युग में, किसी भी हालत मे मिटा नहीं सकता—हा, नहीं मिटा सकता!

"पर अणु-बम का क्या होगा?"—अपने चित्त की उसी अस्वाभाविक रूप से उद्बोधित अवस्था में महीप सोचता—"क्या वह निकट अथवा सुदूर भविष्य में पूर्ण विनाश का दम नहीं भर रहा है? उसे ऐसा करने से

रोक कौन सकेगा ? और यदि मान भी लिया जाय कि अणु-बम भी मानव-जगत के परिपूर्ण विनाश में पूरी सफलता न पा सका, तो अगले महायुद्ध मे उससे भी अधिक व्यापक रूप से विनाशक अस्त्र का आविष्कार करने से वैज्ञानिकों को कौन रोक सकेगा ? आधुनिक साम्राज्यवादी राजनीति और विज्ञान चड और मुड, आकुलि और किलात की तरह आपस में जो यह सन्धि किये वैठे है कि जब तक इस पृथ्वी पर से मानव-जीवन, मानवीय संस्कृति तथा मानवत्व की भावनाए विलुप्त न हो जाय तब तक चैन नहीं लेंगे, उसमे कौन शक्ति हस्तक्षेप कर सकती है ? तब हो जाय नियति तुम्हारी ही अनिवार्य इच्छा का अखड राज्य स्थापित ! यदि अपरिमित युगों से निरतर विकास और प्रगति की ओर अग्रसर होते रहने वाले मानव-जीवन के भीतर किसी अखड सत्य की वास्तविक और दुर्निवार शक्ति के बीज छिपे होंगे तो वह इस पृथ्वी के विनाश के वाद भी बना रहेगा। सभव है कि इस पृथ्वी के परिपूर्ण विनाश के पहले ही चिर-सत्य मानवता किसी दूसरे ग्रह मे अपना उपनिवेश स्थापित कर लेगी और तब सृष्टि और विनाश की दीर्घ दौड में युगों बाद पहली बार स्थायी रूप मे सृष्टि की विजय होगी ! तब संभवत मानव-जाति के वर्तमान नेतागण न तो अपनी घोर मूर्खतापूर्ण अहमन्यता से इतराकर, व्यर्थ की राजनीतिक महत्त्वाकाक्षाओं से प्रेरित होकर सामूहिक विनाश का चक्र-जाल रचेंगे और न मौलिक चिंतकों और न अहिंसात्मक राजनीतिक कार्यकर्ताओं को पुलिस राज का शिकार बनाकर इस तरह जेल की गन्दी कालकोठरियों के भीतर सडने दिया जायगा। तब संभवत मानव-जाति अपनी उस सच्ची साधना और संस्कृति को सफल बनाने में समर्थ होगी जो अन्तरराष्ट्रीय लुटेरों के विनाशक शस्त्र-मंत्रों और मूर्खता-जनित युद्धों के सामूहिक संहारकांडों के ऊपरी धूम्र-जालों के नीचे अंत सलिला नदी की तरह निरतर विकास को प्राप्त होती हुई प्रगति के पथ पर अग्रसर होती चली जा रही है। सच्ची मानवता अनन्त उत्पातों और अनगिनत निर्यातनों के बाद भी एक दिन अपने चिर-वाञ्छित और निर-

आकांक्षित स्वर्ग के स्वप्न को सफल बना कर ही रहेगी। पर अभी—और इसी पृथ्वी पर—नहीं। इस समय अन्तरराष्ट्रीय जगत के जो धूर्त नियतागण विश्व-कल्याण का ढोंग रचते हुए जिन विश्व-व्यवस्थाओं और विश्व-योजनाओं का जाल फैलाने की चेष्टा कर रहे है वे निश्चित रूप से समग्र जनता को विनाश के गढे की ओर ढकेलते चले जा रहे है। इसलिये अभी—इसी पृथ्वी पर—स्वर्ग की स्थापना की बातें धूर्तों, कायरो या मूर्खों के प्रलाप के सिवा और कुछ नहीं है।"

इस प्रकार की छायात्मक कल्पनाओं में वह कभी-कभी लगातार कई घंटों तक निमग्न हो जाता। बीच-बीच में कमज़ोरी के कारण झूमता रहता, भ्रमात्मक स्वप्नों में उलझता रहता, फिर भी उस विशेष चिंता-धारा की अटूट लडी उस स्वप्नावस्था में सूक्ष्म रूप में वर्तमान रहती। पर जब चीलर बडी तेज़ी से काटने लगते, तो उसकी वह छायात्मक कल्पना वास्तविक जगत के स्तर में आ उतरती और वह अपने-आप को सबोधित करके कहने लगता —"इस पृथ्वी से परे, किसी दूसरे ग्रह में मानवत्व के सच्चे रूप के विकास की जो स्वप्नमयी कल्पना तुम कर रहे हो, महीप, उस स्वर्गीय आशावादिता के बल पर तुम इस पृथ्वी पर जीवित कैसे रह सकते हो? अपने को इस पृथ्वी का कर्णधार समझने वाले अन्तरराष्ट्रीय नेताओं, देश के अधिकारियों और जेल तथा पुलिस विभाग के कर्मचारियों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मिलकर तुम्हे जो इस कदर अपमानित और निर्यातित किया है,—तुम्हें चूहों, चमगादडों और घृणित कीटो से भी बदतर समझकर, तुम्हारे कवि-जीवन का सारा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सत्व निचोडकर, तुम्हें प्लेग के चूहों से भी अधिक वीभत्स और गलित रूप से मरने के लिये छोड दिया है, उसके प्रतीकार का क्या उपाय तुम्हारे पास शेष रह गया है? तुम्हारी हिंसा की नीति पर अणु-बम के गर्वीले अधिनायकों ने अट्टहास किया है, तुम्हारी अहिंसा की नीति पर देश के स्वतन्त्रता-कामी उत्साही तरुण वर्ग ने थूका है, तुम्हारी सुकुमार मानवीय भावनाओं से पूर्ण कविताओं

और विचारों का कोई मूल्य स्वतन्त्रता-संग्राम में रत राष्ट्र ने स्वीकार नहीं किया है, और अंतरराष्ट्रीय जगत् के कानों तक तुम्हारा क्षीण स्वर पहुंच ही नहीं पाया है—उसे पहुंचाने का कोई साधन—कोई भोंपू—ही तुम्हारे पास नहीं रहा है, तुम्हारा प्रेम उस नारी ने अंत तक ठुकराया है, जिसे तुम बराबर अन्तर्साधना के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एकमात्र सबल मानते रहे और जिन दो और नारियों की आत्मीयता तुमने किसी हद तक प्राप्त की थी उन्हें भी तुमने अपने स्वभाव की अनिश्चयात्मकता और असामंजस्य के कारण अपने से अलग कर दिया। इस जीवन में तुम्हारी असफलताओं का ओर-छोर नहीं है। आज तुम कुत्तों की मौत मरने जा रहे हो, पर तुम्हारे नाम को भी रोने वाला कोई व्यक्ति इस विराट विश्व के किसी भी कोने में नहीं है।"

इस प्रकार के विचारों का क्रम जब उसके मन में चलने लगता तब उसके भीतर, न जाने किस अतल लोक में, आत्म-करुणा-जनित क्रन्दन और हाहा-कार की एक लहर गद्गद स्वर में उमड़ उठती। पर जब आंखों तक वह लहर पहुँचती तब वह पत्थर के आंसुओं में बदल कर रह जाती। उसकी स्वाभि-मानी प्रकृति किसी भी रूप में तरल आंसू बहाने के लिए तैयार न होती। समस्त विश्व के प्रति एक विराट अभिमान की भावना उसके भीतर रह-रह कर फूल उठती थी—और साथ ही प्रतिहिंसा की भावना भी। पर उसका विवेक जानता था कि प्रतिहिंसा की भावना उसकी तत्कालीन अवस्था में पालना अपने नपुंसक क्रोध को बढ़ावा देने के सिवा और कुछ नहीं है, इसलिये वह दांत पीसकर उसे दबा देता था।

वह दृश्य उसे नहीं भूलता था—ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह को उनकी प्रेमिकाओं सहित ज़िन्दा जला देने के लिये उन्मत्त जनता रमन रमपर खड़ी थी और वह जब बचाने गया तो उसका सिर तोड़ डाला गया। कैसी विराट प्रतिहिंसा थी वह अत्याचार-पीड़ित जनता की! और उस भीषण

प्रतिहिंसा को उसकाने वाली थीं दो नारियां! वह सोचता था कि यह अस्वाभाविकता कैसे सभव हुई? निश्चय ही ठाकुर साहब की पापाचारिता चरम सीमा को भी लांघ चुकी होगी। अहिंसा के नाम पर मर्म-पीडितों की प्रतिहिंसा को दोषपूर्ण ठहराने का कोई अधिकार उसे नहीं है। जिसे वह अस्वाभाविक समझे बैठा है, उस परिस्थिति में सभवत वही स्वाभाविक था। इस तरह का तर्क उसके भीतर चलता। पर तर्क से चाहे किसी भी निर्णय पर वह पहुचता हो, किन्तु उसकी अतरात्मा की अनुभूति का कोई मेल उससे नहीं हो पाता था।

इक्कीसवां परिच्छेद

दिन-पर-दिन उसकी शक्ति क्षीण-से-क्षीणतर होती जाती थी। वह चाहता था कि जो कुछ भी खाद्य जेल के कर्मचारियो की कृपा से उसके पास तक पहुच रहा है उसे किसी प्रकार पेट में डाल ले, ताकि दो पावों के बल खडे होने की शक्ति किसी हद तक उसे प्राप्त हो जाय। पर लाख चाहने पर भी वह उसे मुह तक नहीं ले जा पाता था—उसकी गध ही ऐसी विकट रहती थी, उसके रूप-रग और स्वाद की बात दूर रही।

अब वह अधिकतर लेटा ही रहता। खडे होने या अधिक देर तक बैठने की शक्ति ही उसमें शेष नहीं रह गई थी। जो आदमी अपना कर्तव्य पालन करने के खयाल से उसे 'खाना' दे जाता था, उसने एक दिन उसकी दयनीय दशा देखकर उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—"बाबू जी, अब घबराइये नहीं, अब थोडे ही दिनो की बात है। चुनाव के बाद ही कांग्रेस सरकार कायम होने जा रही है, तब आप निश्चय ही रिहा हो जावेंगे।"

महीप उत्तर में कुछ न बोला, केवल करुण व्यग की अस्पष्ट मुस्कान उसकी आखो मे और ओठों के इर्द-गिर्द झलक उठी। दूसरे ही दिन उसे सहसा खून की कै हो गई। मीठा ज्वर और खासी की शिकायत पहले ही से चल रही थी। इस कै के बाद ज्वर एकदम बहुत बढ गया। पर उस ज्वर के कारण

उसे कोई कष्ट नहीं हुआ, वल्कि एक प्रकार का आराम ही वह अनुभव करने लगा। उसे ऐसा लगने लगा था जैसे वह फूल से भी हलका हो गया है, और मुक्त शून्य में उडा चला जा रहा है। जिस घोर अमानवीय, निर्मम, कुटिल और कठोर वास्तविकता के बीच मे वह पडा हुआ था, उसका अस्तित्व ही उसके लिये कपूर की तरह विलीन हो गया था। उसका अधिकाश समय एक विचित्र ही अमानवीय अथवा अतिमानवीय लोक में सैर करते हुए बीतने लगा। उस जगत की कोई स्पष्ट और निश्चित रूप-रेखा उसके सामने नहीं थी। वह केवल इतना ही जानता था कि जो अवर्णनीय अनुभूति वह अलौकिक जगत उसे प्रदान कर रहा है वह अत्यन्त सुखकर है। अब चीलर भी उसे नहीं काटते थे—इसलिये कि उसके शरीर मे अब रक्त शेष नहीं रह गया था। ऐसे सुख—ऐसे आराम का अनुभव अपने जीवन मे इसके पहले कभी एक दिन के लिये भी महीप ने शायद ही किया हो। बीच-बीच मे खासने के बाद थोडा-सा खून मुह से निकलता जाता था, और खासने मे थोटा कष्ट उसे अवश्य होता था, पर उसके बाद तत्काल ही वह फिर उसी अलौकिक ससार मे पहुच जाता।

जिस दिन पहले-पहल उसने खून की कै की थी उसके आठ दिन बाद जेल का डाक्टर उसके पास पहुचा। डाक्टरी परीक्षा के बाद उसे अस्पताल में पहुचाया गया। उसके खाद्य मे परिवर्तन किये जाने का आदेश जारी किया गया। इस आदेश के फलस्वरूप उसे दूसरी अखाद्य वस्तुओं के साथ दुर्गन्ध-युक्त शोरवा और सड़ा, बासी अडा भी दिया जाने लगा, जिसे छूना भी उसके लिये असभव था। अस्पताल मे दूसरे रोगियों के बीच में आने पर प्रारम्भ में महीप को लगा कि उसकी दुनिया बदल गई है और जिस अतिमानवीय लोक में वह विचरने लगा था वह जैसे खो गया है। बीच-बीच मे पीड़ितों की कराह का स्वर तीखे और आग मे तपाये हुए भालों की तरह उसके मर्म मे जाता था। वह स्वय कभी एक बार के लिये भी नहीं कराहा था। पर यह अवस्था कुछ ही घंटों के लिये रही। उसके बाद वह फिर—बिना किसी ऐच्छिक

प्रतिहिंसा को उसकाने वाली थीं दो नारियां ! वह सोचता था कि यह अस्वाभाविकता कैसे सभव हुई ? निश्चय ही ठाकुर साहब की पापाचारिता चरम सीमा को भी लांघ चुकी होगी। अहिंसा के नाम पर मर्म-पीडितो की प्रतिहिंसा को दोषपूर्ण ठहराने का कोई अधिकार उसे नहीं है। जिसे वह अस्वाभाविक समझे बैठा है, उस परिस्थिति में सभवत वही स्वाभाविक था। इस तरह का तर्क उसके भीतर चलता। पर तर्क से चाहे किसी भी निर्णय पर वह पहुचता हो, किन्तु उसकी अतरात्मा की अनुभूति का कोई मेल उससे नहीं हो पाता था।

इक्कीसवां परिच्छेद

दिन-पर-दिन उसकी शक्ति क्षीण-से-क्षीणतर होती जाती थी। वह चाहता था कि जो कुछ भी खाद्य जेल के कर्मचारियो की कृपा से उसके पास तक पहुच रहा है उसे किसी प्रकार पेट में डाल ले, ताकि दो पावों के बल खडे होने की शक्ति किसी हद तक उसे प्राप्त हो जाय। पर लाख चाहने पर भी वह उसे मुह तक नहीं ले जा पाता था—उसकी गध ही ऐसी विकट रहती थी, उसके रूप-रग और स्वाद की बात दूर रही।

अब वह अधिकतर लेटा ही रहता। खडे होने या अधिक देर तक बैठने की शक्ति ही उसमें शेष नहीं रह गई थी। जो आदमी अपना कर्तव्य पालन करने के खयाल से उसे 'खाना' दे जाता था, उसने एक दिन उसकी दयनीय दशा देखकर उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—"बाबू जी, अब घबराइये नहीं, अब थोडे ही दिनो की बात है। चुनाव के बाद ही कांग्रेस सरकार क़ायम होने जा रही है, तब आप निश्चय ही रिहा हो जावेंगे।"

महीप उत्तर में कुछ न बोला, केवल करुण व्यग की अस्पष्ट मुस्कान उसकी आखो में और ओठों के इर्द-गिर्द झलक उठी। दूसरे ही दिन उसे सहसा खून की क़ै हो गई। मीठा ज्वर और खासी की शिकायत पहले ही से चल रही थी। इस क़ै के बाद ज्वर एकदम बहुत बढ गया। पर उस ज्वर के कारण

इसके बाद कुछ सेकिन्डों के लिये वह चुप रहा, और फिर अत्यन्त स्पष्ट स्वर में बोल उठा—"नीलिमा, ठहरो, मैं आता हूँ. " और उसके बाद ही उसका श्वास ऊपर को चढ़ने लगा। नर्स घबराकर डाक्टर को बुला लाई। पर तब तक सब कुछ समाप्त हो चुका था।

इस घटना के दूसरे ही दिन संवादपत्रों में यह समाचार छपा कि कांग्रेसी मंत्रिमंडल स्थापित हो चुका है और कांग्रेस का पहला काम समस्त राजनीतिक बन्दियों को मुक्त करने का होगा।

समाप्त

प्रयत्न के, उसी अतीन्द्रिय लोक में पहुच गया। उसकी अत्यधिक शारीरिक और मानसिक दुर्बलता उसे अधिक समय तक वास्तविक जगत मे रहने ही नहीं दे सकती थी।

अस्पताल पहुचाये जाने के तीन ही दिन बाद फिर एक बार खून की कै हुई। उसकी हालत इस कदर गिर गई कि नाडी की गति का कुछ पता ही नहीं चलता था। पर वास्तव में उसकी चेतना की आनन्दानुभूति पहले से बहुत अधिक बढ गई थी। जिस लोक में उसकी चेतना पहुच गई थी वहा विचित्र रूप-रगो का खेल चल रहा था। क्षण-क्षण में रग बदलते जाते थे, और पल-पल मे चित्र-परिवर्तन के साथ ही उसकी पुलकानुभूति के स्पदन की गति भी बदलती रहती थी।

चौथे दिन तडके सबेरे महीप को लगा कि उसके शरीर का जो लघुतम भार शेष रह गया था अब उसका भी कोई लेश नहीं रह गया है, उसकी चेतना शून्य के किस बिदु पर स्थित है, इसका कोई ज्ञान उसे नहीं हो रहा था, यद्यपि वह यह जानने के लिये छटपटा रहा था। साथ ही वह यह अनुभव भी कर रहा था कि एक विचित्र मनोहारी दृश्य उसके सामने भासित हो रहा है। वह देख रहा था कि अनन्त आकाश से असख्य फुलझडिया रग-विरगी चिनगारिया छोडती हुई अविरल प्रकाश-धाराओ के रूप में नीचे बरस रही है। उस दृश्य में वह परिपूर्ण रूप से मग्न हो गया था। सहसा वह अट्टहास कर उठा। इसके पहले उसने जीवन में कब अट्टहास किया था, यह कहना कठिन है। उसके उस अट्टहास से पास खडी नर्स चौंक उठी। उसने पूछा—"क्या हुआ ? कोई चीज चाहिये क्या ?" महीप की आखे खुली थीं, और उसने एक बार नर्स की ओर देखा था, पर उसके कानो तक नर्स की आवाज नहीं पहुची। वह फिर एक बार अट्टहास कर उठा, पर तत्काल ही अत्यन्त गभीर हो गया, और बोला (आज बहुत दिनों बाद उसके मुह से आवाज निकली थी)—"अरे, ये तो सब अणु-बम है! अणु-बम!"

इसके बाद कुछ सेकिन्डों के लिये वह चुप रहा, और फिर अत्यन्त स्पष्ट स्वर में बोल उठा—"नीलिमा, ठहरो, मैं आता हूँ..." और उसके बाद ही उसका श्वास ऊपर को चढने लगा। नर्स घबराकर डाक्टर को बुला लाई। पर तब तक सब कुछ समाप्त हो चुका था।

इस घटना के दूसरे ही दिन सवादपत्रो मे यह समाचार छपा कि कांग्रेसी मत्रिमडल स्थापित हो चुका है और कांग्रेस का पहला काम समस्त राजनीतिक बन्दियो को मुक्त करने का होगा।

समाप्त